भारत व पाकिस्तान

का

आर्थिक व वाणिज्य भूगोल

लेखक

ए. दास गुप्ता

एम. ए., बी. काम., एफ. आर. जी. एस. (लन्दन)
अध्यक्ष, वाणिज्य विभाग, देहली पॉलीटेकनिक, देहली,
भूतपूर्व भूगोल अध्यापक, विद्यासागर कालेज, कलकत्ता,
विविध विश्वविद्यालयों के परीक्षक
लेखक *'Economic and Commercial Geography'*
'Economic Geography of India and Pakistan'
'आधुनिक आर्थिक व वाणिज्य भूगोल'

तथा

अमर नाथ कपूर एम. ए., डी. फिल.

अध्यापक, वाणिज्य विभाग, देहली पॉलीटेकनिक, देहली
भूतपूर्व अध्यापक, एस. एम. कालेज, चन्दौसी (यू. पी.)
लेखक 'भूमंडल का सरल आर्थिक व वाणिज्य भूगोल',
'भारत का सरल आर्थिक व वाणिज्य भूगोल'
'आधुनिक आर्थिक व वाणिज्य भूगोल'

मेयर पब्लिशिंग कम्पनी

फव्वारा—देहली

प्रकाशक :
गौरीशंकर शर्मा
अध्यक्ष, प्रीमियर पर्

सहायक ग्रन्थ

आधुनिक आर्थिक व वाणिज्य भूगोल
(भारत रहित) मूल्य ७॥)

द्वितीय संशोधित व परिवर्द्धित संस्करण
१९५४

मुद्रक :
नेशनल प्रिंटिंग वर्क्स
१०, दरियागंज, देहली

दूसरे संस्करण की प्रस्तावना

भारत व पाकिस्तान के आर्थिक जीवन में अनेकों नए परिवर्तन हुए हैं। प्रत्येक वर्ष इन दोनों देशों के लिए बड़े महत्व का है। इसी परिवर्त्तनमयी स्थिति को ध्यान में रखते हुए इस नवीन संस्करण में बहुत से नये संशोधन कर दिये गये हैं। साथ-साथ बहुत-सी नयी सामग्री का भी समावेश कर दिया गया है। दोनों ही देशों में आर्थिक स्थिति के सुधार के लिए अनेकों बहुधंधा-योजनाओं पर काम हो रहा है। देश के उद्योग-धन्धों में बड़ी उन्नति व प्रसार की सम्भावना है। देश की खाद्य समस्या को सुलझाने व आत्मनिर्भर बनाने के लिए खेती के रूपरंग में विशेष हेरफेर कर दिया गया है। इन सभी प्रकार की दिशाओं में हुए परिवर्तन से सम्बन्धित तथ्यों को यथासम्भव कारण-सहित समझाया गया है। इस प्रकार इस नवीन संस्करण में भारत व पाकिस्तान के आर्थिक भूगोल का नवीनतम रूप प्रस्तुत किया गया है।

नवीनतम सामग्री को सुचारूरूप से समझाने के लिए यथासम्भव सन् १९५२-५३ तक के आंकड़ों को दिया गया है। साथ-साथ अनेकों नये मानचित्र व चार्ट भी बढ़ा दिये गये हैं। इस प्रकार विषय में समाविष्ट सामग्री का निरूपण चित्रवत् हो गया है। ये सभी आंकड़े व चित्र विश्वसनीय सूत्रों जैसे सरकारी विज्ञप्तियों, रिपोर्टों और सूत्रताओं से लिये गये हैं या उन्हीं के आधार पर तैयार किये गये हैं।

इस संस्करण के तैयार किये जाने में हमें निम्नलिखित सज्जनों से विशेष सहायता मिली है जिनके प्रति हम अनुगृहीत हुए बिना नहीं रह सकते : श्री बलवन्त सिंह डी. ए. वी. कालेज, कानपुर ; श्री एस. पी. श्रीवास्तव, अग्रवाल विद्यालय कालेज, इलाहाबाद ; श्री पी. एन. श्रीवास्तव, घनानन्द गवर्नमेन्ट इन्टर कालेज, मसूरी ; श्री विश्वम्भरनाथ, योजना कमीशन, नई दिल्ली।

दिल्ली
ता. १ सितम्बर, १९५४.

ए. दास गुप्ता
अमर नाथ कपूर

भूगोल की ही विवेचना की गई है और प्रथम बारह अध्यायों में केवल भारत से संबंधित सामग्री को ही स्थान दिया गया है परन्तु यथास्थान विभाजन का प्रभाव बराबर स्पष्ट कर दिया गया है। तेरहवें अध्याय में पाकिस्तान राज्य के आर्थिक जीवन व वाणिज्य का विवरण दिया गया है परन्तु जहां-तहां आवश्यकतानुसार पाकिस्तान और भारत का अटूट आर्थिक संबंध भी स्पष्ट कर दिया गया है।

अन्त के दो अध्यायों में बर्मा और लंका के आर्थिक भूगोल का अध्ययन है। ये हमारे देश के पड़ोसी राष्ट्र हैं और सन् १९३७ तक तो बर्मा भारत का ही एक अंग था। अलग होने पर भी भारत और बर्मा व लंका एक दूसरे से संबंधित हैं। इन तीनों राष्ट्रों की बहुत-सी समस्यायें बिल्कुल एक जैसी हैं और ये तीनों ही एक दूसरे पर बहुत-सी बातों में निर्भर रहते हैं। अतः इनका अध्ययन भारत के आर्थिक व वाणिज्य भूगोल के अध्ययन का पूरक है और इनके अध्ययन का उचित समावेश करके पुस्तक को संपूर्ण, व्यापक और सार्वभौमिक बनाया गया है।

अन्त में हम निम्नलिखित सज्जनों को हार्दिक धन्यवाद दिये बिना नहीं रह सकते, जिन्होंने अपने बहुमूल्य विचारों व आदेशों द्वारा इस पुस्तक के तैयार होने में बड़ी सहायता दी है:—श्री बलवन्त सिंह, डी० ए० वी० कालेज कानपुर; श्री एम. पी. ठाकुर, कैम्प कालेज, नई दिल्ली; डा० विश्वम्भर नाथ, योजना कमीशन, नई दिल्ली; श्री डी० एन० मेहता, कर्माशियल हायर सैकंडरी स्कूल; श्री एस. पी. श्रीवास्तव, अग्रवाल विद्यालय इंटर कालेज, प्रयाग।

उत्पादन व क्षेत्रफल के आंकड़ों के लिये हमने संयुक्त राष्ट्रसंघ की विविध रिपोर्टों, सरकारी विज्ञप्तियों तथा अन्य बहुत-सी विश्वसनीय पत्र-पत्रिकाओं से सहायता ली है। उन सभी के प्रति हम अनुगृहीत हैं।

दिल्ली,
ता० १ मई, १९५३

ए० दास गुप्ता
अमर नाथ कपूर

विषय-सूची

विषय प्रवेश : भारत के आर्थिक भूगोल के अध्ययन का उद्देश्य। १–२

१—**प्राकृतिक परिस्थितियां :** क्षेत्रफल, विस्तार, स्थिति, जलवायु और वर्षा, भूमि। ३–२८

२—**जनसंख्या का वितरण**—जातियां और भाषा। २९–४१

३—**कृषि का उद्यम**—वर्तमान दशा, खेती के प्रकार, कम उपज के कारण, भारत में खाद्यान्न की स्थिति, मुख्य फसलें—चावल, गेहूं, ज्वार, बाजरा, जौ, मक्का, दालें, चाय, कहवा, तम्बाकू, गन्ना, पटसन, सन, कपास, तिलहन, रबर। ४२–१०२

४—**सिंचाई के साधन**—भारत में सिंचाई के साधनों के प्रकार: कुएं, तालाब, नहरें। पूर्वी पंजाब और उत्तर प्रदेश में नहरों से सिंचाई—सिंचाई का विकास और प्रगति। बहुधंधा योजनाओं का उद्देश्य—दामोदर घाटी योजना, हीराखड्ड योजना, कोसी योजना, तुंगभद्रा योजना, भाखरा-नंगल योजना, रिहन्द घाटी योजना। १०३–१२१

५—**वन संपत्ति और उनकी उपज:**—प्रधान वन प्रदेश—वनों के प्रकार—वन उपज का प्रयोग और महत्व —प्रमुख व्यापारिक लकड़ी। १२२–१२८

६—**भारत के पशु और उनसे प्राप्त सामग्री**—पशु संख्या—भेड़ और ऊन, दूध देने वाले पशु और दुग्धशाला उद्योग, चमड़ा और खालें। मुर्गी पालने का धंधा। १२९–१३४

७—**मछलियां**—समुद्री मछली शिकार क्षेत्र, डेल्टा मछली शिकार क्षेत्र, नदी मछली शिकार क्षेत्र। मछली से प्राप्त वस्तुएं। १३५–१४१

८—**खनिज सम्पत्ति**—लोहा, मैंगनीज, तांबा, सोना, अभ्रक, नमक, शोरा। भारत में औद्योगिक शक्ति के स्रोत—कोयला व खनिज तेल। जलविद्युत। १४२–१७४

९—**प्रमुख उद्योग-धंधे**—सूती कपड़े, पटसन का धंधा, चीनी बनाने का उद्योग, चाय, रेशम, कृत्रिम रेशम और ऊनी वस्त्र व्यवसाय, लोहा व इस्पात उद्योग, कागज, रासायनिक उद्योग, शीशा बनाने का व्यवसाय, अल्युमिनियम का धंधा, चमड़े का उद्योग, पोत निर्माण, वायुयान निर्माण, मोटर निर्माण, लाख, सीमेंट और दियासलाई बनाने के धन्धे। १७५–२२७

१०—**यातायात के साधन**—रेलें, सड़कें, जलमार्ग, समुद्री व्यापारिक

मार्ग, हवाई यातायात। २२८–२५३

११—**विदेशी व्यापार**—भारत के विदेशी व्यापार की विशेषतायें, देश के विभाजन का प्रभाव, वर्तमान दशा। प्रमुख आयात-निर्यात—ग्रेट ब्रिटेन, पाकिस्तान, ईराक, बर्मा, लंका, जापान, जर्मनी, संयुक्त राष्ट्र अमरीका के साथ भारत का व्यापार। स्थलमार्गों से सीमांत प्रदेशों के साथ व्यापार। २५४–२७१

१२—**बन्दरगाह व व्यापार-केन्द्र**—पूर्वी और पश्चिमी तट के बन्दरगाह—व्यापारिक मंडियां—भारतीय राज्यों का परिचय। २७२–२८९

१३—**पाकिस्तान**—क्षेत्रफल व विस्तार, जनसंख्या, प्राकृतिक विभाग, सिंचाई के साधन, कृषि और फसलें—चावल, गेहूं और अन्य खाद्यान्न, चना, तम्बाकू, चाय, कपास, पटसन, तिलहन—वन प्रदेश—खनिज पदार्थ—जलविद्युत शक्ति—फलों का उत्पादन। पशु संपत्ति—मछली शिकार क्षेत्र—उद्योग धंधे—सूती कपड़े के कारखाने, चीनी उद्योग, ऊनी वस्त्र व्यवसाय। यातायात के साधन—रेलें, सीमांत सड़कें, जलमार्ग, हवाई यातायात। बन्दरगाह और व्यापारिक केंद्र, विदेशी व्यापार। २९०–३४०

१४—**बर्मा**—स्थिति, विस्तार व क्षेत्रफल, जनसंख्या व मनुष्य, भू-प्रकृति व जलवायु, खनिज संपत्ति, वन संपत्ति, कृषि, यातायात के साधन, बर्मा के थलमार्ग, व्यापारिक केंद्र, विदेशी व्यापार। ३४१–३४९

१५—**लंका**—स्थिति, क्षेत्रफल, प्राकृतिक बनावट व जलवायु, कृषि, खनिज संपत्ति, जनसंख्या व यातायात के साधन, उद्योग-धंधे, विदेशी व्यापार। ३५०–३५२

विषय प्रवेश

भारत के आर्थिक भूगोल के अन्तर्गत हम यहां के निवासियों की औद्योगिक व व्यापारिक क्रियाओं तथा प्राकृतिक परिस्थितियों के साथ उनका संबंध अध्ययन करते हैं। यहां के लोगों के मुख्य व्यावसायिक उद्यम खेती करना, वनों में काम करना, मिलों, कारखानों में काम करना, यातायात के साधनों को चलाना तथा व्यापार हैं। मछली पकड़ना और पशु पालन करना यहां के गौण व्यवसाय हैं।

बिहार का मुख्य उद्यम खानों को खोदना है। बंबई और हुगली की तलैटी में विभिन्न उद्योग धंधे पाये जाते हैं। बंबई, मद्रास, उड़ीसा और पश्चिमी बंगाल के तटीय प्रदेशों में मछलियां पकड़ी जाती हैं। उत्तर में गंगा ब्रह्मपुत्र का मैदान खेती का केंद्र है। विशिष्ट प्रदेशों में वहां के निवासियों के रहन-सहन व उद्योग धंधों पर उनकी परिस्थितियों, नदियों व प्राकृतिक साधनों का क्या प्रभाव पड़ता है इसी के अध्ययन का नाम आर्थिक भूगोल है। इस अध्ययन के द्वारा हमें यह पता चलता है कि हम प्राकृतिक साधनों का किस प्रकार पूर्ण व सफल उपभोग कर सकते हैं। प्रकृतिदत्त साधनों का उपभोग हमारे ज्ञान व मानसिक शक्ति पर निर्भर है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि जैसे-जैसे हमारे ज्ञान व व्यवहारिक कुशलता में वृद्धि होती जाती है वैसे हम अपने प्राकृतिक साधनों से अधिक लाभ उठाने लगते हैं। पश्चिमी बंगाल के दक्षिणी भाग में सुन्दर वन की घनी वृक्षाच्छादित भूमि को साफ करके कृषियोग्य बनाया जा रहा है। इसी प्रकार उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, और पूर्वी पंजाब के बहुत से ऊसर और खेती के लिये सर्वथा अयोग्य प्रदेशों को वैज्ञानिक विधियों द्वारा या सिंचाई की नयी योजनाओं की सहायता से मनुष्य के रहने योग्य बनाया जा रहा है।

अत: यदि आर्थिक भूगोल के विषय को ठीक से पढ़ा व समझा जाये तो भोजन, उद्योग, यातायात, जनसंख्या और व्यापार संबंधी हमारी बहुत सी समस्यायें बड़ी सहूलियत से हल की जा सकती हैं।

इस संबंध में एक बात विशेष रूप से ध्यान देने योग्य है और वह यह कि प्राकृतिक परिस्थितियां सदा एक सी नहीं रहतीं। नदियाँ अपना मार्ग बदल देती हैं या बिल्कुल ही सूख जाती हैं। नदियां अपने मुहाने पर मिट्टी जमा कर डेल्टा बनाती हैं। पश्चिमी बंगाल में डेल्टा बनने के फलस्वरूप तटरेखा बदलती है और बहुत से स्थानों पर नई तटरेखा निकल आयी है। इसी प्रकार पहाड़ों व पठारों के अनावृत्तीकरण तथा भूकम्प और ज्वालामुखी विस्फोट से भी बड़े परिवर्तन होते रहते हैं।

एक बात और ध्यान में रखने की है कि भूमि उपभोग के लिये हमारा ज्ञान शासन, धर्म, सामाजिक संस्थाओं जैसी मानव परिस्थितियों से प्राप्त सहायता पर निर्भर रहता है।

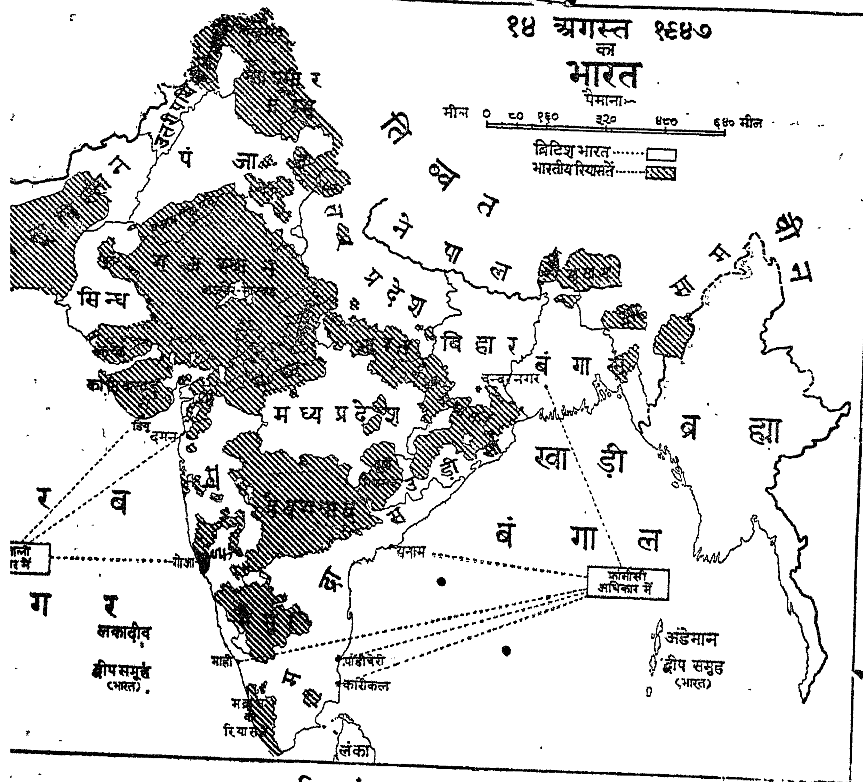
सामुद्रिक व्यापारिक मार्ग

चित्र नं० १—एशिया के तीन बड़े दक्षिणी प्रायद्वीपों के मध्य भारत की भौगोलिक स्थिति का आर्थिक व राजनीतिक क्षेत्रों में विशेष महत्व है।

अध्याय : : एक

प्राकृतिक परिस्थितियां

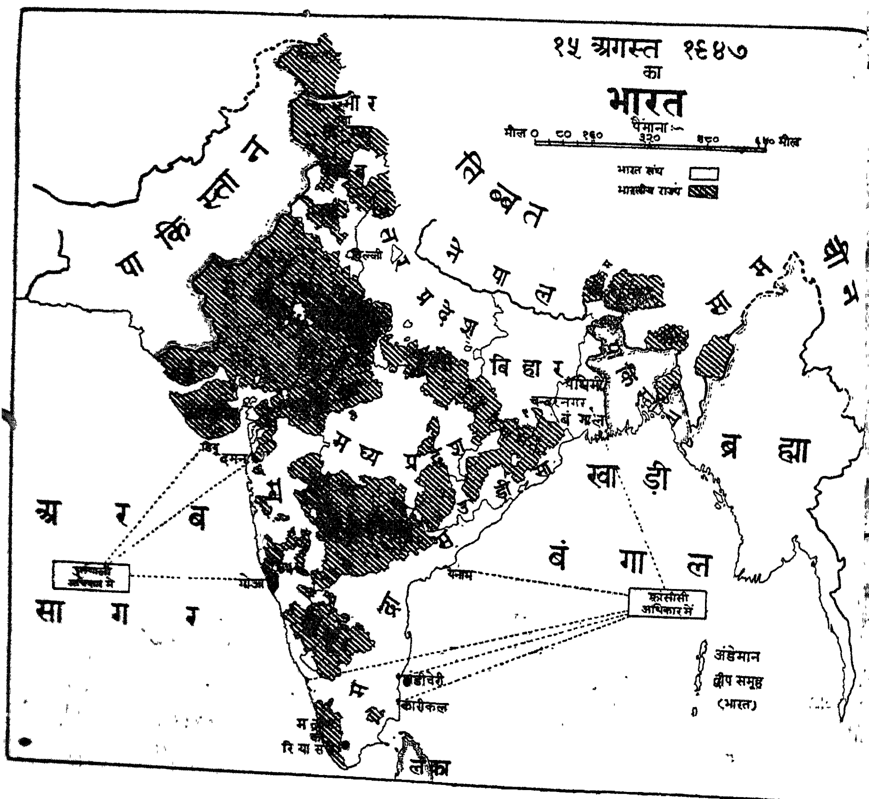
क्षेत्रफल स्थिति और तटरेखा––भारत का उत्तर से दक्षिण तक विस्तार २००० मील है और पूर्व से पश्चिम तक इसका विस्तार १४०० मील है। इसका रूप साधारणतया विषम समान दिशा त्रिभुज के समान है। काश्मीर को मिलाकर भारत का क्षेत्रफल १२,६९,६०० वर्गमील है और यहां बसने वाले लोगों की कुल संख्या ३६२० लाख है। राजनीति व शासन के दृष्टिकोण से सम्पूर्ण भारत में २८ राज्य सम्मिलित हैं जिनके नाम ये हैं––आसाम, बिहार, बम्बई, मध्य प्रदेश, मद्रास, उड़ीसा, पूर्वी पंजाब, पश्चिमी बंगाल, उत्तर प्रदेश, हैदराबाद, काश्मीर, मध्य भारत, मैसूर, पटियाला और पूर्वी पंजाब राज्य संघ, राजस्थान, सौराष्ट्र, ट्रावनकोर-कोचीन, अजमेर, भोपाल, बिलासपुर, कुर्ग,



चित्र नं० २

दिल्ली, हिमाचल प्रदेश, कच्छ, मनीपुर, त्रिपुरा, विन्ध्यप्रदेश, अन्डमान और नीकोबार सिक्कम और आन्ध्र ।

अगस्त सन् १९४७ में भारत का विभाजन हुआ और इसके फलस्वरूप भारतीय प्रायद्वीप को भारत व पाकिस्तान दो भागों में बांट दिया गया । विभाजन के पहिले सम्पूर्ण भारत का क्षेत्रफल १५,७५,१०७ वर्गमील था और इसका ६० प्रतिशत भाग ब्रिटिश आधिपत्य में था । बाकी ४० प्रतिशत भाग में भारतीय रियासतें व फ्रांसीसी तथा पुर्त्तगाली टुकड़ियां सम्मिलित थीं । सम्पूर्ण भारत की कुल जनसंख्या ३९०० लाख थी । विदेशी अधिकृत प्रदेशों का क्षेत्रफल १२७४ वर्गमील था और लगभग ८,७०,००० मनुष्य निवास करते थे । देश के विभाजन के बाद सम्पूर्ण भारत का तीन चौथाई क्षेत्रफल और दो तिहाई जनसंख्या भारत राज्य में रह गई । बाकी एक चौथाई क्षेत्रफल और एक तिहाई जनसंख्या पाकिस्तान के रूप में बंट कर अलग हो गई ।



चित्र नं० ३

बाद होने वाले साम्प्रदायिक झगड़ों के कारण लगभग ६० लाख आदमी पाकिस्तान में अपना घर छोड़कर भारत चले आये। भारत को इस बटवारे के फलस्वरूप ३ प्रांतों से हाथ धोना पड़ा। उत्तरी पश्चिमी सीमाप्रांत, सिन्ध, आधा पंजाब और आधा बंगाल पाकिस्तान में सम्मिलित कर दिया गया। अतः जूट, कपास, चमड़ा व खालें, खनिज तेल,

चित्र नं० ४

पहाड़ी नमक, क्रोमाइट आदि के स्रोत इसके हाथ से निकल गये। तीसरे, देश के सूती कपड़ा व्यवसाय को कच्चे माल की कमी प्रतीत होने लगी। भारत का सूती कपड़ा उद्योग कच्चे माल की मांग पूर्ति के लिए पाकिस्तान पर निर्भर रहता है और इसी प्रकार कलकत्ता की पटसन मिलों को पूर्वी पाकिस्तान से कच्चा पटसन प्राप्त करना होता है।

भारत की भौगोलिक स्थिति बड़ी केन्द्रीय है और इतनी महत्वपूर्ण है कि देश के वाणिज्य, सुरक्षा और जल-वायु पर इसका बड़ा ही व्यापक प्रभाव पड़ता है। इसके पूर्व की ओर बर्मा, मलाया, इन्डोनेशिया और स्याम जैसे घने आबाद देश स्थित हैं। इसके

जावेगा। पूर्वी गोलार्द्ध के मध्य और हिन्द महासागर के ऊर्ध्व पर स्थित भारत प्राचीन व अर्वाचीन जगत के बीच आने-जाने वाले व्यापारिक मार्गों का केन्द्र है। पश्चिम में अफ्रीका और यूरोप, दक्षिण में आस्ट्रेलिया तथा पूर्व में स्याम, चीन, जापान और अमरीका से यह समुद्री व्यापारिक मार्गों द्वारा सम्बद्ध है। अत: स्पष्ट है कि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के दृष्टि-कोण से भारत की स्थिति बड़ी ही महत्वपूर्ण है।

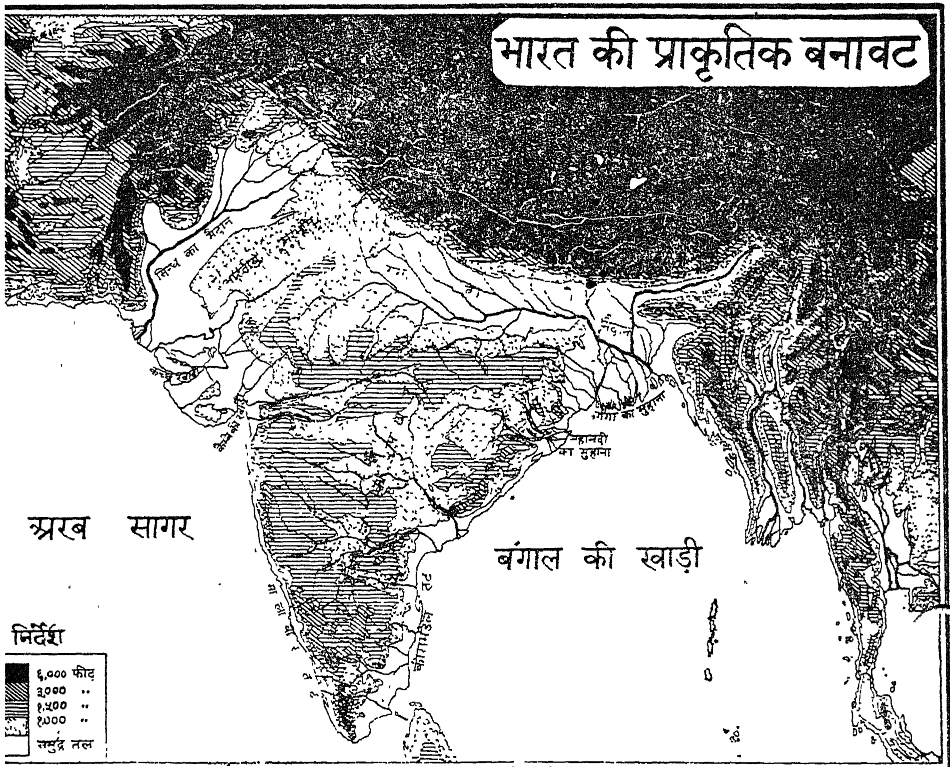
भारत की सीमायें प्राकृतिक व कृत्रिम दोनों ही प्रकार की हैं। उत्तर में हिमालय पर्वत श्रेणी, दक्षिण पश्चिम में अरब सागर, दक्षिण पूर्व में बंगाल की खाड़ी और धुर दक्षिण में हिन्द महासगार इसकी प्राकृतिक सीमायें बनाते हैं। पश्चिम में भारत पाकिस्तान की सीमा कृत्रिम व खुली है। अमृतसर जिले में रावी नदी और फिर दक्षिण की ओर मुड़कर फिरोजपुर जिले में सतलज नदी इसकी सीमा बनाती है। फिरोजपुर से आगे भारत की सीमा राजस्थान राज्य की अन्तिम परिधि-है। आसाम भारत की उत्तरी पूर्वी सीमा बनाता है। इसके अतिरिक्त इसका सम्पर्क उत्तर में तिब्बत, दक्षिणपूर्व में पूर्वी पाकिस्तान, उत्तरपूर्व में चीन तथा पूर्व में बर्मा से है। साधारणतया हम यह कह सकते हैं कि भारत की सीमान्त रेखाओं के तीन चौथाई भाग में पहाड़ और समुद्र स्थित हैं जो देश की सुरक्षा के लिए बड़े ही उपयुक्त हैं। राजनीतिक भूगोल के दृष्टिकोण से भारत की सबसे कमजोर सीमान्त रेखा पूर्वी पंजाब की है।

भारत का तट ३५०० मील लम्बा है। या यूं कहा जा सकता है कि देश के प्रत्येक ४०० वर्गमील क्षेत्रफल के अनुपात में १ मील लम्बी तटरेखा पाई जाती है। परन्तु यहां का तट बहुत कम कटा-फटा है और पास में बहुत कम द्वीप पाये जाते हैं। पास का तटीय जल छिछला है और किनारे सपाट तथा बलूहे हैं। इन प्राकृतिक विशेषताओं के कारण तट की लम्बाई को देखते हुए बहुत थोड़े पोताश्रय व बन्दरगाह हैं। कच्छ, कैम्बे और मन्नार की खाड़ियां, कोचीन व मालाबार के पीछे के जलाशय और पाक जलडमरूमध्य तथा गंगा के मुहाने पर की कटान के अतिरिक्त यहां का समुद्र तट बिलकुल ही सीधा व सपाट है। उपर्युक्त कटे-फटे भाग व खाड़ियां भी इतनी छिछली हैं कि उन्हें बराबर खोद कर गहरा करना पड़ता है। केवल कोचीन व मालाबार के जलप्रदेश पर्याप्त गहरे कहे जा सकते हैं पर वहां अन्य असुविधायें उपस्थित हैं।

भारत का पूर्वी तट—पूर्वी पाकिस्तान की सीमा पर खुलना प्रदेश में कालिन्दी नदी के मुहाने से सुन्दरबन के समानान्तर पश्चिम की ओर हुगली नदी तक फैला है। हुगली नदी के मुहाने से यह तट कृष्णा नदी के डेल्टा तक दक्षिण पश्चिम को फैला है और फिर वहां से भारत के सुदूर दक्षिण बिन्दु कुमारी अन्तरीप तक दक्षिण दिशा में विस्तृत है। यह पूर्वी तट बिलकुल सपाट है। केवल नदियों के मुहाने पर कटान नजर आती है।

पश्चिमी तट—कुमारी अन्तरीप से उत्तर की ओर विस्तीर्ण होता है। कैम्बे की खाडी

स्थित है। काठियावाड़ से यह तट उत्तर पश्चिम दिशा में फैला हुआ है। काठियावाड़ प्राय-द्वीप और उत्तरपश्चिमी तट के मध्य कच्छ की खाड़ी स्थित है। भारत के पश्चिमी तट के पीछे दक्खिन का पठार है और तट तथा पठारी प्रदेश के मध्य एक संकरा मैदान उत्तर से दक्षिण तक फैला हुआ है। इस तट पर लहरें टक्कर मारती हैं और मई से अक्तूबर तक बड़े-बड़े समुद्री तूफान आते हैं। कैम्बे और कच्छ की खाड़ियों को छोड़कर इस तट पर



चित्र नं० ५—भारत की प्राकृतिक बनावट

कोई विशेष कटी-फटी खाड़ियां नहीं हैं।

प्राकृतिक भाग—भारत जैसे विस्तृत भूखंड की प्राकृतिक बनावट भी विभिन्न है। कहीं विस्तृत मैदान हैं तो कहीं ऊंचे पहाड़ और कहीं कठोर चट्टानों के पठार। इस प्रकार भौगोलिक दृष्टिकोण से भारत को तीन प्राकृतिक भागों में बांटा जा सकता है और प्रत्येक भाग अन्य भागों से बिलकुल भिन्न है। निम्नलिखित तीन भाग भारत की प्राकृतिक बनावट के अनुसार किये गये हैं—

२. सिन्धु गंगा का मैदान

३. दक्षिण का पठारी प्रायद्वीप

१. उत्तर का पहाड़ी प्रदेश—आसाम की पूर्वी सीमा से काश्मीर की पश्चिमी सीमा तक हिमालय पर्वत श्रेणी २००० मील लंबी है। इसकी चौड़ाई १८० से २२० मील तक है और संसार के कुछ उच्चतम शिखर इसी प्रदेश में स्थित हैं। हिमालय पर्वत प्रदेश में समानान्तर फैली हुई कई पर्वत श्रेणियां सम्मिलित हैं जिनके मध्य में बहुत-सी नदी घाटी व पठार स्थित हैं। पर्वत प्रदेश का ढाल दक्षिण में मैदान की ओर है। पूर्व में तो यह तीव्र है पर पश्चिम में क्रमशः है। हिमालय पर्वत प्रदेश की औसत ऊंचाई १७,००० फीट है और लगभग ४० चोटियों की ऊंचाई २४००० फीट से भी अधिक है। नंगा पर्वत (२६,६३० फीट), नन्दादेवी (२५,६६० फीट), धौलगिरि (२६,८२० फीट), गौरीशंकर (२९,००२ फीट), औऱ कंचनजंगा (२८,१५० फीट) इस प्रदेश के कुछ प्रमुख शिखर हैं। हिमालय प्रदेश में १६,००० फीट से अधिक ऊंचाई पर बर्फ जमी पाई जाती है। यह समस्त प्रदेश एशिया की नवीन पर्वत माला का एक भाग है और इसमें मुड़े हुए परतदार पर्वतों की कई शृंखलायें हैं। इन शृंखलाओं की श्रेणियां वृत्ताकार है और दक्षिण की ओर उभरी हुई हैं। उत्तर पूर्व में ये श्रेणियां उत्तरी पहाड़ी शृंखला से निकल कर बाहर की ओर साइकिल के पहिये की तीलियों के समान फैली हुई हैं।

हिमालय पर्वत प्रदेश में तीन समानान्तर श्रेणियां हैं—

(१) **हिमालय महान्**—यह सबसे ऊंचा प्रदेश है और इसकी औसत ऊंचाई लगभग २०,००० फीट है। इसको चार विभागों में विभक्त किया जा सकता है—(अ) काश्मीर में हिमालय की श्रेणियां (ब) कमायूं की हिमालय श्रेणी जो सतलज से काली तक फैली हुई है। (स) नैपाल की हिमालय श्रेणी जो काली से टीस्टा नदी तक फैली हुई है। (ड) आसाम की हिमालय श्रेणी जो टीस्टा नदी से भारत के पूर्वी सीमान्त तक फैली है। इस प्रदेश में सर्वोच्च चोटियां—गौरीशंकर, धौलागिरि, कंचनजंगा—स्थित हैं और प्रायः सदैव ही बर्फ से ढकी रहती हैं।

(२) **मध्यवर्ती हिमालय**—इस प्रदेश की श्रेणियों की औसत ऊंचाई १५००० फीट है।

(३) **बाहरी हिमालय**—यह श्रेणियां मध्यवर्ती हिमालय प्रदेश और निचले मैदान के बीच में स्थित हैं और नदियों के बहाव के कारण बहुत अधिक कटी-फटी हैं। इनकी ऊंचाई भी बहुत कम है और ये श्रेणियां अधिकतर चूने, मिट्टी व पत्थर की बनी हुई हैं। इन बाहिरी श्रेणियों की औसत ऊंचाई २००० फीट से लेकर ६००० फीट तक है। इन पहाड़ियों की तली में तराई के जंगल पाये जाते हैं। यहां बहुत प्रकार के जंगली जीव-जन्तु निवास करते हैं।

उत्तर में हिमालय पर्वत प्रदेश से भारत को अनेक लाभ हैं भारत की सुरक्षा के लिए उत्तर में यह एक बड़ी दीवाल से खड़े हुए हैं और दूसरे जलवायु के दृष्टिकोण से बड़े ही लाभ-

प्रद हैं। दक्षिणी पश्चिमी मानसून हवायें इनके सहारे ऊपर उठकर व ठंडी होकर बहुत वर्षा करती हैं। फिर जाड़ों में उत्तरी ठंडी हवायें इसी के कारण भारत में प्रवेश नहीं कर पातीं। यदि हिमालय पूर्व से पश्चिम की ओर न फैले होते तो मध्य एशिया की बर्फीली हवायें भारत में घुस आतीं और इसको एक बर्फीला मैदान बना देतीं। तीसरे, सिन्धु, गंगा तथा ब्रह्मपुत्र जैसी बड़ी-बड़ी नदियां हिमालय प्रदेश से ही बहती हैं। हिमालय प्रदेश के बर्फीले मैदानों के कारण ही यह नदियां सदैव पानी से भरी रहती हैं। मध्य व बाहरी हिमालय पर्वत श्रेणियों पर अच्छी मुलायम लकड़ी के बन पाये जाते हैं और इन बनों में पाये जाने वाले पशु भी शिकार के लिये बड़े श्रेष्ठ हैं।

यातायात की असुविधाओं के कारण इस बन सम्पत्ति का पूरा-पूरा लाभ नहीं उठाया जा सकता है। बाहरी हिमालय श्रेणियों पर आसाम से लेकर पूर्वी पंजाब तक चाय की विस्तृत खेती की जाती है और इस लम्बी पट्टी में चाय के बड़े-बड़े बगीचे देख पड़ते हैं। जहां कहीं अन्य प्रकार की खेती के लिए सुविधायें उपस्थित हैं वहां चावल, मिर्चें, अदरख, फल, गेहूं, व आलू की खेती की जाती है।

हिमालय महान् की बर्फीली ऊंची चोटियों का सुहावना दृश्य देखने के लिये तथा गौरीशंकर शिखर को पार करने की चेष्टा में संलग्न अनेक विदेशी यात्री प्रतिवर्ष यहां आते हैं। उन्हीं के सहारे बड़े-बड़े पहाड़ी नगरों में होटल का धंधा बढ़ गया है। यद्यपि भारत में होटल का धंधा स्विटजरलैंड व इटली की अपेक्षा कुछ भी नहीं है फिर भी इन विदेशी यात्रियों के कारण भारत के पहाड़ी नगरों के होटल व्यवसाय को बड़ा प्रोत्साहन मिला है।

हिमालय की तराई का प्रदेश सदैव मलेरिया ग्रस्त रहता है। केवल ५००० फीट से अधिक ऊंचाई के प्रदेश इस रोग के प्रकोप से मुक्त रहते हैं। प्रायः वर्षा शुरू होने के पहिले और वर्षा खत्म होने के बाद मलेरिया के कीटाणु बहुत अधिक बढ़ जाते हैं। वर्षा काल में मच्छरों के उद्भव स्थान बह जाते हैं और घोर वर्षा के कारण हफ्तों तक मच्छर एक स्थान से दूसरे स्थान तक आ-जा नहीं सकते। इस प्रकार तराई प्रदेशों में मलेरिया से मुक्त काल बहुत छोटा होता है। इसका कारण यह है कि मलेरिया के मच्छर नदी पर अंडे देने वाले होते हैं और वर्षा काल में नदियों की बाढ़ के कारण उत्पत्ति की सुविधायें कम हो जाती हैं।

२. **सतलज गंगा-ब्रह्मपुत्र का मैदान**—हिमालय पर्वत श्रेणी के दक्षिण में स्थित यह मैदान उत्तरी भारत के अधिकतर भाग में फैला है और पूर्व से पश्चिम तक १५०० मील लम्बा है। इसकी चौड़ाई २०० मील है। भूगर्भवेत्ताओं का विचार है कि यह मैदान उत्तरी अफ्रीका, दक्षिणी यूरोप और दक्षिणी एशिया में स्थित एक गहरे जलाशय का शुष्क भाग है। विभाजन के पहिले सिन्धु भी इस मैदान से होकर बहती थी और सिन्धु, गंगा व ब्रह्मपुत्र के द्वारा लाई हुई मिट्टी से ही यह मैदान बना है और सैकड़ों क्या, हजारों फीट गहरी मिट्टी की तह पड़ी हुई है। इस मैदान में इन नदियों व इनकी सहायक नदियों का एक जाल-सा बिछा हुआ है और आरम्भ से ही यह भारतीय आर्य सभ्यता का केन्द्र रहा है। इस मैदान

को भौगोलिक व प्राकृतिक सुविधायें प्राप्त हैं। भूमि उपजाऊ है और जलवायु अति उत्तम इसलिये खेती का धंधा बड़ी आसानी से हो सकता है। नदियों में सदैव जल भरे रहने से सिंचाई की भी सुविधा है और खनिज पदार्थों की उपस्थिति होने से शिल्प उद्योग की सुविधायें भी प्राप्त हैं। मैदान सपाट है और इसलिये रेल व सड़कों तथा अन्य यातायात के साधनों को आसानी से बनाया जा सकता है। यही कारण है कि भारत का सबसे उन्नत व समृद्ध प्रदेश यही मैदानी भाग है। यहां पर नगरों की बहुलता, जनसंख्या का घनत्व और उद्योग धंधों की उन्नति इस समृद्धि की द्योतक अवस्थायें हैं।

ब्रह्मपुत्र-गंगा के मैदान में वर्षा अधिक होती है और इसीलिये लोगों का मुख्य धंधा खेती है। इस मैदान में भारत की कुल जनसंख्या के ४० प्रतिशत से भी अधिक लोग निवास करते हैं। गंगा के पश्चिम का मैदान बहुत कुछ शुष्क है और इसीलिये सिंचाई की सहायता से खेती होती है। इस पश्चिमी प्रदेश को हम सतलज का मैदान कह सकते हैं। यहां देश की कुल जनसंख्या के केवल १० प्रतिशत लोग निवास करते हैं परन्तु यहां नहरों का एक जाल-सा बिछा हुआ है। सतलुज के इस मैदान के दक्षिण में राजस्थान का शुष्क मरुस्थली प्रदेश है। परन्तु इस भाग को भी सिंचाई की नई योजनाओं के द्वारा समृद्ध बनाने का प्रयत्न किया जा रहा है।

३. दक्षिणी प्रायद्वीप—दक्षिण का प्रायद्वीप एक पठार है और उष्णकटिबन्ध में स्थित है। इसके उत्तर में कर्क रेखा और दक्षिण में विषुवत् रेखा गुजरती है। यह पठार एक अति प्राचीन पठारी प्रदेश गोंडवानालैंड का अवशेष है और कड़ी रवेदार चट्टानों का बना हुआ है। इसी प्रकार के पठार अफ्रीका, अरब, दक्षिणी अमरीका और आस्ट्रेलिया में भी पाये जाते हैं। अतः यह स्पष्ट है कि एक समय यह सब भाग मिले हुए थे। इन सभी प्रदेशों की बनावट भी एक सी है। इस प्रदेश की उच्च श्रेणियों के शिखर सपाट हैं घाटियां गहरी व सीधी हैं, ऊंचाई में सीढ़ीदार विभिन्नता पाई जाती है और जोड़ या दरारों के स्थानों पर लावा जमा हुआ मिलता है।

दक्षिण का यह प्रायद्वीप तीन ओर पहाड़ी श्रेणियों से घिरा हुआ है। उत्तर में विन्ध्याचल और सतपुड़ा की श्रेणियां हैं जिनमें मालवा व अरावली के पठार सम्मिलित हैं। पश्चिम में पश्चिमी घाट और पूर्व में पूर्वी घाट की श्रेणियां फैली हुई हैं। विन्ध्याचल और सतपुड़ा की श्रेणियां तो पश्चिम से पूर्व की ओर फैली हुई हैं परन्तु पूर्वी व पश्चिमी घाट उत्तर से दक्षिण की ओर फैले हैं। पूर्वी घाट के पूर्व की ओर और पश्चिमी घाट के पश्चिम की ओर तटीय मैदान हैं। पश्चिम के तटीय मैदान को उत्तर में कोनकन और दक्षिण में मालाबार कहते हैं। पूर्वी तटीय मैदान को कोरो मंडल प्रदेश कहते हैं। पश्चिमी तटीय प्रदेश की अपेक्षा पूर्वी तटीय प्रदेश अधिक चौड़ा है।

पश्चिमी घाट—भारत के मालाबार तट के समानान्तर उत्तर से दक्षिण में कुमारी अन्तरीप तक १००० मील लम्बे हैं। इस श्रेणी और अरब सागर तट के बीच का मैदान

३०-४० मील चौड़ा है। समुद्र से पश्चिमी घाट श्रेणी एक ऊंची दीवार-सी दिखाई पड़ती है। इसकी औसत ऊंचाई ३५००फीट है परन्तु इसका सबसे ऊंचा शिखर दोदाबट्टा ८७०० फीट ऊंचा है। पश्चिमी तटीय मैदान मध्य के पठारी भाग से कई दर्रों के द्वारा सम्बद्ध है। पश्चिमी घाट श्रेणी में स्थित ये दर्रे पालघाट, थाल, भोरघाट और नामा हैं। सुदूर दक्षिण में नीलगिरि श्रेणी पश्चिमी व पूर्वी घाट श्रेणियों का मिलन विन्दु है और मध्य के पठारी प्रदेश को दक्षिण से घेरे हुए है।

पूर्वी घाट उत्तर में महानदी की घाटी से दक्षिण में नीलगिरि तक दक्षिण पूर्व दिशा में ५०० मील की लम्बाई में फैले हैं। इनकी औसत ऊंचाई १५०० फीट है। पश्चिमी घाट की अपेक्षा पूर्वी घाट प्रदेश न केवल कम ऊंचे ही हैं बल्कि शृंखलावद्ध भी नहीं हैं। समुद्र तट से अधिक दूर स्थित होने के कारण पूर्व का तटीय मैदान ५० से ८० मील तक चौड़ा है।

पश्चिमी तटीय प्रदेश में सालाना वर्षा की औसत १०० इंच है परन्तु पूर्वी प्रदेश में वर्षा केवल २० से ५० इंच तक होती है। दक्षिणी प्रायद्वीप में तापक्रम सदैव ऊंचा रहता है और औसत तापक्रम ७५° से नीचे नहीं जाता है।

इस प्रदेश का ढाल पश्चिम से पूर्व की ओर है और इसलिए प्रायः सभी मुख्य नदियां बंगाल की खाड़ी में बहती हैं। महानदी, कृष्णा, पेन्नार, कावेरी और वैगाई बंगाल की खाड़ी में गिरती हैं। नर्मदा व ताप्ती पूर्व से पश्चिम की ओर बहकर अरब सागर में गिरती हैं। इस प्रदेश की सभी नदियां वर्षा पूरित हैं और इसीलिये शुष्क ऋतु में सूखकर तलैया-सी रह जाती हैं। इस प्रदेश की मुख्य उपज कपास, चाय, और मसाला है। सिनकोना, नारियल और विभिन्न प्रकार की बन-सम्पत्ति भी इस भाग में उपलब्ध है।

दक्षिण प्रायद्वीप को हम ५ प्राकृतिक भागों में बांट सकते हैं :

(१) ताप्ती से कुमारी अन्तरीप तक विस्तृत संकरा पश्चिमी तटीय प्रदेश अरब सागर की मानसूनी हवाओं के मार्ग में पड़ता है और १००″ से अधिक वर्षा होती है। यहां की भूमि भी उपजाऊ है और चावल मसाले व फल यहां की प्रधान फसलें हैं। जनसंख्या भी बहुत घनी है। प्रतिवर्ग मील में लगभग ४०० मनुष्य निवास करते हैं।

(२) काली मिट्टी या रेगर प्रदेश की मिट्टी गहरी व लावा से वनी हुई है। इसमें पानी रुक सकता है। इसीलिये इस प्रदेश को सिंचाई की आवश्यकता नहीं होती। यह मिट्टी अत्यन्त उपजाऊ है और चूना मिश्रित होने के कारण कपास के लिये यह अत्यन्त उपयुक्त है। ज्वार, बाजरा, तिलहन और गेहूं यहां की अन्य उपज हैं।

(३) उत्तरी पूर्वी प्रदेश की भूमि कम उपजाऊ है परन्तु वर्षा ५०″ से भी अधिक होती है। तालाबों के द्वारा सिंचाई की जाती है और चावल यहां की मुख्य फसल है।

(४) दक्षिणी पठारी प्रदेश वर्षा से छायावित प्रदेश है और यहां अक्सर अकाल पड़ता रहता है। भूमि बहुत अनुपजाऊ है और केवल सिंचाई की सहायता से ही खेती संभव है। इन सब कारणों से यहां की जनसंख्या बहुत कम है।

(५) पूर्वी तटीय प्रदेश नदियों द्वारा लाई हुई मिट्टी से बना निम्न प्रदेश है। इस प्रदेश के उत्तरी भाग में वर्षा गर्मी के मौसम में होती है और दक्षिणी भाग में वर्षा जाड़े में होती है। समुद्र तट नदियों के डेल्टा व छिछली झीलों के कारण अत्यन्त कटा-फटा है। इस प्रदेश की औसत वर्षा ४०-५० इंच है। चावल यहां की मुख्य फसल है परन्तु ज्वार, बाजरा और नील भी उगाया जाता है।

उत्तर व दक्षिण की नदियों में अन्तर—हिमालय और दक्षिणी प्रायद्वीप की नदियों में बड़ा अन्तर है। उत्तरी भारत की नदियां सदैव पानी से भरी रहती हैं और गर्मी के मौसम में भी हिमालय की बर्फ पिघलने से पानी बराबर आता रहता है। इनकी तलैटियां चौड़ी व विस्तृत हैं और अपने दोनों किनारों पर ये नदियां बहा कर लाई हुई मिट्टी इकट्ठा करती जाती हैं इसीलिये इनके उपजाऊ मैदानों में कृषि का उद्यम मुख्य है और देश का समस्त अन्न भंडार यहीं पर है। गंगा और ब्रह्मपुत्र नाव चलाने योग्य हैं और व्यापार के लिए अच्छे जलमार्ग बनाती हैं। पूर्वी पंजाब, बिहार और उत्तर प्रदेश की नहरें इन्हीं नदियों से निकाली गई हैं।

इनके विपरीत दक्षिणी प्रायद्वीप की नदियों में केवल वर्षा ऋतु में ही पानी रहता है। शुष्क ऋतु में ये नदियां दलदली तलैया में बदल जाती हैं। इसी कारण से इन नदियों से सिंचाई की नहरें नहीं निकाली जा सकती हैं। इनके ऊपरी भागों में पानी का बहाव इतना तीव्र रहता है और मध्यवर्ती तलैटियों में इतने झरने व जलप्रपात हैं कि नाव चलाने के लिए यह सर्वथा अयोग्य हैं। इसके अलावा यह गहरी संकरी व पथरीली घाटियों से होकर बहती हैं। अतएव इनका कोई अधिक उपयोग नहीं है। महानदी को छोड़कर प्रायः सभी नदियां व्यापारिक उपयोग के दृष्टिकोण से व्यर्थ हैं और इसीलिए उनका कोई विशेष आर्थिक महत्व नहीं है।

भारत का जलवायु

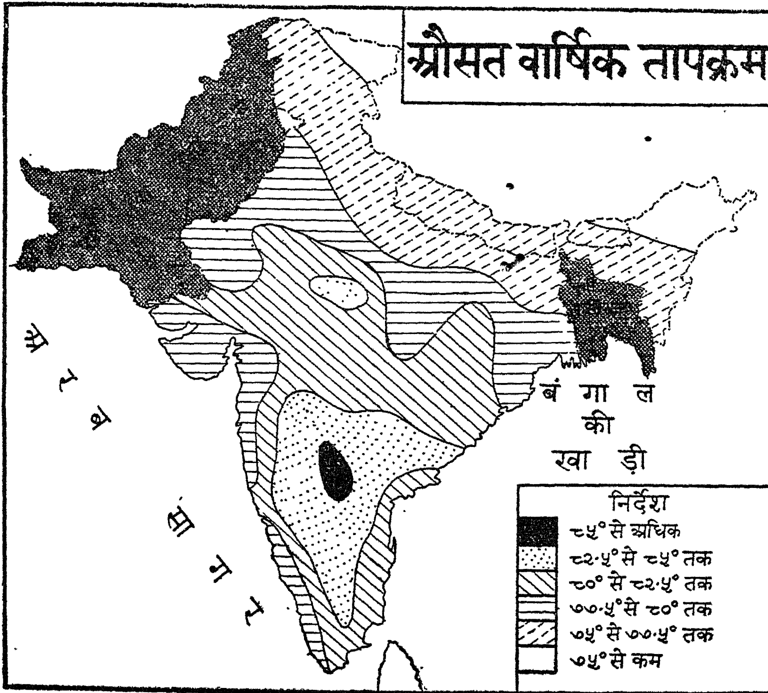
भारत का विस्तार इतना बड़ा और प्राकृतिक बनावट इतनी विभिन्न है कि सम्पूर्ण देश में एक प्रकार की जलवायु हो ही नहीं सकता। अतएव भारत का जलवायु विभिन्न है। जलवायु के अध्ययन के लिये हम देश को दो भागों में बांट सकते हैं—(१) दक्षिणी प्रायद्वीप और (२) उत्तरी भारत। दक्षिणी प्रायद्वीप कर्क व विषुवत् रेखाओं के मध्य स्थित है और इसलिये इस भाग की जलवायु उष्ण कटिबन्ध जैसा है। तापक्रम सदैव ऊंचा रहता है और तापक्रम का मौसमी अन्तर नहीं के बराबर है।

उत्तरी भारत कर्क रेखा के उत्तर में स्थित है। परन्तु इस भाग की जलवायु सब जगह एक समान नहीं है। पश्चिमी भाग में गर्मी का मौसम बहुत गर्म और जाड़े की ऋतु बहुत ठंडी होती है। वायु में नमी का सर्वथा अभाव रहता है। इसके विपरीत पूर्वी प्रदेश में जाड़े का मौसम कम ठंडा और गर्मियों में कम गर्म होता है। वायु में नमी सदैव ही बनी रहती है। उत्तरी भारत के पश्चिमी भागों में राजस्थान और पूर्वी पंजाब के प्रदेश सम्मिलित हैं

और पूर्वी भागों में पश्चिमी बंगाल, आसाम, बिहार और उत्तर प्रदेश आते हैं।

तापक्रम व नमी की इन सामान्य दशाओं पर मानसूनी हवाओं का बड़ा प्रभाव पड़ता है और उन्हीं के प्रभावानुसार जलवायु में हेरफेर होता रहता है। "मानसून" शब्द अरब शब्द "मौसम" से निकला है जिसका अर्थ होता है ऋतु। पर भारत में मानसून का अर्थ वर्षा ऋतु तक सीमित है।

भारतीय मानसून हवाओं की दो धाराएं प्रवाहित होती हैं—दक्षिणी पश्चिमी



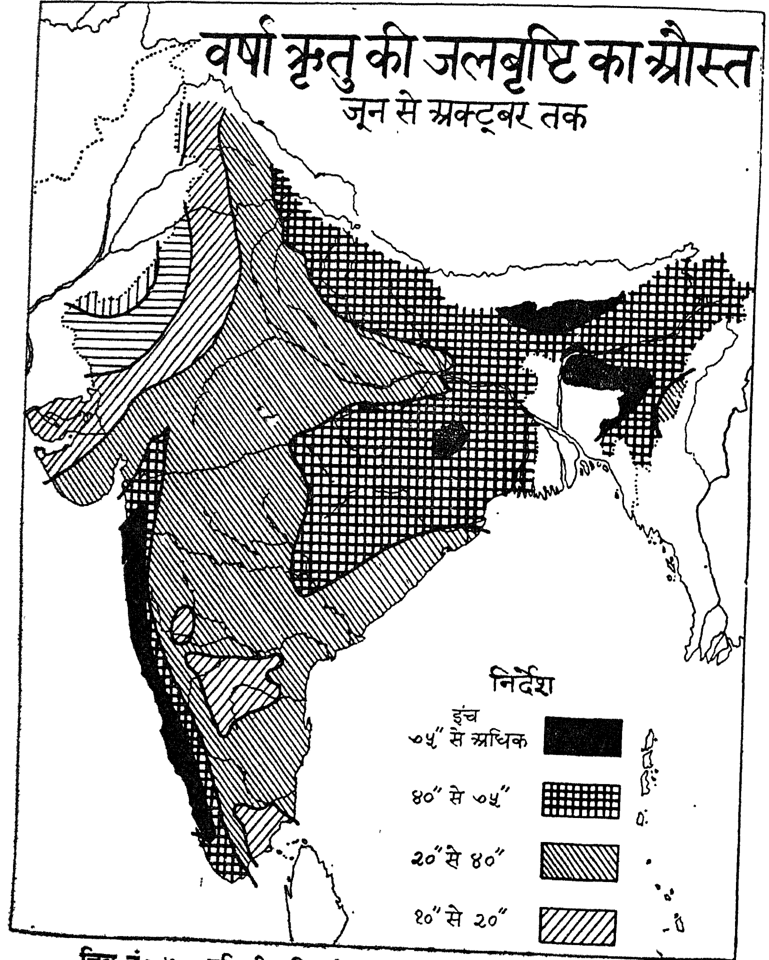
चित्र नं० ६

मानसून और उत्तरी पूर्वी मानसून।

दक्षिणी पश्चिमी मानसून—समुद्र से भूखंड की ओर प्रवाहित होता है और इसलिये पानी से लदा होता है। इसी के फलस्वरूप भारत में जून से सितम्बर तक वर्षा होती है। भारत की कुल वर्षा का ९० प्रतिशत भाग इसी मानसून से प्राप्त होता है और यह देश में दो दिशाओं से प्रवेश करता है—एक बंगाल की खाड़ी की ओर से और दूसरी अरब सागर की ओर से। इस प्रकार उद्भव के स्थान के अनुसार इस दक्षिणी पश्चिमी मानसून को दो शाखाओं में बांटा जा सकता है—बंगाल की खाड़ी की शाखा और अरब सागर की शाखा।

बंगाल की खाड़ी का मानसून—ये मानसूनी हवाएं बंगाल की खाड़ी से उठकर पूर्व में अराकान पर्वत श्रेणी और शीलांग पठार तथा उत्तर में हिमालय पर्वत प्रदेश से रुक

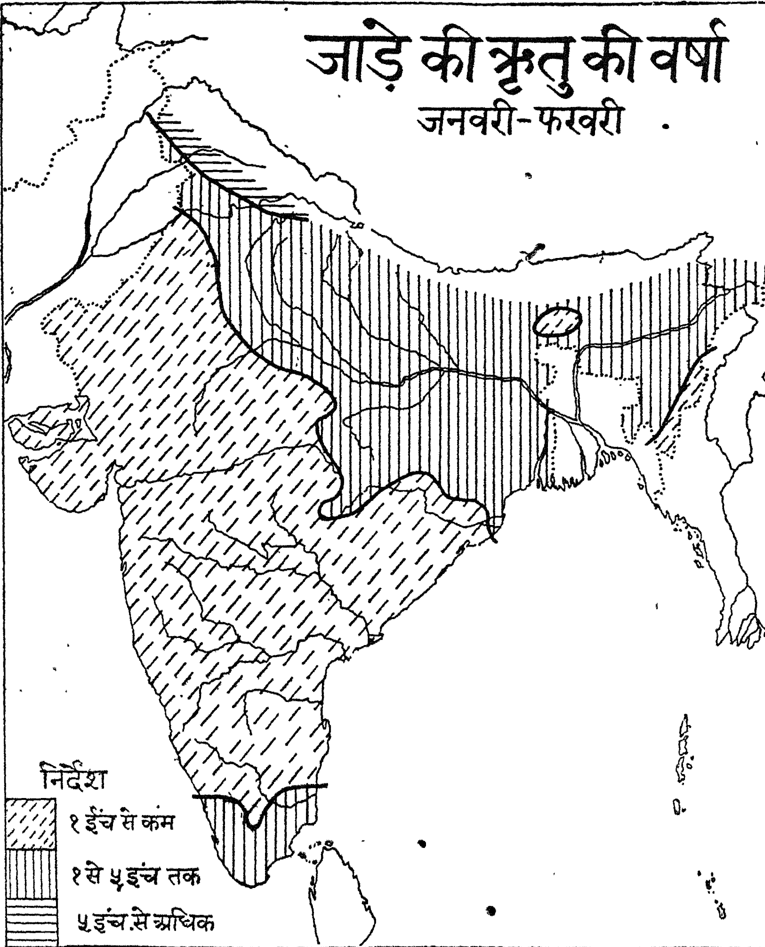
कर पश्चिम की ओर चलने लगती हैं। फलतः गंगा-ब्रह्मपुत्र के मैदान में—आसाम, बंगाल, बिहार और उत्तर प्रदेश के राज्यों में—विस्तृत वर्षा होती है।



चित्र नं० ७—दक्षिणी पश्चिमी मानसून से अधिकतर वर्षा जून से सितम्बर तक होती है। इस काल में केवल दक्षिणी पूर्वी भाग को छोड़ कर सारे देश को पानी मिलता है।

अरब सागर का मानसून—दक्षिणी पश्चिमी मानसून की यह दूसरी शाखा अरब सागर से उठकर पश्चिमी घाट से टकराती है और दक्षिण के पठार तथा मध्य प्रदेश में वर्षा करती हुई बंगाल व आसाम की ओर अग्रसर होती है। आसाम व बंगाल में यह बंगाल की खाड़ी की शाखा से मिल जाती है। इस प्रकार इन दोनों शाखाओं के कारण ही बंगाल व आसाम में देश के अन्य भागों की अपेक्षा अधिक वर्षा होती है।

इन मानसून हवाओं से होने वाली वर्षा के वितरण में एक विशेषता है। जिन प्रदेशों में बंगाल की खाड़ी वाली शाखा से वर्षा होती है वहां वर्षा की मात्रा पूर्व से पश्चिम की ओर और उत्तर से दक्षिण की ओर क्रमशः कम होती जाती है। आसाम-बंगाल की अपेक्षा पश्चिमी उत्तर प्रदेश में वर्षा बहुत कम होती है। इसी प्रकार उत्तर में कमायूं, चम्पारन आदि प्रदेशों की अपेक्षा गंगा के मैदान के दक्षिण में स्थित रीवां, झांसी आदि में वर्षा की मात्रा बहुत कम रहती है। अरब सागर वाली शाखा से होने वाली वर्षा के प्रदेश में वर्षा



चित्र नं० ८—जनवरी-फरवरी के महीने में उत्तरी भारत में उत्तरी पूर्वी मानसून से वर्षा होती है। इसकी मात्रा बहुत थोड़ी होती है परन्तु रबी की फसल के लिए यह बड़ी लाभप्रद है।

पूर्व की अपेक्षा पश्चिम में अधिक होती है और उत्तर की अपेक्षा दक्षिण में अधिक। इसीलिये दक्षिण का पठार प्रायः शुष्क-सा रहता है और राजस्थान व पूर्वी पंजाब में वर्षा बहुत थोड़ी होती है।

अक्तूबर मास के शुरू में ही दक्षिणी पश्चिमी मानसून हवाएं उत्तरी भारत से वापस होने लगती हैं और दिसम्बर के मध्य तक यह मानसून बिलकुल ही शेष हो जाता है। इसके फलस्वरूप उत्तरी भारत में मौसम शुष्क हो जाता है। परन्तु बंगाल की खाड़ी पर से गुजरने के कारण इनमें नमी आ जाती है जिसके फलस्वरूप मद्रास राज्य के तटीय भागों व प्रायद्वीप के पूर्वार्द्ध में वर्षा होती है।

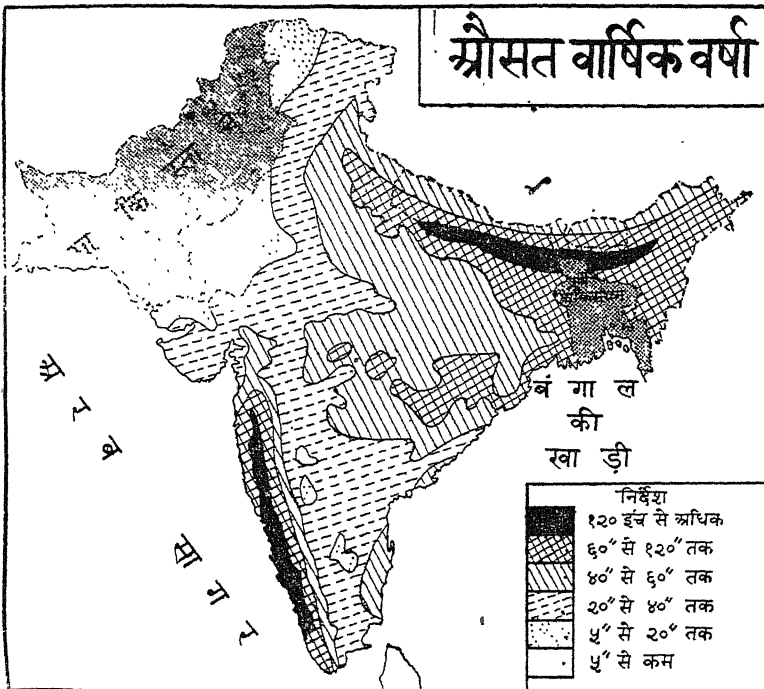
उत्तरी पूर्वी मानसून—ये मानसूनी हवाएं जनवरी में प्रारम्भ होकर मार्च तक चलती हैं। इस काल में मध्य एशिया के भारी दबाव वाले भागों से शुष्क हवाएं फारस और उत्तरी भारत की तरफ़ बहने लगती हैं। इन हवाओं के कारण उत्तरी भारत और विशेषकर पंजाब के मैदान में हल्की वर्षा होती है। रबी की फसलों के लिए इस हल्की वर्षा का बड़ा महत्व है। इस मानसून की दूसरी शाखा में ठंडी व शुष्क हवाएं हिमालय के पूर्वी भाग को पार करके आगे बढ़ती हैं। बंगाल की खाड़ी पर से गुजरने के कारण इन हवाओं में नमी आ जाती है और फलतः मद्रास के तटीय प्रदेशों व लंका में वर्षा होती है। यही कारण है कि इन प्रदेशों में जाड़े की ऋतु में वर्षा होती है।

भारत की औसत वार्षिक वर्षा ४२ इंच है परन्तु विभिन्न स्थानों पर वर्षा की मात्रा में बड़ी विभिन्नता पाई जाती है। यही नहीं बल्कि विभिन्न सालों में वर्षा की मात्रा कम या ज्यादा हो जाती है। किसी साल तो वर्षा का औसत ६० से ७० इंच तक हो जाता है और किसी साल मानसून हवाओं के असफल रहने के कारण ३० से ३२ इंच तक ही वार्षिक औसत रह जाता है। इस विभिन्नता व अनिश्चितता का फसलों की उपज पर बड़ा असर पड़ता है। भारत की वर्षा की दूसरी विशेषता यह है कि यहां की भूप्रकृति का वर्षा की मात्रा पर बड़ा प्रभाव पड़ता है। भारत के पहाड़-पहाड़ियों को यदि हटा लिया जाये तो भारत की वर्षा इतनी कम हो जायेगी कि देश की आबादी के निर्वाह व भोजन की समस्या अत्यन्त प्रचण्ड रूप धारण कर लेगी।

भारत की वर्षा का विशेष आर्थिक महत्व है। भारत की कृषि यहां की वर्षा पर ही निर्भर रहती है। जब वर्षा अच्छी होती है तब फसल भी खूब होती है। परन्तु इसके विपरीत जिस साल या जिस भाग में वर्षा कम होती है, उस दशा में अकाल पड़ जाता है। सच तो यह है कि पानी से लदी हवाओं के रुख में जरा-सा परिवर्तन हो जाने से विस्तृत वर्षा के प्रदेश भी मरुस्थल के समान हो जाते हैं। जलवृष्टि के भूप्रकृति तथा हवाओं के रुख पर निर्भर होने के कारण भारत की वर्षा का औसत सदा बदला करता है।

भारत की वर्षा का वितरण अनिश्चित व अनियमित है। कहीं तो अत्यधिक वर्षा होती है और कहीं १ या २ इंच से अधिक वर्षा भी नहीं हो पाती। इसके अलावा बहुत

से भागों में वर्षा का होना बिल्कुल ही अनिश्चित रहता है। एक और विशेषता यह है कि केवल मात्रा ही अनिश्चित नहीं होती बल्कि वर्षा का समय भी एक नहीं रहता। कभी एक महीने में वर्षा होती है तो कभी उसके एक-दो महीने पहले या बाद। इसी सब अव्यवस्था के कारण भारत में अक्सर अकाल पड़ते रहते हैं—कभी किसी भाग में तो कभी किसी में। कम वर्षा होने से तो अकाल पड़ जाता है और भारी वर्षा से बाढ़ आ जाती है या अन्य प्रकार से फसल को नुक्सान पहुंचता है। जब कभी पानी नियत समय से देर में बरसता है तो फसल की उपज व किस्म में कमी आ जाती है। इसीलिये भारतीय कृषि वर्षा के साथ जुआ मात्र है और भारतीय किसान का सबसे अधिक पूज्य देव या देवी वर्षा हैं।

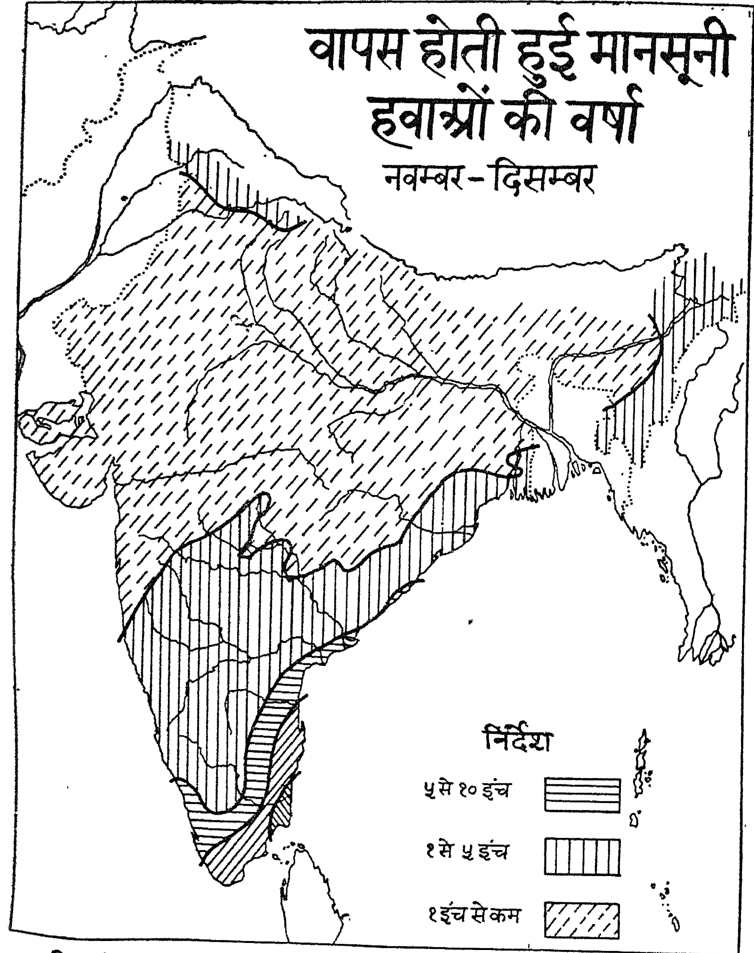


चित्र नं० ९—साधारण वर्षा विभिन्न है—चेरापूंजी में ४६० इंच वर्षा होती है जबकि राजस्थान में केवल ५ इंच। परन्तु समस्त देश में औसत वर्षा ४२ इंच होती है।

वर्षा की मात्रा व वितरण के आधार पर भारत को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है—

१. निश्चित वर्षा के प्रदेश और २. अनिश्चित वर्षा के प्रदेश। बंगाल, आसाम, पश्चिमी मालाबार तट, पश्चिमी घाट के पश्चिमी ढाल और नर्मदा की घाटी का ऊपरी भाग निश्चित वर्षा के प्रदेश हैं। इनके विपरीत उत्तर प्रदेश, पश्चिमी व उत्तरी राजस्थान,

मध्य राजस्थान का पठार, बम्बई राज्य के कुछ भाग, सम्पूर्ण मद्रास राज्य, दक्षिणी पश्चिमी हैदराबाद और मैसूर तथा बिहार व उड़ीसा के कुछ जिलों में वर्षा की मात्रा व काल दोनों ही अनिश्चित हैं। इस प्रकार स्पष्ट है कि भारत के इतने विस्तृत प्रदेश में वर्षा के अनिश्चित व अनियमित होने के कारण ही देश में अक्सर अकाल पड़ा करते हैं।

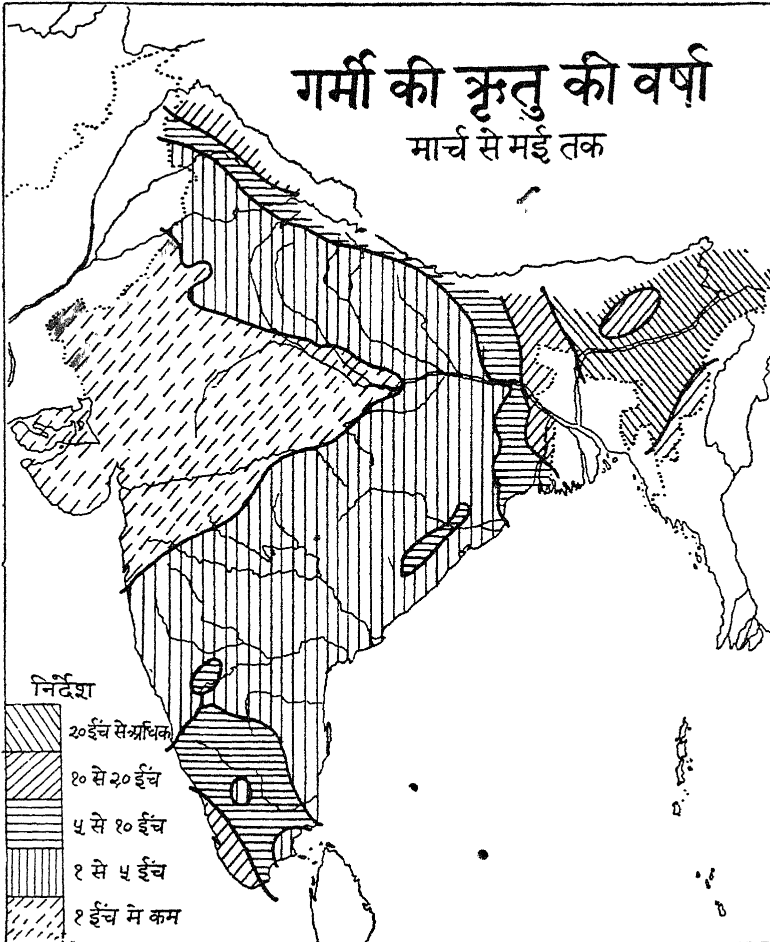


चित्र नं० १०—भारतीय प्रायद्वीप के दक्षिणी पूर्वी भागों में नवम्बर व दिसम्बर के महीनों में काफी वर्षा होती है।

अकाल की समस्या—भारत में वर्षा की कमी, अनिश्चितता और आधिक्य तीनों ही दशाओं में अकाल पड़ते हैं। जब वर्षा कम होती है तब देश में सूखा पड़ जाता है, जब पानी देर से या समय के पूर्व बरसता है अथवा वर्षा की मात्रा कम हो जाती है तब फसल की प्रति

एकड़ उपज कम हो जाती है, और जब या जहां पानी नियत मात्रा से अधिक बरसता है तब नदियों की बाढ़ या अन्य प्रकार से या तो फसल बह जाती है या खड़ी हुई फसल सड़ जाती है। इस प्रकार इन तीनों ही दशाओं में मनुष्य के सामने अनेक समस्याएं उपस्थित हो जाती हैं।

परन्तु इन अकालदर्शी समस्याओं को रोका जा सकता है और इस समय सरकार की ओर से अनेक प्रयत्न किये जा रहे हैं। नई रेलवे लाइनों को बिछा कर, सिंचाई की सुविधाओं में वृद्धि करके तथा अनुपजाऊ प्रदेशों को खेती योग्य बनाकर इन समस्याओं



चित्र नं० ११—मार्च से मई तक के काल में आसाम, पश्चिमी बंगाल के पूर्वी भाग और ट्रावनकोर-कोचीन के तटीय प्रदेश में घोर वर्षा होती है।

को हल किया जा सकता है। इस दृष्टिकोण से हमें अमरीका के संयुक्त राष्ट्र, रूस और कनाडा की कृषि प्रणालियों से सबक लेना चाहिए। वर्षा के वितरण की दशाओं के पूर्ण अन्वेषण के बाद वैज्ञानिक रीति पर फसलों का हेर-फेर या विभिन्न प्रदेशों में उचित फसलों के निर्धारण द्वारा इस शत्रु पर विजय पाई जा सकती है। हमारी कृषि-अनुसंधानशालाओं में विभिन्न प्रदेशों की जलवायु के अनुसार उपयुक्त बीजों की खोज की जा सकती है और फिर इस ज्ञान का उपयोग खेती को व्यवस्थित करने में हो सकता है। इसके अलावा प्राकृतिक असुविधाओं के अनुसार विभिन्न प्रदेशों की माल गुजारी व लगान में कमी करके किसानों को प्रोत्साहन देना भी आवश्यक है। इस प्रकार उपाय करने से अकाल की भीषणता को कम किया जा सकता है। उस दशा में वर्षा न होने पर चाहें सूखा भले ही पड़ जाये, फसल की उपज कम हो जाये पर अकाल को बचाया जा सकता है।

मिट्टी और खाद

भारत का मुख्य धंधा खेती है और खेती की सफलता भूमि के उपजाऊपन पर निर्भर रहती है। मिट्टी का उपजाऊपन भिन्न-भिन्न प्रदेशों की भौगोलिक दशाओं के अनुसार विभिन्न होता है। कुछ भूमियों में खेती का धंधा आसानी से हो सकता है और कुछ भूमियों में उपजाऊपन का धीरे-धीरे ह्रास होता जाता है। वास्तव में खेती की रीति व प्रणाली से भूमि के उपजाऊपन का बड़ा निकट संबंध है। खूब उपजाऊ भूमि भी निरंतर खेती के कारण कुछ वर्षों के बाद अनुपजाऊ हो जाती है और इसके विपरीत बंजर भूखण्डों को विविध रीतियों व उपायों के द्वारा खेती योग्य व उपजाऊ बनाया जा सकता है।

भूमि की उपज शक्ति बहुत कुछ अंशों में उसमें पाये जाने वाले या उपस्थित नमकों, रासायनिक पदार्थों तथा वनस्पति के सड़े-गले अंश की मात्रा पर निर्भर रहती है। अतः यह सम्यक् रूप से कहा जा सकता है कि प्रदेश विशेष की मिट्टी वहां की भूगर्भ रचना, भूप्रकृति और वर्षा के अनुसार ही उपजाऊ या बंजर होती है। इसलिये कहीं की भूमि की विशेषता जानने के लिये यह आवश्यक है कि हम वहां की चट्टानों का उद्भव व प्रकृति समझें और वर्षा की विशेषताओं का ज्ञान प्राप्त करें।

अब तक भारत में इस दृष्टिकोण से कोई भी अन्वेषण या भूमि परीक्षा नहीं हुई है। इस खोज के बिना भारत जैसे विस्तृत भूखण्ड पर पायी जाने वाली मिट्टी की विविधता और विशेषता का पूर्ण ज्ञान प्राप्त करना असंभव-सा है। भारत के विभिन्न क्षेत्रों में विविध दृष्टिकोण से मिट्टी (soil) का अध्ययन किया गया है। भारतीय भूगर्भ निरीक्षण विभाग ने भूगर्भ तत्वों के अनुसार भारत में पाई जाने वाली मिट्टी का विभाजन किया है। पंजाब में सिंचाई के दृष्टिकोण से भूमि का अध्ययन किया गया है। भूमि व्यवस्था सम्बन्धी पुराने कागजों में भी मिट्टी व भूमि की उपज शक्ति का हवाला मिलता है परन्तु वह अपूर्ण, अव्यवस्थित व अवैज्ञानिक हैं। फलतः उनके आधार पर भूमि का सफल उपभोग नहीं किया जा सकता।

भारतीय कृषि अनुसंधानशाला (Indian Agricultural Research Institute) के राय, चौधरी और मुकर्जी ने भारत में पायी जाने वाली मिट्टी को निम्नलिखित १९ प्रकार की बतलाया है—(१) नदियों द्वारा लाई हुई मिट्टी, (२) नदी द्वारा लाई हुई जिसमें खनिज नमक भी मिलते रहते हैं, (३) तटीय प्रदेशों की बलुही मिट्टी जो नदियों द्वारा लाई गई है, (४) नदी के तलहटी की पुरानी मिट्टी, (५) डेल्टा प्रदेश की नमकीन मिट्टी, (६) चूना मिली हुई मिट्टी, (७) गहरी काली मिट्टी, (८) माध्यमिक काली मिट्टी, (९) छिछली (कम गहरी) चिकनी दोमट, (१०) लाल व काली मिट्टी का मिश्रण, (११) लाल दोमट, (१२) लाल बलुही मिट्टी, (१३) मिश्रित लाल दोमट और लाल बलुही मिट्टी, (१४) कंकड़ीली मिट्टी, (१५) तराई की मिट्टी, (१६) पहाड़ों की मिट्टी, (१७) दलदली भूमि, (१८) पीट भूमि, (१९) मरुस्थली भूमि ।

इस विभाजन में एक ही प्रकार की मिट्टी को कई भागों में बांट दिया गया है । फलतः इनके आधार पर प्रादेशिक वितरण निर्धारित करना प्रायः संभव नहीं होता । इसलिये भूमि के उपभोग को ध्यान में रखते हुए हम भारतीय मिट्टी को निम्नलिखित आठ प्रकारों में विभाजित कर सकते हैं :—

१. **नदी द्वारा लाई हुई मिट्टी**—इसमें डेल्टा प्रदेशों, तटीय भागों तथा भीतरी तलहटियों में पाई जाने वाली मिट्टी सम्मिलित है ।

२. **काली मिट्टी**—इसमें मध्य प्रदेश की रेगर व काली मिट्टी तथा कम गहरी भूरी मिट्टी के प्रदेश भी शामिल हैं ।

३. **लाल मिट्टी**—इसके अन्तर्गत लाल दोमट तथा पीली मिट्टी के प्रदेश भी आ जाते हैं ।

४. **लैटराईट मिट्टी**

५. **पहाड़ी मिट्टी**

६. **तराई भूमि**—यह प्रायः दलदली होती है ।

७. **मरुस्थल भूमियों की मिट्टी**—भारत में इसका विस्तार ८४००० वर्गमील है ।

८. **पीट या अन्य वनस्पति अंशों से ओतप्रोत भूमि**—भारत में इसका विस्तार ३००० वर्ग मील है ।

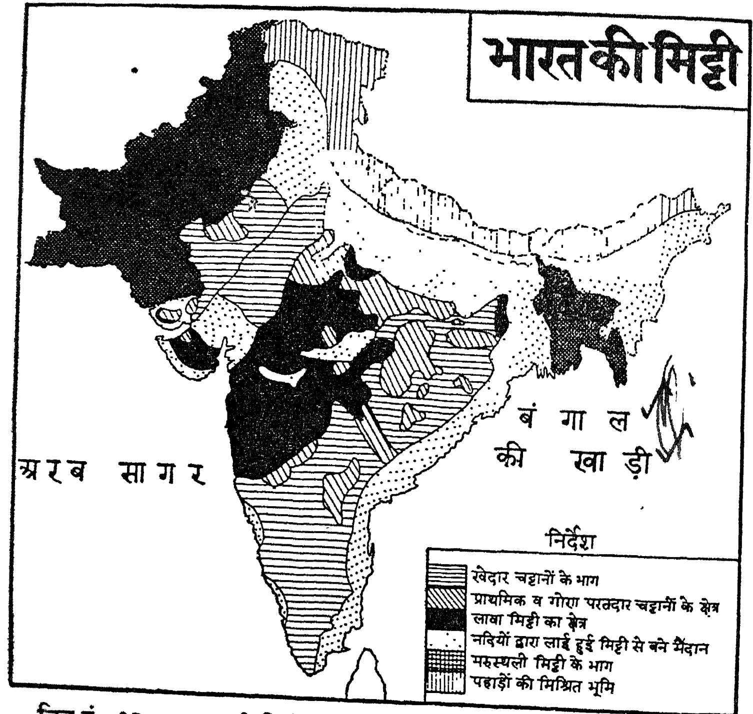
इन विविध प्रकारों में कुछ तो एक ही प्रकार की मिट्टी के भाग हैं और कुछ कई प्रकार की मिट्टी से मिलकर बने विभाग हैं । खेती के दृष्टिकोण से **नदियों द्वारा लाई हुई** मिट्टी सबसे महत्वपूर्ण होती है और भारत में दूर-दूर तक विस्तृत है । गुजरात, राजस्थान, पूर्वी पंजाब, उत्तरप्रदेश, बंगाल, मद्रास के गोदावरी, किसना और टंजोर जिले तथा आसाम की भूमि नदियों के द्वारा लाई हुई मिट्टी से ही बनी है । दक्षिणी प्रायद्वीप के पूर्वी व पश्चिमी तटीय प्रदेशों में भी नदियों द्वारा लाई गई मिट्टी पाई जाती है और भारत के ये ही प्रदेश

कृषि के लिए सबसे आगे बढ़े हुए हैं। अतः नदियों द्वारा लाई हुई मिट्टी की खेती के लिये उपयोगिता स्पष्ट है। उत्तरी भारत में इसका प्रादेशिक वितरण इस प्रकार है—

गुजरात, राजस्थान, उत्तर प्रदेश का अधिकतर भाग ।

पूर्वी पंजाब में अमृतसर, फीरोजपुर, हिसार, गुड़गांव, रोहतक, करनाल, अम्बाला, लुधियाना और जलन्धर के जिले ।

पश्चिमी बंगाल में हुगली, नादिया, मुर्शिदाबाद, माल्दा, जेस्सोर का संपूर्ण भाग; २४ परगना, वीरभूमि, जलपाईगुरी के अधिकतर भाग और मिदनापुर, बांकुड़ा व



चित्र नं० १२—भारत की मिट्टी का खेती व जनसंख्या के घनत्व के दृष्टिकोण से बड़ा महत्व है।

विन्दवान के कुछ भाग । **बिहार** में पटना, उत्तरी सारन, चम्पारन, मुजफ्फरपुर, दरभंगा, पूर्निया जिले तथा धनवाद, मुंगेर व गया के कुछ भाग। आसाम में लखीमपुर, दारंग, कामरूप, गोआरमास के जिले तथा गारो व पहाड़ी सिबसागर के कुछ भाग ।

१. नदी द्वारा लाई हुई मिट्टी—नदियों द्वारा लाई हुई मिट्टी में अनेक रासायनिक विशेषताएं पाई जाती हैं । विविध खनिज नमकों की उपस्थिति के कारण इनकी उपज-

शक्ति बड़ी तीव्र होती है। नदियों द्वारा बहा कर लाई हुई मिट्टी में फासफोरिक क्षार, नाइट्रोजन और वनस्पति के सड़े-गले अंश की कमी तो जरूर होती है परन्तु चूना व पोटाश का अंश काफी रहता है। प्रतिवर्ष नदियों की बाढ़ के बाद मिट्टी की नई तह जमी रह जाती है और इस प्रकार मिट्टी में सतत हेर-फेर व उलट-पलट से उपजशक्ति में कमी नहीं हो पाती।

यह मिट्टी हल्के भूरे रंग की होती है और इनमें वे ही विशेषताएं पाई जाती हैं जो रूस, उत्तरी अमरीका, आस्ट्रेलिया, अफ्रीका और दक्षिणी अमरीका के स्टेप प्रदेशों की मिट्टी में वर्तमान रहती है। गंगा की तलहटी के ऊपरी भाग की मिट्टी शुष्क, बलुही और मोटे छेद वाली होती है। अतः इस प्रदेश में वे फसलें उगाई जाती हैं। जिनकी जड़ों को अधिक नमी की आवश्यकता नहीं होती। आजकल सिंचाई की विशेष सुविधाओं के कारण इस प्रदेश में खेती ने विशेष उन्नति कर ली है। भूमि के सपाट होने से नहरें बनाना सरल व सस्ता रहता है। इसीलिये इस भाग में नहरों का एक जाल-सा बिछा हुआ है।

बंगाल या गंगा की निचली तलहटी में मिट्टी अधिक नम, चिकनी व महीन है। बहुधा यह चिकनी मिट्टी नमी के कारण गहरे भूरे रंग की दिखलाई पड़ती है। यहां पर चावल, जूट, गन्ना और तम्बाकू की विस्तृत खेती होती है। इसी प्रकार दक्षिण के पठार के तटीय प्रदेशों की मिट्टी भी चिकनी, महीन व नमी के कारण गहरे भूरे रंग की होती है।

२. **काली मिट्टी**—बंबई राज्य के उत्तरी भाग, बरार, मध्य प्रदेश के पश्चिमी भाग और हैदराबाद के पश्चिमी प्रदेशों में पाई जाती है। इन विभिन्न प्रदेशों में पाई जाने वाली काली मिट्टी का रूप-रंग और विशेषताएं अलग-अलग होती हैं। उनकी उपजशक्ति भी विभिन्न है। काली रेगर मिटटी में केलशियम और मैगनीशियम नमकों का काफी अंश विद्यमान रहता है परन्तु नाइट्रोजन, वनस्पति के सड़े-गले अंश और फासफोरस की साधारणतया कमी रहती है। दक्खिन की पहाड़ियों व पठारों के ढालों पर यह मिटटी कम उपजाऊ, हल्की, व बड़े छेदों वाली है। इसीलिये इन प्रदेशों में केवल ज्वार बाजरा या दालें उगाई जाती हैं।

निम्न भूमि पर मिट्टी गहरी है और रंग भी अधिक काला है। यहां पर गेहूं, ज्वार-बाजरा और कपास उगाई जाती है। इस प्रदेश की सबसे उत्तम व महत्वपूर्ण मिट्टी रेगर **या कपास की काली मिट्टी** है जो ताप्ती, गोदावरी, नर्मदा और कृष्णा की घाटियों तथा काठियावाड़, मध्य प्रदेश और मध्य भारत के भागों में फैली हुई पायी जाती है। यह मिट्टी ज्वालामुखी विस्फोट से निकले हुए लावा से बनी है। इसका रंग गहरा काला और इसके कणों की बनावट घनी है। फलतः इसमें वर्षा के पानी को रोक रखने की शक्ति होती है और इसके अन्दर चूना आदि विविध खनिज नमक पर्याप्त मात्रा में पाये जाते हैं। इन्हीं विशेषताओं के कारण इसका उपजाऊपन बहुत अधिक है और इस पर कपास, ज्वार, गेहूं, तिलहन और चने की विविध फसलें उगाई जाती हैं।

३. लाल मिट्टी—मद्रास, मैसूर, दक्षिणी पूर्वी बंबई, हैदराबाद और मध्यप्रदेश के पूर्वी भाग तथा उड़ीसा और छोटा नागपुर प्रदेशों में लाल मिट्टी पाई जाती है। इन प्रदेशों के अतिरिक्त संथाल परगना और वीरभूम के जिलों में; उत्तर प्रदेश के मिरज़ापुर, झांसी और हमीरपुर जिलों में तथा मध्य भारत और राजस्थान के पूर्वी भागों में यह मिट्टी वर्त्तमान है। इसका रंग लाल होता है पर रंग के अतिरिक्त अन्य विशेषताओं में बड़ा हेर-फेर दिखलाई पड़ता है। यह मिट्टी सब स्थान पर न तो एक समान गहरी है और न बराबर उपजाऊ। शुष्क उच्च-भूमियों पर यह मिट्टी हल्के लाल रंग की होती है। इसकी उपजशक्ति बहुत कम होती है और इसमें बालू के समान मोटे कण पाये जाते हैं। अत: केवल बाजरा ही उगाया जा सकता है। निम्न भूमियों की लाल मिट्टी गहरे लाल रंग की होती है और अधिक गहरी व उपजाऊ होती है। इसे हम दोमट भी कह सकते हैं। अत: इस प्रकार की निचली भूमियों पर अनेक प्रकार की फसलें उगाई जाती हैं।

लाल मिट्टी में यद्यपि पोटाश और चूना बहुत काफी मात्रा में पाया जाता है परन्तु नाइट्रोजन, फासफोरस और वनस्पति के सड़े-गले अंशों की साधारणतया कमी रहती है। दूसरी बात यह है कि यद्यपि इस प्रदेश से महानदी, गोदावरी, कावेरी और कृष्णा जैसी नदियां प्रवाहित होती हैं परन्तु डेल्टा भागों को छोड़ कर अन्य सभी जगह भूप्रकृति के ऊबड़-खाबड़ होने से न तो नहरें ही निकाली जा सकती हैं और न कुएं ही बनाए जा सकते हैं। परन्तु इन प्रदेशों में तालाब बनाकर वर्षा का जल बड़ी अच्छी तरह एकत्रित किया जा सकता है। इसीलिये मद्रास, मैसूर और हैदराबाद में तालाबों के द्वारा सिंचाई करके खेती की जाती है।

४. लैटराइट मिट्टी—इसी नाम की चट्टानों के कटने व टूटने-फूटने से जो चूर्ण बनता है उसे ही लैटराइट मिट्टी कहते हैं। यह मिट्टी मध्य भारत, आसाम और पूर्वी व पश्चिमी घाटों पर पाई जाती है। इस मिट्टी में तेजाब की अधिकता होने से रासायनिक तीक्ष्णता पाई जाती है और इसीलिये इन प्रदेशों में खेती की मुख्य समस्या इस तीक्ष्णता को कम करना है। चाय के पौधे के लिये यह मिट्टी बहुत उपयुक्त होती है और इसीलिये इस मिट्टी के प्रदेशों में चाय के बागीचे पाये जाते हैं। लैटराइट मिट्टी उच्च भूमियों पर कम उपजाऊ होती है और उसमें नमी भी नहीं ठहर सकती। इसके विपरीत निम्न भूमियों पर इस मिट्टी के साथ चिकनी व दोमट मिटटी भी मिली पाई जाती है और इसलिये उनमें नमी ठहर जाती है।

५. पहाड़ी मिट्टी—उत्तरी पहाड़ी प्रदेशों पर यह कंकड़ीली मिट्टी पाई जाती है और वनभूमियों के लिये उपयुक्त है। दार्जलिंग, अल्मोड़ा और गढ़वाल जिलों में वन से ढकी हुई पहाड़ी मिट्टी पाई जाती है परन्तु इसको वैज्ञानिक रीतियों से खेती के उपयुक्त बनाया जा सकता है।

६. तराई की मिट्टी—अधिकतर दलदली होती है और लम्बी घास व झाड़ियों

से घिरी रहती है। इसका कोई विशेष महत्व नहीं है। दूसरे इन प्रदेशों में मलेरिया रोग के कारण भी अधिक काम नहीं हो पाया है। उत्तर प्रदेश और बिहार में मैदान और उत्तर के पहाड़ों के बीच एक पतली-सी पट्टी में तराई भाग पूर्व से पश्चिम तक फैले हुए हैं। नैनीताल, पीलीभीत, खेरी, गोंडा, बस्ती और गोरखपुर के जिले तराई में ही बसे हैं। अब राष्ट्रीय सरकार के प्रयत्नों के फलस्वरूप इन भागों को साफ करके, रोगमुक्त करके तथा इनकी उपजाऊ मिट्टी का दलदल दूर करके खेती के योग्य बनाया जा रहा है।

७. **शुष्क मरुस्थल की बंजर भूमि**— राजस्थान में बालू की मिट्टी पाई जाती है। बहुधा इसमें खनिज नमक पाये जाते हैं, परन्तु वे शीघ्र पानी में घुल जाते हैं ; इसमें कण मोटे तथा नमी की बहुत कमी रहती है। वनस्पति का सड़ा-गला अंश भी बहुत कम रहता है।

८. **पीट भूमि**—ट्रावनकोर कोचीन के कुछ भागों में पीट मिट्टी पाई जाती है, वनस्पति व जीव-जतुओं के अपूर्ण सड़े-गले अंश से यह मिट्टी बनती है परन्तु खेती के सर्वथा अयोग्य होती है। इसमें केवल दलदल या गहन वन पाये जाते हैं।

निम्न भूमि की कंकड़ीली पहाड़ी मिट्टी शिमला, कांगड़ा और गुरुदासपुर जिलों में पाई जाती है और खेती के दृष्टिकोण से कुछ अधिक महत्व नहीं रखती।

मिट्टी की समस्याएं—भारत कृषि प्रधान देश है। इसलिये भूमि के उपजाऊपन को ठीक रखने के लिये यह आवश्यक है कि मिट्टी की ओर पूर्ण ध्यान दिया जाय। कृषि की समृद्धि के लिये भूमि की उपजशक्ति को कायम रखना बड़ा जरूरी है।

कृषि के योग्य ऊपरी भूमि की गहराई ६ इंच से १२ इंच तक होती है। अतः भूमि के उपयोग में काफी सावधानी की आवश्यकता रहती है। उत्तरी भारत में अत्यधिक चराई और दक्षिणी भारत में खेती की रूढ़िग्रस्त रीति के कारण काफी उपजाऊ भूमि खेती के लिए बेकार हो गई है।

इस समय भारत के सम्मुख मिट्टी संबंधी दो विकट समस्याएं हैं—कालान्तर के सतत कृषि प्रयत्नों के फलस्वरूप विविध प्रदेशों की भूमि में खनिज नमकों की कमी हो गई है। फलतः उनकी उपज शक्ति का ह्रास हो गया है। इस समस्या का हल खाद के उचित उपयोग द्वारा हो सकता है। खाद देने के कई तरीके होते हैं। भारत में इस समय खली, गोबर व कूड़ा-कर्कट और मल-मूत्र का खाद के रूप में प्रयोग होता है। हरी खाद प्रणाली से तो भारतीय किसान अनभिज्ञ-सा है। हाल में ही वैज्ञानिक रीतियों से रासायनिक खाद देने की योजना पर काम शुरू हुआ है और सिन्दरी में खाद का कारखाना भारतीय कृषि के लिये वरदानस्वरूप है। ऐसा अनुमान है कि निकट भविष्य में भारतीय किसान रासायनिक खादों से परिचित हो जायेगा और उनके प्रयोग द्वारा भूमि की ह्रास होती हुई उपज-शक्ति पर काबू पा लेगा।

भूमि संबंधी दूसरी समस्या भूमि कटाव (soil erosion) की है।

भारत के बुन्देलखंड, मध्य भारत, बिहार, बंबई, मद्रास और पूर्वी पंजाब प्रभृति प्रदेशों में यह समस्या बड़ी ही प्रकट है। यह समस्या बड़ी पुरानी है और इसके कारण भारत की कृषि उपयुक्त भूमि को बहुत क्षति पहुंची है।

भूमि कटाव की विविध शक्तियां हवा, जल और लहरें हैं परन्तु इन तीनों में जल का स्थान सबसे महत्वपूर्ण है। बहता हुआ जल तीन प्रकार से भूमि को काटता है— सतह बहाव (sheet erosion), नाली कटाव (rill erosion) और कन्दरा कटाव (gully erosion)। ढालू भूखंडों पर वर्षा के जल के कारण ऊपर के पपड़े पर स्थित मिट्टी की तह बह जाती है और इस प्रकार ऊपरी आवरण के हट जाने से उन प्रदेशों की उपजशक्ति बहुत क्षीण हो जाती है। आसाम, उत्तरी बिहार और उत्तर प्रदेश के कमायूं ज़िले में पहाड़ के ढालों पर इस तरह का कटाव बराबर होता रहता है। फलतः प्रतिवर्ष वर्षा-काल के बाद इन प्रदेशों के उपजाऊपन में कमी हो जाती है। परन्तु इस प्रकार के सतह-बहाव से होने वाली हानि इतनी क्रमशः होती है कि कुछ समय तक तो इसका अनुमान ही नहीं हो पाता। यकायक ऐसा पता चलता है कि उपजाऊ मिट्टी बिल्कुल गायब हो गई है और नीचे की कड़ी चट्टानों का आवरण ऊपर निकल आया है पर उस समय कोई चारा नहीं रह जाता।

नाली कटाव बिहार, उत्तर प्रदेश और मध्य भारत में बहुत दृष्टिगोचर होता है। वर्षा के कारण वनस्पति-हीन भूमि में छोटी-छोटी नालियां व गड्ढे बन जाते हैं। अक्सर यही नालियां पानी के बहाव व प्रहार से और गहरी होती जाती हैं और कालांतर में बड़ी कन्दरा का रूप धारण कर लेती हैं। यह कन्दरा कटाव सबसे अधिक हानिकर होता है और इस प्रकार की कटी-फटी भूमि कृषि उद्योग के लिये हमेशा के लिये बेकार हो जाती है।

पेप्सू, गुड़गांव, करनाल, हिसार, राजस्थान और मध्य भारत में हवा के प्रचंड झोंकों के कारण भूमि के ऊपर की मिट्टी स्थानांतरित होती रहती है। अप्रैल से जुलाई तक हवा के झोंकों के साथ पश्चिमी राजस्थान की बालू उड़कर आती रहती है और उपजाऊ मिट्टी के ऊपर बहुधा बालू की एक मोटी तह-सी जम जाती है। हवा द्वारा भूमि का कटाव बहुत तीव्र होता है और बहुधा विस्तृत भूखंड थोड़े से समय के भीतर खेती के दृष्टि कोण से बेकार हो जाते हैं। इस प्रकार की हानि को रोकने का सिर्फ एक उपाय है कि नये वृक्षों को लगाकर भूमि के कणों को बांध दिया जाय।

कुछ प्रकार की मिट्टी पर भूमि-कटाव कम होता है। साधारणतया भूमि कटाव की प्रखरता जल के वेग, भूमि के ढाल और मिट्टी के कणों की बनावट तथा वनस्पति की अनुपस्थिति पर निर्भर रहती है। मोटे कणों वाली मिट्टी में भूमि कटाव सबसे कम होता है क्योंकि वर्षा का पानी शीघ्र ही सूख जाता है। इसके विपरीत महीन चिकनी मिट्टी के प्रदेशों में भूमि कटाव सबसे अधिक तीक्ष्ण रहता है।

स्वतन्त्रता के बाद से भारत की राष्ट्रीय सरकार ने भूमि कटाव की समस्या की ओर ध्यान देना शुरू किया है और इसको रोकने के लिये अनेक योजनाएं तैयार की हैं। वनमहोत्सव तथा बहुधंधा नदी-घाटी योजनाओं का ध्येय भूमि कटाव को रोकना भी है। इस समय देश में अनेक बांध बनाये जा रहे हैं जिनके पूरा होने पर नदी की बाढ़ों व वर्षा के जल से होने वाली भूमि हानि कम हो जायेगी। उत्तरी भारत के बहुत से बंजर व ऊसर प्रदेशों को नई वैज्ञानिक रीतियों द्वारा खेती योग्य बना लिया गया है और अनेक क्षेत्रों में काम पूरा होने पर भारत में कृषि योग्य भूमि बहुत कुछ बढ़ जायेगी।

संक्षेप में भूमि सम्बंधी समस्याओं को निम्नलिखित ४ प्रकार का कहा जा सकता है (१) भूमि का ऊसर पड़ जाना, (२) हल द्वारा भूमि की मिट्टी का उडा ले जाया जाना, (३) सतह बहाव, (४) भूमि का पानी से समृक्त हो जाना, (५) सदा उगने वाली घास फूस से खेती के लिए भूमि का खाली न मिलना, (६) वर्षा के द्वारा भूमि का कट-फट जाना। इस आधार पर खेती के दृष्टिकोण से बेकार पड़ी हुई भूमि को निम्नलिखित तीन वर्गों में बांटा जा सकता है —

(१) ऊसर भूमि, (२) भूमि कटाव द्वारा कटी-फटी भूमि, (३) कांस, पतारा, तखेरी, सींक, मूंज, सरकंडा आदि से घिरी हुई तराई की भूमि।

ऊसर भूमि को तो ठीक करने के लिए निम्नलिखित तरीकों को प्रयोग में लाया जा रहा है —

(१) जल प्रवाह को ठीक करके और भूगर्भवती जल को कम करके,

(२) जहां जलरेखा निम्न है वहां वर्षा या नदी के जल को बांध बना कर रोक दिया जाता है।

(३) जहां जलरेखा ऊंची है वहां नालियां काट कर जल निकाल दिया जाता है।

(४) हर ३-४ साल में भूमि पर हरसोंठ (Gypsum) फैला देते हैं जिससे भूमि में सिंचाई के पानी से छोड़े हुए क्षार का अंश कम हो जाय।

हवा के द्वारा भूमि कटाव रोकने के लिए भूमि में कम्पोस्ट व हरी खाद दी जाती है। इसके अलावा भूमि के आसपास छायादार पेड़ लगा दिये जाते हैं और स्वयं भूमि पर कोई न कोई फसल बोयी जाती है। इससे बचाव के लिए गर्मी के मौसम में विशेष ध्यान रखना पड़ता है। सिंचाई की योजनाओं के पूरा हो जाने पर भी हवा द्वारा भूमि कटाव को रोका जा सकेगा।

सतह बहाव और नाली कटाव को रोकने के लिए निम्नलिखित दो बातों का विशेष ध्यान रखना पड़ेगा। प्रथम तो यह कि भूमि खाली न पड़ी रह पाये और दूसरे यह कि कगारों व बांध व मेड़ बना कर पानी के बहाव की तेजी को कम कर दिया जाय।

जंगली घास फूस से घिरे हुए और बुरी तरह कटे-फटे भूमि प्रदेशों में ट्रेक्टर मशीनों द्वारा गहरी खुदाई करके खेती के योग्य बनाया जा रहा है। जहां नालियां बन गई हैं वहां बांध बनाये जा रहे हैं ताकि नालियां भूमि को और न काट पावें।

इसके अलावा भूमि सम्बन्धी एक और प्रश्न यह है कि राजस्थान की भूमि पर सिंध से उड़ाकर लाई हुई धूल बिछती जा रही है। इसी प्रकार उत्तरी पश्चिमी भारत में आगरा, भरतपुर, मथुरा आदि के जिलों में रेगिस्तान बढ़ता चला जा रहा है। इसको रोकने के लिए वायु के मार्ग में आड़े तिरछे तरीके से पेड़ लगाये जा रहे हैं। कई जगह ढाक और अत्यन्त रेगिस्तानी भागों में बबूल के बीज बोये जा रहे हैं। राजस्थान में कई स्थानों पर ७० फीट गहरी खाई खोद कर वृक्ष लगाये गये हैं। इस समस्या के हल के लिए जोधपुर में एक अनुसंधानशाला खोल दी गई है। जैपुर क्षेत्र के झुनझुनू केन्द्र में इस सम्बन्ध में कुछ प्रयोग किये जा रहे हैं।

प्रश्नावली

१. जलवायु के दृष्टिकोण से भारत के पूर्वी व पश्चिमी घाटों की तुलना कीजिये व अन्तर बतलाइये।

२. भारत में बढ़ती हुई व वापस होती हुई मानसूनी हवाओं की विशेषताएं बतलाइये।

३. भारत में वर्षा का वितरण बतलाइये और लिखिये कि भारत की खेती पर इसका क्या प्रभाव पड़ता है।

४. हिमालय प्रदेश का एक संक्षिप्त भौगोलिक विवरण दीजिये।

५. "अनिश्चितता व विभिन्नता भारतीय जलवायु की विशेषता है", इस उक्ति को स्पष्ट कीजिये और भारत के आर्थिक जीवन पर इसका प्रभाव स्पष्ट कीजिये।

६. "भारत विषमता का देश है।" देश की प्राकृतिक बनावट, वर्षा, फसलें और सिंचाई प्रणाली के दृष्टिकोण से इस उक्ति पर अपने विचार प्रकट कीजिये।

७. उत्तरी भारत और विशेषकर पंजाब की नदियों का महत्व बतलाइये।

८. भारत को प्राकृतिक विभागों में बांटिये और प्रत्येक की जलवायु, उपज व उद्योग-धंधों को बतलाइये।

९. गंगा के मैदान का भौगोलिक वर्णन कीजिये और उसका आर्थिक महत्व बतलाइये।

१०. मानसून से आप क्या समझते हैं? भारत के आर्थिक जीवन पर उनका प्रभाव स्पष्ट कीजिये।

११. भारत देश में रहने वालों की औद्योगिक व व्यापारिक क्रियाओं पर यहां की प्राकृतिक परिस्थितियों का क्या प्रभाव पड़ा है? समझकर उदाहरण देते हुए उत्तर लिखिये।

१२. भारत में उपलब्ध मिट्टी के प्रकारों का वर्णन कीजिये और भारतीय खेती के लिये प्रत्येक का महत्व बतलाइये।

१३. भारत में भूमि कटाव की समस्या व उसका हल समझाइये।

अध्याय : : दो

जनसंख्या का वितरण

किसी भी देश के उत्पादन में सबसे महत्वपूर्ण शक्ति वहां की जनसंख्या होती है। प्राकृतिक साधनों का उपभोग तथा देश की आर्थिक व व्यापारिक उन्नति वहां की जनसंख्या के वितरण, घनत्व तथा लोगों के स्वभाव पर निर्भर रहती है। अत: बिना जनसंख्या के विन्यास को समझे किसी भी देश की आर्थिक उन्नति के विषय में ज्ञान अधूरा ही रहता ह।

भारत के लोग—अति चतुर, तीक्ष्ण बुद्धि वाले और हिम्मती हैं। यहां के लोग आदिकाल से शांति-प्रिय रहे हैं और उनकी सभ्यता अति प्राचीन, कोई ५००० वर्ष पुरानी है। जिस समय दुनिया के अन्य देश पिछड़े हुए तथा असभ्य व जंगली थे, भारत-निवासी शिल्पकला, साहित्य, विज्ञान और गृह-निर्माण कला में सबसे आगे बढ़े हुए थे। आज भी बर्मा, लंका, मलाया, इन्डोनेशिया और दक्षिणी अफ्रीका व कनाडा में प्रवासी भारतीय जनता ने वाणिज्य व व्यापार में बड़ी प्रगति की है और उनकी उन्नति के आधार पर उनकी हिम्मत व चतुरता का अनुमान लगाया जा सकता है। भारत ने दुनिया को यह दिखला दिया है कि किस प्रकार विभिन्न जाति, धर्म व भाषा के लोग एक साथ मिल-जुलकर एक साथ रह सकते हैं। उनका स्वतन्त्रता संग्राम उनकी शांति-प्रियता का जीता-जागता उदाहरण है।

जनसंख्या का घनत्व—भारत में संसार की कुल जनसंख्या के पंचमांश लोग रहते हैं और सबसे घने आबाद देशों में भारत का स्थान चीन के बाद दूसरा है। सन् १९५१ की जनगणना के अनुसार भारत की जनसंख्या ३५६,८२९,४८५ है। काश्मीर को मिलाकर भारत संघ की कुल जन संख्या ३६२० लाख है। निम्न तालिका से इस जनसंख्या का प्रादेशिक वितरण व प्रतिवर्ग मील घनत्व स्पष्ट हो जायेगा।

प्रदेश	जनसंख्या (१९५१) लाख में	प्रतिवर्ग मील घनत्व
पेप्सू	३३२	—
आसाम	८५१	१८६
पश्चिमी बंगाल	२४३२	८००
बिहार	३९४२	५५०
उड़ीसा	१४४१	३००
बंबई	३२६८	३००

प्रदेश	जनसंख्या (१९५१) लाख में	प्रतिवर्ग मील घनत्व
मध्य प्रदेश	२०९२	१७०
मद्रास	५४२९	४००
पूर्वी पंजाब	१२६१	१९०
उत्तर प्रदेश	६१५२	६००
राजस्थान	१४६९	—
सौराष्ट्र	३९६	—
मध्य भारत	७८७	—
हैदराबाद	१७६९	२००
काश्मीर	४३७	५०
ट्रावनकोर-कोचीन	८६८	९००
मैसूर	३३२	२५०

देश के क्षेत्रफल और विशेष कर खेती के योग्य उपलब्ध भूमि को देखते हुए भारत की जनसंख्या का प्रतिवर्ग मील घनत्व सबसे अधिक है। यहां का औसत घनत्व २१७ मनुष्य प्रतिवर्ग मील है परन्तु केवल इस संख्या या मनुष्य-भूमि अनुपात के आंकड़ों से भारतीय जनसंख्या की विशेषताएं समझ में नहीं आ सकती हैं। समान क्षेत्रफल के प्रदेशों में बहुधा भौगोलिक दशाएं इतनी विभिन्न होती हैं कि यदि एक प्रदेश में ५०० मनुष्य रह सकते हैं तो दूसरे में २०० मनुष्यों का निर्वाह बड़ी कठिनता से होता है। इसलिये भारत की जनसंख्या के घनत्व के सम्यक् ज्ञान के लिए जनसंख्या का उपजाऊ भूमि के क्षेत्रफल के साथ अनुपात निकालना बहुत जरूरी है। किसी भूमि क्षेत्र की उपज-शक्ति वहां की जल-वायु, भूंप्रगति, वनस्पति और खनिज संपत्ति पर निर्भर रहती है और इन भौगोलिक दशाओं के आधार पर निर्धारित उपजाऊ भूमि के आंकड़ों के साथ जनसंख्या के घनत्व को प्राकृतिक घनत्व (Physiological Density) कहते हैं। इस दृष्टिकोण से देखने पर भारत की जनसंख्या का घनत्व ५०० मनुष्य प्रतिवर्ग मील होगा। जनसंख्या का यह घनत्व भारत जैसे कृषि प्रधान देश के लिये बहुत अधिक है और विशेष कर उस हालत में जब यहां की प्रति एकड़ उपज का औसत इतना निम्न है।

भारतीय जनसंख्या की अन्य समस्याएं यहां पर शिक्षा की कमी, मृत्यु की अधिकता, म आयु, रहन-सहन का निम्न स्तर और विभिन्न रोग हैं। करीब १५ प्रतिशत जनता ल्कुल ही वे पढ़ी लिखी है। प्रति हजार बच्चों में १२३ बच्चे पैदा होते ही मर जाते हैं। धारण मनुष्य की आयु का औसत २७ साल है जबकि आयु का यह औसत जापान में ५ साल, ग्रेट ब्रिटेन में ६६ साल, कनाडा में ६५ साल, और हालैंड में ६९ साल है। इसी कार साधारण भारतीय की वार्षिक आय ५७ डालर होती है जबकि अन्य देशों की स्थिति

इससे कहीं बड़ी चढ़ी है जैसा कि निम्न विवरण से स्पष्ट हो जायेगा—संयुक्त राष्ट्र १५००, ग्रेट ब्रिटेन ७००, न्यूजीलैंड ९००, आस्ट्रेलिया ७००, कनाडा ९००।

भारत में संपर्क से फैलने वाले रोग भी बहुत अधिक हैं। मनुष्यों की अधिकता के कारण सांस अथवा गुदा द्वारा संपर्क से तपेदिक, डिपथीरिया, मोतीझला, कालरा, चेचक व पेचिश जैसे रोग बहुत फैलते हैं। इसके फलस्वरूप यहां पर लोगों का स्वास्थ्य क्षीण तथा उनकी आयु कम होती जाती हैं।

भारतीय जनसंख्या के वितरण की एक और विशेषता यह है कि इस संख्या में बहुत शीघ्र वृद्धि हो रही है। जनसंख्या में वृद्धि का वार्षिक औसत १ मनुष्य प्रतिशत है। इस क्रम के आधार पर भारत की जनसंख्या में प्रतिवर्ष ३० लाख मनुष्यों की वृद्धि हो रही है। पिछले १० सालों में—सन् १९४१ से सन् १९५१ तक—भारत की जनसंख्या में १२½ प्रतिशत की वृद्धि हुई है।

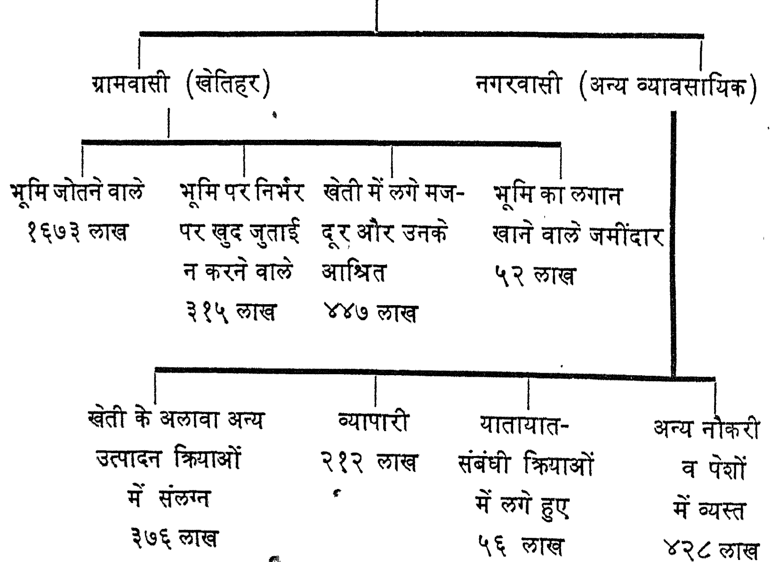
जनसंख्या का घनत्व बहुत कुछ प्रदेश विशेष की बाह्य परिस्थितियों पर निर्भर रहता है। जलवायु, उपजाऊ भूमि, प्राकृतिक संपत्ति तथा प्राकृतिक बनावट के अनुसार ही रहने वालों की संख्या बढ़ती घटती है। भारत में जनसंख्या के वितरण का वर्षा से बड़ा घनिष्ठ संबंध है। जिन प्रदेशों में वर्षा निश्चित व अधिक मात्रा में होती है वहां आबादी स्वभावतः घनी है। पश्चिमी बंगाल, बिहार, उत्तर प्रदेश और उड़ीसा में आवादी बहुत घनी है क्योंकि वहां की भूमि उपजाऊ, स्थल सपाट और खेती के लिये पर्याप्त वर्षा होती है। इसके विपरीत गंगा के डेल्टा में सुन्दरबन का प्रदेश अधिक वर्षा के होते हुए भी कम बसा हुआ है क्योंकि वहां अन्य प्राकृतिक असुविधाएं हैं। इसी प्रकार उत्तरी भारत के पश्चिमी भाग में वर्षा तो कम होती है तथा अनिश्चित भी है परन्तु सिंचाई के साधनों की सहायता से इस कमी को पूरा कर लिया गया है। फलतः यह प्रदेश—पश्चिमी उत्तर प्रदेश और पूर्वी पंजाब—काफी उन्नति कर गया है और यहां आबादी भी बहुत घनी हो गई है। जहां सिंचाई की सुविधाएं नहीं हैं वहां आवादी बहुत कम है जैसे पश्चिमी राजस्थान और सौराष्ट्र में। इसी प्रकार पर्वतीय प्रदेशों में बहुत कम लोग निवास करते हैं। वहां खेती के उपयुक्त भूमि कम होती है और कड़ी चट्टानों के कारण सड़कों व रेलों का निर्माण भी कठिन होता है। नदियां भी तेज प्रवाह वाली होती हैं और नाव चलाने के लिये सर्वथा अयोग्य रहती हैं। काश्मीर और नेपाल में इन्हीं सब कारणों से जनसंख्या का घनत्व बहुत कम है।

हिमालय प्रदेश का क्षेत्रफल १५३० लाख वर्गमील है परन्तु आबादी केवल २१४ लाख है। भारत के अन्य क्षेत्रों में जनसंख्या का वितरण इस प्रकार है:—

उत्तरी मैदानी भाग	१३९३ लाख।
दक्षिण के पठार व पहाड़	१०८५ लाख।
पश्चिमी घाट व तटीय मैदानी भाग	३९९ लाख।

पूर्वी घाट व तटीय मैदान ५१८ लाख।

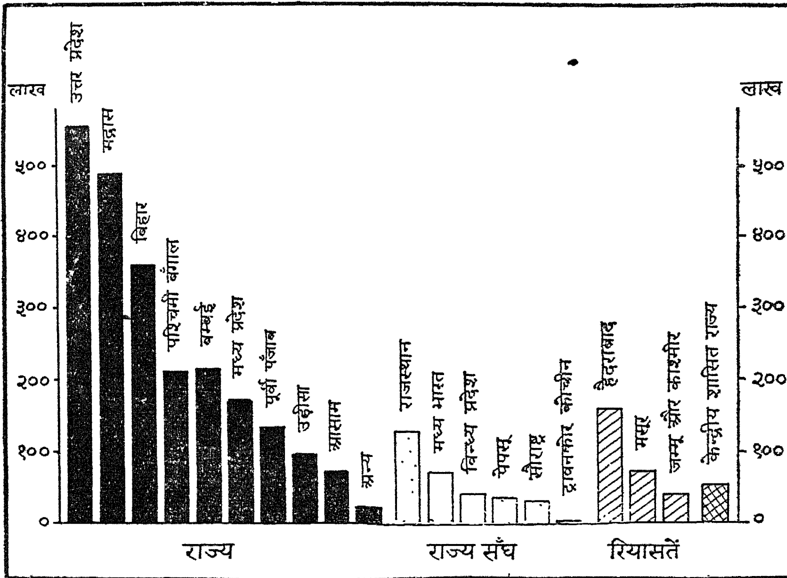
देश की आर्थिक उन्नति का भी जनसंख्या के घनत्व पर बड़ा असर पड़ता है। यूरोप और अमरीका में उद्योग-धंधों की उन्नति के कारण अधिकतर लोग बड़े-बड़े शहरों या छोटे नगरों में निवास करते हैं। इससे यह पता चलता है कि वहां के अधिकतर लोगों का उद्यम खान खोदना, कारखानों में काम करना तथा व्यापार करना है। इसके विपरीत भारत का मुख्य धंधा खेती है और अधिकतर लोग उसी में संलग्न है। सन् १९५१ की जन-गणना के अनुसार भारत की २४९,१२२,४४९ जनसंख्या खेती में लगी हुई है और १०७, ५७१,९४० लोग अन्य व्यवसायों में। अतः स्पष्ट है कि भारत के अधिकतर लोग ग्रामों में निवास करेंगे जहां वे अपना मुख्य उद्यम खेती कर सकें। भारत की जनसंख्या का ८२·८ प्रतिशत भाग ग्राम में पाया जाता है और शेष १७.२ प्रतिशत भाग शहरों में। यही कारण है कि भारत में गांवों की अपेक्षा शहर बहुत कम है और बड़े बड़े शहर तो केवल अंगुली पर गिने जा सकते हैं। निम्न तालिका से भारतीय जनसंख्या का व्यवसायिक विन्यास स्पष्ट हो जायेगा —



पूर्वी पंजाब, गंगा का ऊपरी बेसिन, गंगा की निचली घाटी, पूर्वी व पश्चिमी तटीय मैदान में आबादी का घनत्व सबसे अधिक है और इन सभी प्रदेशों में लोगों का मुख्य धंधा कृषि है।

भारत की ६९.८ प्रतिशत जनसंख्या खेती में लगी हुई है। केवल ३०.२ प्रतिशत लोग ही अन्य व्यवसाय करते हैं। भारत की सबसे अधिक जनसंख्या उत्तर प्रदेश में निवास करती है जहां की आवादी ६३२ लाख है। भारत में सबसे विस्तृत राज्य मध्य प्रदेश है जहां का क्षेत्रफल १३०,२७२ वर्गमील है। परन्तु जनसंख्या का सबसे अधिक घनत्व पश्चिमी बंगाल में है। वहां प्रतिवर्ग मील में ८०६ व्यक्ति निवास करते हैं यद्यपि भारत का औसत घनत्व केवल ३०३ व्यक्ति प्रतिवर्ग मील है।

संसार के सबसे अधिक नगर उत्तर प्रदेश में हैं। यद्यपि उत्तर प्रदेश में शहरों की संख्या १६ है परन्तु शहर में निवास करने वाले सबसे अधिक बम्बई राज्य में रहते हैं। वहां के शहरों की जनसंख्या ५१ लाख है। भारत के चार बड़े-बड़े शहर निम्नलिखित हैं— बम्बई (२८ लाख), कलकत्ता (२५ लाख), मद्रास (१४ लाख), हैदराबाद (११ लाख)।



चित्र नं० १३

भारतीय राज्य, राज्यसंघ व रियासतों में जन-संख्या का वितरण।

जनसंख्या की वृद्धि—सन् १९३१ से सन् १९४१ तक के काल में भारत के विभिन्न प्रदेशों में ५०० लाख मनुष्य बढ़ गये और सन् १९४१ से सन् १९५१ तक, दस सालों के अन्दर लगभग इतने ही आदमी और बढ़ गये हैं। जनसंख्या की इस तीव्र वृद्धि से भारत के सामने एक समस्या सी उठ खड़ी हुई है। सन् १९०१ में भारत की जनसंख्या २३५५० लाख थी और सन् १९५१ में यह ३५६८३ लाख हो गई। इस प्रकार ५० साल में भारत

की जनसंख्या १२३३३ लाख अधिक हो गई। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि भारत की आबादी ५१ प्रतिशत अधिक हो गई है। पिछले १० वर्षों में तो जनसंख्या में वृद्धि ११५०० व्यक्ति प्रतिदिन से भी अधिक थी।

इसी के साथ-साथ ध्यान देने योग्य बात तो यह है कि यद्यपि पिछले ५० सालों से भारत में औद्योगीकरण व नगरीकरण की ओर प्रगति की जा रही है फिर भी यहां की ७० प्रतिशत जनता खेती पर निर्भर रहती है और ८३ प्रतिशत लोग गांवों में ही निवास करते हैं। भारत का मुख्य धंधा खेती है और इसलिए भारत की बढ़ती हुई आबादी यहां की कृषि पर व भूमि पर भार समान है। साथ-साथ कृषि की उन्नति न होने से उत्पादन तो उतना ही रहा है जबकि देश की जन-संख्या पहले से सवाई हो गई है। इसके साथ-साथ देश के विभाजन से बहुत से उपजाऊ प्रदेश पाकिस्तान में चले गये हैं। फलतः भारत के सामने अपनी बढ़ती हुई जनसंख्या को भोजन देने की विकट समस्या उपस्थित हो गई है। इस बढ़ी हुई जनसंख्या के कारण भारत की आर्थिक प्रगति में रोक-सी आ गई है।

इस संबंध में ध्यान देने योग्य बात यह है कि भारत में मनुष्यों की अधिकता या भूमि पर भार की वजह से कठिनाई नहीं है। मुख्य कारण यहां के आर्थिक साधनों का अपर्याप्त उपभोग है। अतएव प्राकृतिक व मानव दोनों ही प्रकार के साधनों का ठीक उपयोग होना चाहिये।

औद्योगिक देशों में जनसंख्या की वृद्धि की समस्या को अनेक प्रकार से हल किया जाता है। विभिन्न औद्योगिक क्षेत्रों में आबादी के पुनः वितरण से ऊसर भूमियों को प्रयोग में लाकर, देश की प्राकृतिक संपत्ति का पूरा-पूरा उपभोग करके, उद्योग-धंधों की उन्नति करके तथा वैदेशिक व्यापार और प्रवास नीति को बढ़ावा देकर इस समस्या को हल किया जा सकता है। यही नहीं भिन्न-भिन्न देशों ने अपने यहां जनसंख्या की वृद्धि की समस्या को इसी प्रकार के उपायों द्वारा हल करने का प्रयत्न किया है।

भारत में भी सदा से ही आबादी का पुनः वितरण होता रहा है और कालान्तर में बहुत से लोग गांवों से निकल कर शहरों में बस गये हैं; खेती का धंधा छोड़कर अन्य व्यवसायों को अपना लिया है परन्तु साधारणतया यह देखा जाता है कि खेती छोड़ने के बाद लोग शहरों के पास स्थापित विभिन्न उद्योग धंधों में लग जाते हैं। प्रत्येक वर्ष बिहार, उत्तर प्रदेश, उड़ीसा और मद्रास से हजारों व्यक्ति दूसरे राज्यों में व्यवसाय की खोज में जाकर बस जाते हैं। अधिकतर ऐसे प्रवासी लोग आसाम, बंबई, पश्चिमी बंगाल और मध्य प्रदेश में जाकर बस गये हैं और वहां की खानों, बागीचों और कारखानों में काम करके अपनी जीविका चलाते हैं।

जनसंख्या का आवागमन

राज्य जो अपने निवासियों को बाहर भेजते हैं या जहां पर बाहर से लोग आकर बस जाते हैं	जनसंख्या के प्रति १ हजार मनुष्यों में कमी या अधिकता
बिहार-उड़ीसा	—३७
उत्तर प्रदेश	—३१
मद्रास	—२०
आसाम	+१४४
बंबई	+१८
बंगाल	+२६
मध्य प्रदेश	+१३

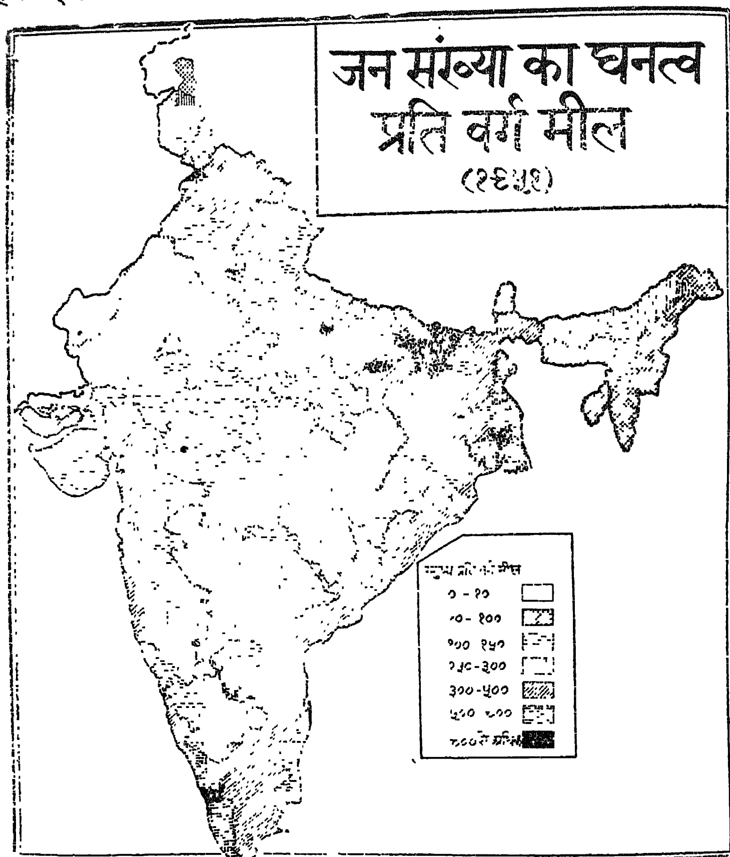
बिहार, उड़ीसा, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश और नेपाल के बहुत से लोग पश्चिमी बंगाल में जाकर बस गये हैं। बंगाल में प्रवासी जन-संख्या के ६० प्रतिशत लोग बिहार व उड़ीसा से आये हैं और लगभग १८ प्रतिशत लोग उत्तर प्रदेश से । ये लोग अधिकतर हुगली प्रदेश के मिलों व कारखानों में काम करते हैं या दार्जलिंग जिले के चाय के बागीचों में मजदूरी करते हैं।

आसाम में चाय के बागीचों व खेती के योग्य भूमि से आकर्षित होकर बहुत से लोग जाकर बस गये हैं। इस समय आसाम की कुल जनसंख्या के एक-चौथाई लोग दूसरे प्रांतों से आये हुए हैं। चाय के बागीचों में बिहार, उड़ीसा, मध्य प्रदेश और मद्रास से आये हुए लोग काम करते हैं। आसाम के नौगांग जिले में पूर्वी पाकिस्तान के मेननसिंह व कौमिला प्रदेशों के बहुत से लोग जाकर बस गये हैं और खेती के उद्यम में लगे हुए हैं। आसाम एक बड़ा राज्य है और क्षेत्रफल के अनुपात में उसकी जनसंख्या बहुत ही कम है। इसका अधिकतर क्षेत्रफल पहाड़ों व जंगलों से घिरा हुआ है। समस्त क्षेत्रफल के ३९ प्रतिशत भाग पर विस्तृत वन प्रदेश स्थित हैं। इसके अतिरिक्त बहुत से प्रदेशों में मलेरिया के मच्छर पाये जाते हैं। यदि इस प्रकार के भागों को साफ करके खेती योग्य बना दिया जाय तो आसाम की आर्थिक दशा भी सुधर जायेगी और अधिक घने आबाद राज्यों के लोग वहां जाकर बस भी सकेंगे।

बढ़ती हुई आबादी का दूसरा हल यह है कि भारतीयों को अपना देश छोड़कर विदेश में बसने का प्रोत्साहन दिया जाय । परन्तु इसमें कहां तक सफलता मिलेगी यह कहना कठिन है। इस नीति की सफलता बहुत कुछ विदेशी राष्ट्रों के रुख पर निर्भर है। पता नहीं कौन राज्य भारतीयों को अपने राज्य में स्थान देंगे और उन्हें वे सभी सुविधायें प्रदान करेंगे जो सफल नागरिक जीवन के लिये अत्यावश्यक हैं।

इस समय भी करीब ४० लाख भारतीय दूसरे देशों में रहते हैं। इनमें से ७५ प्रतिशत लोग तो बर्मा, लंका और मलाया में बस गये हैं और प्रायः चीनी व रबर के खेतों या खानों में काम करते हैं। खेती के हीन काल में प्रायः देश से बाहर जाने वालों की संख्या बढ़ जाती

हैं। सन् १९३१ की जनगणना के अनुसार बर्मा में भारतीय निवासियों की संख्या १०



चित्र नं० १४—सम्पूर्ण भारत में जनसंख्या का घनत्व। गंगा की घाटी और ट्रावनकोर में जनसंख्या का घनत्व विशेष रूप से अधिक है।

लाख थी जो बर्मा की सम्पूर्ण जनसंख्या का ६.९ प्रतिशत थे। हाल में बर्मा के बन्दरगाहों व पोताश्रयों, रबर के बगीचों व खानों में हिन्दुस्तानियों के प्रति स्पर्धा इतनी बढ़ गई है कि बहुधा वहां के आदि निवासी भारतीयों के खिलाफ तक हो गए हैं। बैक्सटर कमीशन की सिफारिशों के आधार पर सन् १९४१ से भारत व बर्मा के बीच आने-जाने पर भी कानूनी नियंत्रण लगा दिये गये हैं।

भारत की सम्पूर्ण प्रवासी जनसंख्या के २८ प्रतिशत लोग लंका में रहते हैं। लंका की कुल आबादी का सप्तमांश भारतीय हैं। ये लोग अधिकतर चाय और रबर के बगीचों में काम करते हैं। परन्तु इधर कुछ दिनों से लंका में भारतीयों का जाना बन्द-सा है। उस

के दो कारण हैं—एक तो यह कि भारतीय मजदूरों को लंका के लोग कम मजदूरी देते हैं और दूसरे वहां के लोग व सरकार भारतीयों के बसने के विरुद्ध हैं ।

भारत की प्रवासी जनसंख्या के १५ प्रतिशत लोग मलाया में बस गये हैं । ये लोग अधिकतर खानों व रबर के बगीचों में काम करते हैं । दूसरे महायुद्ध के पूर्व मलाया सरकार ने भारतीयों के मलाया में आकर बसने की नीति का विरोध किया था । इसके अलावा ऐसा भी प्रतीत होता है कि लंका और मलाया में अब और भारतीयों के बसने व जीवन निर्वाह की गुंजाइश नहीं है ।

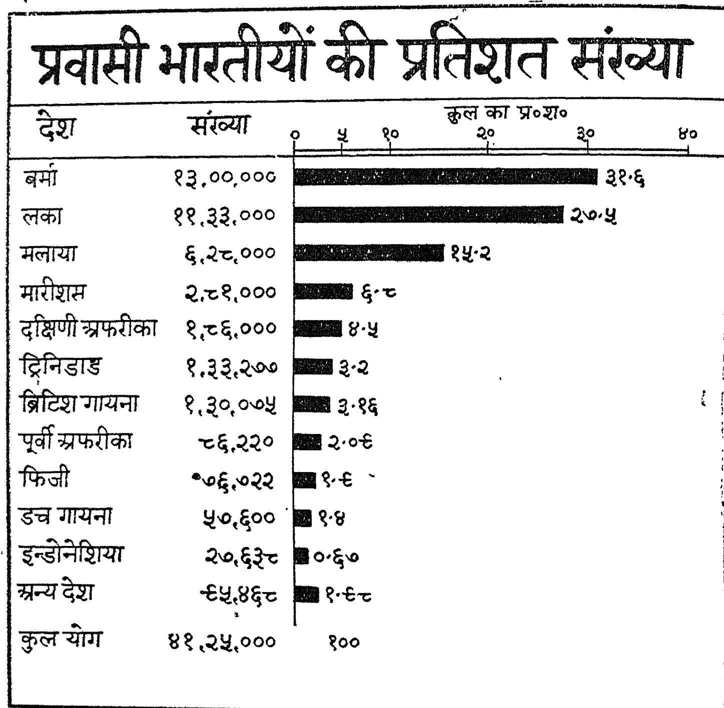
दक्षिणी अफ्रीका और आस्ट्रेलिया की भी बहुत कुछ ऐसी ही दशा है । आरम्भ में तो आर्थिक उन्नति व विकास के लिये दक्षिणी अफ्रीका की सरकार ने भारतीयों को बुलाया था और भारतीय मजदूरों की ही सहायता से अपनी खनिज सम्पत्ति का विकास व अपने रेल मार्गों का निर्माण किया । फलतः इस समय दक्षिणी अफ्रीका में करीब-करीब २,२०,००० भारतीय हैं । ये लोग विविध व्यवसायों में लगे हुये हैं । मजदूर, व्यापारी और पेशेवर यह भारतीय वहीं पर बस से गये हैं । परन्तु दक्षिणी अफ्रीका की सरकार उनके साथ अच्छा व्यवहार नहीं करती, उनके साथ भेदभाव दिखलाती है और उनके अधिकारों में हस्तक्षेप करती है । प्रवासी भारतीय के नागरिक अधिकारों को छीन कर तथा उसके नागरिक जीवन में प्रतिबन्ध लगाकर वहां की सरकार दक्षिणी अफ्रीका को सफेद वर्ण जातियों का ही घर बनाना चाहती है । इस समय वहां के भारतीयों को जमीन खरीदने, उच्च पेशे अपनाने और मत देने का पूरा-पूरा अधिकार नहीं है । विविध सार्वजनिक स्थानों में, रेलगाड़ियों में व होटलों में उनका तिरस्कार किया जाता है । इस कारण इस समय दोनों सरकारों के बीच संघर्ष-सा चल रहा है ।

आस्ट्रेलिया का क्षेत्रफल ३० लाख वर्ग मील है पर वहां की कुल आबादी ७० लाख से भी कम है । अधिकतर लोग पूर्वी भाग में सिडनी से एडीलेड तक के प्रदेश में और दक्षिणी पश्चिमी कोने में निवास करते हैं । कहीं भी जनसंख्या का घनत्व अधिक नहीं है । इसलिये वहां बाहरी लोगों के बसने का पर्याप्त क्षेत्र है । वास्तव में मजदूरों की कमी के कारण आस्ट्रेलिया के उद्योग-धंधे पूरी तरह उन्नति नहीं कर पाये हैं । फिर भी आर्थिक कारणों से आस्ट्रेलिया की सरकार ने एशियाई लोगों के आकर बसने पर प्रतिबन्ध लगा दिये हैं ।

आस्ट्रेलिया और दक्षिणी अफ्रीका की इस विरोध नीति से भारतीयों को बड़ा हताश होना पड़ा है और अब इसी प्रकार के तिरस्कारपूर्ण व्यवहार के डर के कारण अन्य देशों में जाकर बसने की हिम्मत नहीं पड़ती है । यही नहीं बल्कि बहुत से लोग अब वापस आ रहे हैं । सन् १९३१ से सन् १९३९ तक ९००,००० लाख प्रवासी भारतीय विभिन्न देशों से भारत वापस आये जब इसी कालान्तर में केवल ३ लाख मनुष्य भारत को छोड़ कर अन्य देशों को गये ।

जन-संख्या का यह प्रश्न देश के विभाजन के बाद और भी प्रखर हो गया है । अगस्त

सन् १९४७ के बाद लाखों मनुष्य पाकिस्तान छोड़ कर भारत चले आये। फलत: उन्हें



चित्र नं० १५—इस तालिका से १९३८-३९ की दशा का ज्ञान होता है। ६० प्रतिशत प्रवासी भारतीय बर्मा में थे।

बसाने का काम भारत सरकार के कन्धों पर पड़ा और बढ़ती हुई जनसंख्या के यकायक इस प्रकार बढ़ जाने से यह प्रश्न और भी जटिल हो गया है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि भारत की बढ़ती हुई जनसंख्या का हल प्रवास कदापि नहीं हो सकता। अत: इस प्रश्न को हल करने के लिये सन्तान-उत्पत्ति कम करना होगा, ऊसर व बंजर भूमि को खेती योग्य बनाना होगा, नयी भूमि पर खेती करके खेती से उत्पादन बढ़ाना होगा और नये उद्योग-धंधों को खोल कर देश की जनता के लिये नये व्यवसाय प्रदान करना होगा। मध्य भारत, मध्य प्रदेश, उड़ीसा और आसाम में बहुत-सी भूमि खेती के योग्य बनाई जा सकती है। बाद में विभिन्न राज्यों के बीच जनसंख्या के पुन: वितरण द्वारा इस प्रश्न को हल किया जा सकता है।

जातियां

संसार में भारत ही ऐसा देश है जहां सभ्यता के हर काल में कई प्रकार की जातियां वर्त्तमान् रही हैं। इसका मुख्य कारण यह है कि विभिन्न समय में भारत में भिन्न-भिन्न

जातियां आकर बसती रही हैं। फलतः आजकल के भारतीय विभिन्न जातियों के सम्मिश्रण-मात्र हैं।

भारत की प्राकृतिक बनावट के कारण यहां पर विभिन्न काल में आई हुई जातियां नष्ट न हुई बल्कि बाद में आने वाली जातियों के दबाव से पहले से आई हुई जाति के लोग दक्षिण या पूर्व में जाकर बस गये। ये जातियां वर्त्तमान भारत का मुख्य अंग हैं। आदि-जातियों को भारतीय पहाड़ व जंगलों ने शरण दी और इसीलिये अभी भी बहुत-सी भारतीय जातियों में आदि गुण वर्त्तमान हैं।

(१) नीग्रायड (Negroid) जाति के लोग सबसे प्रथम अफ्रीका से आकर भारत में बसे। इस जाति के चिन्ह अब बिल्कुल मिट चुके हैं और अण्डामन द्वीप के आदि-निवासियों को छोड़ कर और कोई भी भारतीय लोग इनसे उद्भूत नहीं हैं। इस जाति के कुछ लोग राममहल पहाड़ियों में भी पाये जाते हैं।

(२) इसके बाद पैलस्टाइन से प्रोटो आस्ट्रालायड (Proto-Australoids) जाति के लोग आये। उनका सर लम्बा, रंग काला और नाक चपटी थी। मध्य भारत, मध्य प्रदेश और लंका के आदिनिवासी इसी जाति के हैं। ये ही वास्तव में प्राचीन भारतीय हैं और आस्ट्रेलिया के आदि निवासियों से रूप, रंग व कद में मिलने के कारण, इनका नाम प्रोटा-आस्ट्रालायड पड़ गया है।

(३) अति प्राचीन समय में भूमध्यसागर जाति की एक शाखा जिसका नाम आस्ट्रिक (Austrics) था मेसोपोटामिया द्वारा भारत में आई। इन लोगों के सर लम्बे, रंग कुछ साफ और नाक लम्बी व सीधी होती है। यह लोग उत्तरी भारत में बसे और बाद में बर्मा, इण्डोचीन, मलाया और इण्डोनेशिया में फैल गये। आजकल इस जाति के लोग मध्य तथा उत्तरी-पूर्वी भारत के पहाड़ों व जंगलों में पाये जाते हैं और इनकी कुल संख्या देश की आबादी की १.३ प्रतिशत है। कोल, संथाल, खासी व नीकोबारी लोग इसी जाति के हैं।

(४) ईसामसीह से ३५०० वर्ष पूर्व ईसवी में एशिया माइनर और एशियन द्वीप समूह से द्रविड़ (Dravidians) लोग भारत में आये। ये लोग बहुत सभ्य थे और इन्होंने पंजाब और सिंध में बहुत से नगर स्थापित किये। जब इन्होंने दक्षिण और पूर्व में गंगा के मैदान में फैलना शुरू किया तो ये आस्ट्रिक जाति के लोगों के सम्पर्क में आये और दोनों ने मिलकर वर्तमान हिन्दू धर्म की नींव डाली। आजकल द्रविड़ जाति के लोग दक्षिण भारत में रहते हैं और इनकी संख्या भारतीय आबादी की २० प्रतिशत है।

(५) इसके बाद ईसामसीह से २५०० वर्ष पूर्व ईसवी में उत्तरी मेसोपोटामिया के प्रदेश से ईरान होते हुए आर्य जाति के लोग आये। उनका रंग गोरा, चेहरा सुडौल और कद लम्बा था। इस समय भारत के ७३ प्रतिशत लोग इसी जाति के हैं और पूर्वी पंजाब, काश्मीर, राजपूताना तथा पश्चिमी उत्तर प्रदेश में फैले हुए हैं।

(६) आर्यों के बाद मंगोल जाति के लोगों ने भारत में प्रवेश किया। इनका घर उत्तरी पश्चिमी चीन था और वहां से यह तिब्बत में फैले और फिर हिमालय तथा आसाम से होते हुए उत्तरी-पूर्वी बंगाल के मैदानी भागों में तथा आसाम की पहाड़ियों व मैदानों में फैल गये। आज भी इस जाति के लोग नेपाल, तिब्बत, काश्मीर के पूर्वी भाग और आसाम में मिलते हैं। इनका रंग पीला होता है।

वर्तमान समय में अधिकतर भारतीय इन जातियों के सम्मिश्रण से उत्पन्न हैं और इसी कारण उनमें किसी एक जाति की विशेषताएं नहीं पाई जाती हैं। इस प्रकार की मिश्रित ३ जातियां प्रधान हैं—

(१) **आर्य-द्राविड़** जाति के लोग उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्य भारत, बम्बई, मध्य प्रदेश और पश्चिमी बंगाल के कुछ भागों में पाये जाते हैं।

(२) **मंगोल-द्राविड़** जाति के लोग आसाम व बंगाल के पूर्वी भागों में पाये जाते हैं। इनका रंग काला, कद मध्यम और नाक चौड़ी होती है।

(३) **स्काइथो-द्राविड़** जाति के लोग द्राविड़ और स्काइथ जाति का सम्मिश्रण हैं। ये लोग गुजरात और पश्चिमी प्रायद्वीप में पाये जाते हैं। महराठा लोग इसी जाति के हैं।

भाषायें

भारत में अनेक भाषायें बोली जाती हैं। भारत की भाषाओं के अन्वेषण से पता चला है कि यहां पर कुल १७९ भाषायें बोली जाती हैं, जिनमें से करीब ११६ भाषायें १ प्रतिशत से भी कम लोगों में प्रचलित हैं। इस प्रकार पूर्णतया उन्नत व विकसित केवल १४ भाषायें हैं—(१) हिन्दी (२) उर्दू (३) बंगाली (४) उड़िया (५) मराठी (६) गुजराती (७) काश्मीरी (८) पंजाबी (९) नेपाली (१०) आसामी (११) तेलगू (१२) कनाडा (१३) तामिल और (१४) मलयालम। पंजाबी और नेपाली हिन्दी से मिलती-जुलती हैं और उड़िया व आसामी भाषायें बंगाली से मिलती हैं। अन्तिम चार भाषायें दक्षिण भारत में बोली जाती हैं। लगभग २३०० लाख आदमी पहली दस भाषाओं का प्रयोग करते हैं और ६६० लाख मनुष्य अन्तिम ४ भाषाओं को बोलते हैं।

विभिन्न भाषा-भाषियों की संख्या इस प्रकार है (लाख में)

हिन्दी	७९०	कनाडा	१२०
बंगाली	५४०	उड़िया	११०
तेलगू	२६०	गुजराती	११०
मराठी	२१०	मलयालम	१००
तामिल	२००	सिन्धी	१४०
पंजाबी	१६०	आसामी	२०
राजस्थानी	[illegible]	[illegible]	

भाषा की यह अधिकता राष्ट्रीयता में कोई भी बाधा नहीं उत्पन्न करती । कैनाडा, दक्षिणी अफ्रीका, स्पेन, चेकोस्लावाकिया, स्विटजरलैंड, चीन और रूस में भी बहुत-सी भाषायें बोली जाती हैं। यही हाल बेल्जियम और दक्षिणी अमरीका की अनेक रियासतों का भी है । इसलिये भारत की भाषा विभिन्नता पर अधिक जोर देने की आवश्यकता नहीं है । हिन्दी भाषा को साधारण रूप से जानने वाला व्यक्ति देश के सब भागों में बिना किसी कठिनाई के जा सकता है ।

हिन्दी भारत की राष्ट्र भाषा है और थोड़े ही समय में इसका प्रचार सभी प्रदेशों में हो जायेगा । हिन्दी और उर्दू का व्याकरण तथा वाक्य विधान एक-सा है । हिन्दी देवनागरी लिपि में लिखी जाती है और उर्दू फारसी लिपि में लिखी जाती है । हिन्दी में संस्कृत शब्दों की अधिकता है पर उर्दू में अरबी-फारसी शब्दों की बहुलता है । उत्तरी भारत में बोलचाल की भाषा हिन्दी उर्दू का सम्मिश्रण हिन्दुस्तानी है ।

प्रश्नावली

१. भारत में जाति का सवाल कृत्रिम है ? भौगोलिक परिस्थितियों का वर्णन करते हुए इस कथन की पुष्टि करिये ।

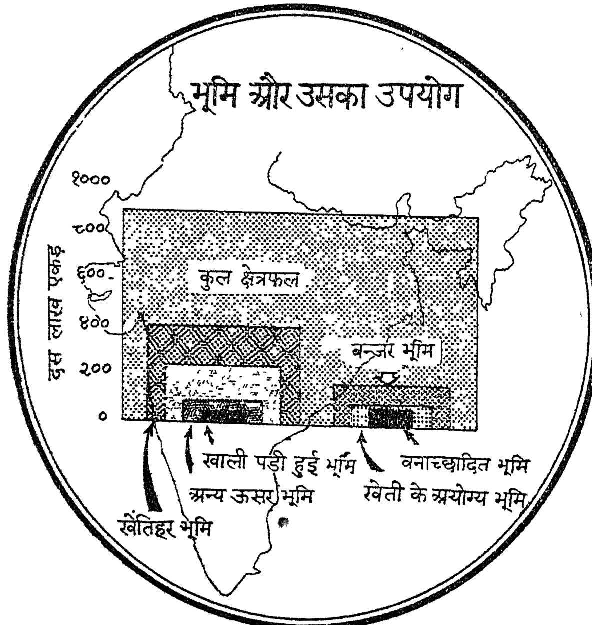
२. भारत की जन-संख्या के वितरण में विषमता का क्या कारण है ? क्या यह विषमता स्थायी है ?

३. भारत की अधिकतर जन-संख्या गंगा ब्रह्मपुत्र के मैदान में निवास करती है । इसके भौगोलिक कारण बतलाइये ।

अध्याय : : तीन

कृषि का उद्यम

भारत के कुल क्षेत्रफल में से ३५८० लाख एकड़ भूमि खेती के योग्य है और भारत की जनसंख्या लगभग ३५७० लाख है। इस प्रकार स्पष्ट है कि प्रत्येक निवासी के लिये १.०६ एकड़ खेतिहर भूमि उपलब्ध है। भूमि के उपभोग पर असर डालने वाली दशायें तीन प्रकार की होती हैं—(१) भौगोलिक, (२) आर्थिक और (३) सांस्कृतिक। **भौगोलिक दशाओं** के अन्तर्गत वर्षा, तापक्रम, भूमि और भू-प्रकृति शामिल हैं। इनका पौधों के जीवन व बाढ़ पर असर पड़ता है। **आर्थिक दशाओं** के अन्तर्गत यातायात, जनसंख्या का घनत्व और बाजार सम्मिलित हैं। कृषि व उद्योग-धंधे सम्बन्धी विकास, स्थानीय मत व विचारधारायें, कृषि भूमि विभाजन की रीति और सरकारी नीति को हम **सांस्कृतिक दशाओं** के नाम से पुकार सकते हैं। वास्तव में भूमि का उपभोग इन सब दशाओं के सामूहिक प्रभाव पर आधारित है। निम्नलिखित रेखाचित्र से भारत की खेती योग्य भूमि तथा उसके उपयोग की मात्रा स्पष्ट हो जायेगी।



चित्र नं० १६

भारत में खेती का महत्व— भारत प्रधानतः एक कृषि-प्रधान देश है। यहां की ७० प्रतिशत जनसंख्या कृषि पर ही निर्भर रहती है और अन्य २० प्रतिशत लोग अप्रत्यक्ष रूप से इसी उद्यम के सहारे अपना बसर करते हैं। इस प्रकार भारत का सबसे प्रमुख

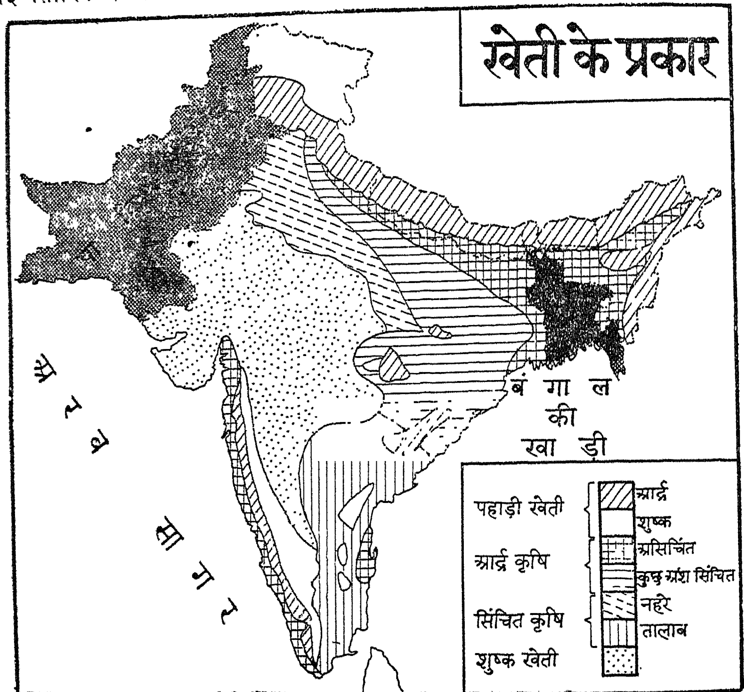
उद्यम खेती है। खेती से भारत की विस्तृत जनसंख्या को भोजन मिलता है और देशी उद्योग-धंधों तथा विदेशों को निर्यात के लिये बहुत-सा कच्चा माल भी प्राप्त होता है। इसी उद्यम के कारण संसार की कच्चे माल की मांग-पूर्ति करने वाले राष्ट्रों में भारत का स्थान बड़ा ही महत्वपूर्ण है। भारत संसार में सबसे अधिक गन्ना उत्पन्न करने वाला देश है। चावल, ज्वार, बाजरा, चाय, मूंगफली और तिलहन के उत्पादन में भी भारत का बड़ा ही प्रधान स्थान है। भारत के सिवा लाख तो कहीं और उत्पन्न ही नहीं किया जाता। कपास के उत्पादन में संयुक्त राष्ट्र के बाद भारत का दूसरा स्थान है और इसी प्रकार तिलहन के उत्पादन में अर्जेन्टाइना के बाद इसका नम्बर आता है। ज्वार-बाजरे के उत्पादन में चीन, अफ्रीका और भारत का स्थान सबसे ऊंचा है। चावल और चाय के उत्पादन में भी भारत और चीन दो ही राज्य अग्रगण्य हैं। अतः हम कह सकते हैं कि भारत का उद्योग, व्यापार व वाणिज्य खेती पर ही आश्रित हैं और इससे कृषि उद्यम का महत्व स्वयं-सिद्ध है।

भारत में खेती का धंधा प्रति वर्ष जून के महीने में शुरू हो जाता है। वर्षा शुरू होते ही खेत की जोताई व बीजों की बुआई प्रारम्भ हो जाती है। इस महीने में बोई हुई फसल सितम्बर-अक्तूबर तक तैयार हो जाती है और इसे खरीफ की फसल के नाम से पुकारते हैं। इसके अन्तर्गत गेहूं, चावल, ज्वार-बाजरा, मक्का और कपास की फसलें उगाई जाती हैं। खेती का दूसरा मौसम जाड़े में शुरू होता है और इस समय पर उगाई हुई फसलों को रबी के नाम से पुकारते हैं। गेहूं, जौ, चना, तिलहन, सरसों आदि रबी की प्रमुख फसलें हैं।

भारत की प्राकृतिक बनावट, जलवायु, भूमि और जनसंख्या के स्वभाव के अनुसार भारत में कई प्रकार से खेती की जाती है, जिनमें चार रीतियां विशेष रूप से प्रमुख हैं—(१) पहाड़ी खेती, (२) आर्द्र कृषि, (३) सिंचित खेती और (४) शुष्क खेती।

खेती का उद्यम मद्रास, बम्बई, पश्चिमी बंगाल, पूर्वी पंजाब, बिहार, उड़ीसा और मध्य प्रदेश का प्रधान धंधा है। इन प्रदेशों के अतिरिक्त अन्य भागों में खेती बड़ी कठिन होती है। **पूर्वी बम्बई राज्य** और **मध्य प्रदेश** की उच्च भूमियों की मिट्टी अनुपजाऊ है। अतः केवल काली मिट्टी के प्रदेशों को छोड़ कर अन्य सभी जगह खेती का धंधा कम महत्व का है या साधारण फसलें उगाई जाती हैं। **आसाम** में अधिकतर भाग जंगलों व पहाड़ों से घिरा हुआ है। बहुत से जिलों में मलेरिया रोग के प्रचलित होने के कारण किसी प्रकार का मानव कार्य संभव नहीं है। इसलिये आसाम में भी कृषि का उद्यम कुछ ही प्रदेशों तक सीमित है। **राजस्थान** के बहुत से प्रदेश इतने शुष्क हैं कि वहां किसी प्रकार की खेती नहीं हो सकती। **मध्य प्रदेश** और **उड़ीसा** के सरहदी प्रदेशों में मलेरिया के प्रकोप के कारण खेती का धंधा अस्त-व्यस्त रहता है। उत्तर में **हिमालय** प्रदेश में पहाड़ों के कारण किसी भांति की विस्तृत कृषि असंभव है। फिर भी इन सभी प्रदेशों में सुलभ दशाओं के होने से कहीं-कहीं थोड़ी बहुत मात्रा में कृषि की जाती है।

भारतीय कृषि की समस्यायें—भारतीय कृषि की विभिन्न फसलों पर विचार करने से पता चलेगा कि यह बहुत पुराना धंधा है और यहां के किसान चतुर व मेहनती हैं, परन्तु गरीब और बेपढ़े लिखे हैं। अतः उनकी कृषि प्रणाली बड़ी प्राचीन है। कृषि में नये औजारों व रीतियों के प्रयोग तो वे समझते ही नहीं। इसके अलावा देश के विभिन्न भागों में मिट्टी, जलवायु, वर्षा और खेती की रीतियों में विभिन्नता के कारण खेती की दशायें व तरीके भी अलग-अलग हैं। भारतीय किसान अपने अज्ञान और गरीबी के कारण नई वैज्ञानिक व यांत्रिक रीतियों को नहीं अपना सकते।



चित्र नं० १७—सम्पूर्ण भारत के कुल क्षेत्रफल के ३५ प्रतिशत भाग पर खेती होती है। गंगा की तलहटी और पश्चिमी तटीय मैदान में आर्द्र कृषि प्रमुख है।

इसके फलस्वरूप भारत में खेती का उत्पादन बहुत कम है और अन्य देशों की अपेक्षा विविध फसलों की प्रति एकड़ उपज अति न्यून है।

प्रति एकड़ उपज (पौंडों में)

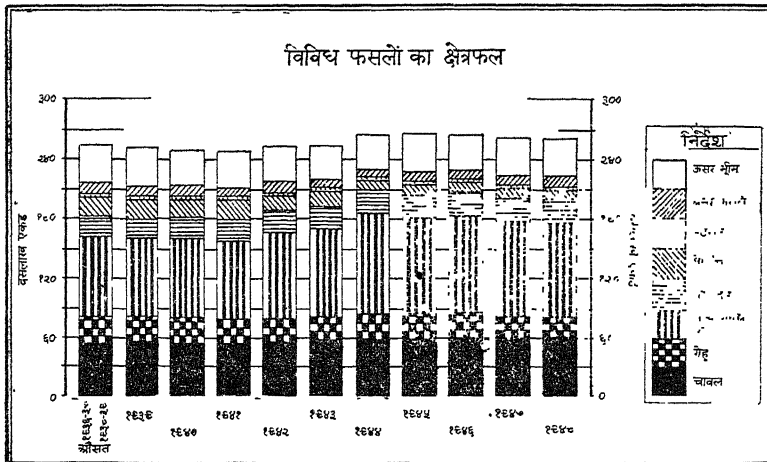
	चावल	गेहूं	तिलहन
बंगाल	८६६	६६०	४१६
उत्तर प्रदेश	६४५	७२५	३५९
बिहार	७५६	८६५	३०७
मध्य प्रदेश	७०५	४२९	१८०
बम्बई	८७१	३९३	——

उत्पादन की इस कमी का ज्ञान अन्य देशों के साथ तुलना करने से और भी स्पष्ट हो जायेगा। खेती के तरीकों में अन्तर और आर्थिक प्रगति की दशाओं में भिन्नता के कारण ही प्रति एकड़ उपज में यह कमी पाई जाती है।

सन् १९३२ से सन् १९३६ तक के प्रति हैक्टर उत्पादन का औसत (क्विंटल में)

फसल	भारत	चीन	फ्रांस	जापान	इटली	रूस	संयुक्त राष्ट्र
चावल	१३.७	२५.६	—	३६.०	—	—	—
गेहूं	७.०	११.१	१५.९	१३.८	१४.३	७.८	८.३
जौ	९.४	१२.१	१४.६	२०.४	१०.६	८.९	१०.५
मक्का	८.७	१३.७	१४.४	१३.८	१९.६	१०.१	१३.२
कपास	०.९	२२.४	—	—	—	२.४	२.१
तिलहन	२.७	—	४.६	—	५.९	२.८	३.५
मूंगफली	१०.०	१२.२	—	२१.५	—	—	७.९

भारतीय कृषि की तीसरी समस्या है यहां की बढ़ती हुई आवादी के लिये खाद्यान्नों की कमी। दूसरे महायुद्ध से पहले भारत में खाद्यान्नों का उत्पादन तथा आयात द्वारा प्राप्त भोजन सामग्री दोनों को मिला कर भी यहां की जनता के लिये पर्याप्त नहीं होती थी। सदैव भारत की १२ प्रतिशत जनता के लिये भोजन की कमी पड़ती ही रही है। दूसरे महायुद्ध से भारत की कृषि में विस्तार अवश्य हुआ परन्तु वह उचित दिशा में नहीं था। बढ़ती हुई जनसंख्या की मांग-पूर्ति के लिये भोजन का उत्पादन तो बढ़ाया नहीं गया बल्कि इस के विपरीत व्यावसायिक फसलों की खेती को बढ़ावा दिया गया। फल यह हुआ कि खाद्यान्नों को उगाने वाली भूमि को भी व्यावसायिक फसलों के लिये प्रयोग कर लिया गया। दूसरे, लड़ाई के जमाने में भारत के कृषि उत्पादन से विदेशों ने और विशेष रूप से ब्रिटिश साम्राज्य ने बड़ा लाभ उठाया।



चित्र नं० १८

सन् १९४७ में जब से भारत स्वतन्त्र हुआ है, इस प्रश्न की ओर विशेष ध्यान दिया जा रहा है। भारत सरकार ने 'अधिक अन्न उपजाओ' योजना चलाई और प्रति एकड़ उपज बढ़ाने वाले किसानों को नकद इनाम देने की नीति पर काम करके भारतीय कृषि को प्रोत्साहन दिया है। इसके अलावा भारतीय ट्रेक्टर संस्था द्वारा नयी भूमियों पर खाद्यान्नों की खेती शुरू कर दी गई है और विविध सरकारी खेतों द्वारा किसानों को खेती के नये ढंग सिखलाने का प्रयत्न किया गया है। इन सब चेष्टाओं के फलस्वरूप भारत में विविध फसलों का वितरण इस प्रकार है।

भारत में विविध फसलों का क्षेत्रफल व उपज

(अ) खाद्य फसलें (१९५१–५२)

फसल	क्षेत्रफल (हजार एकड़)	उपज (हजार टन)
चावल	७५४५८	२०३८९
गेहूं	२३९८३	६५९०
ज्वार-बाजरा, मक्का और रागी	९३६६२	१४७४४
चना	१९३८७	३७६६

(ब) व्यवसायिक फसलें (१९५३)

फसल	क्षेत्रफल (हजार एकड़)	उपज (हजार टन)
मूंगफली	११८६२	२८९४
अन्य तिलहन	१५६४९	१७४१
गन्ना	४३७६	५२६०
कपास (००० गांठ)	१५६७८	३०५०
पटसन (००० गांठ)	१८३४	४६९५
तम्बाकू	७९८	२०५

(स) पेय फसलें (१९५१-५२)

फसल	क्षेत्रफल (००० एकड़)	उपज
चाय	७७१	२८१.६ (हजार टन)
कहवा	२१८	४५० (लाख पौंड)

इस प्रकार देश की खेती योग्य भूमि के ८६ प्रतिशत भाग में केवल खाद्यान्नों की खेती की जाती है।

भारत और उसकी खाद्य समस्या

यद्यपि भारत कृषि-प्रधान देश है और संसार के प्रमुख खेतिहर देशों में अग्रगण्य है परन्तु फिर भी यहां भोजन की मांग पूर्ति की दशा बड़ी असंतोषजनक है। इस समय भारत में खाद्यान्नों का वार्षिक उत्पादन ४३० लाख टन है। इस उत्पादन से भारत की केवल षष्ठ-सप्तमांश जनसंख्या का ही पेट भर सकता है। इस प्रकार एक-सप्तमांश जनता के भोजन की व्यवस्था करने का प्रश्न रह जाता है और उस पर से भारत की जन-संख्या प्रतिवर्ष बढ़ती जा रही है। इससे भोजन का यह प्रश्न और भी जटिल होता जा रहा है। भारत की जनसंख्या प्रतिवर्ष १ प्रतिशत के दर से बढ़ती जा रही है और इसके फलस्वरूप भारत को प्रतिवर्ष ५ लाख टन अधिक खाद्यान्नों की आवश्यकता होती है।

यदि भारत के मनुष्यों की भोजन आवश्यकता को १६ औंस और १२ औंस प्रतिदिन मान लिया जाय तो इस आधार पर भारत को ४३६ लाख टन अन्न की आवश्यकता होती है। इसके अलावा क्षति व बीज के लिये इसे ५० लाख टन और अन्न की आवश्यकता होती है। अतः कुल मिलाकर भारत की वार्षिक अन्न आवश्यकता ४८६ लाख टन हुई। दूसरे महायुद्ध से पूर्व बर्मा और स्याम से भोजन आयात करके भारत अपनी भोजन की आवश्यकता को पूरी कर लेता था। परन्तु अब राजनीतिक हलचल के कारण इन देशों के पास स्वयं निर्यात के लिये अधिक अन्न नहीं बचता है। पश्चिमी पंजाब और सिंध के प्रान्त, जहां से भारत को सबसे अधिक गेहूं मिलता था, विभाजन के बाद पाकिस्तान में चले गये हैं। विभाजन से भारत को १० लाख टन गेहूं की हानि हो गई है। इस प्रकार सब मिलाकर भारत में इस समय ४० लाख टन अनाज की कमी का प्रतिवर्ष सामना करना पड़ता है। इस कमी को पूरा करने के लिये भारत को बर्मा, चीन, रूस, संयुक्त राष्ट्र, पाकिस्तान और अन्य देशों से भोजन के लिये खाद्यान्न आयात करने पड़ते हैं।

भारत में खाद्यान्नों का आयात

वर्ष	लाख टन	करोड़ रुपये में मूल्य	वर्ष	लाख टन	करोड़ रुपये में मूल्य
१९४६	२२५	७६.१४	१९४८	२८४	१२९.५९
१९४७	२२३	९३.७६	१९४९	३८०	१५२.००
			१९५२	४७६	२२८.११

इस प्रकार स्पष्ट है कि भारत का खाद्यान्न उत्पादन मांग से १० प्रतिशत कम रहता है। खाद्यान्नों की इस कमी को पूरा करने के लिये भारतीय सरकार ने बहुत से उपाय सोच कर नयी-नयी योजनायें निकाली हैं। ऊसर भूमि को खेती योग्य बनाकर, सिंचाई के नये साधनों द्वारा शुष्क प्रदेशों में पानी पहुंचा कर, अच्छे बीज व रासायनिक खाद के प्रयोग से प्रति एकड़ उपज बढ़ा कर, मशीनों व ट्रैक्टरों द्वारा कठिन भूमि को तोड़-फोड़ कर और

मलेरिया के प्रकोप को कम करके खेती की उपज बढ़ाई जा सकती है और खाद्यान्नों की इस कमी को पूरा किया जा सकता है।

संयुक्त राष्ट्र संघ की 'भोजन व कृषि संस्था' के अध्यक्ष श्री एन. सी. डाड ने भारतीय कृषि की उन्नति के लिये निम्नलिखित उपाय बतलाये हैं—(१) वनों को काटने पर प्रतिबन्ध लगाकर भूमि के कटाव को रोका जाय। (२) अधिक पातालफोड़ कुएं बनाकर सिंचाई की सुविधा प्रदान की जाय। (३) कृत्रिम खाद के स्थान हरी खाद का अधिक उपयोग किया जाय। इसके लिये फलीदार फसलें अधिक उगायी जायं क्योंकि उनमें पानी रोकने और भूमि को नाइट्रोजन प्रदान करने की क्षमता होती है। (४) मशीनों के प्रयोग से केवल नयी कठोर भूमि को खेती योग्य बनाया जावे या भूमि कटाव रोकने के लिये सीढ़ियां बनाई जायं। वास्तव में कई कारणों से भारतीय कृषि को यांत्रिक बना देना बड़ी भूल होगी। भारतीय खेत छोटे व छितरे हुए होते हैं और उन पर किसान बहुत प्राचीन समय से अपनी ही रीति से खेती कर रहे हैं। अब यकायक मशीनों या अन्य यन्त्रों के प्रयोग से सारी व्यवस्था अस्त-व्यस्त हो जायेगी और यह योजना आर्थिक दृष्टिकोण से हानिकर भी होगी। भारत की विशाल जनसंख्या में खेतों पर मशीनों के प्रयोग से बेकारी फैल जायेगी और राष्ट्रीय सरकार के सामने नयी समस्यायें उठ खड़ी होंगी।

भारत में करीब ८५० लाख एकड़ ऐसी भूमि है जिस पर किसी प्रकार की खेती-बारी नहीं हो रही है। इसका अधिकतर भाग किनारे पर या किनारे के समीप है और इसमें से कम से कम १०० लाख एकड़ भूमि बिल्कुल अच्छी, उपजाऊ और खेती योग्य है। बहुत से राज्यों में भूमि को खेती योग्य बनाने की योजनाओं पर काम हो रहा है और उत्तर प्रदेश सरकार इस दिशा में जो कार्य कर रही है उसका स्थान एशिया में रूस के बाद दूसरा है। मेरठ जिले के गंगा खादर क्षेत्र में ४७,००० एकड़ वनाच्छादित भूमि पर सफाई करके खेती की जाने लगी है। तराई के लगभग ५०,००० एकड़ क्षेत्रफल में जहां पहले दलदल ही दलदल था वहां अब खेती की जाती है। मध्य प्रदेश में भी कांस से घिरी हुई विस्तृत भूमि को खेती योग्य बना लिया गया है। मध्य प्रदेश में भूमि को साफ करने का काम मार्च सन् १९४८ में शुरू किया गया था और शुरू में ऐसा डर था कि शायद १४ इंच तक की गहराई पर जड़ वाली कांस को उखाड़ फैंकने में सफलता न मिल सके परन्तु धीरे-धीरे सफलता मिलती गई और आज इस भूमि पर उगाई गई फसलें अन्य स्थानों की अपेक्षा कहीं अधिक अच्छी होती हैं।

इस दृष्टिकोण से आसाम सरकार की योजना विशेष रूप से ध्यान देने योग्य है। १८ महीनों के अन्दर १३,००० एकड़ वनाच्छदित भूमि को साफ करके खेती के योग्य बना दिया जायेगा। सन् १९४९ तक यह प्रदेश नियंत्रित व संरक्षित वन प्रदेश था। परन्तु अब इस सात मील लम्बे और ३ मील चौड़े प्रदेश को खेती के योग्य बनाया जा रहा है। इस सम्पूर्ण प्रदेश पर फसल उगने के बाद आसाम न केवल खाद्यानों में आत्म निर्भर ही हो

जावेगा बल्कि यहां इतना अधिक चावल उगाया जा सकेगा कि अन्य राज्यों को निर्यात भी करना सम्भव होगा।

भारत में कई लाख एकड़ भूमि पर खेती की जा सकती है परन्तु इस समय मलेरिया व मच्छरों के प्रकोप के कारण वह बेकार-सी पड़ी हुई है। इन प्रदेशों में खेती का धंधा शुरू किया जा सकता है और मलेरिया के प्रकोप को भी कम किया जा सकता है। प्राय: यह देखा जाता है कि भारत के चावल उत्पादक प्रदेशों में मलेरिया सदा ही प्रचलित रहता है। इस भीषण रोग के प्रचलन के कारण ही बहुत से अत्यन्त उपजाऊ क्षेत्रों में खेती के धंधे ने पर्याप्त उन्नति नहीं की है। इस प्रकार के क्षेत्रों में तीन विशेषतया प्रमुख व विस्तृत हैं: (१) हिमालय और मैदान के बीच स्थित तराई प्रदेश; (२) पश्चिमी घाट के समानान्तर एक संकरी पट्टी और (३) पूर्वी घाट के समानान्तर पट्टी जो मद्रास, उड़ीसा, हैदराबाद और मध्य प्रदेश में चौड़े क्षेत्र का रूप धारण कर लेती है। इन तीनों ही क्षेत्रों में ५० इंच से १०० इंच तक वर्षा होती है और भूमि भी उपजाऊ है। पर इन सभी प्रदेशों में मलेरिया का प्रकोप सदा ही बना रहता है। वास्तव में चावल व मलेरिया के मच्छर एक ही प्रकार की जलवायु में पनपते हैं। दोनों ही को उच्च तापक्रम, काफी नमी और भारी वर्षा की आवश्यकता होती है। मच्छर और चावल का पौधा दोनों ही पानी के नीचे पनपते हैं—एक पानी का जन्तु है और दूसरा पानी की वनस्पति। इसलिये यदि इन प्रदेशों में मच्छरों को नियन्त्रण में लाकर मलेरिया के प्रकोप को कम कर दिया जाय तो देश के भोजन के लिये अधिक चावल उत्पन्न किया जा सकता है। अत: मलेरिया पर नियन्त्रण करके चावल की उपज बढ़ाने के लिये प्रयत्न होने चाहियें।

दक्षिण में पश्चिमी घाट और समुद्र तट के बीच में और उत्तर में गोआ से दक्षिण में कनानोर तक का सारा प्रदेश खाद्यान्नों के उत्पादन के बहुत उपयुक्त है। इस प्रदेश को मालनद के नाम से पुकारते हैं और यहां निम्नलिखित भौगोलिक विशेषतायें पाई जाती हैं—(१) वर्षा प्राय: ६० इंच से अधिक होती है; (२) समस्त प्रदेश में सदाबहार जंगल फैले हुए हैं और (३) जनसंख्या का घनत्व भी २०० से ३०० मनुष्य प्रति वर्गमील से अधिक नहीं है। इस प्रदेश की मुख्य फसलें धान, सुपारी, इलायची, मिर्च और कहवा हैं। यहां पर इतनी भौगोलिक सुविधायें होते हुए भी यह प्रदेश काफी पिछड़ा हुआ है। इस अवनति के कई कारण हैं जिनमें वर्षा की अधिकता, अस्वास्थ्यप्रद जलवायु, मलेरिया का प्रकोप, मजदूरों की कमी और यातायात की असुविधा हैं। यदि इन प्रश्नों को हल कर दिया जाय तो इसी मालनद प्रदेश से और अधिक खाद्यान्न उत्पन्न किये जा सकते हैं। भारी ट्रेक्टर मशीनों की सहायता से विभिन्न प्रदेश के पिछड़े भागों को खेती में लाया जा सकता है।

दक्षिण के पहाड़ी व पठारी भाग में करीब ४६० लाख एकड़ बंजर भूमि पड़ी हुई है। उत्तरी मैदानी भाग में भी १८० लाख एकड़ भूमि खेती के अयोग्य है।

भारत सरकार ने कुछ नयी योजनाओं पर काम शुरू कर दिया है और उनके फल-

स्वरूप गेहूं के उपयुक्त ६२ लाख एकड़ भूमि पर खेती हो सकेगी।

राज्य	लाख एकड़	राज्य	लाख एकड़
मध्य भारत	१४	पूर्वी पंजाब	५
उत्तर प्रदेश	१०	भोपाल	५
मध्य प्रदेश	९	विंध्य प्रदेश	५
बम्बई	५	पूर्वी पंजाब रियासतें	४
उड़ीसा	५		
		कुल योग	६२ लाख

नई भूमि पर खेती कार्य के अतिरिक्त भारत की खाद्य समस्या के हल के लिये हमें अपनी भोजन संबंधी आदतों में भी कुछ अदल-बदल करना होगा और सहायक भोज्य पदार्थों—जैसे शकरकन्द, टैपिओका, और केलों—को अपने रोज के खाने में शामिल करना होगा। इसी ध्येय से भारत सरकार ने एक 'सहायक भोजन उत्पादन समिति' स्थापित कर दी है। इस समिति ने बहुत खोज के बाद यह सिफारिश की है कि शकरकन्द, टैपिओका और मूंगफली का उत्पादन बढ़ाया जाय। भारत में ३५ लाख टन मूंगफली उत्पन्न होती है। इससे करीब २० लाख टन बढ़िया भोजन प्राप्त हो सकता है और इस भोजन में वही तासीर होगी, वे ही शरीर-वर्धक गुण होंगे जो २४००० लाख गैलन दूध में पाये जाते हैं। टैपिओका को प्रोटीन की कमी के कारण अपने नित्य प्रति के भोजन का अंग नहीं वनाया जाता है। इस समय भारत के कुछ भागों में चावल के स्थान पर टैपिओका का प्रयोग बढ़ रहा है परन्तु यह बहुत हानिकारक है और स्वास्थ्य का नाश करने वाला है।

'डाक्टरी खोज की भारतीय समिति' ने भारतीय भोजन में टैपिओका के लाभ व हानि की विवेचना की है। विश्लेषण से पता चलता है कि प्रोटीन की मात्रा विभिन्न भोजनों में सबसे कम है। यही बात कारबोहाइड्रेट और चर्बी के अंश के बारे में भी सत्य है।

तुलनात्मक मात्रायें (प्रति शतांश)

वस्तु	कारबोहाइड्रेट	चर्बी	प्रोटीन
टैपिओका	३८.७	०.२	.०७
चावल	७९.१	०.४	६.४
आटा	७२.२	१.७	१२.१
बाजरा	६७.१	५.०	११.६
जौ	६९.३	१.३	११.५

अतः खोज के इन आंकड़ों से यह सिद्ध है कि टैपिओका को भोजन का एक अंग बनाना बहुत हानिकारक है। इस समय ६३४,००० एकड़ भूमि पर टैपिओका की खेती होती है। इसमें से ५८२,००० एकड़ भूमि केवल ट्रावनकोर-कोचीन में है और बाकी मद्रास में।

टैपिओका की प्रति एकड़ उपज ५ टन से १५ टन तक होती है और शायद इसी कारण से इसकी लोकप्रियता बढ़ रही है। दूसरे यह पौधा शुष्क मौसम में भी उग सकता है। हाल में बिहार में भी इस पौधे का उगाना शुरू किया है।

सन् १९४९-५० के बाद से पहली बार सन् १९५२-५३ में भारत में खेतिहर उत्पादन उच्च कोटि का हुआ है। पिछला साल खेती के लिए बड़ा समृद्ध रहा और आशा है कि १९५३-५४ में भी खेती की वैसी ही समृद्ध दशा रहेगी। खाद्यान्नों पर से नियन्त्रण हटा लेने के कारण ७० लाख एकड़ अतिरिक्त भूमि पर खाद्यान्न उगाये जाने लगे हैं। यह अतिरिक्त भूमि दो प्रकार से प्राप्त हुई है—

(१) ऊसर व खाली पड़ी हुई भूमि को काम में लाया गया है और (२) पटसन, गन्ना और कपास का मूल्य कम हो जाने से उसमें लगी हुई थोड़ी भूमि पर अब अन्न की फसलें उगाई जाने लगी हैं।

इस प्रकार सन् १९५२-५३ में पिछले सालों की अपेक्षा ५० लाख टन अधिक अनाज पैदा हुआ। सन् १९४९-५० की अपेक्षा बढ़ती केवल १६ लाख टन ही थी। ५० लाख टन की बढ़ोत्तरी का ब्योरा इस प्रकार है:

चावल २७ लाख टन; गेहूं ७ लाख टन; मक्का, जौ ज्वार और बाजरा १६ लाख टन। इस बढ़ोत्तरी का प्रधान कारण यह था कि इस वर्ष २००० लाख एकड़ भूमि पर अनाज की खेती की गई।

सन् १९५३-५४ में और भी अच्छी फसल होने का अनुमान है। युद्ध से पूर्व के सालों के मुकाबले में ज्वार, बाजरा और मक्का की खेती सबसे अधिक भूमि पर की जा रही है। जौ और मक्का का २६ लाख टन उत्पादन सन् १९४४-४५ के बाद सबसे अधिक हुआ है। सन् १९५३-५४ में ज्वार की फसल का क्षेत्रफल पहले के सालों की अपेक्षा ६ प्रतिशत अधिक है और इसी प्रकार मक्का के क्षेत्रफल में ९ प्र० श० की वृद्धि हुई है। जापानी रीति से चावल की फसल को उगाने का काम ३४ लाख एकड़ भूमि पर हो रहा है और इससे भी उत्पादन में वृद्धि होने की आशा है। खाद्यान्नों के उत्पादन और खाद्य समस्या के इस हल में निम्नलिखित साधनों से योग मिला है—

(१) मौसम की दशाओं की अनुकूलता।

(२) उत्पादन और स्थानान्तरण पर से रोक-टोक का उठा लेना।

(३) खाद का अधिकाधिक प्रयोग व काफी मात्रा में उपलब्धता।

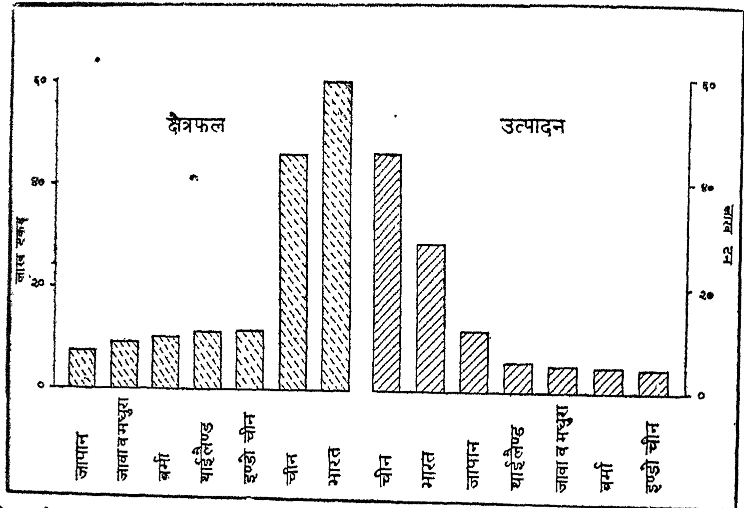
(४) ग्राम विकास योजनाओं द्वारा सहकारी तौर पर अच्छे बीजों का वितरण और सिंचाई की सुविधा।

बहुत से मानों में चालू वर्ष यानी १९५३-५४ भारतीय कृषि के लिए बहुत महत्व का है। इसी वर्ष से खाद का विस्तृत उपयोग तथा बुआई के अच्छे तरीकों का इस्तेमाल

किया जाना शुरू हुआ है। तीसरा परिवर्त्तन यह हुआ है कि दामों में कमी हो जाने के कारण व्यवसायिक फसलों का क्षेत्रफल पहले से कम हो गया है।

चावल

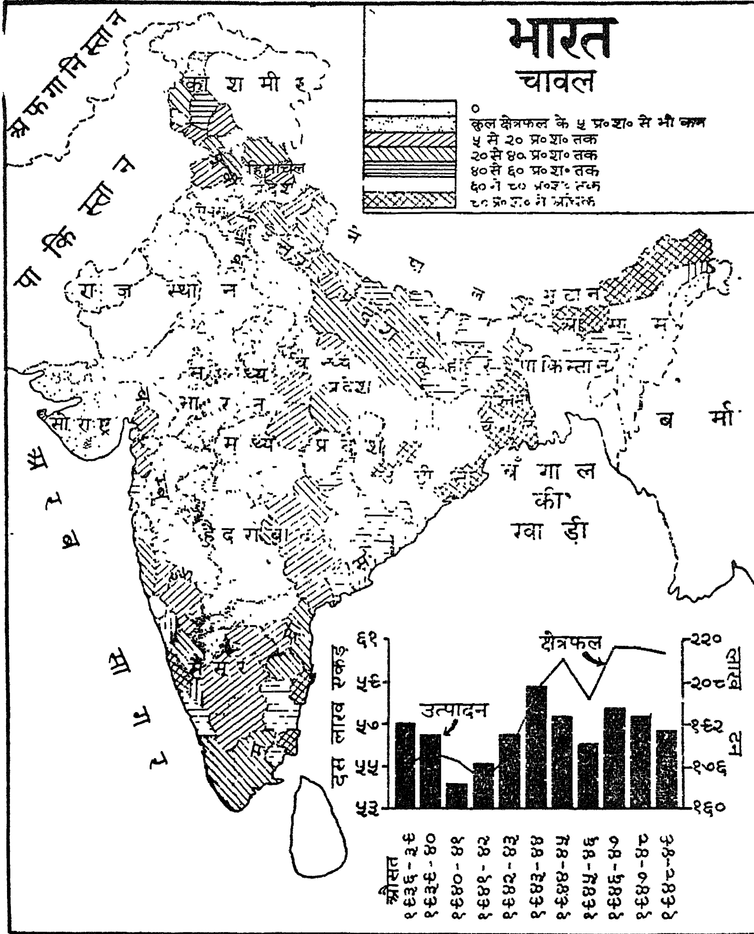
ईसा मसीह मे १००० वर्ष पूर्व ईसवी में अथर्व वेद में चावल का जिक्र आता है। इस से इसकी प्राचीनता स्पष्ट है। आजकल यह भारत की सबसे बड़ी महत्वपूर्ण फसल है और कुल खेतिहर भूमि के ३० प्रतिशत भाग में चावल उगाया जाता है। संसार के चावल-उत्पादक देशों में भारत का दूसरा स्थान है।



चित्र नं० १९ चावल का उत्पादन व क्षेत्रफल—यद्यपि भारत में चावल की कृषि अधिक एकड़ भूमि पर होती है पर उसका उत्पादन चीन की अपेक्षा बहुत कम है।

उपज की दशाएं—इसको उच्च तापक्रम और भारी वर्षा की आवश्यकता होती है। यदि इसके खेतों में उपजकाल में पानी भरा रहे तो और भी अच्छा है। इसलिए चावल का सबसे अधिक उत्पादन नदियों के डेल्टों में, निम्न-तटीय प्रदेशों में या उन भूमियों में होता है जो वर्षा के काल में बाढ़ के पानी से भर जाती हैं। चावल को पहाड़ी प्रदेशों में भी उगाया जा सकता है पर पानी काफी मिलना चाहिए और गर्मी के मौसम में काफी गर्मी पड़नी चाहिए। चावल की खेती के लिए पहाड़-पहाड़ियों के ढालों को सीढी की तरह काट देते हैं और फिर इनको बराबर करके बांध या मेंढ़ द्वारा बांध देते हैं ताकि उपलब्ध जल बह न जाय बल्कि हमेशा भरा रहे।

उपज के क्षेत्र—भारत में चावल उत्पन्न करने वाले प्रमुख प्रदेश महत्व की दृष्टि से क्रमशः मद्रास, बिहार, पश्चिमी बंगाल, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, उड़ीसा, आसाम और बम्बई हैं।



चित्र नं० २०—अधिकतर चावल उत्पादक क्षेत्र देश के पूर्वी भाग में केन्द्रित है।

चावल का उत्पादन व क्षेत्रफल (१९५०-५१)

प्रदेश	क्षेत्रफल (हजार एकड़)	उपज (हजार टन)
पश्चिमी बंगाल	९,७९६	३,९१०
बिहार	१४,०५५	२,५६२
मद्रास	१०,१२६	४,०३०
मध्य प्रदेश	८,९३३	१,५२६

प्रदेश	क्षेत्रफल (हजार एकड़)	उपज (हजार टन)
उड़ीसा	९,४८९	२,७१८
आसाम	३,७१२	१,२९४
उत्तर प्रदेश	९,३३५	२,०१५
बम्बई	३,०००	१,००४
कुल योग	७५,४४६	२०,०५९

चावल की प्रति एकड़ उपज पर वर्षा, सिंचाई और भूमि के उपजाऊपन का प्रभाव पड़ता है। यह दशायें विभिन्न प्रदेशों में अलग-अलग होती हैं। फलतः प्रति एकड़ उपज विभिन्न स्थानों में भिन्न होती है। भारत में मानसून और वर्षा का चावल की खेती पर बड़ा व्यापक असर पड़ता है। जिस साल वर्षा कम होती है उस साल उत्पादन की मात्रा भी कम हो जाती है। अक्सर मौसम के अनुसार भी उपज विभिन्न होती है। गर्मी की फसल की प्रति एकड़ उपज सब से अधिक होती है और सितम्बर-अक्तूबर के मौसम में चावल की उपज सबसे कम। भारत में चावल की प्रति एकड़ उपज का औसत ८६२ पौंड है और स्याम व इंडोचीन में चावल की औसत उपज से बहुत कुछ मिलता-जुलता है। परन्तु अन्य उन्नत देशों की अपेक्षा यह बहुत कम है जैसा नीचे की तालिका से स्पष्ट हो जायेगा:—

चावल की प्रति एकड़ उपज का औसत (पौंड में)

भारत	८६२
संयुक्त राष्ट्र	१,४८५
जापान	२,४५४
मिस्र	२,०३०
इटली	२,९४०

पश्चिमी बंगाल के प्रत्येक जिले में ६० प्रतिशत से अधिक भूमि भाग में चावल उगाया जाता है और इस प्रकार कुल मिलाकर ९५ लाख एकड़ भूमि पर प्रतिवर्ष चावल की खेती की जाती है और लगभग ३७ लाख टन उपज होती है। उड़ीसा से कटक, पुरी और सम्वलपुर जिलों में, आसाम के कामरूप और गोआलपाड़ा प्रदेशों में तथा मद्रास के पश्चिमी गोदावरी, चिन्गलपट, तन्जोर और कनारा जिलों में ८० प्रतिशत से अधिक भूमि पर चावल की खेती की जाती है।

भारत की कुल चावल उत्पादक भूमियों का ८८ प्रतिशत भाग प्रांतीय राज्यों में स्थित है और केवल १२ प्रतिशत प्रदेश देशी राज्यों में पाये जाते हैं।

चावल की खेती की विशेषताएं—मद्रास में प्रतिवर्ष चावल की तीन फसल उगाई जाती हैं। औस सितम्बर-अक्तूबर के महीनों में अमान—जाड़ों में और बोरो गर्मी में काटी जाती है। जाड़े की फसल या अमान चावल सबसे अधिक महत्वपूर्ण होता है। यह जून से अगस्त तक के महीनों में बोया जाता है और नवम्बर से जनवरी तक के कालांतर

में इसे काट लेते हैं। औस का चावल मार्च से जुलाई तक बो दिया जाता है और सितम्बर-अक्तूबर में काट दिया जाता है। बोरो या गर्मी की फसल को नवम्बर से जनवरी तक बो देते हैं और फिर मार्च-मई के काल में काट लेते हैं। मध्यप्रदेश और मध्य भारत में चावल की एक ही फसल होती है। चावल को मई-जून में बो देते हैं और सितम्बर-नवम्बर के महीनों में काट लेते हैं।

भारत में चावल को तीन प्रकार से बोया जाता है—छितराकर, खोद कर और एक स्थान से दूसरे स्थान में लगा कर। जहां भूमि अनुपजाऊ और मजदूर कम हैं वहां छितरा कर चावल को बोते हैं। खोद कर बोने की रीति अधिकतर दक्षिणी प्रायद्वीप के प्रदेशों में प्रचलित है। तीसरी रीति में, जिसे Transplantation कहते हैं बहुत अधिक मजदूरों की आवश्यकता पड़ती है। छोटे-छोटे बागीचों में खूब खाद देकर क्यारियां बनाई जाती हैं और फिर इन क्यारियों में चावल को बो दिया जाता है। चार-पांच सप्ताह बाद इन छोटे-छोटे पौधों को संभाल कर उखाड़ा जाता है और बड़े-बड़े खेतों में ले जाकर फिर से लगाते हैं। इन अंकुरों को एक स्थान से दूसरे स्थान में ले जाकर लगाने में, हंसियों से चावल काटने और फिर भूसा साफ करने में अधिकतर हाथ से ही काम करना पड़ता है। अतएव सस्ते मजदूरों का उपलब्ध होना बहुत आवश्यक है।

भारत में चावल का कुल उत्पादन १८० लाख टन है परन्तु फिर भी भारत चावल के दृष्टिकोण से आत्मनिर्भर नहीं है। भारत को धान व चावल की काफी आयात करनी पड़ती है। भारत के २००० लाख से अधिक व्यक्ति चावल खाने के आदी हैं और उनकी मांग की पूर्ति के लिये पर्याप्त चावल यहां नहीं उत्पन्न होता। साधारणतया बर्मा से प्रति वर्ष २५ लाख टन चावल मंगवाना पड़ता है। सन् १९५१ में भारत ने ७४८,५०० टन चावल आयात किया। इसमें से विभिन्न देशों का भाग इस प्रकार था :—

बर्मा—३०४,१८६ टन; **स्याम**—२१६,१७२ टन; **मिस्र**—४,६२४ टन; **चीन**—६५,७७९ टन और पाकिस्तान—१५,७७८ टन ।

पश्चिमी बंगाल की जनता प्रधानतः चावल उपभोगी है और इसीलिये प्रतिवर्ष अपने उत्पादन के अलावा उसे ३००,००० टन की कमी रहती है। मद्रास, बिहार, बम्बई और उत्तर प्रदेश में भी चावल की कमी रहती है। पर चूंकि वहां की जनता मुख्यतः गेहूं खाने वाली है, इसलिये यह कमी इतनी प्रकट नहीं मालूम होती है। आसाम, मध्य प्रदेश और उड़ीसा में जरूरत से ज्यादा चावल उत्पन्न होता है।

पश्चिमी बंगाल, आसाम, उड़ीसा तथा बिहार में चावल की खेती बढ़ाने की बहुत संभावनाएं हैं। दामोदर, कोसी और महानदी घाटी योजनाओं के पूरा होने पर लाखों एकड़ भूमि पर खेती हो सकेगी। इसी प्रकार मलेरिया आक्रांत प्रदेशों में मच्छरों को मार कर चावल की खेती को बढ़ाया जा सकता है। गहरी खेती रीति और खादों की सहायता से वर्तमान प्रदेशों में चावल की उपज को डचोढ़ा किया जा सकता है।

भारत के विभिन्न प्रदेशों में चावल काटने व बोने का समय

प्रदेश	जाड़े की फसल		सितम्बर-अक्तूबर की फसल		गर्मी की फसल	
	बोना	काटना	बोना	काटना	बोना	काटना
बंगाल	मई-जुलाई	अक्तूबर-जनवरी	मार्च-जुलाई	जून सितम्बर	अक्तूबर-जनवरी	फरवरी-अप्रैल
बिहार	जून-अगस्त	नवम्बर-दिसम्बर	मई-जुलाई	अगस्त-अक्तूबर	सितम्बर-नवम्बर	फरवरी-मार्च
मद्रास	जून-अक्तूबर	दिसम्बर-मार्च	—	—	दिसम्बर-मार्च	अप्रैल-मई
पंजाब	मार्च-अगस्त	सितम्बर-नवम्बर	—	—	—	—
उत्तर प्रदेश	जून अगस्त	सितम्बर-दिसंबर	—	—	—	—
कुर्ग	जून-जुलाई	दिसम्बर-फरवरी	—	—	—	—
बड़ौदा	मई-अगस्त	दिसम्बर-जनवरी	—	—	—	—
काश्मीर	—	—	अप्रैल-मई	सितम्बर-अक्तूबर	—	—
मैसूर	जून-जुलाई	नवम्बर-दिसम्बर	—	—	फरवरी	अप्रैल-मई
भोपाल	जून-जुलाई	नवम्बर	जून-जुलाई	अक्तूबर	—	—
कोचीन	सितम्बर-अक्तूबर	जनवरी-फरवरी	अप्रैल-मई	सितम्बर-अक्तूबर	जनवरी- फरवरी	अप्रैल-मई
रामपुर	जून-जुलाई	अक्तूबर-नवम्बर	—	—	—	—
हैदराबाद	जून-जुलाई	नवम्बर-दिसम्बर	—	—	नवंबर-जनवरी	अप्रैल-मई

मार्च सन् १९५३ में चावल उपजाने के जापानी तरीके पर काम शुरू किया गया और अब तक २.६० लाख एकड़ भूमि पर इसी रीति से चावल उगाया गया है। इसके अलावा ३० लाख एकड़ भूमि पर इस तरीके को अंशत: अपनाया गया है। इस विशेष रीति के प्रयोग से औसतन प्रति एकड़ से ४० मन अतिरिक्त उपज प्राप्त होने लगी है। विभिन्न राज्यों में इस रीति की सफलता के आंकड़े अलग-अलग रहे हैं—

उत्तर प्रदेश में ३१,००७ एकड़ भूमि पर इस रीति से चावल उगाया गया और प्रति एकड़ उपज ५ मन ३५ सेर से ८० मन हो गई।

पश्चिमी बंगाल में ६१,८३९ एकड़ भूमि पर इस रीति से चावल की खेती की जा रही है और अब प्रति एकड़ उपज ११ मन से बढ़ कर ९५ मन हो गई है।

मध्य प्रदेश में केवल १००० एकड़ भूमि पर इस रीति को अपनाया गया और उपज ८ मन ६ सेर प्रति एकड़ से बढ़ कर ११७ मन तक हो गई।

बम्बई राज्य में ५४०० एकड़ भूमि पर इस खेती को किया गया और प्रति एकड़ उपज १८० मन तक हो गई जबकि पहले यह केवल ८ मन १० सेर थी।

परन्तु मैसूर राज्य की जैसी सफलता कहीं भी नहीं मिली। मैसूर राज्य ने २८,०७० एकड़ भूमि पर इस रीति से चावल की खेती की और कुछ फार्मों की प्रति एकड़ उपज १४४ मन तक हो गई जबकि पहिले केवल ७ मन १५ सेर चावल ही प्रति एकड़ से प्राप्त होता था।

मद्रास राज्य में २०,००० एकड़ भूमि पर इस तरीके को अपनाया गया है परन्तु वहां के उत्पादन के बारे में कुछ भी आंकड़े उपलब्ध नहीं हैं।

इस रीति की एक विशेष सफलता यह भी है कि इसको अपनाने के बाद से करीब १० प्रतिशत बीज की बचत होने लगी है। एक एकड़ में १०-१५ पौंड से लेकर ४०-५० पौंड तक बीज कम खर्च होता है। परन्तु खेद की बात तो यह है कि हमारे देश में केवल २.७० लाख एकड़ भूमि पर ही इस रीति को अपनाया गया है जबकि हमारे देश में चावल की खेती में लगी भूमि ७६० लाख एकड़ और औसत वार्षिक उत्पादन २४० लाख टन है। इसको देखते हुए २.६० लाख एकड़ नगण्य है। परन्तु इस रीति को समझाने व लोकप्रिय बनाने के लिए सरकार नुमाइश आदि का आयोजन कर रही है।

इस समय भारत को ६ लाख टन चावल प्रतिवर्ष आयात करना पड़ता है और इसमें करीब ५० करोड़ रुपये का खर्च पड़ता है। यदि जापानी रीति से चावल उगाने का प्रयोग विस्तार से अपना लिया जाय तो यहां की प्रति एकड़ उपज चौगुनी हो सकती है। ऐसा अनुमान है कि जापानी रीति के द्वारा भारत की वर्तमान सीमित चावल कृषि-भूमि के २.५ या ३ प्रतिशत भाग से ही इतनी फसल हो सकती है कि भारत को विदेश से चावल मंगाने की आवश्यकता ही न होगी।

यह रीति बड़ी सरल है। इसमें न तो कोई जटिल तरीके लगाने पड़ते हैं और न बहुमूल्य औजारों का ही प्रयोग करना पड़ता है। विदेशी खाद भी नहीं देनी पड़ती। इसके चार मुख्य स्तम्भ निम्नलिखित हैं:—(१) मात्रा में कम पर उत्तम कोटि के बीजों का प्रयोग। (२) उच्च भूमि पर स्थित खास क्यारी में बोने की क्रिया (३) जब अंकुर निकल आवें तो उन्हें उखाड़ कर १०-१० इंच की दूरी पर क्यारी में लगाना ताकि खाद देने व जंगली घास निकाल फेंकने में आसानी हो (४) प्राकृतिक व रासायनिक खाद का अधिकाधिक प्रयोग जैसे कम्पोस्ट, हरी खाद व अमोनियम सल्फेट।

इस रीति में खाद का महत्व सबसे अधिक है। अनुमान है कि केवल अमोनियम सल्फेट के प्रयोग से ही बहुत कुछ किया जा सकता है। प्रति एक मन अमोनियम सल्फेट से २ मन अधिक धान उत्पन्न किया जा सकता है। बुवाई के पहले और अंकुर निकलने के समय उचित खाद देना जरूरी है। उखाड़ कर फिर बोने के समय और बाद में हर १५ दिन के बाद भूमि में खाद पहुंचाना अति आवश्यक है।

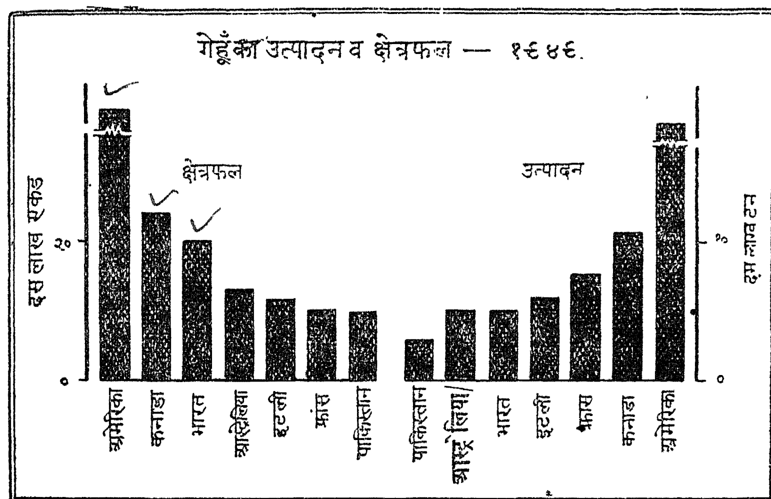
गेहूँ

भारत में बहुत प्राचीन काल से गेहूं की खेती होती आ रही है। सिन्धु की घाटी में मोहनजोदड़ो सभ्यता के खंडहर में ३००० वर्ष पूर्व का गेहूं मिला है। गेहूं के ये दाने उसी जाति के हैं जो आजकल दक्षिणी-पश्चिमी पंजाब में उगाया जाता है। गेहूं पूर्वी पंजाब और उत्तर प्रदेश के निवासियों का मुख्य भोजन है और संसार के गेहूं उत्पादक देशों में भारत का तीसरा स्थान है। यहां संसार की कुल उपज का $\frac{1}{10}$वां हिस्सा गेहूं उत्पन्न होता है। (चित्र अगले पृष्ठ पर देखें।)

उपज की दशायें—गेहूं को पकने के लिये काफी गर्मी की आवश्यकता होती है परन्तु यह गर्मी अधिक काल तक नहीं रहनी चाहिये क्योंकि गेहूं के दाने शीघ्र ही पक जाते हैं। बुवाई के समय गेहूं को पानी की आवश्यकता होती है परन्तु बहुत अधिक वर्षा इस के लिये हानिकर होती है। पश्चिमी बंगाल, आसाम और पूर्वी मद्रास की वर्षा गेहूं के लिये सर्वथा हानिकर है। यदि वर्षा या सिंचाई द्वारा उचित जल का प्रबंध हो जाये तो गेहूं का पौधा अधिक शुष्कता तक सह सकता है। पूर्वी पंजाब और उत्तर प्रदेश में वार्षिक वर्षा का औसत ३० इंच से अधिक नहीं है परन्तु सिंचाई की सहायता से गेहूं की खेती बड़ी सफल हुई है।

गेहूं के प्रकार और उपज की विशेषतायें—भारत में होने वाला गेहूं दो प्रकार का होता है। एक तो साधारण रोटी वाला गेहूं जो सफेद रंग का होता है और सिंचाई की सहायता से पूर्वी पंजाब और उत्तर प्रदेश में उगाया जाता है। दूसरे प्रकार का गेहूं छोटा व लाल रंग का होता है और उसे मेकरानी गेहूं के नाम से पुकारते हैं। यह वर्षा पर निर्भर

रहता है और बंबई, मध्य प्रदेश और हैदराबाद की चिकनी काली मिट्टी के प्रदेश में उगाया जाता है।



चित्र नं० २१—क्षेत्रफल के अनुसार भारत का स्थान संसार में तीसरा है, परन्तु उपज के दृष्टिकोण से पाँचवाँ।

पूर्वी पंजाब और पश्चिमी उत्तर प्रदेश में अधिकतर फसल नवम्बर के अन्त में बोई जाती है। उत्तर प्रदेश के पूर्वी भाग और बिहार में अक्तूबर के अन्त या नवम्बर के प्रारम्भ में गेहूं की फसल बोई जाती है। दक्षिणी प्रायद्वीप और बंबई में गेहूं सितम्बर या अक्तूबर के मध्य में बोया जाता है। साधारणतया गेहूं के पौधे को बढ़ने और पकने में ३ से ६ महीने तक लगते हैं। दक्षिण में उत्तर की अपेक्षा गेहूं की फसल जल्दी तैयार होती है। अतः दक्षिण में दिसम्बर के अन्त तक फसल कटनी शुरू हो जाती है। मध्य प्रदेश, मध्य भारत और विंध्य प्रदेश में कटाई मार्च तक शुरू होती है। पश्चिमी उत्तर प्रदेश, दिल्ली और पूर्वी पंजाब में अप्रैल के अन्त तक कटाई पूर्ण रूप से शुरू हो जाती है। बोआई व कटाई का समय नीचे की तालिका से और भी स्पष्ट हो जायेगा :—

भारत के विभिन्न प्रदेशों में गेहूँ के बोआई व कटाई का समय

राज्य	बोआई का समय	कटाई का समय
अजमेर	नवम्बर-दिसम्बर	मार्च-अप्रैल
बिहार	अक्तूबर-नवम्बर	मार्च-अप्रैल
बंबई	अक्तूबर-नवम्बर	मार्च
मध्य प्रदेश	अक्तूबर-नवम्बर	फरवरी-मार्च
पूर्वी पंजाब	अक्तूबर-दिसम्बर	मार्च-मई

राज्य	बोआई का समय	कटाई का समय
उत्तर प्रदेश	अक्तूबर	मार्च-अप्रैल
पश्चिमी बंगाल	नवम्बर-दिसम्बर	फरवरी-अप्रैल
बड़ौदा	अक्तूबर-दिसम्बर	मार्च-मई
भोपाल	अक्तूबर-नवम्बर	मार्च
हैदराबाद	सितम्बर-अक्तूबर	फरवरी-मार्च
काश्मीर	अक्तूबर-नवम्बर	अप्रैल-मई
मैसूर	अक्तूबर	फरवरी
रामपुर	अक्तूबर-नवम्बर	मार्च-अप्रैल

गेहूं के लिये खेत जोतने, बीज बोने काटने तथा कूट कर भूसा अलग करने में हाथ से ही अधिक परिश्रम करना पड़ता है। इसलिये गेहूं को उन्हीं क्षेत्रों में अधिकतर उगाते हैं जहां मजदूर सस्ते दामों पर अधिक संख्या में उपलब्ध होते हैं।

उत्तर प्रदेश में कीचा स्थान पर १६००० एकड़ के फार्म पर प्रयोग द्वारा ऐसा गेहूं निकाला गया है जो बजाय ६ महीने के ३ ही महीने में तैयार हो जाता है। बीजों को गर्मी देकर तथा तापक्रम में परिवर्तन करके ऐसी दशा उत्पन्न कर दी जाती है कि अक्तूबर के महीने का बोया हुआ गेहूं दिसम्बर या जनवरी तक काटा जा सकता है। इस प्रकार जल्दी तैयार हो जाने से गेहूं को कीड़ों तथा बीमारी से होने वाली हानि से बचाया जा सकेगा।

उपज व उपज के क्षेत्र—सन् १९५०-५१ में भारत की २३९ लाख एकड़ भूमि पर गेहूं की खेती होती थी। इस भूमि से कुछ मिलाकर ६६ लाख टन गेहूं उत्पन्न हुआ। सन् १९५२-५३ में गेहूं का उत्पादन पिछले साल की अपेक्षा ७ लाख टन अधिक हुआ। परन्तु फिर भी उपज की कुल मात्रा १९४४-४५ के ७१ लाख टन से थोड़ा कम ही रह गई। गेहूं के उत्पादन व उपज क्षेत्र में वृद्धि उत्तर प्रदेश, मध्य भारत और राजस्थान में विशेष रूप से हुई है। भारत में गेहूं का क्षेत्रफल व उत्पादन निम्नलिखित तालिका से स्पष्ट हो जायेगा :—

भारत में गेहूँ का उत्पादन क्षेत्र (१९४९-५०)

प्रदेश	क्षेत्रफल (एकड़)	उत्पादन (हजार टनों में)
आसाम	३	१
बिहार	१,१३३	१६१
बंबई	१,९९०	३३१
मध्य प्रदेश	२,५०३	६१०
मद्रास	१८	२
उड़ीसा	१३	१३
पंजाब	३,०८९	१,१२४
उत्तर प्रदेश	८,२२१	२,९१५

प्रदेश	क्षेत्रफल	उत्पादन (हजार टनों में)
पश्चिमी बंगाल	१२५	४१
हैदराबाद	४५४	४५
जम्मू व काश्मीर	१५८	५८
मध्य भारत	१,९७५	३१८
पेप्सू	८२४	२९२
राजस्थान	१,२२५	२४१
सौराष्ट्र	२०९	६४
अजमेर	३९	८
भोपाल	५२३	१०८
बिलासपुर	३९	३
कुर्ग	—	—
दिल्ली	५६	१४
हिमाचल प्रदेश	२५८	५३
कच्छ	१८	३
विंध्य प्रदेश	६१४	१०१
कुल योग	२३, ४८७	६,४९६

वास्तव में भारत की जनसंख्या इतनी अधिक है कि प्रति दस मनुष्य पर एक एकड़ का औसत पड़ता है। कनाडा और आस्ट्रेलिया में इसके विपरीत प्रति मनुष्य पर २½ एकड़ गेहूं के खेत का औसत पड़ता है। यूरोपीय देशों—फ्रांस और इटली—में हर तीन आदमियों पर एक एकड़ गेहूं के खेत का औसत है जबकि संयुक्त राज्य (ग्रेट ब्रिटेन) में एक एकड़ और चार मनुष्यों का अनुपात है। इस प्रकार अन्य देशों की अपेक्षा भारत की स्थिति असंतोषजनक है। भारत का प्रति एकड़ उत्पादन भी बहुत कम है—केवल ६३६ पौंड। भारत की अन्तर्राष्ट्रीय जगत में उपज के दृष्टिकोण से कितनी असंतोषजनक स्थिति है यह निम्नलिखित तालिका से स्पष्ट हो जायेगा।

प्रमुख देशों में गेहूँ की प्रति एकड़ उपज

(बुशल में)

देश	१९३५-३९	१९४७
अर्जेंटाइना	१४	१४
आस्ट्रेलिया	१३	१७
कनाडा	१२	१४
चीन	१५	१६
फ्रांस	२३	१६
हंगरी	२२	१३
भारत	११	९
इटली	२२	१७
संयुक्तराष्ट्र	१३	१९

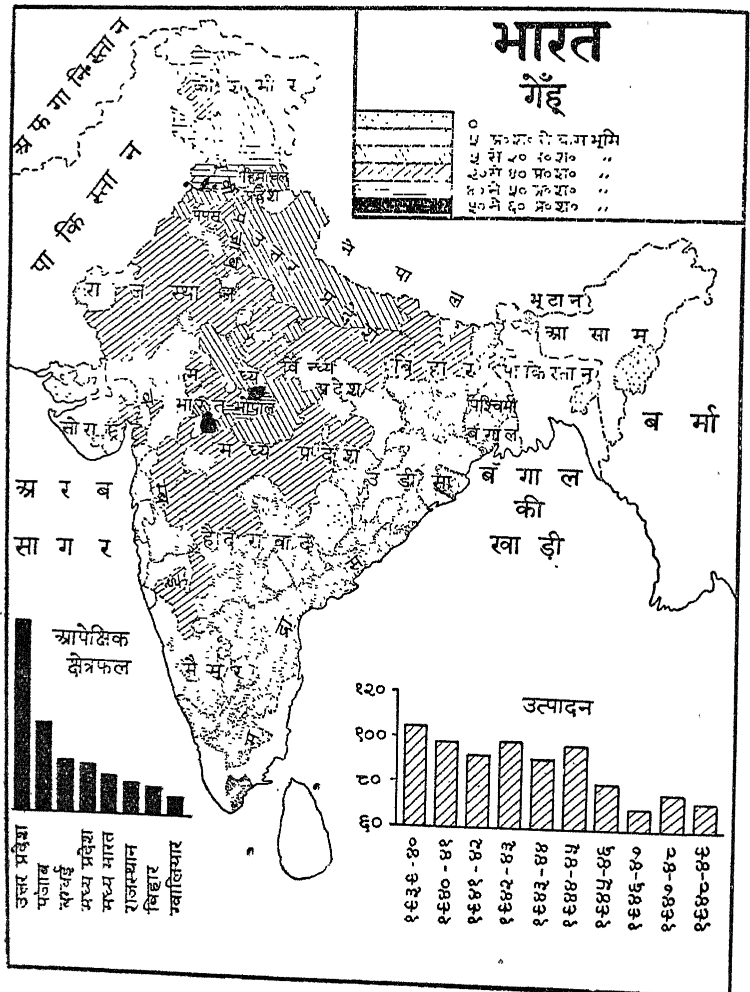
भारत में गेहूं उत्पादन के आंकड़े इस प्रकार हैं :—

गेहूँ की प्रति एकड़ उपज का औसत

(पौंडों में)

उत्तरप्रदेश	७८६	हैदराबाद	२३१
मध्य प्रदेश	४४४	ग्वालियर	४५८
बिहार	८८२	मध्य भारत	३८२
बंबई	४४७		

प्रति एकड़ उपज की यह विभिन्नता जल की दशा पर निर्भर रहती है और पानी



चित्र नं. २२

के पर्याप्त होने के अनुसार ही बढ़-घट जाती है। जिन प्रदेशों में सिंचाई की सुविधा है वहां वर्षा पर आश्रित प्रदेशों की अपेक्षा उपज अधिक होती है।

उत्तर प्रदेश में थोड़ा बहुत गेहूं प्रायः हर जिले में ही उगाया जाता है। परन्तु देहरादून, सहारनपुर, मुजफ्फरनगर, मेरठ, मुरादाबाद, इटावा, शाहजहांपुर, बदायूं और नैनीताल के जिलों में गेहूं की खेती विशेष होती है। इन जिलों में ३० प्रतिशत से अधिक भूमि पर गेहूं उगाया जाता है। मध्य प्रदेश में नर्मदा की घाटी गेहूं के उत्पादन का प्रमुख क्षेत्र है। यद्यपि अधिक वर्षा के कारण पश्चिमी बंगाल में गेहूं की खेती विस्तृत रूप से नहीं होती फिर भी मुर्शिदाबाद और नादिया जिलों में ९८,००० एकड़ भूमि पर गेहूं उगाया जाता है।

गेहूं का व्यापार—भारत की कुल उपज का ४५ प्रतिशत भाग तो उन किसानों के उपभोग में आ जाता है जो इसकी खेती करते हैं। अतएव केवल ५५ प्रतिशत भाग ही मंडियों में आ पाता है। दूसरे भारत में अन्य देशों की अपेक्षा गेहूं की उपज बहुत कम है। अन्य देशों में अच्छे बीजों, मशीनों तथा अच्छी भंडार रीति की सहायता से गेहूं की प्रति एकड़ उपज बहुत अधिक होती है। परन्तु भारतीय किसान गरीब, बेपढ़े लिखे और पुराने विचारों के हैं। इसलिए वे इन नयी विधियों तथा वैज्ञानिक खोजों से पूरा लाभ नहीं उठा सकते।

इन्हीं सब कारणों से भारत को गेहूं का आयात करना पड़ता है। सन् १९५१-५२ में भारत ने १५४ करोड़ रुपये से अधिक मूल्य का गेहूं व आटा बाहर से मंगवाया। अन्तर्राष्ट्रीय गेहूं समझौते के अनुसार भारत चार साल तक बराबर १० लाख टन प्रति वर्ष के हिसाब से गेहूं आयात करेगा।

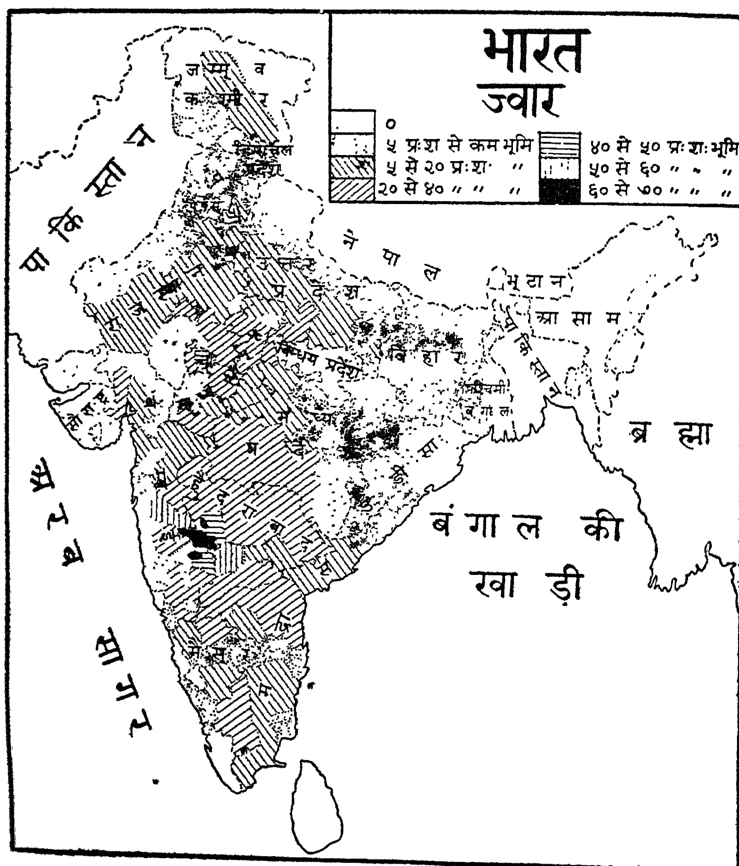
सन् १९२० तक भारत काफी मात्रा में गेहूं निर्यात करता था। परन्तु सन् १९२० से कैनेडा और आस्ट्रेलिया तथा अर्जेनटाइना में गेहूं का उत्पादन इतना अधिक बढ़ गया है कि दुनिया की सभी मंडियों में वहां से गेहूं आने लगा। दूसरे यूरोपीय देश प्रतिबंध लगाकर व अपने यहां आयात सीमित करके गेहूं का घरेलू उत्पादन बढ़ाने में संलग्न हो गये। फलतः भारतीय गेहूं की मांग बिल्कुल ही कम हो गयी। सन् १९१४ तक भारत से कुल उत्पादन का १४ प्रतिशत गेहूं बाहर भेजा जाता था। सन् १९३८-३९ में निर्यात की मात्रा केवल २.८ प्रतिशत थी और फिर सन् १९४२ से निर्यात बिल्कुल ही बन्द हो गया है। इसका पहला कारण तो यह है कि सन् १९४५ तक दूसरे महायुद्ध के कारण मांग बढ़ गयी और दूसरे सन् १९४७ में देश के विभाजन से पश्चिमी पंजाब का गेहूं उत्पादक क्षेत्र भारत के हाथ से निकल गया।

इस समय पूर्वी पंजाब और उत्तर प्रदेश में गेहूं के उत्पादन बढ़ाने की पूरी संभावनाएं हैं। परन्तु गेहूं की खेती में विस्तार हो जाने पर भी भविष्य में भारत से गेहूं निर्यात नहीं किया जा सकेगा क्योंकि आबादी बढ़ जाने से घरेलू मांग बहुत बढ़ गयी है।

ज्वार-बाजरा

ज्वार बाजरा जल्दी तैयार होने वाली फसल है और मद्रास, बंबई तथा हैदराबाद में उगाया जाता है। यह गर्म व शुष्क स्थानों में खूब उगता है। जहां वर्षा बिल्कुल कम होती है, वहां भी बिना सिंचाई की सहायता से इसकी खेती हो सकती है।

ज्वार—दक्षिणी प्रायद्वीप में और अन्य शुष्क भागों में ज्वार की विस्तृत खेती होती है। सन् १९५० में ३६० लाख एकड़ भूमि पर ज्वार की खेती होती थी और इसकी कुल उपज ५० लाख टन थी; बंबई, मद्रास, मध्य प्रदेश और हैदराबाद में कुल का आधा ज्वार उत्पन्न किया जाता है। पूर्वी पंजाब, ग्वालियर, मध्य राजस्थान और मध्य भारत में भी ज्वार की खेती होती है। बंबई के शोलापुर जिले में ६० प्रतिशत से अधिक भूमि पर



चित्र नं. २३

ज्वार की खेती होती है। पूना और बेलगांव प्रदेशों में ६० प्रतिशत से अधिक भूमि पर ज्वार की खेती होती है। यूरोप और अमरीका में इसे सोरघम (Sorghum) के नाम से पुकारते हैं। भारत में ज्वार का उपभोग भोजन और पशु चारे दोनों ही के लिये होता है।

बाजरा—भी जल्दी तैयार होने वाली फसल है और अधिकतर कम उपजाऊ भूमि पर भी खूब पनपता है। इसकी खेती कम विस्तृत है और प्रधानतः यह गांव वालों भोजन है। बंबई, मद्रास, पूर्वी पंजाब और राजस्थान में इसकी खेती होती है सन् १९५० ५१ में २२० एकड़ क्षेत्रफल पर बाजरा उगाया गया और उसी साल २५ लाख टन उपज हुई। बाजरे की कुल फसल का दो-तिहाई भाग बंबई, मद्रास, उत्तर प्रदेश और पूर्वी पंजाब में होता है। काठियावाड़ में भावनगर प्रदेश की ६० प्रतिशत भूमि बाजरे की खेती में लगी हुई है।

ज्वार-बाजरे की उपज का चतुर्थांश निर्यात कर दिया जाता है और भारत से ज्वार-बाजरा मंगवाने वाले देश सूडान, अरब, हालैंड, जर्मनी, इटालियन पूर्वी अफ्रीका और अदन हैं। इसका ९० प्रतिशत भाग केवल बंबई बन्दरगाह से बाहर भेजा जाता है।

जौ

जौ का रूप रंग व उपज की दशायें बहुत कुछ गेहूं से मिलती जुलती हैं। यह पौधा कम वर्षा वाले भागों में भी उग सकता है। किसी साल यदि गेहूं के लायक वर्षा नहीं होती तो उस साल गेहूं के स्थान पर जौ बोते हैं। इसके लिये हल्की बलुही मिट्टी बड़ी अच्छी रहती है और रेह मिट्टी पर भी यह उग सकता है। भारत में जौ जाड़े की फसल है और अक्तूबर-नवम्बर में बोई जाती है। इसकी कटाई मार्च के तीसरे सप्ताह में शुरू होती हैं और अप्रैल के मध्य तक काट ली जाती है। गेहूं या अन्य अनाज की अपेक्षा जौ की फसल बहुत जल्दी तैयार हो जाती है। जब कभी किसी असुविधा के कारण गेहूं या चना नहीं बोया जा सकता या देर में बोया जाता है उस साल बीच के समय में जौ की फसल बो देते हैं।

भारत में संसार की कुल उपज का केवल ५ प्रतिशत भाग उत्पन्न किया जाता है। यह अधिकतर उत्तर भारत में होता है और उत्तर प्रदेश में इसकी खेती सबसे अधिक विस्तृत है। भारत की ८० लाख एकड़ भूमि पर जौ की खेती होती है और इसका औसत वार्षिक उत्पादन २० लाख टन है। उत्तर प्रदेश की ९ प्रतिशत खेतिहर भूमि पर जौ उगाया जाता है। उत्तर प्रदेश में गंगा की तलहटी में बनारस, जौनपुर, गाजीपुर, गोरखपुर, इलाहाबाद, बलिया, प्रतापगढ़, आजमगढ़ और गढ़वाल में जौ खूब उगाया जाता है। बिहार के सारन, मुजफ्फरपुर और चंपारन जिलों में भी जौ की खेती खूब होती है। बिहार की कुल खेतिहर भूमि के ५ प्रतिशत भाग पर जौ की खेती होती है।

सन् १९५०-५१ में भारत की ७७ लाख एकड़ भूमि पर जौ बोया गया और १७ लाख टन उपज हुई।

इस प्रकार जौ उत्पादन के दो मुख्य क्षेत्र हैं : (अ) बिहार के उत्तरी-पश्चिमी प्रदेश और उत्तर प्रदेश के उत्तरी पूर्वी भाग और (ब) पूर्वी पंजाब के दक्षिणी-पूर्वी जिले तथा उत्तर प्रदेश के मिले हुए भाग। जौ की घरेलू मांग इतनी अधिक है कि इसकी निर्यात मात्रा अधिक नहीं है। अतएव भारत का जौ निर्यातक देशों में कोई विशेष स्थान नहीं है। भारत से केवल ५ प्रतिशत जौ निर्यात होता है।

मक्का

भारत के प्राय: सभी भागों में मक्का उत्पन्न होता है परन्तु अन्य प्रदेशों की अपेक्षा उत्तरी भारत में अधिक मक्का उत्पन्न होता है। मक्का को उच्च तापक्रम और अधिक वर्षा की आवश्यकता होती है। यह वर्षा अधिकतर गर्मी की ऋतु में होनी चाहिए। इसके लिए मिट्टी उपजाऊ होनी चाहिए और मिट्टी पर पानी नहीं रुकना चाहिए। अधिकतर मक्का उन प्रदेशों में उगाया जाता है जहां वार्षिक वर्षा का औसत लगभग २० इंच तक होता है। भारत की ६५ लाख एकड़ भूमि पर मक्का की खेती होती है और इसका वार्षिक उत्पादन २० लाख टन होता है। सन् १९४९-५० में ७८ लाख एकड़ भूमि पर मक्का उगाया गया और करीब १९ लाख टन उपज हुई। सन् १९५२-५३ में मक्के की कुल उपज २६ लाख टन थी।

उत्तर प्रदेश, बिहार और पूर्वी पंजाब मक्का के प्रमुख उत्पादक देश हैं। यद्यपि गंगा की ऊपरी तलहटी में मक्का सबसे अधिक उगाया जाता है परन्तु वैसे पूरे उत्तर प्रदेश व बिहार में इसकी खेती होती है। उत्तरी-पूर्वी पंजाब और दक्षिणी-पश्चिमी काश्मीर भी मक्का के प्रमुख उत्पादक प्रदेश हैं।

राज्य	क्षेत्रफल (हजार एकड़)	उत्पादन (हजार टन)
	१९५०-५१	१९५०-५१
आसाम	४५	१०
बिहार	१,४४०	३१४
बंबई	४३४	५२
मध्य प्रदेश	२८४	५९
मद्रास	४४	१९
उड़ीसा	५९	११
पंजाब	७३८	१६१
उत्तर प्रदेश	१०४७	६४१
पश्चिमी बंगाल	९४	२४
हैदराबाद	३३७	२७
जम्मू और काश्मीर	२६१	१०९
मध्य भारत	५०५	४०

राज्य	क्षेत्रफल (हजार एकड़)	उत्पादन (हजार टन)
	१९५०-५१	१९५०-५१
पेप्सू	१६७	४९
राजस्थान	६३४	७५
सौराष्ट्र	१	—
ट्रावनकोर-कोचीन	१	—
अजमेर	७७	१२
भोपाल	१६	२
बिलासपुर	४५	७
दिल्ली	२	—
हिमाचल प्रदेश	२४०	६०
कच्छ	—	—
विन्ध्य प्रदेश	८२	—
कुल योग	७५६३	१६८२

अधिकतर मक्का उपज क्षेत्रों में ही खप जाती है और इसका निर्यात कभी भी अधिक नहीं हो पाता। भारत से कुल २०० टन मक्का निर्यात किया जाता है, जो नहीं के बराबर है। यह निर्यात अधिकतर बंबई व कलकत्ते से होता है—बंबई से अधिक और उसकी अपेक्षा कलकत्ते से कम। हाल के दिनों में भारत के कुछ कारखानों ने मक्का से माड़ व ग्लूकोज़ बनाने का काम शुरू कर दिया है।

दालें

दालों के अन्तर्गत चना, अरहर, उर्द, मूंग और मसूर जैसे खाद्यान्न आते हैं। इनकी खेती भारत के विभिन्न प्रदेशों में की जाती है और साधारणतया उपज क्षेत्रों में ही इनकी खपत हो जाती है। जानवरों के चारे, मनुष्य के भोजन और स्वास्थ्य-वर्धक गुणों के दृष्टि कोण से इनका बड़ा महत्व है। इनमें प्रोटीन बहुत अधिक रहते हैं और भारत के मनुष्यों पशुओं के भोजन की दालें प्रधान वस्तु है। भारत में ५०० लाख एकड़ से अधिक क्षेत्रफल में दालों की खेती होती है। बहुधा इन दालों को विभिन्न अन्य वस्तुओं की फसलों के साथ हेरफेर करके भी उगाया जाता है ताकि भूमि की उपज-शक्ति में क्षति पूर्त्ति हो जाये। दालों के पौधे में सब से बड़ा गुण यह होता है कि इनके द्वारा भूमि को नाइट्रोजन मिल जाता है। सन् १९५०-५१ में २६४ लाख एकड़ भूमि पर दालें बोयी गईं और ३९ लाख टन की फसल तैयार हुई।

चना—सब से प्रमुख दाल है और उत्तर प्रदेश में इसकी विस्तृत खेती होती है। चने के अन्य उत्पादक प्रदेश बिहार, पूर्वी पंजाब, मध्य प्रदेश, बंबई, हैदराबाद और मैसूर

हैं। इसकी वार्षिक उपज लगभग ३० लाख टन है। सन् १९५०-५१ में १९३ लाख एकड़ भूमि पर इसकी खेती की गई और कुल ३७ लाख टन चना प्राप्त हुआ।

दक्षिणी उत्तर प्रदेश में आगरा और मिरजापुर के बीच के भाग में, उत्तर-पूर्वी पंजाब, मध्य बिहार, दक्षिणी मैसूर और उत्तर-पूर्वी मध्य प्रदेश में चने की खेती का बड़ा महत्व है और खेती के लिये उपयुक्त अधिकतर भूमि पर चना ही बोया जाता है। परन्तु उपज के क्षेत्रों में या अन्य प्रदेशों में घरेलू उपभोग के लिये मांग अधिक होने से निर्यात व्यापार बिल्कुल ही नहीं है।

मसूर, उर्द और **मूंग** का उत्पादन प्रधानतः मध्य प्रदेश, मद्रास और उत्तर प्रदेश में होता है यद्यपि अन्य राज्यों में भी इनको थोड़ी बहुत मात्रा में उगाया जाता है।

अरहर—भारत की ग्रामीण जनता का मुख्य भोजन है और प्रायः अन्य खाद्यान्नों के साथ हेर-फेर से उगाया जाता है। इसका वार्षिक उत्पादन बहुत अधिक है और इसका निर्यात भी होता है। निर्यात करने वाले मुख्य बन्दरगाह कलकत्ता, मद्रास और बम्बई हैं। ग्रेट ब्रिटेन, लंका, मारीशस, बर्मा और फ्रांस में इन दालों की विशेष मांग रहती है और निर्यात की अधिक मात्रा वहीं जाती है।

चाय

भारत संसार में सबसे अधिक चाय उत्पन्न करने वाला देश है। यहां चाय उत्पादक प्रदेश बहुत विस्तृत हैं। पंजाब में हिमालय प्रदेश के बगीचे ३३° उत्तरी अक्षांश में स्थित हैं और दक्षिण में प्रायद्वीप के १०° और १३° उत्तरी अक्षांश में। चाय के बगीचों की विस्तृत पट्टी २३° और ३२° उत्तरी अक्षांश के बीच में स्थित है।

उपज की दशायें—चाय के पौधे को गहरी उपजाऊ मिट्टी की जरूरत होती है। इसकी मिट्टी में पानी नहीं रुकना चाहिए इसलिए यह पहाड़ी ढालों पर उगता है। चाय की सफल खेती के लिए उच्च तापक्रम की आवश्यकता होती है।

उपज के क्षेत्र—आसाम और पश्चिमी बंगाल में भारत के कुल उत्पादन की ७५ प्रतिशत चाय उत्पन्न होती है। पिछले दिनों में दक्षिण भारत में चाय का उत्पादन बहुत बढ़ गया है और इस समय भारत की कुल उपज का २९ प्रतशित भाग इसी प्रदेश से प्राप्त होता है।

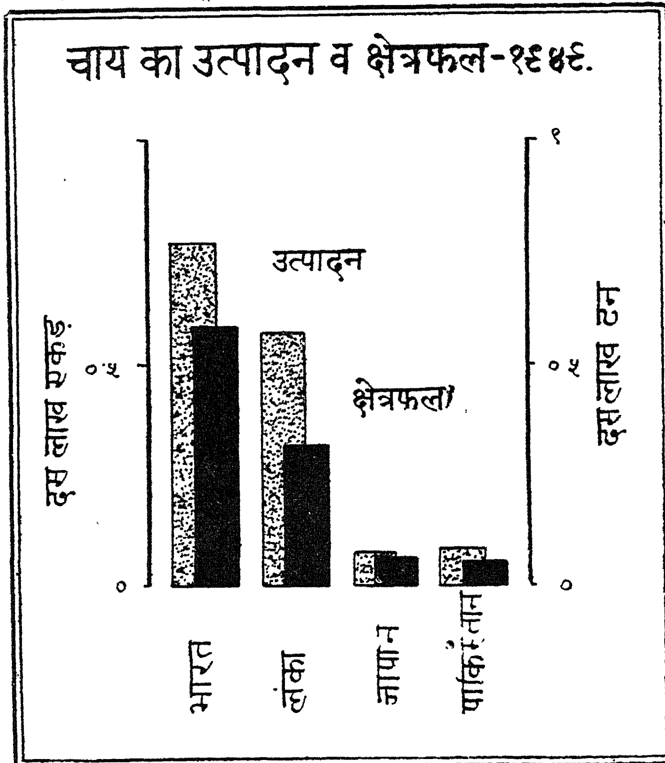
भारत के विभिन्न राज्यों में चाय के बगीचों का क्षेत्रफल (१९४९)

राज्य	क्षेत्रफल (हजार एकड़)	राज्य	क्षेत्रफल (हजार एकड़)
आसाम	३६६	उत्तर प्रदेश	६
पश्चिमी बंगाल	१६९	मैसूर	५
बिहार	४	ट्रावनकोर	७७
मद्रास	७८	त्रिपुरा	११
पूर्वी पंजाब	१०	कोचीन	२
कुल योग			७२५

सन् १९४९ में चाय की कुल उपज ५८६० लाख पौंड थी। सन् १९५०-५१ में चाय की उपज ६००० पौंड थी। सन् १९५२ में भारत ने २८१.६ हजार टन चाय उत्पन्न की थी जो विश्वव्यापी उत्पादन का ४८.७ प्र. श. था।

आसाम सबसे प्रमुख उत्पादक प्रदेश है और कुल चाय की उपज का ५० प्रतिशत भाग यहीं से प्राप्त होता है। ब्रह्मपुत्र की ऊपरी घाटी में दरांग, सिब सागर व लखीमपुर जिलों में और कछार प्रदेश में ३० प्रतिशत से अधिक भूमि पर चाय की खेती होती है। सदिया सीमान्त प्रदेश में भी चाय की खेती इतनी ही प्रमुख है। इन प्रदेशों में रेलों व नाव्य नदियों के कारण यातायात की पर्याप्त सुविधाएं उपस्थित हैं।

चाय के उत्पादन में आसाम के बाद पश्चिमी बंगाल का स्थान आता है परन्तु वहां चाय की खेती इतनी व्यापक व विस्तृत नहीं है। दार्जलिंग और जलपाईगुरी जिलों में पश्चिमी बंगाल की कुल चाय के बगीचे सीमित हैं। पश्चिमी बंगाल में भारत के कुल उत्पादन की २०-२५ प्रतिशत चाय उत्पन्न होती है। त्रिपुरा राज्य में चाय का उत्पादन बहुत थोड़ा है। बिहार के पूर्निया, रांची और हजारी बाग जिलों में उत्तर प्रदेश के



चित्र नं० २४

गढ़वाल व अल्मोड़ा जिलों में और पूर्वी पंजाब के कांगड़ा प्रदेश में भी चाय का उत्पादन होता है। परन्तु इन तीनों प्रदेशों में कुल भूमि के ५ प्रतिशत भाग में चाय की खेती होती है। दक्षिणी भारत में चाय की सब से अधिक उपज ट्रावनकोर व मद्रास में होती है। वैसे कुर्ग, मैसूर और बम्बई के सतारा प्रदेश में भी चाय की थोड़ी बहुत खेती की जाती है।

चाय का व्यापार—भारत चाय का सबसे बड़ा निर्यातक देश है और संसार के व्यापार की ५० प्रतिशत चाय भारत से ही प्राप्त होती है।

भारत का चाय के अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में स्थान

(हजार टन)

	१९३७	१९४९
भारत	१५१.४	१५१.९
लंका	९७.६	१३६.२
इन्डोनेशिया	६६.७	९.३
चीन	५१.१	१७.५
जापान और फारमोसा	२४.५	४.०
इन्डोचीन	२.०	१.४
कुल योग	३९५.३	३३०.६

प्रतिवर्ष अपनी उपज का ७६ प्रतिशत भाग भारत बाहर निर्यात कर देता है और यहां की चाय ग्रेट ब्रिटेन, फ्रांस, कनाडा, संयुक्त राष्ट्र, अमरीका, आस्ट्रेलिया और न्यूजीलैंड को जाती है।

चाय का निर्यात

(हजार पौंड में)

ग्रेट ब्रिटेन	२८६,९७४	२८७,८२४
संयुक्त राष्ट्र अमरीका	३७,५९८	२६,६०४
आयरलैंड	२८,०४३	२४,१०४
कनाडा	२०,९७८	१९,१५७
आस्ट्रेलिया	१६,९४१	६,४४८
ईरान	११,४३०	१०,९३८
रूस	—	५,१२३
कुवैत	५,०११	८,०९५
कुल योग	४३९,२२५	४२५,५१८

इन विदेशी मंडियों में भारतीय चाय के साथ लंका, चीन और जावा की चाय की बड़ी स्पर्धा रहती है। दूसरे महायुद्ध काल में भारत और लंका से ही चाय का निर्यात होता था क्योंकि जावा, जापान, चीन और सुमात्रा युद्ध में व्यस्त थे और उसी कारण उनका चाय उत्पादन अस्त-व्यस्त हो गया था। जब तक ये देश अपनी युद्ध-पूर्व स्थिति पर नहीं पहुंचते

हैं, तब तक भारतीय चाय ही अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में सर्वोपरि रहेगी। भारत की चाय के विक्रय की न्यूजीलैंड में पर्याप्त संभावनाएं हैं। इस समय करीब १० लाख पौंड चाय भारत से न्यूजीलैंड भेजी जाती है। यदि कलकत्ता और कोचीन में चाय को बाहर भेजने की सुविधाएं बढ़ा दी जायें तो प्रतिवर्ष ५० लाख पौंड भारतीय चाय न्यूजीलैंड की मंडियों में खप सकती है।

भारत की अधिकतर चाय कलकत्ता के बन्दरगाह से निर्यात की जाती है। कुल निर्यात की ८३ प्रतिशत चाय कलकत्ते से जाती है और शेष मद्रास से।

चाय के निर्यात व्यापार में विभिन्न बन्दरगाहों का स्थान

(हजार पौंडों में)

	कलकत्ता	मद्रास	कोचीन	बम्बई
१९४९–५०	३७८,५९३	५९,७७९	——	——
१९५०–५१	३७४,७२२	६१,१३५	——	——
१९५१–५२	३५४,२७३	३,९३२	६१,७०६	५,६२६

भारत से चाय का निर्यात व्यापार 'अन्तर्राष्ट्रीय चाय समझौते' के अनुसार नियंत्रित होता है। सन् १९२७ और सन् १९३२ के बीच विभिन्न देशों में चाय का इतना अधिक उत्पादन हुआ कि उत्पादन के मूल्य से भी दाम गिर गये। अतः सन् १९३३ में अप्रैल की पहली तारीख को निम्नलिखित बातों के आधार पर भारत, जावा और लंका में एक समझौता हुआ :

(१) निर्यातक देशों से चाय की निर्यात मात्रा पर नियंत्रण रक्खा जाय ताकि मांग व पूर्ति में सामंजस्य स्थापित हो सके।

(२) निर्धारित मात्रा से अधिक निर्यात पर विभिन्न सरकारें प्रतिबन्ध लगा दें।

(३) समझौता ५ साल तक लागू होगा और इस काल में कोई भी देश चाय की खेती बढ़ा नहीं सकेगा।

इस समझौते के अनुसार भारत की निर्धारित निर्यात मात्रा ३८०० लाख पौण्ड थी। सन् १९३८ में यह समझौता अन्य पांच सालों के लिये बढ़ा दिया गया। परन्तु सन् १९३९ में दूसरा महायुद्ध छिड़ गया, इसलिये सन् १९३९ से सन् १९४५ तक युद्धकालीन मांग की पूर्ति के लिये भारत की निर्यात मात्रा बढ़ा दी गई।

इसी समय भारत में चाय के व्यापार की देखभाल करने के लिये एक बोर्ड स्थापित कर दिया गया। इसका नाम 'केन्द्रीय चाय समिति' है। विज्ञापन के द्वारा यह समिति भारतीय ग्रामों व नगरों में चाय को लोकप्रिय बनाने का प्रयत्न कर रही है। समाचारपत्र-पत्रिकाओं में विज्ञापन के अतिरिक्त मनुष्यों को चाय बनाना सिखलाकर चाय के प्रति उनकी रुचि जागृत करने का प्रयत्न किया जा रहा है।

अप्रैल सन् १९४८ में भारत ने एक नये अंतर्राष्ट्रीय चाय समझौते पर हस्ताक्षर किये। इसका ध्येय चाय के उत्पादन व निर्यात को नियमित करना था। यह समझौता सन् १९५५

तक लागू रहेगा। इस समझौते के आधीन सन् १९४८-४९ में भारत ने ७७५,७०० एकड़ भूमि पर चाय उगाई और सन् १९५५ तक भारत अपने चाय के बगीचों का क्षेत्रफल ८०६,७२८ एकड़ तक बढ़ा सकता है। सन् १९४९-५० में भारत को ४३५० लाख पौंड चाय निर्यात करने की आज्ञा मिली परंतु इसे बढ़ाकर सन् १९५०-५१ में भारत को ४५२० लाख पौंड चाय निर्यात करने दिया गया। सन् १९५२ में भारत सरकार ने अन्तर्राष्ट्रीय चाय प्रसार समिति की सदस्यता से इस्तीफा दे दिया है। भारतीय चाय को लंका की चाय के साथ स्पर्धा करनी पड़ती है और फलतः उसके मूल्य बहुत गिर गये हैं। ऐसी हालत में भी भारत सरकार के ऊपर इस समिति का चंदा बहुत काफी बना रहा और अन्त में भारत को इससे अलग होना पड़ा।

सन् १९५२-५३ में भारत के चाय उद्योग में बड़ी ही संकटनीय स्थिति उत्पन्न हो गई। ६२४१ बगीचों में से ११९ बगीचों को बन्द करना पड़ा और चाय के अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में मन्दी आने से ६२ हजार भारतीय मजदूर बेकार हो गये। इस संकटनीय-स्थिति का मुख्य कारण तो अधिक उत्पादन ही है परन्तु इसके अलावा निम्नलिखित मूल कारण भी ध्यान देने योग्य हैं—

(१) दूसरे महायुद्ध काल में बहुत से अनुभवी मालिक व उत्पादक इस काम को छोड़ कर चले गये।

(२) दूसरे महायुद्ध काल में जब इन्डोनेशिया पर जापानियों का कब्जा हो गया तो संसार को भारतीय चाय पर ही निर्भर होना पड़ा।

(३) दूसरे महायुद्ध के समय चाय के बगीचों में काम करने वाले अनुभवी मजदूरों को सड़कें आदि बनाने में लगा लिया गया और फलतः भारतीय चाय की किस्म खराब होती चली गई।

(४) इस कारण अन्तर्राष्ट्रीय मंडी में भारतीय चाय की अपेक्षा उत्तम किस्म की लंका की चाय बाजी मार ले गई और मिश्र इत्यादि देशों ने भारत की जगह लंका से चाय खरीदना शुरू कर दिया।

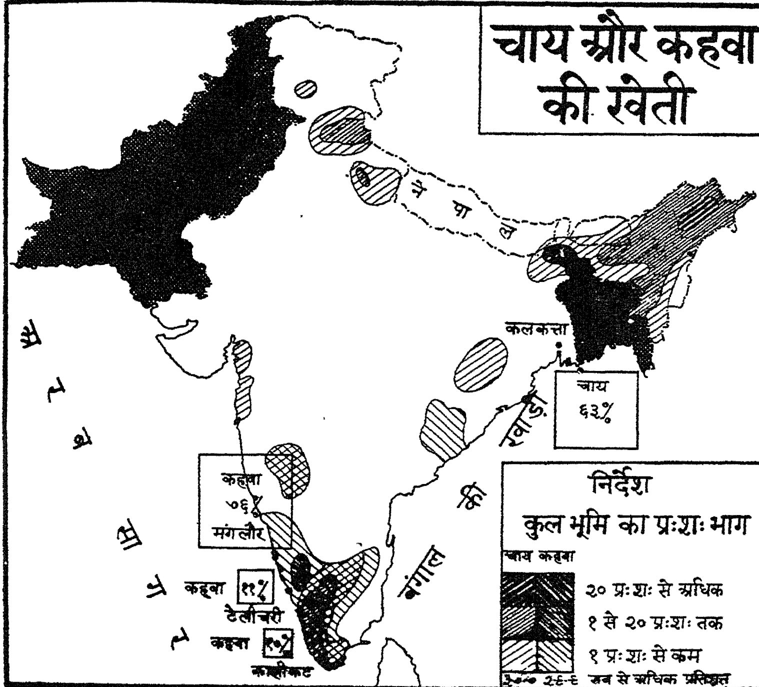
(५) अब इन्डोनेशिया के पुर्नगठन हो जाने से उसकी ३००० लाख पौंड चाय भी अन्तर्राष्ट्रीय मंडियों में पहुंचने लगी है और उसके अभाव में जो राष्ट्र भारत से चाय मंगवाने लगे थे वे फिर इन्डोनेशिया से ही चाय आयात करने लगे हैं।

(६) इसके अलावा भारतीय चाय उत्पादकों के पास पूंजी की कठिनाई भी पड़ रही है। इसके लिए सरकार उन्हें माली सहायता देने का भी प्रयत्न कर रही है।

परन्तु भारतीय चाय उद्योग को बचाने के तथा दृढ़ करने के लिए सब से महत्वपूर्ण कार्य यह किया गया है कि सन् १९५३-५४ के उत्पादन में ८ प्रतिशत की कमी कर दी गई है। साथ-साथ यह भी कोशिश की जा रही है कि अधिक अच्छी प्रकार से चाय को चुना जाय ताकि उसकी किस्म अच्छी हो जाय। सन् १९५२-५३ में चाय का उत्पादन ६२००

लाख पौंड था परन्तु १९५३-५४ का उत्पादन इससे ५०० लाख पौंड कम होगा।

नवम्बर और दिसम्बर सन् १९५२ में चाय उद्योग की बड़ी खराब दशा थी परन्तु अब आशा के चिन्ह दिखलाई पड़ रहे हैं।



चित्र नं. २५—उत्तरी-पूर्वी आसाम से उत्तरी-पूर्वी बिहार तक का विस्तृत चाय उत्पादक क्षेत्र ध्यान देने योग्य है। भारत का आधे से अधिक कहवा मैसूर से प्राप्त होता है।

कहवा

भारत में कहवा का विधिवत् उत्पादन सन् १९३० में प्रारम्भ हुआ और इसका सबसे पहला बगीचा मैसूर में लगाया गया। आज भी कहवा केवल दक्षिण भारत में ही पैदा होता है।

उपज की दशायें—कहवा के पौधे को उपजाऊ मिट्टी की आवश्यकता होती है जिस पर पानी न ठहर सके। इसके लिये गर्म जलवायु और साधारण वर्षा की आवश्यकता होती है। ६० से १०० इंच तक की वार्षिक वर्षा इसके लिये सबसे उपयुक्त होती है। इसके लिये अधिक-से-अधिक तापक्रम ५९° से ७७° तक होना चाहिये। सूर्य की सीधी रोशनी से इसे छाया चाहिये और छाया में उगाये हुए पौधे की किस्म व शक्ति बहुत अच्छी रहती है। यह पौधा ३ से ५ साल तक में बढ़कर तैयार होता है और फिर ३० साल तक इसमें फल

आते रहते हैं। अधिकतर कहवा के बगीचे पहाड़ी उच्च भूमियों पर २००० से ४००० फीट की ऊंचाई तक पाये जाते हैं। इन प्रदेशों में गर्मी की ऋतु में वर्षा होती है। विभिन्न प्रदेशों में वर्षा की मात्रा और भूमि की ऊंचाई भी अलग-अलग होती है। उत्तरी मैसूर में सबसे अधिक उपज वाले बगीचे उन प्रदेशों में पाये जाते हैं जिनकी ऊंचाई ४००० फीट है और औसत वर्षा ५० इंच होती है। उत्तरी कुर्ग में ऊंचाई ३५०० फीट और वर्षा ८० इंच तक होती है।

भारत में यह पौधा वर्षा ऋतु में बो दिया जाता है और अक्तूबर तक इसके फल पकने लगते हैं। फिर जनवरी तक इसके फल हाथ से तोड़े जाते हैं।

उपज के क्षेत्र—भारत में लगभग २ लाख एकड़ भूमि पर कहवा के बगीचे पाये जाते हैं और कुल उत्पादन ३५ लाख पौंड से कुछ अधिक ही होता है। सन् १९५० में कहवा का कुल उत्पादन २०,३६० टन था और इसका घरेलू उपभोग १७००० टन।

कहवा का उत्पादन, क्षेत्रफल व प्रति एकड़ उपज (१९३५-३९)

प्रदेश	क्षेत्रफल (एकड़ में)	उत्पादन (हजार पौंडों में)	प्रति एकड़ उपज (पौंडों में)
मद्रास	४३,७११	९,१३६	२०५.२
उड़ीसा	५९	——	——
कुर्ग	३९,९४९	९,५८६	२४९.९
मैसूर	१०१,००३	१६,१२७	१६०.६
ट्रावनकोर	९९८	१४१	१४२.७
कोचीन	१,९६२	३८६	१९६.३
कुल योग	१८६,६८२	३५,३७६	(औसत) १८७.३

सन् १९३९ के बाद कहवा के उत्पादन व क्षेत्रफल में कोई विशेष वृद्धि नहीं हुई है। सन् १९४९ में कहवा के बगीचों का क्षेत्रफल २१५,००० एकड़ था और कुल उत्पादन ३४,९७१ पौंड। कहवा के ७० प्रतिशत बगीचे भारतीयों के आधिपत्य में हैं और शेष ३० प्रतिशत यूरोपियन अधिकार में।

दक्षिण भारत में ७००० कहवा के बगीचे हैं जिनमें ६५००० स्थायी और ३५००० अस्थायी मजदूर काम करते हैं। केवल **मैसूर** में ४६०० बगीचे हैं। मैसूर में अधिकतर बगीचे दक्षिण और पश्चिम में केन्द्रित हैं। कदूर, शिमोगा, हसन और मैसूर के जिले कहवा उत्पादन के लिये विशेष महत्वपूर्ण हैं। मैसूर में सबसे अधिक भूमि पर कहवा उगाया जाता है और देश के कुल उत्पादन का आधे से अधिक भाग यहीं से प्राप्त होता है। **मद्रास** में कहवा के बगीचे अधिकतर दक्षिण-पश्चिम में पाये जाते हैं और उत्तरी आरकाट से टिनीवली तक

फैले हुये हैं। मद्रास में नीलगिरी का क्षेत्र सबसे महत्वपूर्ण है। कहवा के कुछ बगीचे उत्तरपूर्व में विजगापट्टम में भी पाये जाते हैं। भारतीय उत्पादन का २३ प्रतिशत भाग मद्रास में उत्पन्न होता है। **कुर्ग** में कृषि भूमि का २० प्रतिशत भाग कहवा के बगीचों से घिरा हुआ है और यहां से एक प्रतिशत कहवा प्राप्त होता है। थोड़ा बहुत कहवा बम्बई के सतारा जिले में भी पैदा होता है।

कहवा का व्यापार—कुल उत्पादन का आधा भाग भारत में ही खप जाता है। इसलिये भारत के कहवा उद्योग को विदेशी मंडियों पर निर्भर रहना पड़ता है।

भारतीय कहवा ग्रेट ब्रिटेन, फ्रांस, जर्मनी, हालैण्ड, बेल्जियम, आस्ट्रेलिया और ईराक को निर्यात किया जाता है। यह निर्यात व्यापार मंगलोर, टेलीचेरी, कालीकट और मद्रास के बन्दरगाहों से होता है। विभिन्न बन्दरगाहों का भाग इस प्रकार है :—

मंगलोर ७६ प्रतिशत, टेलीचेरी २१ प्रतिशत, कालीकट १० प्रतिशत और मद्रास ३ प्रतिशत।

हाल में ब्राजील की कहवा के स्पर्धा के कारण भारतीय कहवा की मांग कम हो गई है और इस समय अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में ब्राजील के कहवा का बोलबाला है।

कहवा का निर्यात (हण्डरवेट में)

देश	१९४९-५०	१९५०-५१	१९५१-५२
ग्रेट ब्रिटेन	१६,२८८	११,८३१	५,६४७
हालैण्ड	३,७५७	६,२५१	८१२
फ्रांस	२९	९,८९८	२,१६७
आस्ट्रेलिया	७,१३७	२,११७	२,०२२
ईराक	९००	३,०५४	५००
कुल योग	६६,६२८	५३,५३३	१६,०६३

इस समय 'भारतीय कहवा बोर्ड' भारतीय कहवा के लिये भारत तथा विदेश में मंडियां ढूंढने में व्यस्त है। सन् १९४२ में 'कहवा मंडी विस्तार विधान' (Coffee Market Expansion Act) के आधीन 'भारतीय कहवा बोर्ड, को स्थापित किया गया और इस समय कहवा का उत्पादन व व्यापार पर इसी का नियंत्रण रहता है। भारत में कहवा की समस्त उपज को एक भंडार में एकत्रित किया जाता है और फिर सहकारी समितियों तथा नीलामों द्वारा देश की मंडियों के लिये कहवा दिया जाता है। बोर्ड के आदेश देने पर ही निर्यात किया जा सकता है। कहवा की निर्यात मात्रा पर एक रुपया प्रति हन्डरवेट की दर से कर लिया जाता है और इसी दर से भारत की मंडियों में बेचे गये कहवे पर आबकारी ली जाती है। इस प्रकार एकत्रित धन से विदेशों में कहवा की लोकप्रियता बढ़ाने के लिए विज्ञापन व प्रयत्न किए जाते हैं। सन् १९३६ से कहवा को लोकप्रिय बनाने के लिये अनेक प्रयत्न हो रहे हैं। इस समय कलकत्ता, बम्बई,

नई दिल्ली, सिकन्दराबाद, लखनऊ, इलाहाबाद आदि सभी बड़े-बड़े शहरों में कहवा पान-गृह (Coffee-houses) खोल दिये गये हैं।

तम्बाकू

सब से पहले सन् १५०८ में पुर्त्तगाली लोगों ने भारत में तम्बाकू की खेती शुरू की। यह पौधा विभिन्न प्रकार की जलवायु में उग सकता है और देश भर में उगाया जाता है। फरवरी से अप्रैल तक इसकी कटाई होती है।

उपज के क्षेत्र—तम्बाकू उत्पादक देशों में भारत का दूसरा स्थान है और संसार के कुल उत्पादन का ३५ प्रतिशत भाग यहीं से प्राप्त होता है। भारत, संयुक्त राष्ट्र और चीन में कुल मिलाकर संसार का ६० प्रतिशत तम्बाकू उत्पन्न किया जाता है और इन तीनों देशों में ७२ लाख एकड़ भूमि पर तम्बाकू की खेती होती है। भारत में लगभग ६ लाख एकड़ भूमि पर तम्बाकू उगाया जाता है और देश में तम्बाकू का वार्षिक उत्पादन ४ लाख टन है। सन् १९५१ में ८,३९,००० एकड़ भूमि पर तम्बाकू की खेती हुई और कुल ५०४० लाख पौंड तम्बाकू उगाया गया। यह मात्रा विश्वव्यापी उत्पादन की ७.१ प्र. श. थी।

तम्वाकू की खेती और उत्पादन विशेषतया दो प्रदेशों में सीमित है—पूर्वी प्रदेश जिसके अन्तर्गत बिहार, उत्तर प्रदेश और पश्चिमी बंगाल सम्मिलित हैं और दक्षिणी प्रदेश जिसमें मद्रास, मैसूर और बम्बई राज्य आते हैं।

सन् १९४९-५० में पूर्वी प्रदेश में १००,००० एकड़ भूमि पर तम्बाकू की खेती हुई और लगभग ६८,००० टन तम्बाकू उत्पन्न किया गया। इसमें से ३५००० एकड़ भूमि केवल बिहार में थी और बिहार अकेले का उत्पादन ४२,००० टन था। बिहार का ९० प्रतिशत तम्बाकू मुजफ्फरपुर, दरभंगा, मुंगेर और पूर्निया के जिलों में उगाया जाता है। पश्चिमी बंगाल में जलपाईगुरी, कूचबिहार और हुगली जिलों में तम्बाकू उगाया जाता है। यहां पर विशेष रूप से सिगार और हुक्के में प्रयोग होने वाला तम्बाकू उगाया जाता है।

मद्रास में तम्बाकू उगाने वाले प्रमुख जिले गुन्टूर, विजागापट्टम, पूर्वी गोदावरी, कोयम्बटूर और मदूरा हैं। तम्बाकू की दो-तिहाई उपज क्षेत्र गुन्टूर में केन्द्रित है। मद्रास में कई प्रकार का बढ़िया तम्बाकू उगाया जाता है जो वरजीनिया सिगरेट, सिगार, चुरुट और खाने तथा सूंघने के काम आता है। देश के कच्चे तम्बाकू का आधा भाग मद्रास से ही प्राप्त होता है।

वम्बई में तम्बाकू की खेती बेलगांव, सतारा, बड़ौदा और कैरा जिलों में होती है। यहां की कुल पैदावार मद्रास की एक-तिहाई है।

इन दोनों प्रदेशों के अतिरिक्त हैदराबाद के बिदार जिले और पूर्वी पंजाब के होशियारपुर, जलंधर और गुरुदासपुर जिलों में भी तम्बाकू की खेती होती है।

भारत में उत्पन्न तम्बाकू की पत्तियां रूखी व भारी होती हैं। उनका रंग काला और महक तेज होती है। इसलिये प्रायः उनका सिगरेट में उपयोग नहीं किया जा सकता। तम्बाकू

के ये पत्ते बीड़ी बनाने के बहुत उपयुक्त होते हैं। गुन्टूर, कृष्णा, पूर्वी व पश्चिमी गोदावरी प्रदेशों की जलवायु नम है और मिट्टी भी हल्की है। इसलिये इन जिलों से भारत के सिगरेट के योग्य तम्बाकू का ९५ प्रतिशत भाग प्राप्त होता है। गुन्टूर इसकी सब से बड़ी मंडी है। मद्रास और बिहार में इसी रंग, सुगन्धि और बनावट का तम्बाकू उगाया जाता है।

तम्बाकू का व्यापार—भारत में उत्पन्न सब तम्बाकू प्राय: भारत में ही खप जाता है और निर्यात के लिये अधिक मात्रा नहीं बचती। फिर भी बिना बनाई हुई तम्बाकू भारत से ग्रेट ब्रिटेन, रूस, हालैण्ड, बेल्जियम, अदन, हांगकांग, स्वीडन, लंका और केनिया को भेजी जाती है। सन् १९५१-५२ में भारत से ९९० लाख पौंड कच्चा तम्बाकू निर्यात किया गया और इससे करीब ४२० लाख पौण्ड केवल ग्रेट ब्रिटेन को भेजा गया।

कच्चे तम्बाकू का निर्यात

(हजार पौण्डों में)

	१९५०-५१	१९५१-५२		१९५०-५१	१९५१-५२
ग्रेट ब्रिटेन	३८,७९०	४२,१४६	अदन	४,२४८	४,६१८
हांगकांग	१,२६०	१८,२१७	पाकिस्तान	७,५५४	२,२६१
रूस	४,४०८	७,५८२			
हालैण्ड	६,१८६	२,३२८	कुल योग	९३,०३१	९९,२३५

भारत के निर्यात का पंच-षष्ठांश व्यापार मद्रास से होता है। बम्बई से करीब १०० लाख पौण्ड तम्बाकू बाहर भेजी जाती है। कलकत्ता से केवल १० लाख पौण्ड तम्बाकू का ही व्यापार होता है। भारत का सबसे अधिक तम्बाकू ग्रेट ब्रिटेन की मंडियों में जाता है।

भारत सरकार ने तम्बाकू की खेती व किस्म में उन्नति करने के लिये एक तम्बाकू समिति स्थापित की है। यह समिति तम्बाकू के उत्पादन, तैयारी व व्यापार की ओर ध्यान देती है। अगर प्रयत्न किये जायें तो भारत न केवल सिगरेट का आयात ही कम कर सकता है बल्कि मध्यपूर्व, यूरोप और पाकिस्तान में अपने तम्बाकू का विक्रय भी बढ़ा लेगा।

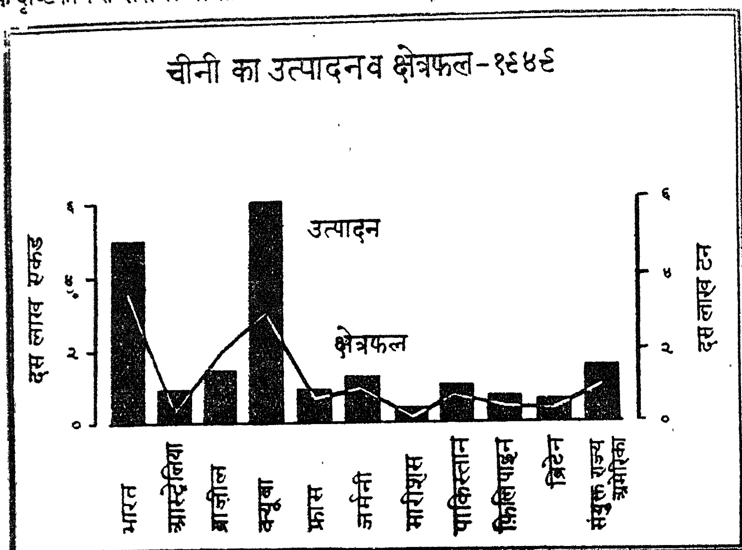
भारत के तम्बाकू उद्योग में उन्नति की बड़ी-बड़ी संभावनाएं हैं। भारत में प्रतिवर्ष कई करोड़ सिगरेटों की मांग रहती है। इनमें से ९० प्रतिशत सिगरेट विदेशी कम्पनियों द्वारा बनाये जाते हैं, ३ प्रतिशत विदेशों से मंगवाए जाते हैं और शेष ७ प्रतिशत घरेलू उद्योग से प्राप्त होते हैं।

गन्ना

भारत गन्ने का आदि देश ही नहीं है वरन् इस समय संसार में सबसे बड़ा उत्पादक क्षेत्र है। संसार के गन्ना उत्पादक कुल क्षेत्रफल का ३७ प्रतिशत भाग भारत में ही स्थित है।

उपज के क्षेत्र—यद्यपि गन्ने का उत्पादन भारत में सभी जगह होता है परन्तु गन्ना-उत्पादक प्रमुख प्रदेश उत्तर प्रदेश, बिहार, पश्चिमी बंगाल, पूर्वी पंजाब और बम्बई हैं।

वास्तव में गन्ने की खेती उत्तरी भारत में विशेष रूप से महत्वपूर्ण है यद्यपि जलवायु व मिट्टी के दृष्टिकोण से दक्षिणी भारत गन्ना उत्पादन के लिये आदर्श है। इसीलिये दक्षिणी भारत में



चित्र नं. २६—१९४८-४९ में कम क्षेत्रफल होते हुए भी अधिक उत्पादन ध्यान देने योग्य है।

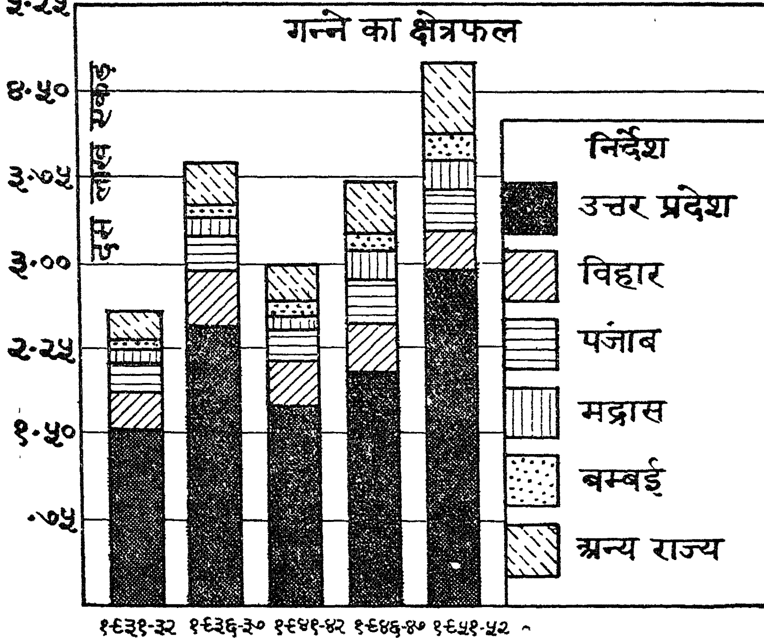
गन्ने की प्रति एकड़ उपज उत्तर भारत की अपेक्षा चौगुनी है अतः दक्षिण में गन्ने की खेती को बढ़ाने के प्रयत्न होने चाहियें। कोयना योजना, गोदावरी की घाटी, तुंगभद्रा, भिवानी और बादरा योजनाओं के प्रदेश गन्ने की खेती के लिए सबसे अधिक उपयुक्त हैं और प्रयत्न करने पर ५०-६० टन प्रति एकड़ तक उपज बढ़ाई जा सकती है। दूसरी बात यह है कि दक्षिण भारत में गन्ने से रस निकालने का काल उत्तरी भारत के उपज काल से दुगना होता है। इसलिये भौगोलिक दृष्टिकोण से उत्तर प्रदेश और बिहार की अपेक्षा बम्बई, मद्रास और मैसूर की उपज दशायें अधिक लाभप्रद हैं।

सन् १९४९-५० में गन्ने का क्षेत्रफल और उपज

प्रदेश	क्षेत्रफल (हजार एकड़)	उपज (हजार टन)
उत्तर प्रदेश	२१३०	२६६१
बिहार	३७९	२७५
पूर्वी पंजाब	२७९	३१७
पश्चिमी बंगाल	५७	८९
मद्रास	१९१	५३६
बम्बई	१५१	४२०

प्रदेश	क्षेत्रफल (हजार एकड़)	उपज (हजार टन)
उड़ीसा	५९	१०८
आसाम	५९	६८
हैदराबाद	५७	१०६
अन्य प्रदेश	२७९	३२४
कुल योग	३,६४१	४,९०४

सन् १९५१ में ४१ लाख एकड़ भूमि पर गन्ने की कृषि होती थी और कुल मिलाकर ५४ लाख टन गन्ना उत्पन्न हुआ था। इसी वर्ष चीनी का कुल उत्पादन १४,५०,००० टन था और घरेलू उपभोग के बाद भारत के पास ४,००,००० टन चीनी बच गई। इससे स्पष्ट है कि भारत में चीनी की मांग-पूर्त्ति की दशा पहले से बहुत सुधर गई है। कुल उपज का एक चौथाई अंश मिलों द्वारा चीनी तैयार करने में प्रयुक्त हो जाता है और शेष से देशी तरीके द्वारा गुड़ तैयार किया जाता है।

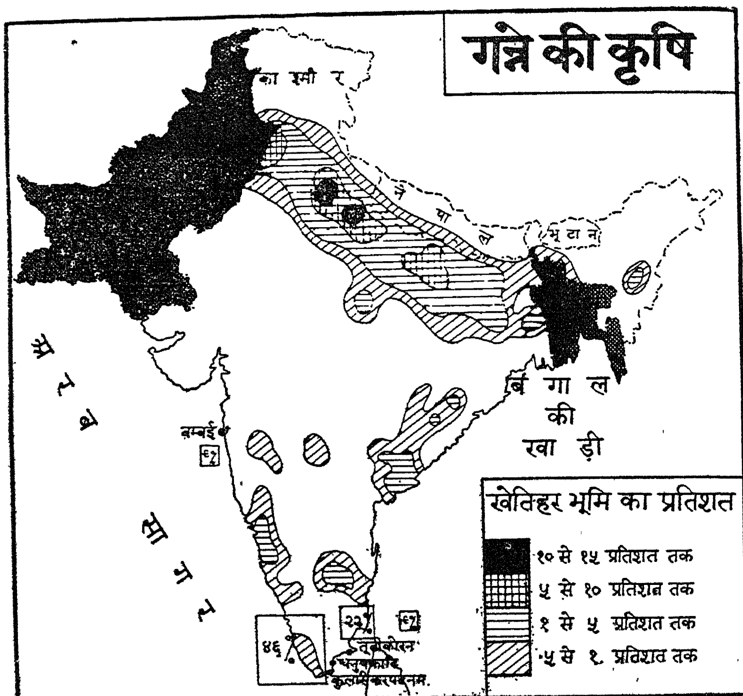


चित्र नं. २७

भारत का आधे से अधिक गन्ना **उत्तर प्रदेश** में उत्पन्न होता है। राज्य के सभी स्थानों में गन्ने की खेती होती है परन्तु सहारनपुर, शाहजहांपुर, फैजाबाद, गोरखपुर, आजमगढ़, बलिया, जौनपुर, बनारस और बुलंदशहर में गन्ने की खेती विशेष रूप से

महत्वपूर्ण है। **बिहार** में गन्ने की खेती के लिये चम्पारन, सारन, दरभंगा और मुजफ्फरपुर के जिले विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

पूर्वी पंजाब का गन्ने के उत्पादन में तीसरा स्थान है परंतु इसकी कुल उपज उत्त र प्रदेश की एकदशमांश भी नहीं है। अमृतसर, जलंधर और रोहतक गन्ना उत्पादन म विशेष रूप से आगे बढ़े हुये हैं। **पश्चिमी बंगाल** में भी काफी गन्ना उगाया जाता है परन्तु वहां के गन्ने की किस्म बड़ी मामूली होती है। वीरभूम, बर्दवान और नादिया के जिले गन्ने की खेती के लिये विशेष रूप से महत्वपूर्ण हैं और इन तीनों जिलों में लगभग ६७,००० एकड़ भूमि पर गन्ना बोया जाता है।



चित्र नं० २८—गंगा की तलहटी में गन्ने की खेती का केन्द्रित होना ध्यान देने योग्य है। केवल उत्तर प्रदेश में करीब ५० प्रतिशत गन्ना उगाया जाता है।

गन्ने की खेती की विशेषताएं—भारत में गन्ने की प्रति एकड़ उपज सबसे कम है। विभिन्न प्रदेशों में गन्ने की किस्म के अनुसार प्रति एकड़ उपज १.५ टन से ३ टन तक होती है। संसार के अन्य देशों के आंकड़ों को देखते हुए यह बहुत कम है। वास्तविक चीनी की मात्रा के दृष्टिकोण से भारत की अपेक्षा क्यूबा की प्रति एकड़ उपज तिगुनी, जावा की छः गुनी और हवाई की सात गुनी है। प्रति एकड़ उपज की इस न्यूनता के कई कारण हैं। प्रथम यह है कि

भारत का अधिकतर गन्ना उत्तर प्रदेश और बिहार में उगाया जाता है। ये दोनों ही प्रांत शीतोष्ण कटिबंध में स्थित हैं। अतः यहां की भौगोलिक दशायें गन्ने की खेती के लिये बिल्कुल उपयुक्त नहीं हैं। दूसरे, यहां के खेत छोटे और तितर-बितर हैं और किसानों की खेती करने की रीति बहुत पुरानी है। अतः इन कारणों से भी प्रति एकड़ उपज बढ़ नहीं पाती। प्रति एकड़ उपज के कम होने के कारण गन्ने का दाम भी बहुत अधिक रहता है। गन्ने के दामों को कम करने का एकमात्र उपाय यह है कि इसकी प्रति एकड़ उपज में वृद्धि की जाय। केवल अधिक भूमि में गन्ने की खेती का विस्तार करके गन्ने के दामों को कम नहीं किया जा सकता। केवल प्रति एकड़ उपज में वृद्धि करना ही पर्याप्त नहीं है। वास्तव में गन्ने की किस्म को भी उत्तम बनाना होगा ताकि उसके रस में चीनी का अंश बढ़ जाय।

गन्ने की कीमत उसकी उत्तम प्रकृति व प्रकार के अनुसार निर्धारित की जानी चाहिए। परन्तु भारत में गन्ना तोल के अनुसार बिकता है और इसके दाम तै करने में इसके अन्दर की चीनी मात्रा पर बिल्कुल ही ध्यान नहीं दिया जाता। इसलिये भारतीय किसान केवल तोल में अधिक गन्ना उत्पन्न करने का प्रयत्न करता है। फलतः गन्ने की उत्तमता का ह्रास हो जाता है और उसमें चीनी का अंश बहुत कम रह जाता है। इसलिये चीनी के उत्पादन में वृद्धि करने के लिये भारत में अच्छे प्रकार का गन्ना उगाना होगा।

पिछले कुछ दिनों से विभिन्न राज्यों में उत्तम प्रकार के गन्ने की फसल उगाने का प्रयत्न हो रहा है। जावा में गन्ने की कृषि रीति बड़ी ही अच्छी है और खेती के उन्हीं तरीकों को स्थानीय दशाओं के अनुसार थोड़ा बहुत हेर-फेर करके भारत में अपनाया जा सकता है। इस ध्येय से भारत के विभिन्न गन्ना केन्द्रों में खोज चल रही है। भारत की 'केन्द्रीय गन्ना समिति' ने गन्ने के उत्तम प्रकार, पौधे में लगने वाले विविध कीटाणु और रोगों का अध्ययन करके कुछ नये प्रकार के पौधों व कृषि प्रणालियों की खोज की है। आशा है कि इस ज्ञान के सहारे भारतीय किसान गन्ने की खेती में कुछ नवीन परिवर्तन ला सकेगा और फलस्वरूप भारतीय गन्ना श्रेष्ठतर हो जावेगा।

सरकार की संरक्षण नीति के कारण गन्ने की खेती का क्षेत्रफल बराबर बढ़ता रहा है। निम्न तालिका से यह प्रगति स्पष्ट हो जायेगी।

वर्ष	(हजार एकड़)
१९४७-४८	४०५६
१९४८-४९	३७५२
१९४९-५०	३६२४
१९५०-५१	४१३८
१९५१-५२	४३२६
१९५२-५३	४२४८

प्रत्येक वर्ष गन्ने का क्षेत्रफल घटता-बढ़ता रहता है और क्षेत्रफल में यह घटा-बढ़ी

गुड़ और चीनी के दामों पर निर्भर रहती है। प्रतिवर्ष उपज में भी अन्तर पड़ता रहा है और यह हेरफेर ५००-६०० लाख टन गन्ने तक होता है।

भारत में गन्ने की खेती के कुल क्षेत्रफल में ९५ प्र० श० अंश में उच्च कोटि की किस्मों को उगाया जाता है। और गन्ने की खेती में विस्तार के साथ-साथ गन्ने की किस्म में भी बराबर सुधार होता जा रहा है। कोयम्बटूर का गन्ना सब से अच्छा होता है। परन्तु खेद का विषय तो यह है कि गन्ने की किस्म में यह सुधार सब जगह नहीं हो रहा है। दूसरी बात यह है कि पिछले १९ वर्षों में गन्ने की प्रति एकड़ उपज प्राय: स्थायी सी बनी रही है। भारत में गन्ने का प्रति एकड़ उपज का औसत १३-१४ टन है और प्रति एकड़ से केवल १.४० टन चीनी प्राप्त हो पाती है। इससे स्पष्ट है कि गन्ने की किस्म व प्रति एकड़ उपज में भारत-वहुत पिछड़ा हुआ है। यह स्थिति निम्नलिखित तालिका से स्पष्ट हो जायगी—

देश	गन्ने की प्रति एकड़ उपज का औसत (टन में)	गन्ने से प्राप्त चीनी का प्र. श.
भारत	१३.५	९.९८
क्यूबा	१७.१२	१२.२५
पोर्टोरिको	२४.१६	१२.२३
हवाई	६२.०५	१०.४६
जावा	५६.००	११.४९
आस्ट्रेलिया	२१.३४	१४.३३
मारीशस	१९.६३	१२.०८

भारतीय गन्ने में चीनी का अंश सबसे कम होता है। अनुसंधान-शालाओं और प्रयोगिक खेतों की खोज से पता लगता है कि प्रति एकड़ से ७०० मन गन्ना उत्पन्न किया जा सकता है और यह गन्ना चीनी की मात्रा के दृष्टिकोण से भी उच्चतर होगा। परन्तु यह तभी सम्भव हो सकता है जब (१) छितरे हुए छोटे-छोटे खेतों को मिलाकर विस्तृत कर दिया जाय। (२) सयत्न खेती प्रणाली तथा मशीनों के प्रयोग को अपनाया जाय (३) यथास्थान और आवश्यकता के अनुसार खाद देने का प्रबन्ध किया जाय (४) सिंचाई का प्रबन्ध किया जाय (५) अच्छे प्रकार के बीजों के लिए फार्म खोले जायं तथा (६) अनुसंधान-शालाओं की खोज को किसान तक पहुंचाने का प्रयत्न किया जाय।

इस प्रकार के कार्य में कुछ प्रगति केवल बम्बई में हुई है जहां चीनी कारखानों के अपने फार्म हैं।

पटसन

पटसन भारत का सबसे महत्वपूर्ण रेशा है और इसकी दूर-दूर देशों में मांग रहती है। देश के विभाजन के बाद से भारत कच्चे पटसन का आयात करने लगा है। कृषि उपज को

भरने के लिये बोरों की आवश्यकता होती है और इन बोरों को बनाने के लिये पटसन से सस्ता और कोई भी रेशा उपलब्ध नहीं है। इसी कारण अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में इसका इतना महत्व है।

उपज की दशायें—पटसन की उपज बंगाल, आसाम में गंगा ब्रह्मपुत्र के डेल्टा प्रदेश, बिहार और उड़ीसा में सीमित है। इन सभी प्रदेशों में नदियों द्वारा लाई हुई उपजाऊ मिट्टी मिलती है और प्रतिवर्ष बाढ़ के समय मिट्टी के बदलते रहने से इसकी उपज-शक्ति का कभी ह्रास नहीं होता है। अतः बिना खाद की सहायता के इस प्रदेश में पटसन की निरन्तर खेती की जा सकती है। मार्च से मई तक पटसन की बोआई होती है और इसका पौधा पूरा बढ़ने पर १०-१२ फुट ऊंचा होता है। जुलाई से सितम्बर तक इसकी कटाई होती है। पश्चिमी बंगाल में अप्रैल-मई में पटसन बो दिया जाता है और अगस्त-सितम्बर तक यह तैयार हो जाता है। बिहार और आसाम में मार्च और अप्रैल के महीने में बोआई होती है पर उड़ीसा में मई-जून के महीने में पटसन वोया जाता है।

पटसन के पौधे को गर्म व तर जलवायु चाहिए पर शुरू के महीनों में अधिक वर्षा नहीं होनी चाहिए। इसकी सबसे अच्छी उपज दोमट भूमि या चिकनी मिट्टी व बालू वाली भूमि में होती है परन्तु इस समय बंगाल का अधिकतर पटसन चार भूमि, नदियों द्वारा बनाये हुए द्वीपों और बलुहे किनारों पर उगाया जाता है।

पटसन के पौधे को पानी में सड़ाकर रेशों को अलग किया जाता है। बंधे हुए पानी के तलाबों में इस पौधे को २०-२५ रोज तक पड़े रहने दिया जाता है और फिर इसको पीट कर रेशे अलग किये जाते हैं। साधारणतया तालाब व तलैयों में इसे सड़ाया जाता है परन्तु कहीं-कहीं नदियों के जल का भी इसलिये उपयोग करते हैं।

भारत में पटसन उत्पादक क्षेत्र

	क्षेत्रफल (१९३६–३९) (हजार एकड़ों में)	औसत उपज (१९३६–३९) (हजार गांठोंमें)	क्षेत्रफल (१९४९-५०) (हजार एकड़ोंमें)	उपज (१९४९-५०) ४०० पौंड की हजार गांठों में
पश्चिमी बंगाल	२०८	६२४	४९३	१४५२
बिहार	४०८	८०५	३३५	७७०
उड़ीसा	१८	४०	५४	१५१
आसाम	२००	४७४	२५९	७१७
कूच-बिहार	३२	६९	—	—
त्रिपुरा	८	१७	१३	२६
कुल योग	८७४	२०२९	११५९	३११६

सन् १९५०-५१ में भारत की १४ लाख एकड़ भूमि पर पटसन की फसल तैयार की गई और कच्चे पटसन की ३३,००,००० गांठें तैयार हुईं। सन् १९५१-५२ में पटसन उत्पादक प्रदेशों का क्षेत्रफल व उत्पादन इस प्रकार था :—

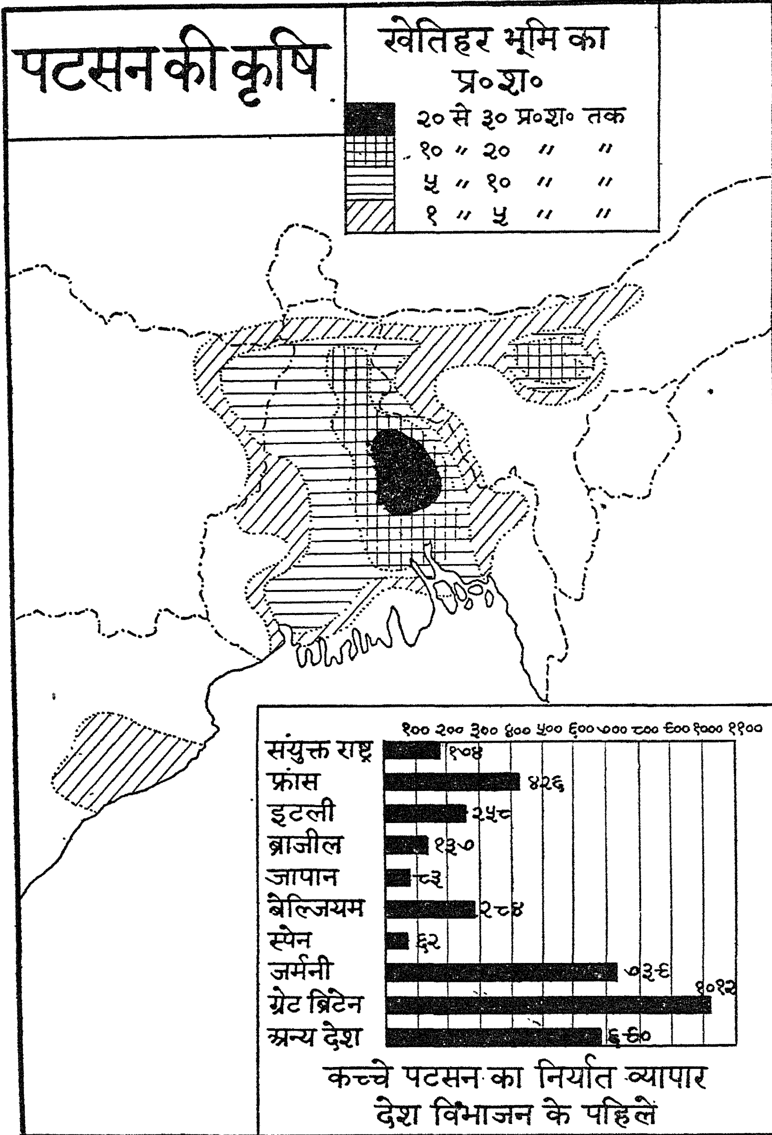
	क्षेत्रफल (हजार एकड़ों में)	उत्पादन (हजार गांठों में)
पश्चिमी बंगाल	८७६	२३३१
बिहार	४८७	८५६
आसाम	३३४	८४०

पटसन की औसत प्रति एकड़ उपज बिहार में सबसे अधिक है। वहां एक एकड़ भूमि से ११४९ पौंड पटसन उगाया जाता है जबकि आसाम में १०५६ पौंड, कूच-बिहार में १०७० पौंड, पश्चिमी बंगाल में ९६१ पौंड, त्रिपुरा में ९४५ पौंड और उड़ीसा में ८०० पौंड।

बिहार का ९० प्रतिशत से अधिक पटसन पूर्निया जिले में उगाया जाता है। उड़ीसा का ९२ प्रतिशत पटसन कटक जिले में होता है। आसाम की सम्पूर्ण ब्रह्मपुत्र घाटी में पटसन उगाया जाता है।

पटसन का व्यापार—पटसन में अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार खूब होता है और इसे विशेषकर विदेशी मंडियों के लिये उगाया जाता है। पटसन का आयात करने वाले मुख्य देश ग्रेट ब्रिटेन, जर्मनी, जापान और संयुक्त राष्ट्र हैं। परन्तु कच्चा पटसन बहुत कम बाहर जाता है। अधिकतर निर्यात इससे बने हुए बोरों व कपड़े का होता है। ये सामान व थोड़ा कच्चा पटसन भी ग्रेट ब्रिटेन, संयुक्त राष्ट्र, फ्रांस, इटली, ब्राजील, जापान, बेल्जियम, जर्मनी और स्पेन को निर्यात किया जाता है। इसमें ग्रेट ब्रिटेन का स्थान विशेष रूप से महत्वपूर्ण है। समस्त निर्यात का एक तिहाई भाग अकेला ग्रेट ब्रिटेन ही ले लेता है।

पटसन की समस्याएं—सन् १९४७ में देश विभाजन के बाद भारत में पटसन के उत्पादन व क्षेत्रफल में विशेष कमी हुई। सन् १९४७-४८ में भारत की केवल ६७ लाख एकड़ भूमि पर पटसन की खेती होती थी और उससे कुल १७ लाख गांठें कच्चा पटसन प्राप्त होता था। सन् १९५१-५२ में भारतीय उद्योग की मांग ६८ लाख गांठों की थी परन्तु भारत ने कुल ४७ लाख ७ हजार गांठें प्राप्त कीं। मांग-पूर्ति की इस कमी को अन्य रेशों के प्रयोग व पाकिस्तान से आयात द्वारा पूरा किया गया। सन् १९४९-५० में भारत ने ३२ लाख गांठ कच्चा पटसन उत्पन्न किया और ऐसी आशा की जाती है कि १९५३ के अन्त तक भारत कच्चे पटसन में आत्मनिर्भर हो जायगा। वास्तव में सन् १९४७ की १७ लाख गांठों के मुकाबले में सन् १९५१ की ४७ लाख ७ हजार गांठों का उत्पादन भारत की प्रगति का द्योतक है और हम पूर्ण आशा कर सकते हैं कि सन् १९५४ के अन्त तक भारत अवश्य आत्मनिर्भर हो जायेगा।



चित्र नं. २९—पूर्ण बंगाल प्रान्त में विभाजन से पहले केवल १० प्रतिशत भूमि से ८५ प्रतिशत पटसन उगाया जाता था। अतः प्रान्त के आर्थिक जीवन में स्वभावतः इसका बड़ा महत्व था। बंगाल का प्रमुख पटसन क्षेत्र जहां चार पंचमांश पटसन उत्पन्न होता था अब पूर्वी पाकिस्तान में स्थित है।

पाकिस्तान सरकार की मुद्रा विनियम दर में कमी न करने की नीति तथा भारत सरकार का पटसन उत्पादन में आत्मनिर्भरता प्राप्त करने के ध्येय व प्रयत्नों के फलस्वरूप भारत में पटसन की खेती का काफी प्रसार व विस्तार हुआ है। बम्बई राज्य में पटसन की खेती की सम्यक संभावनाएं हैं और इस समय भी वहां पर कई प्रकार के रेशेदार पौधे पाये जाते हैं जिनके रेशों से जूट (पटसन) के समान ही मजबूत वस्तुएं तैयार की जा सकती हैं। बम्बई में होने वाला पटसन बंगाल के पटसन से किसी प्रकार निम्नतर नहीं है। इसके अलावा आम्बादी व रोजल नाम के अन्य रेशे भी उगाये जाते हैं। कपास के रद्दी डंठलों से भी रेशे प्राप्त हो सकते हैं और उन्हें पटसन के साथ मिलाकर सामान तैयार करने में प्रयोग किया जा सकता है। इस प्रकार यदि ठीक तरीके से इन वस्तुओं का उत्पादन किया जाय तो देश में पटसन की कमी को दूर करने में बम्बई राज्य काफी महत्वपूर्ण हिस्सा ले सकता है।

पटसन के उत्पादन में वृद्धि के दृष्टिकोण से 'भारतीय पटसन अनुसंधानशाला' के प्रयत्न सराहनीय हैं। इसका कार्यालय चिनसुराह में है और इसने निम्नलिखित ३,३०,००० एकड़ भूमि पर पटसन की खेती की योजना की है :—

पश्चिमी बंगाल	१००,०००	ट्रावनकोर	५०,०००
बिहार	५०,०००	मद्रास	२०,०००
उड़ीसा	५०,०००	कूच-बिहार	५०००
आसाम	५०,०००	त्रिपुरा	५०००

उत्तर प्रदेश में भी पटसन की खेती का क्षेत्र बढ़ाने का प्रयत्न हो रहा है ताकि वहां की तीन मिलों को कच्चा माल प्राप्त हो सके। सरयू, घाघरा, सारदा और चौका नदियों के बीच का तराई प्रदेश साल के नौ महीने पानी से भरा रहता है। इस प्रदेश में १५००० एकड़ भूमि पर पटसन की खेती शुरू की गई है।

'कृषि अनुसन्धानशाला' ने पटसन की उपज बढ़ाने के लिये खेती की एक नई रीति निकाली है। अब तक पटसन के बीजों को छितरा कर बोया जाता है और जब अंकुर निकल आते हैं तो उन्हें पतला कर देते हैं ताकि फसल अच्छी हो। इस रीति से बीजों की हानि होती है और खराब अनावश्यक घास-फूस को उखाड़ने में हाथ से मेहनत करनी पड़ती है। नई रीति के अनुसार पटसन के बीज क्यारियों में बोये जाते हैं। यह क्यारियां एक फुट की दूरी पर होती हैं और बीजों को भी ३-४ इंच के फासले पर बोया जाता है। इस प्रकार के खेतों में पहियेदार खुरपों से अनावश्यक घास को साफ कर दिया जाता है। फलत: खर्च कम पड़ता है और इस प्रकार उगाये हुए पटसन की किस्म व उपज अच्छी होती है। इस दृष्टिकोण से पटसन के उत्पादन में वृद्धि करने के लिये एक बात करना और भी आवश्यक है। जिन प्रदेशों में पटसन उगाना विशेष लाभप्रद नहीं है वहां पटसन के निम्नतम मूल्य निर्धारित करके किसानों को प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए।

अप्रैल सन् १९४८ से भारत व पाकिस्तान ने कच्चे पटसन और पटसन के बने हुए माल पर निर्यात कर में एक-तिहाई की वृद्धि कर दी। फिर पाकिस्तान में मुद्रा दर अधिक है। इसलिए पाकिस्तान से आयात किया हुआ कच्चा पटसन भारत आकर बहुत मंहगा पड़ता है। फलतः भारतीय मिलों में पटसन से बने हुए माल का मूल्य भी बढ़ जाता है। अतएव इस मूल्य वृद्धि का भारत के निर्यात व्यापार पर बड़ा बुरा असर पड़ेगा और भारत से मंगवा कर पटसन का माल प्रयोग करने वाले देशों में अन्य वस्तुओं के प्रयोग को प्रोत्साहन मिलेगा।

पटुआ

भारत में तीन प्रकार का पटुआ उगाया जाता है—सीसल, सन और देशी। रेशे के दृष्टिकोण से **सन पटुआ** सबसे अच्छा होता है और बम्बई के रत्नगिरि व पंचमहल, मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश और मद्रास के गोदावरी, किस्ना तथा टिनीवली जिलों में उगाया जाता है। कच्चा सन बहुत अधिक मात्रा में ग्रेट ब्रिटेन, बेल्जियम, इटली, फ्रांस और जर्मनी को निर्यात किया जाता है। इससे मछली फंसाने के जाल, रस्से व सिगरेट का कागज तैयार किया जाता है।

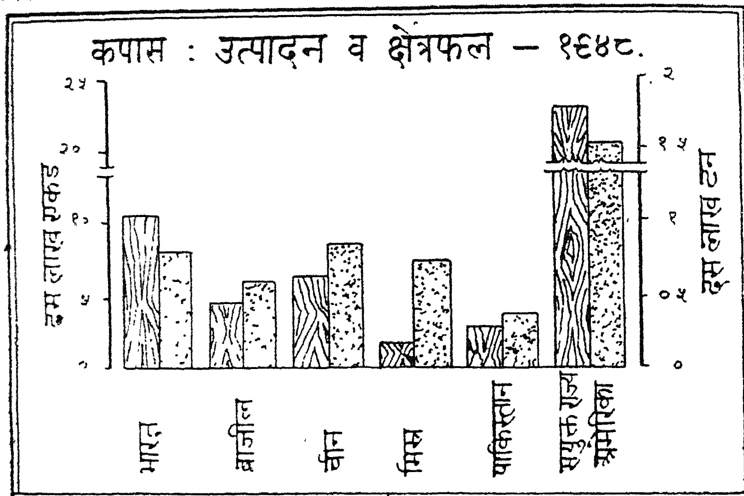
देशी पटुआ—विशेष रूप से गांजा, भांग और चरस के लिये उगाया जाता है। इसका रेशा कोई विशेष अच्छा नहीं होता परन्तु रेशे के लिये इसको उत्तरी हिमालय प्रदेश के नेपाल, शिमला, काश्मीर, कमायूं और कांगड़ा क्षेत्रों में उगाते हैं। **सीसल पटुआ** की सबसे कम खेती होती है। इसका कोई विशेष व्यापारिक महत्व भी नहीं है। यह तिरहुत, बम्बई और दक्षिणी भारत में उगाया जाता है। बम्बई के पूर्वी भाग में इसकी खेती बड़ी महत्वपूर्ण है। पिछले साल कलकत्ते से ८०,००० मन सीसल बाहर भेजा गया। इससे रस्सियां व सुन्दर वस्तुएं बनाई जाती हैं।

कपास

संसार के प्रमुख कपास उत्पादक देशों में संयुक्त राष्ट्र अमरीका के बाद दूसरा स्थान भारत का है। परन्तु इसका उत्पादन कुछ विशेष अधिक नहीं है। कुल उत्पादन का केवल ९ प्रतिशत ही भारत से प्राप्त होता है। इसके अलावा भारतीय कपास मामूली किस्म की होती है। इसके रेशे छोटे होते हैं और केवल मोटे कपड़े ही बनाये जा सकते हैं। फिर भी भारत की फसलों में कपास का विशेष व्यापारिक महत्व है। भारत का संसार के कपास उगाने वाले देशों में दूसरा स्थान है, और प्राचीन समय में भी कपास उत्पादन में इसका बड़ा उच्चतर स्थान था। संसार की कपास उत्पादक २० प्रतिशत भूमि भारत में है पर उत्पादन केवल ९ प्र. श. ही है।

उपज की दशाएं—कपास विभिन्न जलवायु में उग सकती है और इसकी उपज के लिये आवश्यक जलवायु का क्षेत्र बड़ा व्यापक है। यह बम्बई के शुष्क भागों में और बंगाल के तर भागों में बराबर से ही उगाई जाती है। साधारणतया यह शुष्क प्रदेश की फसल है और ४० इंच से कम वर्षा के प्रदेशों में बड़ी अच्छी पनपती है। इसके लिये मिट्टी का

भी बड़ा महत्व है। दक्षिण की पानी सोखने वाली काली मिट्टी इस के लिये बड़ी ही उपयुक्त है।



चित्र नं० ३०

उपज के क्षेत्र और विशेषताएं—बम्बई, मध्य प्रदेश, बरार, मद्रास, उत्तर प्रदेश, हैदराबाद, मध्य भारत, बड़ौदा, राजपूताना, और मैसूर में कपास की खेती की जाती है। परन्तु भारत में कपास के कुल उपज क्षेत्र का आधा भाग बम्बई और बरार में पाया जाता है।

भारत में उत्पन्न होने वाली कपास दो प्रकार की होती है :—(१) छोटे रेशे वाली देशी कपास और (२) लम्बे रेशे वाली अमरीकन कपास। देशी कपास का उत्पादन ही अधिक है और इसकी भी चार श्रेणियां हैं—बंगाल, ऊमरास, सुरती, और धोलरा। इन चारों प्रकारों में ऊमरा प्रकार की कपास सबसे महत्वपूर्ण है और एक-तिहाई भारतीय कपास इसी मेल की होती है। इधर कुछ दिनों से भारत में लम्बे रेशे वाली कपास को उगाने के प्रयत्न हो रहे हैं।

भारत में एक इंच लम्बे रेशे वाली कपास को लम्बे रेशे वाली कपास कहते हैं। जब रेशे की लम्बाई ७/८ इंच या ११/१६ इंच तक होती है तो उसे मध्यम श्रेणी की कपास कहते हैं। ११/१६ इंच से छोटे रेशे वाली कपास को निम्न श्रेणी या छोटे रेशे वाली कपास कहते हैं। रेशों की लम्बाई के आधार पर भारत में कपास की उपज का वितरण इस प्रकार है :

(अ) ७/८ इंच और अधिक लम्बाई वाली कपास—१७ प्रतिशत।

(ब) ७/८ इंच और ११/१६ इंच से अधिक लम्बाई की कपास —५० प्रतिशत।

(स) ११/१६ इंच या इससे कम लम्बाई की कपास —२३ प्रतिशत।

उत्पादन क्षेत्र

छोटे रेशे वाली कपास	लम्बे रेशे वाली कपास
मध्य प्रदेश, बरार, खानदेश, मध्य भारत, राजपूताना और उत्तर प्रदेश	गुजरात, काठियावाड़, दक्षिणी बम्बई, मद्रास

सन् १९५०-५१ में भारत की १३८ लाख एकड़ भूमि पर कपास की खेती होती थी और इसी वर्ष ३२ लाख गांठ कच्ची कपास उत्पन्न हुई। इसका ब्योरा इस प्रकार था—लम्बे रेशे वाली कपास ५ लाख गांठ; मध्यम श्रेणी के रेशे वाली कपास १७ लाख गांठ और छोटे रेशे वाली कपास १० लाख गांठ।

सन् १९५२-५३ में कपास की खेती का क्षेत्रफल १२,३०४,००० एकड़ था जब कि सन् १९५१-५२ में कपास की खेती १२,३४३,००० एकड़ पर की जाती थी। इस प्रकार ५१-५२ साल की अपेक्षा सन् ५२-५३ में कपास की खेती का क्षेत्रफल ३९,००० एकड़ कम हो गया। क्षेत्रफल में यह घटती ०.३ प्रतिशत है। विविध प्रकार की कपास का क्षेत्रफल इस प्रकार है—

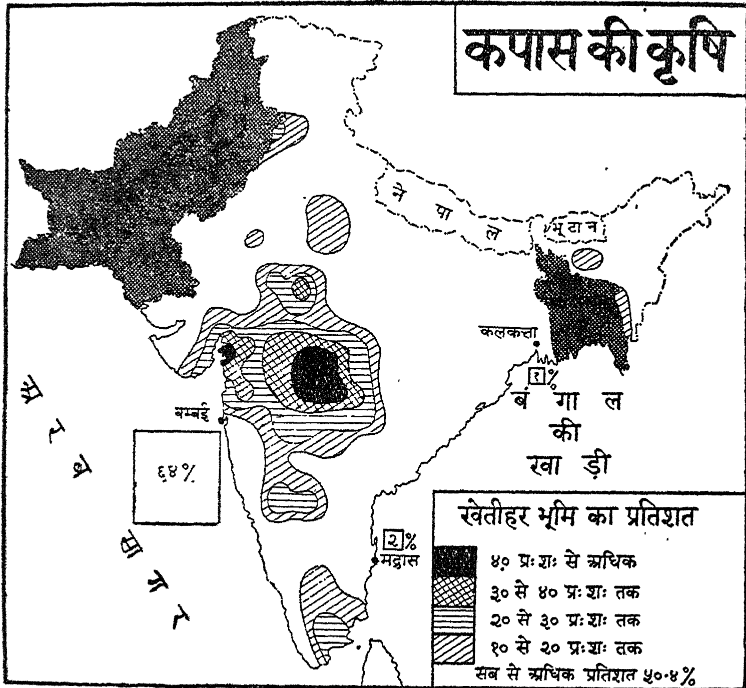
	क्षेत्रफल (हजार एकड़)	
कपास का प्रकार	१९५१–५२	१९५२–५३
बंगाल	१००७	१११२
अमरीकन	६५६	६४३
ऊमरास	४०९७	४२८७
ब्रोच	८१०	८५३
सुरती	३६७	४८९
धोलरास	११७०	१३१४
अन्य	४२३६	३६०६
कुल योग	१२३४३	१२३०४

कपास के क्षेत्रफल में कमी तो हैदराबाद, मध्यभारत और मैसूर में रही है। इसका प्रधान कारण था वर्षा की कमी। इसके विपरीत मध्य प्रदेश, बम्बई, उत्तर प्रदेश, सौराष्ट्र, पंजाब और पेप्सू में कपास का क्षेत्रफल काफी बढ़ गया है। युद्ध से पहिले केवल १३ प्र० श० क्षेत्रफल में अच्छी कपास उगाई गयी थी यानी इस समय कुल क्षेत्रफल के ५५ प्र० श० भाग में अच्छी प्रकार की कपास उगाई जा रही है।

भारत में कपास का प्रति एकड़ उत्पादन बहुत कम है —वर्षा के ऊपर निर्भर रहने वाले क्षेत्रों में ६० से ९० पौंड और सिंचित क्षेत्रों में १८० से २०० पौंड। संयुक्त राष्ट्र अमरीका में प्रति एकड़ उपज २६७ पौंड है और मिश्र में ३९० पौंड। इनके सम्मुख भारत

की उपज स्थिति विशेष शोचनीय हो जाती है। यही कारण है कि भारत में यद्यपि कपास का क्षेत्रफल संसार का २० प्र. श. है परन्तु यहां का उत्पादन विश्वव्यापी उत्पादन का केवल ९ प्र. श. ही है।

भारत की प्रथम पंच-वर्षीय योजना के अनुसार सन् १९५६ तक कपास के उत्पादन में १२,५८,००० गांठ कपास की बढ़ोत्तरी होने का अनुमान है।



चित्र नं. ३१—कपास की खेती प्रधानतः काली मिट्टी के प्रदेश में केन्द्रित है और दक्षिणी प्रायद्वीप के दक्षिणी सौराष्ट्र, मध्य प्रदेश, बरार और हैदराबाद इसकी खेती के लिए सब से प्रमुख हैं।

कपास का व्यापार—भारत में कपड़े की मिलों के लिये देश में उत्पन्न लम्बे रेशों वाली कपास पर्याप्त नहीं होती है। अतः प्रतिवर्ष भारत बाहर से १५ लाख गांठ लम्बे रेशे वाली कपास मंगवाता है। भारतीय देशी कपास छोटे रेशे वाली होती है इसलिये इनसे बढ़िया महीन कपड़ा नहीं तैयार हो सकता है। 'केन्द्रीय कपास समिति' कपास की उपज बढ़ाने और उत्तम मेल की कपास उगाने में प्रयत्नशील है। समिति के खर्चे को पूरा करने के लिये भारत की कपास पर दो आना प्रति गांठ की दर से कर लिया जाता है।

देश-विभाजन के पहले भारत का कपास निर्यातक देशों में दूसरा स्थान था। भारत

की कपास जापान, ग्रेट ब्रिटेन, इटली और चीन को भेजी जाती थी। जापान भारत से निर्यात की गई कुल कपास का ६० प्रतिशत भाग खरीदता था। दूसरे महायुद्ध से पहले जर्मनी भी भारत से काफी कपास मंगवाता था। लेकिन विभाजन के बाद से कपास का निर्यात बहुत कम हो गया है। सन् १९५१-५२ में भारत ने २३००० टन कच्ची कपास निर्यात की जबकि १९५०-५१ में केवल १५००० टन कपास निर्यात की गई थी। इस समय भारत की कपास के प्रमुख खरीदार ग्रेट ब्रिटेन, जापान, संयुक्त राष्ट्र, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड, हालैंड, बेलजियम, फ्रांस, और जर्मनी हैं। भारत व पाकिस्तान के बीच होने वाले व्यापार में भी कच्ची कपास का महत्वपूर्ण स्थान है।

हाल में हुई भारत-पाकिस्तान व्यापार सन्धि के अनुसार अब भारत कच्ची कपास बाहर नहीं भेज सकेगा। इसके विपरीत कच्ची कपास निर्यात में पाकिस्तान का स्थान बहुत आगे हो गया है। भारत भी पाकिस्तान से लम्बे रेशे वाली कपास मंगवाता है।

वास्तव में देश के अन्दर कपास के उत्पादन क्षेत्र व मात्रा को बढ़ाने की विशेष आवश्यकता है। भारत अब कच्ची कपास पर अधिक मुद्रायें नहीं खर्च कर सकता। इस दृष्टिकोण से राजस्थान, मध्य भारत और मध्य प्रदेश में कपास के उत्पादन को बढ़ाने की व्यापक संभावनाएं हैं।

केन्द्रीय कपास समिति के प्रयत्नों के फलस्वरूप लम्बे रेशे वाली कपास का उत्पादन काफी बढ़ गया है। पहले कुल उत्पादन का केवल १३ प्र. श. अंश कपास लम्बे रेशे वाली होती थी परन्तु अब यह मात्रा २८ प्र. श. हो गई है। सिंचाई की और सुविधायें प्रदान करने से उत्पादन में और भी वृद्धि की जा सकती है।

पंजाब, हैदराबाद और मद्रास में सिंचाई योजनाओं के पूरा होने पर करीब ४०-५० लाख एकड़ भूमि खेती के लिए उपलब्ध हो जायेगी यदि इस क्षेत्रफल का कुछ अंश मात्र ही कपास की खेती में लगा दिया जाय तो भारत देशी कपास में आत्म-निर्भर हो जायेगा। कपास के उत्पादन व किस्म बढ़ाने के लिए खाद देने की आवश्यकता है। इस समय तक सरकार का ध्यान चावल की उपज बढ़ाने की ओर था परन्तु अब कपास की उपज को भी खाद देकर बढ़ाने की जरूरत है। इसके अलावा कोई ३० लाख एकड़ भूमि में सिंचाई द्वारा कपास उगाने का प्रबन्ध करना चाहिये।

देश की खाद्य समस्या को देखते हुए खाद्यान्नों की भूमि को कपास उगाने में लगाना सम्भव नहीं है। इसलिए कपास के उत्पादन में वृद्धि का एक मात्र रास्ता सयत्न खेती है।

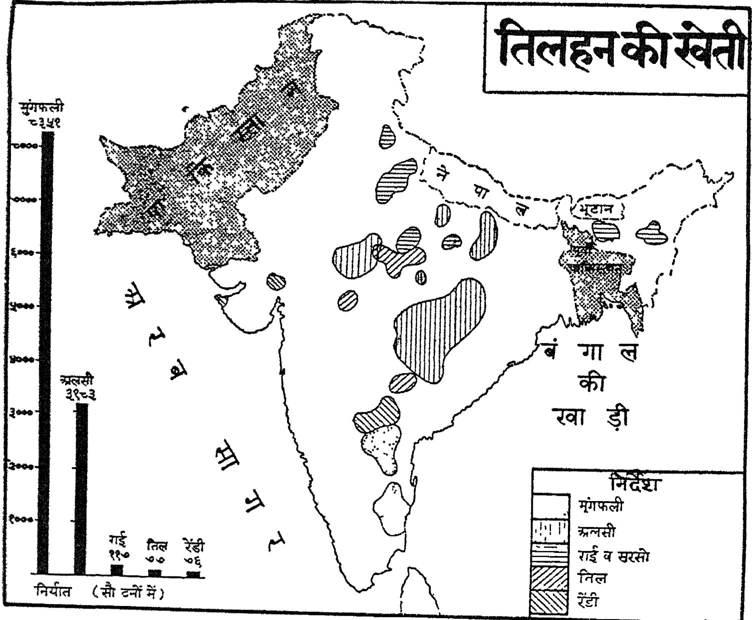
तिलहन

भारत में तिलहन का व्यापार अभी हाल से ही शुरू हुआ है। तिलहन की मांग केवल भोजन व सलाद के लिये ही नहीं होती है बल्कि इससे दवाइयां, सुगन्धियां, वार्निश, चिकना करने के तेल, मोमबत्ती, साबुन आदि विभिन्न वस्तुएं बनाई जाती हैं। भारत में उत्पन्न

होने वाले प्रमुख तिलहन, मूंगफली, बिनौला, सरसों, रेंडी, राई, तिल, नारियल, महुआ, अलसी आदि हैं।

तिलहन उत्पादक देशों में भारत का महत्वपूर्ण स्थान है। ताड़, जैतून, सोयाबीन को छोड़ कर अन्य सभी प्रमुख तिलहन भारत में उत्पन्न होते हैं।

प्रति वर्ष भारत से काफी मात्रा में तिलहन का निर्यात किया जाता है और भारत के वैदेशिक व्यापार में तिलहन का महत्वपूर्ण स्थान है। भारत की निर्यात वस्तुओं में तिलहन का पांचवां स्थान है। वास्तव में भारत में तिलहन का पर्याप्त उपभोग नहीं होता है। यद्यपि भारत में तेल निकालने का उद्योग बराबर तरक्की कर रहा है फिर भी अभी इतनी उन्नति नहीं हो पाई है कि तिलहन की समस्त उपज का देश के उद्योग-धन्धों में ही उपभोग हो जाये।



चित्र नं. ३२—देश में तिलहन का वितरण। दक्षिणी प्रायद्वीप में मूंगफली का उत्पादन विशेषतया महत्वपूर्ण है।

पिछले कुछ दिनों में भारत से तिलहन निर्यात बहुत कम हो गया है। भारत में साबुन बनाने, वनस्पति घी तैयार करने, वार्निश और चिकना करने के तेल बनाने के उद्योगों के बढ़ जाने से और घरेलू उपभोग में इनकी मांग ज्यादा होने से निर्यात की मात्रा में कमी हो गई है। निर्यात में कमी का दूसरा कारण यह है कि ब्राजील, अर्जेन्टाइना और संयुक्त राष्ट्र अमरीका में तिलहन का उत्पादन बढ़ गया है और अन्तर्राष्ट्रीय मंडियों में स्पर्धा बढ़ गई है।

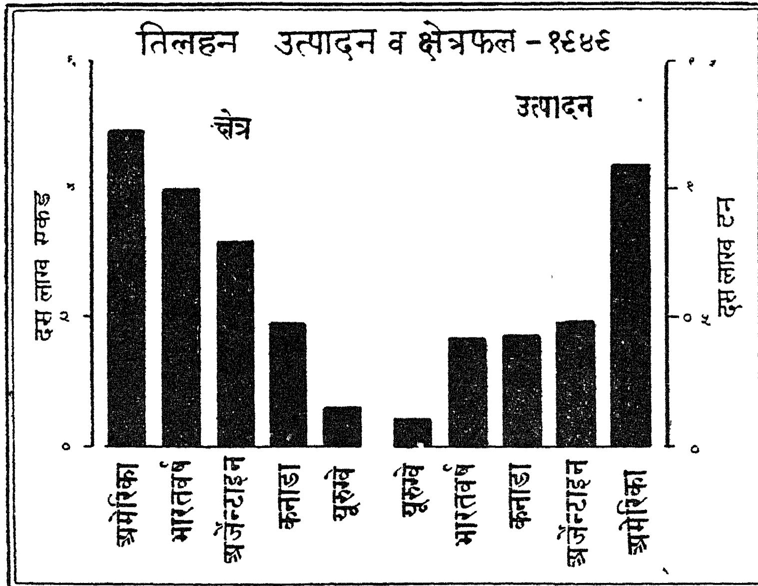
तीसरा कारण यह है कि भारत में रेंडी के बीज की अपेक्षा ब्राजील की रेंडी अधिक अच्छी होती है और फिर भारत में तिलहन के दाम अन्य देशों से ऊंचे हैं तथा कनाडा व दक्षिणी अमरीका के लिये बिल्कुल ही अनुपयुक्त हैं। इन्हीं सब कारणों से भारतीय तिलहन की निर्यात मात्रा घट गई है।

तिलहन का उत्पादन (१९४९)

(हजार टनों में)

तिलहन	विश्व उत्पादन	भारतीय उत्पादन	विश्वव्यापी उत्पादन प्रति भारतीय उत्पादन का प्रतिशत औसत
मूंगफली	५०००	३०७३	६१.५
तिल	११००	२९५	२६.८
रेंडी	५००	१०९	२१.८
सरसों	४८००	७२६	१५.१
अलसी	२९००	४३९	१५.१

भारत की ८ प्रतिशत खेतिहर भूमि पर तिलहन की खेती होती है और कुल वार्षिक उत्पादन ७० लाख टन से भी अधिक होता है।



चित्र नं० ३३

निर्यात द्वारा विदेशी मुद्राओं के अर्जन करने के लिये और बढ़ती हुई स्थानीय मांग

की पूर्ति के लिये तिलहन का उत्पादन बड़ाने के लिये पर्याप्त प्रयत्न करने की आवश्यकता है। लेकिन इस समय देश के संमुख खाद्यान्नों की भी भारी कमी का प्रश्न है। इसलिए तिल्हन का उत्पादन केवल उन्हीं क्षेत्रों में बढ़ाया जा सकता है जो या तो खाद्यान्नों की खेती के लिये अनुपयुक्त हैं या प्रमुख फसलों के बाद अच्छी भूमि पर ही। बंबई और उत्तर प्रदेश में रबी की फसलों के पहले मूंगफली की एक फसल उगाई जा सकती है। मद्रास में चावल की फसल के बिल्कुल बाद ही मूंगफली व तिल की फसल हो सकती है। मैसूर में कपास के क्षेत्रों में मूंगफली का उत्पादन बढ़ाया जा सकता है। पूर्वी पंजाब और पेप्सू में भी मूंगफली के उत्पादन की सम्यक् संभावनाएं हैं।

इस समय तिलहन की मांग तेल व वनस्पति घी बनाने में होती है। भारत में मौहवा, नीम, करंजः और रेंडी के बीजों से अखाद्य तेल प्राप्त होता है। इनका अधिकाधिक प्रयोग वार्निश, साबन आदि उद्योगों में होना चाहिए ताकि खाद्य तेल अधिक मात्रा में प्राप्त हो सके। उड़ीसा में साल के बीजों से तेल भी प्राप्त हो सकता है।

अलसी—संसार के प्रमुख अलसी उत्पादक देशों में भारत का दूसरा स्थान है। यद्यपि अलसी के पौधे से रेशे भी प्राप्त होते हैं परन्तु इसके बीजों का ही अधिक उपयोग होता है।

उपज की दशायें—अलसी उन्हीं क्षेत्रों में उगाई जाती है जहां गेहूं और जलवृष्टि के फौरन बाद ही इसको बो दिया जाता है। इसकी फसल की कटाई फरवरी के महीने में शुरू होती है।

अलसी अधिकतर वर्षा से प्राप्त पानी पर ही निर्भर रहती है और इसके सफल उत्पादन के लिये ३० इंच से ७० इंच तक की वार्षिक वर्षा अत्यावश्यक है।

उपज के क्षेत्र व व्यापार—अलसी विशेषकर मध्य प्रदेश, बिहार, उड़ीसा, उत्तर प्रदेश, बंबई और पश्चिमी बंगाल में उगाई जाती है। हैदराबाद, पूर्वी पंजाब और कोटा में भी इसकी खेती होती है। परन्तु अलसी का सबसे अधिक उत्पादन उत्तर प्रदेश और फिर उसके बाद बंबई में होता है।

अलसी का उत्पादन क्षेत्रफल (१९४९)

	क्षेत्रफल (हजार एकड़ में)	उत्पादन (हजार टनों में)
मध्य प्रदेश	१,११६	९७
उत्तर प्रदेश	१७७	१६१
बिहार	३७४	७१
मध्य भारत	३९७	२२
राजस्थान	२२१	१०
हैदराबाद	४७४	४३
विंध्य प्रदेश	१६८	२५
कुल योग	३,१२५	४३२

सन् १९५०-५१ में भारत की ३५ लाख एकड़ भूमि से ३,८५,००० अलसी पैदा हुई और इसी वर्ष में भारत ने ६८,००० टन अलसी का निर्यात किया जिसका मूल्य ५ करोड़ ६० लाख था। इस निर्यात की आधी मात्रा अकेले जापान ने ली। सन् १९५२ में ५ करोड़ ६० लाख रुपये के मूल्य का ६० लाख टन अलसी का तेल बाहर भेजा। इस को लेने वाले प्रमुख देश ग्रेट-ब्रिटेन, फ्रांस, बेलजियम, इटली और हालैंड थे।

अलसी का दो-तिहाई निर्यात व्यापार बंबई के बन्दरगाह से होता है परन्तु इसको अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में अर्जेन्टाइना से स्पर्धा करनी पड़ती है।

सरसों—सरसों को भी गेहूं के साथ उगाते हैं। इसका उत्पादन उत्तरी भारत में सीमित है और उत्तर प्रदेश, पश्चिमी बंगाल, पूर्वी पंजाब, बिहार और उड़ीसा इसकी उपज के प्रमुख क्षेत्र हैं। केवल उत्तर प्रदेश से कुल उपज का आधा भाग प्राप्त होता है। यह ग्रेट ब्रिटेन, इटली, बेलजियम और फ्रांस को निर्यात भी की जाती है।

सन् १९४८-४९ में भारत ने १३७ टन सरसों निर्यात की और इसी साल २,२२,४७९ गैलन सरसों का तेल बाहर भेजा गया। सन् १९४९-५० में भारत ने ३०,००० टन सरसों का तेल पाकिस्तान भेजा। इसके अलावा पाकिस्तान की १५,००० टन सरसों के बदले में भारत ने ५००० टन सरसों का तेल दिया।

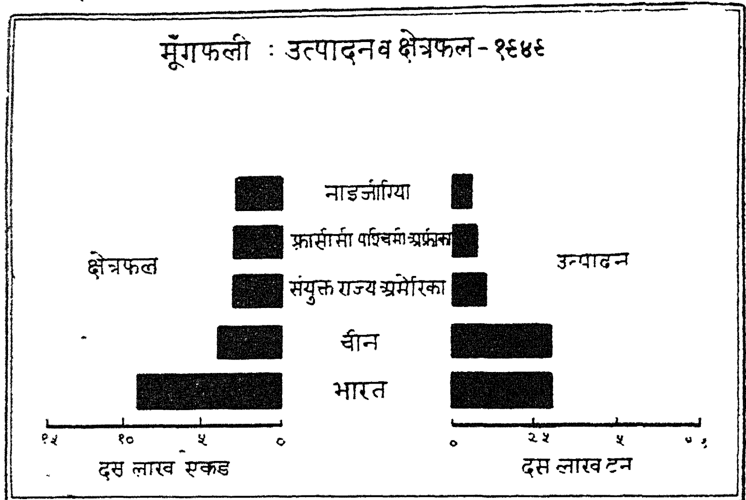
मूंगफली—भारत संसार का सबसे प्रमुख मूंगफली उत्पादक देश है और मूंगफली के उत्पादन में इसके बाद फ्रांसीसी पश्चिमी अफ्रीका, चीन, संयुक्त राष्ट्र व इंडोनेशिया का स्थान आता है। मूंगफली वास्तव में उष्णकटिबंध की फसल है और भारतीय प्रायद्वीप में इसकी विस्तृत खेती होती है। इसकी फसल मई-अगस्त में बोई जाती है और नवम्बर से जनवरी तक इसकी कटाई होती है। मूंगफली प्रधानतः मद्रास, बंबई और हैदराबाद में उगाई जाती है। पिछले कुछ दिनों से मध्य प्रदेश और छोटा नागपुर प्रदेश में भी इसकी खेती शुरू की गई है।

मूंगफली का उत्पादन (१९४९-५०)

	क्षेत्रफल (हजार एकड़ में)	उत्पादन (हजार टनों में)
मद्रास	३८६३	१६४६
बंबई	१९३४	७३१
मध्य प्रदेश	६७५	१६३
हैदराबाद	१६१९	४०६
मैसूर	२७२	४१
कुल योग	८३६३	२९८७

सन् १९५०-५१ में ११० लाख एकड़ भूमि से ३४ लाख टन मूंगफली उत्पन्न की गई।

सन् १९४९-५० में भारत ने १,२६,०० टन मूंगफली बाहर निर्यात की और



चित्र नं० ३४—सन् १९५० में मूंगफली का उत्पादन १९२८-२९ के समान ही था।

इसका कुल मूल्य ९ करोड़ रुपया था। इसके विपरीत सन् १९५१-५२ में भारत से केवल २०,००० टन मूंगफली ही बाहर भेजी गई और इसका कुल मूल्य २.३ करोड़ रुपया था। निर्यात की इस कमी का कारण यह है कि भारत मूंगफली के बजाय अब मूंगफली का तेल अधिक निर्यात करता है। सन् १९५१ में भारत ने १६ करोड़ ७० लाख रुपये मूल्य का मूंगफली का तेल बाहर भेजा और आयात करने वाले मुख्य देश कनाडा, स्विट्जरलैंड, फ्रांस, बेलजियम, जर्मनी, इटली और ग्रेट ब्रिटेन हैं।

अधिक निर्यात व्यापार बंबई, मद्रास और कच्छ बन्दरगाहों से होता है। कुल निर्यात का ३/४ भाग केवल बंबई बन्दरगाह से ही होता है।

तिल—भारत में तिल का उत्पादन बहुत पुराना है और इस समय तिल उत्पादन में भारत संसार का प्रमुख देश है। भारत में उत्तर प्रदेश तिल उत्पादन का मुख्य क्षेत्र है। सन् १९४८-४९ में ४० लाख एकड़ भूमि पर तिल उगाया जाता था। सन् १९५०-५१ में ५६ लाख एकड़ भूमि से ४ लाख ५३ हजार टन तिल प्राप्त किया गया। अनुमान है कि सन् १९५३-५४ में ३६,४२,००० एकड़ भूमि पर तिल उगाया जा रहा है।

तिल का पौधा हल्की बलुही मिट्टी पर अच्छा पनपता है यद्यपि काली कपास वाली मिट्टी पर भी कई मेल के तिल की खेती की जाती है। भारत से तिल का निर्यात ग्रेट-ब्रिटेन, फ्रांस, बेलजियम, जर्मनी, इटली और मिश्र को होता है।

इधर कुछ दिनों से तिल का निर्यात काफी कम हो गया है। सन् १९४७-४८ में

भारत से ८८६ टन तिल और ८७६ गैलन तिल का तेल बाहर भेजा गया परन्तु सन् १९४८-४९ में यह निर्यात इतना घट गया कि केवल ३३ टन तिल और ३ गैलन तिल का तेल ही निर्यात किया गया ।

रेंडी—रेंडी के उत्पादन में भारत का एकाधिपत्य है यद्यपि थोड़ी बहुत मात्रा में रेंडी मनचूरिया, इंडोचीन, ब्राजील और जावा में भी उगाई जाती है ।

रेंडी के पौधे को गर्म जलवायु की आवश्यकता होती है । बीज बोने के बाद इसे साधारण नमी व वर्षा की आवश्यकता होती है परन्तु जड़ें फूट निकलने के बाद इसे कम नमी की आवश्यकता होती है । मक्का के उपयुक्त भूमि पर यह खूब पनपता है । इस पौधे की ऊंचाई २० से ३० फीट तक रहती है ।

यह अधिकतर मद्रास, हैदराबाद, बंबई और मध्य प्रदेश में उगाया जाता है और इन सब राज्यों में मिलाकर १० लाख एकड़ से भी अधिक भूमि पर रेंडी उगाई जाती है ।

अब भारत से रेंडी का निर्यात नहीं होता । बीज के स्थान पर रेंडी के तेल का निर्यात बहुत बढ़ गया है । सन् १९५१-५२ में भारत से ६० लाख गैलन रेंडी का तेल निर्यात किया गया जबकि सन् १९३८-३९ में केवल १० लाख गैलन ही बाहर भेजा जाता था । इसके मुख्य खरीदार ग्रेट ब्रिटेन, फ्रांस, संयुक्त राष्ट्र, बेलजियम, इटली, जर्मनी, स्पेन और कनाडा हैं ।

केवल ग्रेट ब्रिटेन निर्यात मात्रा का आधे से अधिक भाग मंगवाता है । शेष का २० प्रतिशत भाग संयुक्त राष्ट्र को जाता है ।

नारियल और गिरी— नारियल तेल का बड़ा अच्छा स्रोत है । उष्णकटिबंधीय प्रदेशों में नारियल का पेड़ द्वीपों और समुद्री किनारों पर वहुत मिलता है । इसकी उपज के लिये उच्च तापक्रम और भारी वर्षा की आवश्यकता होती है । नदियों द्वारा लाई हुई मिट्टी इसके लिये बहुत उपयुक्त होती है । ५-१० साल में नारियल का पेड़ तैयार हो जाता है और फिर लगभग ८० साल तक इसमें बराबर फल आते रहते हैं । प्रत्येक पेड़ से औसत में हर साल ५० से ७० फल निकलते हैं । नारियल के फल से दो वस्तुएं प्राप्त होती है— गिरी और जटा ।

नारियल की गिरी को तोड़ कर धूप में सुखा लेते हैं । इसका व्यापारिक नाम कोपरा है । इसके अन्दर तेल का अंश होता है और इसीलिये इसकी बड़ी मांग रहती है । यह तेल खाने योग्य होता है और भोजन बनाने में इसका प्रयोग होता है । इससे मारगेरीन भी बनाई जाती ह ।

भारत में १५ लाख एकड़ भूमि पर नारियल उगाया जाता है । मद्रास, ट्रावनकोर-कोचीन और मैसूर में सबसे अधिक नारियल होता है । वैसे उड़ीसा, बंबई, पश्चिमी बंगाल और आसाम में भी नारियल के पेड़ पाये जाते हैं । मद्रास की तीन-चौथाई उपज मालाबार, दक्षिणी कनारा और पूर्वी गोदावरी में पाई जाती है । ट्रावनकोर राज्य

के मध्य भाग और किनारे की निम्न भूमियों पर नारियल के पेड़ उगाये जाते हैं। कोचीन राज्य में पश्चिमी तटीय प्रदेश में नारियल के पेड़ पाये जाते हैं। मैसूर राज्य के टांकुर, हसन, मैसूर, चितार दुर्ग और कादूर जिलों में नारियल के बड़े-बड़े वृक्ष पाये जाते हैं। उड़ीसा के पुरी और कटक जिलों में नारियल के पेड़ों का बड़ा जमघट है। बंबई के कनारा और रत्नगिरी प्रदेशों से नारियल की समस्त उपज का नवदशांश नारियल प्राप्त होता है।

भारत में नारियल के कई उपयोग हैं। कच्ची गिरी को लोग खाते हैं और कच्चे नारियल का दूधिया पानी पीते हैं। पकी गिरी का (१) कोपरा बनाने (२) मन्दिरों में पूजा चढ़ाने (३) बीज बोने और (४) खाने में उपयोग होता है।

भारत की ४५ प्रतिशत गिरी से कोपरा तैयार कर लिया जाता है और इतनी ही मात्रा का घरेलू वस्तुओं में उपयोग होता है जैसे कढ़ी, चटनी, मिठाई और हलवा आदि बनाने में। शेष १० प्रतिशत कच्ची गिरी के रूप में या कच्चे नारियल (डाब) के रूप में उपयुक्त होती है।

बिनौला—१९वीं शताब्दी तक बनौला का विशेष महत्व नहीं था। परन्तु अब इससे प्राप्त तेल का विभिन्न उपयोग होता है। इससे भोजन बनाया जाता है। दवाखानों म दवाइयां बनती हैं, मारगेरीन व लार्ड मक्खन तैयार किया जाता है और अनेक अवसरों पर जैतून के तेल के स्थान पर इसे प्रयोग करते हैं।

बंवई, पूर्वी पंजाब, मध्य प्रदेश, हैदराबाद और मद्रास में सब से अधिक बिनौला उत्पन्न किया जाता है। सन् १९३७ में बिनौले का कुल उत्पादन २० लाख तन था।

इन तिलहनों के अतिरिक्त भारत में पोस्त की बोड़ी, महुआ और अन्य बहुत से तेल उत्पादक बीज पाये जाते हैं।

रबड़

सन् १९०० में भारत सचिव मारक्विस आप सेलसबरी (Marquis of Salisbury) ने भारत में रबड़ के बागीचे लगवाये। दक्षिणी अमरीका के अमेजन प्रदेश से 'अमेजन पारा रबड़' के बीज भारत भेजे गये और सन् १९०२ में ट्रावनकोर में पेरियर नदी के किनारों पर रबड़ का पहला बागीचा लगाया गया। रबड़ उत्पादन में सन् १९२९ तक उत्तरोत्तर वृद्धि होती रही परन्तु उस वर्ष मन्दी आ गई और आगे वृद्धि न हो सकी। सन् १९४२ में इण्डोनेशिया द्वीपों और मलाया पर जापान का अधिकार हो जाने के बाद भारत में रबड़ का व्यवसाय फिर बढ़ने लगा।

इस समय भारत में रबड़ का वार्षिक उत्पादन ३५,००० टन है परन्तु इसकी केवल आधी मात्रा ही अच्छे मेल की होती है। शेष आधी मात्रा मामूली किस्म की होती है। रबड़ की खेती भारत के दक्षिणी भाग में ही होती है। मद्रास, कुर्ग, मैसूर, ट्रावनकोर

और कोचीन रबड़ के प्रधान उत्पादक राज्य हैं। सन् १९५१ में भारत की १७०,००० एकड़ भूमि पर रबड़ के बागीचे थे और प्रति एकड़ उपज २५८ पौंड है।

रबड़ के बगीचों का क्षेत्रफल (१९५०)

मद्रास	३१,००० एकड़	कुर्ग	३,००० एकड़
ट्रावनकोर	१,२३,००० ,,	मैसूर	४०० ,,
कोचीन	१४,०००		

दक्षिणी भारत में यातायात की सभी सुविधाएं उपस्थित हैं। रबड़ के बागीचों में इसीलिये मजदूरों की कभी भी कमी नहीं रहती। भारत के रबड़ के बागीचों में करीब ३० हजार मजदूर काम करते हैं।

दूसरे महायुद्ध से पहले भारतीय रबड़ की देश में कोई विशेष खपत नहीं थी। प्राय: भारत का रबड़ ग्रेट ब्रिटेन, लंका, हालैंड, स्ट्रेट प्रायद्वीप और जर्मनी को निर्यात कर दिया जाता था। भारत की कुल निर्यात मात्रा का ३५ प्रतिशत भाग ग्रेट ब्रिटेन ले लेता था। कोचीन बन्दरगाह से निर्यात किया जाता था।

सन् १९३४ के जून मास से रबड़ के उत्पादन व निर्यात पर नियंत्रण रखने के लिये एक अन्तर्राष्ट्रीय विधि चालू की गई है। इसका मुख्य ध्येय रबड़ के उत्पादन व निर्यात को नियमित करके दामों को उचित स्तर पर लाना है ताकि उत्पादकों को उचित लाभ प्राप्त हो सके।

दूसरे महायुद्ध काल में भारत सरकार ने रबड़ का निर्यात बिल्कुल ही बन्द कर दिया था और देश की सारी उपज को स्वयं खरीद लेती थी। लड़ाई बन्द हो जाने के बाद भारतीय रबड़ उत्पादकों की बुरी दशा हुई। आयात किये गये रबड़ की अपेक्षा भारतीय रबड़ महंगा पड़ता है। इसलिये रबड़ उगाने वाले चाहते हैं कि भारत सरकार आयात पर प्रतिबंध लगाकर उनके व्यवसाय को प्रोत्साहन दे।

वैसे तो भारत के रबड़ वस्तु निर्माण उद्योग में देशी रबड़ की पूरी उपज खप सकती है परन्तु इस समय आयात पर प्रतिबंध लगा देने से हानि अधिक होगी। भारत में रबड़ की ऐसी बहुत-सी वस्तुएं आती हैं जो हमारे कारखानों में नहीं बनतीं। अतएव आयात रोकने के पहले यह जरूरी है कि देश के उद्योग-धंधे की इतनी उन्नति की जाय कि वे सभी वस्तुएं हमारे यहां बनने लगें।

दूसरे महायुद्ध से भारत में रबड़ की खपत काफी बढ़ गई है और इस बढ़ी हुई मांग की पूर्त्ति के लिये रबड़ के उत्पादन में वृद्धि होना बहुत आवश्यक है। आजकल प्रति वर्ष भारत ५००० टन रबड़ बाहर से मंगवाता है यद्यपि उसके लिये उसे कहीं अधिक मूल्य देना पड़ता है।

रबड़ के उत्पादन और क्रय-विक्रय की देखभाल के लिये सन् १९४७ के रबड़ कानून के आधीन भारत सरकार ने एक 'भारतीय रबड़ समिति' स्थापित की है।

यह समिति आयात के विषय में भारत सरकार को भी सलाह देती है और भारत में उत्पन्न रबड़ का मूल्य निर्धारित करती है। देश में उत्पन्न रबड़ पर कर लगा दिया गया है तथा रबड़ व्यवसाय की आज्ञा प्राप्त करने के लिये फीस देनी पड़ती है। इस आय से इस बोर्ड का व्यय चलता है।

आलू

इस समय देश में सबसे अधिक लोकप्रिय सब्जी आलू है। यद्यपि १८ वीं शताब्दी तक इसको कोई जानता भी न था परन्तु आजकल यह सभी के भोजन का एक मुख्य अंश है। भारत में लगभग ५ लाख एकड़ भूमि पर आलू की खेती की जाती है और कुल उत्पादन करीब २० लाख टन है।

आलू जाड़े की फसल है और साधारणतया मैदानों में होता है। १० प्रतिशत उत्पादन गर्मियों में पहाड़ी भागों से प्राप्त होता है। आलू की उपज का मौसम जनवरी से अप्रैल तक रहता है। शीतभंडार रीति की सुविधा न होने के कारण गर्मी में आलू कम मिलता है और इसीलिये दाम भी बढ़ जाते हैं।

आलू के मुख्य उपज क्षेत्र उत्तर प्रदेश, बिहार और पश्चिमी बंगाल हैं। इन तीनों राज्यों में कुल मिला कर ७५ प्रतिशत आलू प्राप्त होता है।

अफीम

भारत में अफीम की खेती सदैव होती रही है परन्तु इधर कुछ दिनों से इसकी खेती को कम किया जा रहा है। साधारणतया अफीम के निर्यात से प्रतिवर्ष भारत २० लाख डालर प्राप्त करता है। अनेक पाश्चात्य देश वैज्ञानिक और औषधि के लिए अफीम मंगाते हैं।

भारत में अफीम के प्रमुख उत्पादक राज्य मध्य भारत और राजस्थान हैं। इन दोनों राज्यों में सूखा पड़ जाने से अबकी दफे अफीम की उपज अच्छी नहीं हुई है। अत: १९५३-५४ में भारत केवल १० लाख डालर ही प्राप्त कर पायेगा। इस साल का कुल उत्पादन १५००० मन तक होने की उम्मीद है। इसमें से ३००० मन तो घरेलू उपभोग में आ जायेगा बाकी १२००० मन अफीम का निर्यात कर दिया जायेगा।

इस समय कुल मिलाकर ७५००० एकड़ भूमि पर अफीम की खेती की जाती है। इस क्षेत्रफल का वितरण इस प्रकार है—उत्तरप्रदेश २५,००० एकड़; मध्य भारत ३०,००० एकड़; राजस्थान २०,००० एकड़ और हिमाचल प्रदेश २००० एकड़।

भारत में अफीम का उत्पादन व विक्रय सन् १९४९ से भारत सरकार की नशीली वस्तुओं की संस्था (Narcotics Organisation) के हाथ में है। इसका ध्येय अफीम की खेती को बराबर घटाते जाना है ताकि सन् १९५९ में इसका नशे के रूप में उपयोग बिल्कुल बन्द हो जाय। सन् १९५९ तक भारत में अफीम की खेती का क्षेत्रफल केवल

४०,००० एकड़ रह जायेगा जिससे ८००० मन अफ़ीम पैदा होगी। इसमें सें करीब २०० टन बाहर भेज कर बाकी देश के रासायनिक व औषधि उद्योग के लिए काफी होगी।

प्रश्नावली

१. चीनी के लिये भारत आत्म-निर्भर क्यों नहीं है? इस देश में गन्ने की खेती के मुख्य क्षेत्रों का नाम लिखिये और जिन परिस्थितियों में यह खेती होती है उनका वर्णन कीजिये।

२. भारत के आर्थिक जीवन में तिलहन का क्या महत्व है? मुख्य तिलहनों तथा उनके उपज क्षेत्रों का नाम लिखिये। साधारणतया तिलहन की खेती यहां कैसी दशा में होती है?

३. कृषि की क्या महत्ता है? कृषि की उपज में भारत कहां तक अपने ऊपर भरपूर भरोसा कर सकता है?

४. विविध फसलों के उत्पादन में भूमि की बनावट का क्या प्रभाव पड़ता है? उदाहरण देते हुए समझाइये।

५. कपास के उत्पादन के लिये किन भौगोलिक दशाओं की आवश्यकता होती है? भारत में कपास की उपज के मुख्य क्षेत्रों का विवरण दीजिये।

६. पटसन के उत्पादन के लिये कौन-कौन सी भौगोलिक परिस्थितियां आवश्यक हैं? भारत में पटसन के उत्पादन की क्या स्थिति है?

७. भारत की तीन प्रमुख खाद्य फसलों का वितरण बतलाइये। इन पर कौन-सी भौगोलिक व जलवायु संबंधी परिस्थितियां प्रभाव डालती हैं? उनका विवरण दीजिये।

८. भारत में कपास किन भौगोलिक परिस्थितियों में उगाई जाती है? भारतीय कपास का रूखापन व प्रति एकड़ उपज की कमी इन्हीं परिस्थितियों के कारण कहां तक कही जा सकती है?

९. भारत में तम्बाकू व रेशम के उत्पादन के मुख्य क्षेत्र कौन-कौन से हैं? इन वस्तुओं के लिये जलवायु संबंधी कौन-सी दशायें आवश्यक होती हैं?

१०. भारत में पैदा किये जाने वाले ५ तिलहनों का नाम लिखिये। ये किन क्षेत्रों में उगाये जाते हैं और इनका क्या उपभोग होता है?

११. निम्नलिखित वस्तुओं के उत्पादन का महत्व बतलाइये—

(अ) मूंगफली, (आ) अलसी, (इ) चावल, (ई) गेहूं (उ) पटसन, (ऊ) कपास।

१२. भारत से तिलहन के निर्यात का आर्थिक प्रभाव क्या है? ये तिलहन किन देशों को निर्यात किये जाते हैं और वहां इनका क्या उपयोग होता है?

१३. चाय, कहवा, गन्ना व चावल के लिये कौन-सी भौगोलिक परिस्थितियां आवश्यक होती हैं। भारत में इन वस्तुओं के उपज क्षेत्र बतलाइये।

१४. भारत में उत्पन्न दो मुख्य रेशेदार फसलों का नाम बतलाइये। ये फसलें किन भौगोलिक परिस्थितियों में उगाई जाती हैं?

१५. चावल व गेहूं के लिये कौन-सी उपज की दशाय आवश्यक हैं? भारत के कौन से क्षेत्र इन वस्तुओं के उत्पादन के लिये विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं और क्यों?

१६. भारत को भोजन के दृष्टिकोण से पूर्णतः आत्म-निर्भर बनाने के लिये क्या कुछ होना चाहिये?

१७. भारत में चावल व पटसन दोनों की ही कमी है। इन दोनों के उत्पादन को किस प्रकार बढ़ाया जा सकता है?

१८. भारत के एक मानचित्र पर खाद्य फसलों के उत्पादक क्षेत्रों को दिखलाइये। भारत के बहुत से भागों में खाद्य वस्तुओं की कमी का क्या कारण है?

अध्याय : : चार

सिंचाई के साधन

भारत प्रमुख रूप से कृषि-प्रधान देश है और इसलिये पानी की आवश्यकता बड़ी महत्वपूर्ण है। प्रायः भारत को मानसूनी वर्षा से ही जल प्राप्त होता है परन्तु इस वर्षा की प्रकृति व वितरण में कई दोष हैं। मुख्य दोष निम्नलिखित चार श्रेणियों में बांटे जा सकते हैं:—

(१) **अनिश्चित वर्षा**—राजपूताना और पूर्वी पंजाब के कुछ भागों में वर्षा का कुछ ठिकाना नहीं रहता।

(२) **अनियमित वितरण**—दक्षिण के प्रायद्वीप में वर्षा केवल कम मात्रा में ही नहीं होती है बल्कि कहीं होती है और कहीं बिल्कुल ही नहीं।

(३) **जाड़ों में वर्षा का न होना**—जाड़ों में पर्याप्त वर्षा न होने के कारण जाड़े की फसलों को बाहर से कृत्रिम तरीके से पानी पहुंचाना होता है।

(४) **वर्षा की मात्रा की अपर्याप्तता**—चावल व गन्ना जैसी फसलों के लिये वर्षा से प्राप्त पानी काफी नहीं होता; अतएव उन्हें ऊपर से पानी देना पड़ता है।

वास्तव में वर्षा की ये सभी त्रुटियां मनुष्य की शक्ति से परे हैं। वर्षा न होने से या अधिक वर्षा हो जाने से देश में अकाल पड़ जाता है। फसलें नष्ट हो जाती हैं और जन-पशु की हानि हो जाती है। इसको रोकने का एकमात्र उपाय सिंचाई के साधनों की व्यवस्था है। सिंचाई के विभिन्न साधनों द्वारा कम वर्षा के क्षेत्रों में पानी पहुँचाया जा सकता है और अधिक वर्षा से होने वाली बाढ़ के पानी को इधर-उधर भेज कर बाढ़ से होने वाली हानि को भी रोका जा सकता है।

सिंचाई के अर्थ और प्रकार—सिंचाई के अर्थ हैं नदियों या तालाबों से नालियाँ या नहरें निकालकर खेतों तक पानी पहुंचाना। विभिन्न कृत्रिम तरीकों से खेतों को पानी देने का काम भारतीय किसान बहुत दिनों से करते आ रहे हैं। वास्तव में भारतीय ग्रामों के आर्थिक जीवन में सिंचाई का बड़ा महत्व है। सच तो यह है कि देश के उन सभी भागों में, जहां, औसत वर्षा ५० इंच से कम होती है, सिंचाई द्वारा पानी की व्यवस्था करनी पड़ती है। इस प्रकार राजपूताना, जहां वर्षा ५ इंच से कम होती है, उत्तर प्रदेश, मध्य-प्रदेश, बिहार, उड़ीसा और केवल पश्चिमी तटीय प्रदेश को छोड़ कर समस्त दक्षिणी पठारी भाग में खेती के उद्यम के लिये सिंचाई अनिवार्य है।

भारत में सिंचित भूमि का क्षेत्रफल संसार में सब से अधिक है और कुल मिला कर

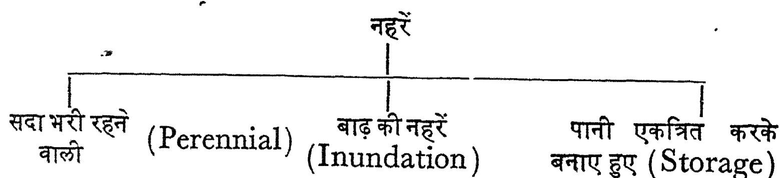
४८० लाख एकड़ भूमि पर सिंचाई की जाती हैं। इस में से करीब ३०० लाख एकड़ भूमि पर खाद्यान्न उगाये जाते हैं। अतः भारत की भोजन समस्या के लिये सिंचाई का महत्व स्पष्ट है।

भारत में सिंचाई का क्षेत्रफल निम्न प्रकार से बांटा हुआ है—

हिमालय प्रदेश	२६ लाख एकड़
उत्तरी मैदानी भाग	२५२ ,, ,,
दक्षिण के पठार व पहाड़	९३ ,, ,,
पश्चिमी घाट व तटीय मैदान	१६ ,, ,,
पूर्वी घाट व तटीय मैदान	१०० ,, ,,

भारत में सिंचाई के मुख्य साधन तीन हैं।

(१) कुएं (२) तालाब, और (३) नहरें। इनमें नहरें सबसे अधिक महत्व की हैं और प्रायः तीन प्रकार की होती हैं—



(१) कुएं—भारत की कुल सिंचित भूमि के २० प्रतिशत भाग में कुओं द्वारा सिंचाई होती है। अधिकतर कुओं का निर्माण व संरक्षण विशेष व्यक्तियों ने अपने आप ही किया है। कुओं से पानी निकालने की कई रीतियां जिनमें सब से प्रमुख व प्रचलित रीतियां निम्नलिखित हैं—

(अ) हाथ से खींचना, (ब) बैलों द्वारा निकालना, (स) बाल्टों द्वारा निकालना (द) रहट द्वारा और (ई) तेल इंजिनों द्वारा।

कुएं से सिंचाई का रिवाज उत्तर प्रदेश, पूर्वी पंजाब, बंबई और राजपूताना में बहुत अधिक है। भारत के सभी पूर्वी भागों में सतह पर कुएँ खोदकर सिंचाई करने की रीति बहुत प्रचलित है। कुएं दो प्रकार के होते हैं—एक तो वे जो शीघ्र ही खत्म हो जाते हैं और दूसरे वह जो पाताल फोड़ कर बनाये जाते हैं इसलिये उनमें पानी हमेशा बना रहता है। साधारण कुओं की अपेक्षा पाताल-फोड़ कुएं अधिक लाभप्रद होते हैं; पिछले कुछ दिनों से ट्यूब बैलों (यंत्र संचालित पाताल-फोड़ कुओं) का प्रचार बढ़ रहा है और भारत सरकार अपनी योजना के अनुसार विभिन्न स्थानों पर इस तरह के कुएं बनवा रही है। परन्तु इस प्रकार के कुओं की सफलता तभी हो सकती है जब बिजली सस्ते दामों में और काफी मात्रा में उपलब्ध हो। अभी तक इनका विशेष प्रचार पश्चिमी उत्तर प्रदेश, राजस्थान और दक्षिणी उत्तर प्रदेश में ही हुआ है।

कुओं की सिंचाईं में एक दोष भी है। वह यह कि इसके जल में उपज बढ़ाने के गुण नहीं होते हैं। नहरों में पानी नदियों से आता है, जिन में कई प्रकार के खनिज नमक घुले रहते हैं। यह बात कुंए के जल में नहीं होती। इसलिये कुओं से सिंचित भूमि में खाद का भी प्रयोग करना होता है। कुएं से सींची हुई भूमि से पर्याप्त उपज प्राप्त करने के लिये भारत की केन्द्रीय व राज्य सरकारें कृत्रिम व स्वाभाविक खाद देने की व्यवस्था कर रही हैं।

२. **तालाब**—तालाब वास्तव में भूपटल पर अपने आप बने हुए या कृत्रिम तरीकों से बनाये गये गड्ढे हैं जिनमें वर्षा का पानी एकत्रित हो जाता है। तालाबों से सिंचाई मद्रास, मैसूर और हैदराबाद राज्यों में की जाती है। तालाबों से सिंचित भूमि का कुल क्षेत्रफल लगभग ८० लाख एकड़ है।

३. **नहरें**—नहरें सिंचाई का सबसे महत्वपूर्ण साधन हैं और इनमें या तो नदियों से पानी पहुंचाया जाता है या कृत्रिम तालाबों में इकट्ठा किये हुए जलाशयों से। नहरें बनाने के वास्ते समतल भूमि का होना आवश्यक है और यदि सदा लबालब भरी हुई नदियां हों तो और भी अच्छा है। इसीलिये नहरों द्वारा सिंचाई की व्यवस्था उत्तरी भारत में केन्द्रित है, जहां, भूमि समतल व मुलायम है तथा नदियां सदा पानी से भरी रहती हैं। यही कारण है कि उत्तरी भारत की सभी नहरें नदियों से निकाली गई हैं। इनके विपरीत दक्षिणी भारत, मध्य प्रदेश और बुन्देलखंड की नदियां गर्मी में सूख जाती हैं। इसलिये कृत्रिम उपायों से पानी इकट्ठा करना पड़ता है। बहुधा घाटी के मुंह पर बांध बना कर वर्षा के पानी को इकट्ठा कर लिया जाता है और फिर उसी जलाशय से नालियों द्वारा आसपास की भूमि पर जल वितरण कर दिया जाता है। कुल मिलाकर २०० लाख एकड़ भूमि पर नहरों द्वारा सिंचाई होती है।

नदियों से निकलने वाली नहरें दो प्रकार की होती हैं—

(१) बाढ़ की नहरें और (२) सदा भरी रहने वाली नहरें। बाढ़ की नहरों में उसी समय पानी आता है, जब नदियों का जल बाढ़ के कारण ऊपर उठ जाता है। जब नदी के जल का तल नीचा हो जाता है तो इन नहरों में भी पानी नहीं रहता। फलतः जाड़े के मौसम में या अन्य शुष्क ऋतु में ये नहरें सर्वथा बेकार हो जाती हैं। जब नदियों में बाढ़ आई हुई रहती है तो इनकी सहायता से विस्तृत खेती हो सकती है। प्रायः अक्तूबर से अप्रैल तक नदियों में पानी का तल नीचा हो जाता है और इसलिये उस काल में इन नहरों से कुछ भी सहायता नहीं मिलती है। इन सात महीनों के लिये कुओं से सिंचाई करनी पड़ती है और यही द्विविधा इनका बड़ा भारी दोष है। इस दोष को दूर करने के लिये सदैव पूरित रहने वाली नहरें बनाई जाती हैं।

सदैव पूरित रहने वाली नहरें (Perennial Canals) उन नदियों से निकाली जाती हैं जिन में बराबर साल भर पानी भरा रहता है। नदी के पानी के प्रवाह

को बांध द्वारा रोक लिया जाता है और फिर इस रोके गये जल से नहरें निकाल कर आस-पास की भूमि को सींचा जाता है। उत्तर प्रदेश की सभी नहरें इस प्रकार की हैं। बहुत-सी बाढ़ वाली नहरों को भी सदा पूरित रहने वाली नहरों में परिणत कर दिया गया है। इस प्रकार की नहरों की सहायता से अनिश्चित वर्षा के प्रदेश में कृषि उपज बहुत बढ़ गई है। इसके सहारे साल भर बराबर खेती हो सकती है और शुष्क काल में भी किसानों को अपने साधनों पर पूरा भरोसा रहता है।

सिंचाई के साधनों का प्रादेशिक वितरण—पंजाब में सिंचाई की योजनाओं के लिये आदर्श दशाएं उपस्थित हैं। भूमि समतल हैं और नदियों द्वारा लाई हुई मिट्टी मुलायम है। इसीलिये यहां पर नहरों का एक जाल-सा बिछा हुआ है और इनकी सहायता से विस्तृत मरुस्थल समभूमि में उपजाऊ खेतिहर प्रदेश बन गये हैं।

पूर्वी पंजाब की प्रमुख नहरें निम्नलिखित हैं:—

(१) **पश्चिमी जमुना नहर**—जमुना नदी से निकलती है और रोहतक, दक्षिणी पूर्वी हिसार, पटियाला और जींद के प्रदेशों को सींचती है। इस नहर में १९०० से भी अधिक नालियां हैं और इनके द्वारा ८,९०,००० एकड़ भूमि पर सिंचाई होती है।

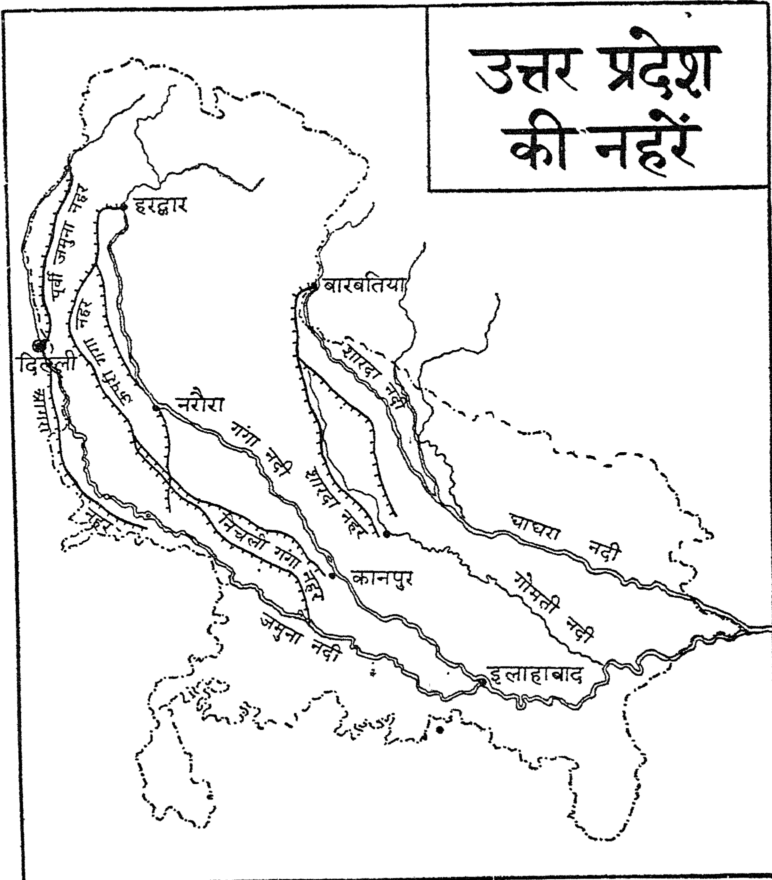
(२) **सरहिन्द नहर**—सतलज नदी से रूपाड़ स्थान पर निकलती है और लुधियाना, फीरोजपुर, हिस्सार और नाभा प्रदेशों को पानी पहुंचाती है। यह नहर सन् १८६२ में निकाली गई थी और बहुत दिनों तक इसमें मिट्टी के जमते रहने से बिल्कुल बन्द हो जाने का भय था। परन्तु निकास के स्थान पर इसके स्रोत में कुछ हेरफेर करके इस प्रश्न को हल कर लिया गया है। इस समय देश की सभी नहरों में यह सबसे अधिक स्थायी और मजबूत है।

(३) **ऊपरी बारी द्वाब नहर**—रावी नदी से माधोपुर स्थान पर निकलती है और गुरुदासपुर तथा अमृतसर के जिलों को सींचती है। यह नहर पाकिस्तान तक गई है परन्तु इसमें एक बड़ा दोष है। जाड़ों में इसके लिये रावी नदी में काफी पानी नहीं रहता। फलतः महीनों तक माधोपुर के नीचे एक बूंद पानी भी नहीं जा पाता।

मद्रास प्रांत में करीब ७० एकड़ भूमि पर तालाबी नहरों द्वारा सिंचाई होती है। मद्रास की खेतिहर भूमि के ३० प्रतिशत भाग पर इस तरह सिंचाई होती है। ये नहरें गोदावरी, कावेरी और कृष्णा नदियों से निकलती हैं। मद्रास की प्रेरियर नदी सिंचाई व्यवस्था विशेष रूप से उल्लेखनीय है। मद्रास राज्य के पश्चिमी घाट में बहने वाली छोटी नदी पेरियर के जल को नाली द्वारा पहाड़ के पूर्वी भाग में लाया जाता है और इस प्रकार मदुरा के आसपास की १,३३,००० एकड़ भूमि को सींचा जा सकता है। कावेरी नदी पर स्थित मेटूर सिंचाई व्यवस्था भी विशष वृहत् है। बांध बना कर कावेरी नदी के पानी को एक जलाशय के रूप में परिणत कर दिया गया है। इस जलाशय में ७,३५,००० घन फीट जल आ सकता है।

उत्तर प्रदेश की समृद्धि का कारण बहुत कुछ वहां की नहरें ही हैं। खेती के कुल क्षेत्रफल का २२ प्रतिशत भाग सींचा जाता है। गंगा की ऊपरी तलहटी में जल-वृष्टि केवल ४० इंच तक होती है। इसलिये सिंचाई का और भी अधिक महत्व है। राज्य में ५ प्रमुख नहरें हैं—

(१) **ऊपरी गंगा नहर**—यह गंगा नदी से हरिद्वार में निकलती है और सन् १८५४ में बनी थी। राज्य की यह सबसे प्रमुख नहर है और करीब १ लाख एकड़ भूमि को सींचती है। मुख्य नहर २१३ मील लम्बी है और इसकी शाखायें, उपशाखायें व नालियाँ ३४०० मील लम्बी हैं। यह आगरा नहर व गंगा की निचली नहर को भी पानी देती है।



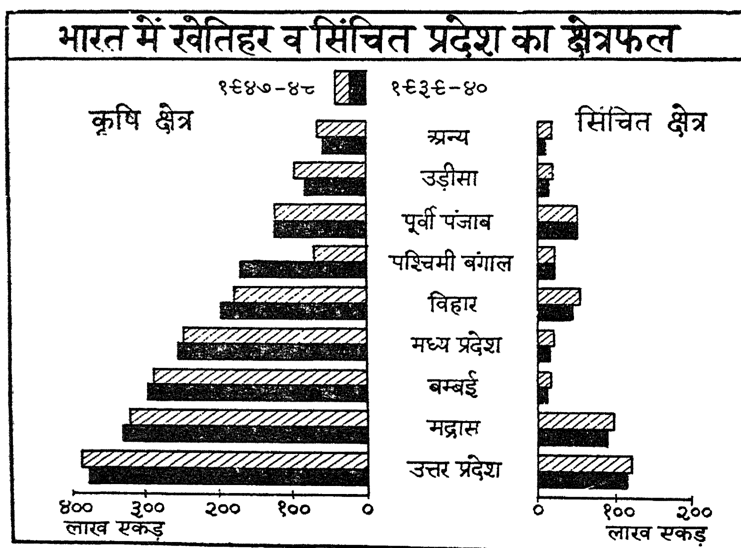
चित्र नं० ३६—दक्षिणी-पश्चिमी उत्तर प्रदेश में नहरों का अभाव ध्यान देने योग्य है।

(२) **आगरा नहर**— सन् १८७४ में बनाई गई और जमुना नदी से दिल्ली के पास निकलती है। इससे २,६०,००० एकड़ भूमि को सींचा जाता है।

(३) **निचली गंगा नहर**—यह सन् १८७८ में बन कर तैयार हुई और बुलन्द-शहर के जिले में नरौरा नामक स्थान पर गंगा से निकाली गई है। इसकी शाखाओं आदि को मिलाकर इसकी कुल लम्बाई ३००० मील से ऊपर है और यह ८ लाख एकड़ भूमि को सींचती है।

(४) **शारदा नहर**— सन् १९२८ में बन कर तैयार हुई और इस समय राज्य की सबसे प्रमुख नहर है। शाखा उपशाखा सहित इसकी लम्बाई ५५०० मील है। यह घाघरा की सहायक शारदा नदी से नेपाल की सीमा पर बनवांसा स्थान पर निकाली गई है। अवध के पश्चिमी भाग और रोहेलखंड के प्रदेश में इस के द्वारा सिंचाई होती है। इसकी सहायता से लगभग ६० लाख एकड़ भूमि पर सिंचाई होती है।

(५) **पूर्वी जमुना नहर** से राज्य के उत्तरी पूर्वी प्रदेश की सिंचाई होती है। यह नहर जमुना नदी से फैजाबाद नामक स्थान पर निकलती है।



चित्र नं० ३७—सिंचाई में उत्तर प्रदेश का महत्वपूर्ण स्थान ध्यान देने योग्य है।

भारत में सिंचाई व्यवस्था की प्रगति कुछ विशेष संतोषजनक नहीं है। भारत के कुल कृषि-योग्य क्षेत्रफल के केवल १८ प्रतिशत भाग पर ही सिंचाई होती है। वैसे पश्चिमी बंगाल, बिहार, उड़ीसा, दक्षिणी उत्तर प्रदेश और संपूर्ण दक्षिणी प्रायद्वीप में सिंचाई को बढ़ाने की पर्याप्त संभावनाएं हैं।

पश्चिमी बंगाल में कुल १२१ लाख एकड़ भूमि पर खेती होती है परन्तु इसमें से कुल २ लाख ७५ हजार एकड़ भूमि पर ही सिंचाई की जाती है। बीरभूम, बांकुरा, बर्दवान और मिदनापुर के जिलों में सिंचाई की विशेष आवश्यकता है क्योंकि वहां आवश्यकता से बहुत कम वर्षा होती है। भारत में सिंचाई के साधनों में उन्नति की काफी संभावनाएं हैं परन्तु नहरों को स्थापित करने में काफी खर्च पड़ता है। इसलिए केवल सरकारी सहायता से ही आगे उन्नति हो सकती है।

भारत में सिंचाई का क्षेत्र

प्रदेश	कुल क्षेत्रफल के प्रति खेतिहर भूमि का अनुपात (प्रतिशत)	खेतिहर भूमि के प्रति सिंचित भूमि का अनुपात (प्रतिशत)	कुल क्षेत्रफल के प्रति सिंचित भूमि का अनुपात (प्रतिशत)
मद्रास	४६	२६	१२
उत्तर प्रदेश	६८	२.७	१८
बंबई	६१	४	२
बिहार	५२	२२	१२
मैसूर	३५	१६	६
उड़ीसा	३४	२२	८

बहुधंधा योजनायें (Multipurpose Projects)

यद्यपि भारत संसार भर में सिंचाई के दृष्टिकोण से सब देशों से आगे है परन्तु यहां सिंचाई के साधनों में वृद्धि की बड़ी आवश्यकता है ताकि देश की नई भूमि पर खेती हो सके और खाद्यान्नों के उत्पादन में वृद्धि करके देश की भोजन समस्या को हल किया जा सके। भारत की नदियों और भूमि में बहुत जल निहित है। इसका यदि पूरा उपयोग किया जावे तो सिंचाई के साधनों में विशेष वृद्धि हो सकती है। अभी तक इस प्राकृतिक जल-भंडार के ६ प्रतिशत भाग का ही उपभोग हो सका है। बाकी सब जल प्रायः बेकार ही चला जाता है। यही नहीं बल्कि जल के आधिक्य के कारण बहुधा नदियों में बाढ़ आती हैं और उससे जन-धन की विशेष हानि होती है। भारत की नदियों में प्रतिवर्ष २३ लाख घन फीट प्रति सैकंड की दर से पानी बढ़ता है। इसके विपरीत नहरों द्वारा खेती व अन्य उद्देश्यों के लिये प्रतिवर्ष १ लाख ३३ हजार घन फीट प्रति सैकंड की दर से पानी का उपभोग किया जाता है। अतः स्पष्ट है कि २१ लाख ६७ हजार घन फीट पानी प्रति सैकंड प्रतिवर्ष बेकार जाता है क्योंकि साधनों के अभाव के कारण इसका उपभोग नहीं हो पाता।

प्रतिवर्ष भारत की नदियों में १३,५६० लाख एकड़ फीट पानी बहता है। इसको यदि खेती योग्य भूमि पर फैला दिया जाय तो इसकी गहराई ३.५६ फीट होगी। इस वृहत्

मात्रा का केवल ५.६ प्रतिशत भाग अथवा ७६० लाख एकड़ फीट पानी ही सिंचाई व जल-विद्युत उत्पादन के प्रयोग में आता है। शेष ९४.४ प्रतिशत भाग यूं ही बह कर नष्ट हो जाता है और बहाव के क्रम में अकथनीय हानि करता है।

वास्तव में इस पानी को सिंचाई व जल-विद्युत उत्पादन में लगाया जा सकता है। भारत की नदियां देश भर में समान-रूप से फैली हुई पायी जाती हैं। मोटे तौर पर यह कहा जा सकता है कि सिंचित भूमि के प्रदेश व क्षेत्रफल को १५-२० साल में दूना किया जा सकता है। सैकड़ों मील लम्बे जलमार्गों को नाव्य बनाया जा सकता है और इनसे ३०० या ४०० लाख किलोवाट जल-विद्युत पैदा की जा सकती है। इस प्रकार जो अधिक खाद्यान्न उपजाया जा सकेगा उससे न केवल वर्तमान कमी ही पूरी होगी बल्कि भविष्य में होने वाली जनसंख्या में वृद्धि के लिए भी बन्दोबस्त हो सकेगा। इसी उद्देश्य से भारत सरकार तथा विभिन्न राज्य सरकारों ने कुछ योजनाएं तैयार की हैं। इन योजनाओं को ऐसा बनाया गया है कि इनसे न केवल सिंचाई की ही सुविधा प्राप्त हो बल्कि इनसे जल-विद्युत भी उत्पन्न हो जावे। इसके अलावा इन योजनाओं के अन्य बहुत से उद्देश्य भी हैं जैसे नदी की बाढ़ को रोकना, जल मार्गों की सुविधा प्रदान करना, आमोद-प्रमोद के साधन बनाना तथा मछली पालना आदि। उद्देश्यों की इस बहुलता के कारण ही इनको **बहुधंधा योजनाएं** कहते हैं। इन विभिन्न योजनाओं के पूरा हो जाने पर भारत की निहित जल-शक्ति के १० प्रतिशत भाग का जल-विद्युत के रूप में उपयोग किया जा सकेगा और लगभग २८० लाख एकड़ भूमि पर सिंचाई की सहायता से खेती हो सकेगी।

देश के आयोजित विकास के लिये देश के उपलब्ध जल को निम्नलिखित नदी-घाटियों में विभाजित किया जा सकता है:—

(१) पूर्वी पंजाब की नदी घाटियां जो सिन्धु घाटी का ही भाग हैं।

(२) मध्य गंगा घाटी जो उत्तर प्रदेश में स्थित है।

(३) पूर्वी गंगा घाटी जिसमें इसकी सहायक नदियों का जाल-सा बिछा हुआ है।

(४) उत्तरी आसाम में ब्रह्मपुत्र घाटी।

(५) हुगली घाटी जिसमें पूर्वी बिहार और पश्चिमी बंगाल सम्मिलित हैं।

(६) उड़ीसा का प्रदेश जिसके उत्तर में सबरनरेखा जल-विभाजक है और दक्षिण में महानदी की घाटी।

(७) गोदावरी की घाटी जो अपनी सहायक नदियों के साथ बंगाल की खाड़ी में गिरती है।

(८) कृष्णा घाटी जिसमें मद्रास के मध्य व पूर्वी भाग सम्मिलित हैं। कृष्णा का बांध कृष्णा और तुंगभद्रा के संगम पर होगा।

(९) कावेरी नदी घाटी।

(१०) मध्य भारत में ताप्ती और नर्मदा नदी घाटियां।

(११) राजस्थान के पूर्वी किनारे पर और जमुना की सहायक चम्बल के चारों ओर मालवा की नदी घाटियां।

इनमें से कुछ नदी घाटियों की उन्नति व विकास के लिये केंद्रीय सरकार ने निम्नलिखित ६ बहुधंधा योजनाओं पर काम शुरू किया है। छः मुख्य नदी घाटी योजनाओं के नाम इस प्रकार हैं:—

(१) दामोदर घाटी योजना (हुगली की तलहटी)

(२) कोसी योजना (पूर्वी गंगा की तलहटी)

(३) हीराखड्ड योजना (उड़ीसा)

(४) ताप्ती नर्मदा योजना (मध्य भारत)

(५) रिहान्द योजना (उत्तर प्रदेश)

(६) तुंभद्रा योजना (मद्रास-हैदराबाद)

इन छः योजनाओं पर अनुमानतः २३२ करोड़ रुपया खर्च होगा और इनके पूरा होने पर १२० लाख एकड़ भूमि पर सिंचाई हो सकेगी। इन योजनाओं से केवल सिंचाई ही नहीं होगी बल्कि जल-विद्युत भी उत्पन्न की जायेगी और इनके अलावा बाढ़ रुक जायेगी, मलेरियाग्रस्त क्षेत्रों को साफ किया जा सकेगा, ऊसर भूमि पर खेती हो सकेगी, मछलियां पाली जायेंगी तथा नाव्य जल-मार्गों का निर्माण हो सकेगा।

इसके अलावा इन योजनाओं के पूरा होने पर राष्ट्रीय सरकार शरणार्थियों को ठीक से बसा सकेगी, बढ़ती हुई जन-संख्या को भोजन दे सकेगी और लोगों के रहन-सहन का स्तर उच्चतर बना सकेगी।

इन छः वृहत् योजनाओं के अतिरिक्त विभिन्न राज्यों की तीन योजनाएं विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। पश्चिमी बंगाल की मोर घाटी योजना, मद्रास की रामपदसागर योजना तथा पूर्वी पंजाब की भाखरा-नंगल योजना। पश्चिमी बंगाल की मोर घाटी योजना ४ साल में पूरी होगी और पूरी होने पर इसकी सहायता से ६००,००० एकड़ भूमि पर सिंचाई हो सकेगी। मद्रास की रामपदसागर योजना के पूरा होने पर २५ लाख एकड़ भूमि को सींचा जा सकेगा।

दामोदर घाटी योजना—दामोदर नदी ३३६ मील लम्बी है और दुःख की नदी कहलाती है। यह छोटा नागपुर की पहाड़ी पर २००० फीट की ऊंचाई से निकलती है। बिहार में १८० मील तक वहने के बाद पश्चिमी बंगाल में प्रवेश करती है और अन्त में हुगली नदी में जा मिलती है।

इसकी ऊपरी घाटी में हज़ारीबाग, पालामऊ, रांची, मानभूम और सन्थल परगना के जिले स्थित हैं। इस प्रदेश में वार्षिक वर्षा ४७ इंच के लगभग है और इसका अधिकतर भाग मानसून काल में ही होता है। वन-रहित पहाड़ियों पर घोर वृष्टि का जल बिना किसी

रुकावट के नीचे की ओर वह निकलता है और नदी को बढ़ा देता है। इस प्रकार वेगशालिनी दामोदर नदी छोटा नागपुर की भूमि काटती हुई अन्त में अपने आस-पास के प्रदेशों में भीषण बाढ़ लाती है। इस बाढ़ से प्रतिवर्ष लाखों जीव नष्ट हो जाते हैं।

इसकी निचली घाटी पश्चिमी बंगाल में है और इस प्रदेश में दामोदर की बाढ़ बड़ी भीषण होती है। फल यह होता है कि इसका जल दोनों किनारों पर फैल जाता है, फसलें और मकान नष्ट हो जाते हैं, जन व पशु बह जाते हैं, यातायात के साधन अस्तव्यस्त हो जाते हैं। संक्षेप में, बाढ़ के कारण घाटी के आर्थिक जीवन को बड़ी हानि पहुंचती है।

इस भीषण नदी को कई उपयोगों में लाया जा सकता है। यदि इस पर ठीक से काम किया जाय तो यह पश्चिमी बंगाल और बिहार के विकास और समृद्धि का मेरुदण्ड बन सकती है।

दामोदर घाटी योजना के कई उद्देश्य हैं—

(१) सिंचाई के लिए नहरों को पानी देना।

(२) काफी जल देकर जल-मार्गों को नाव्य बनाना।

(३) मलेरिया को नियंत्रित करना।

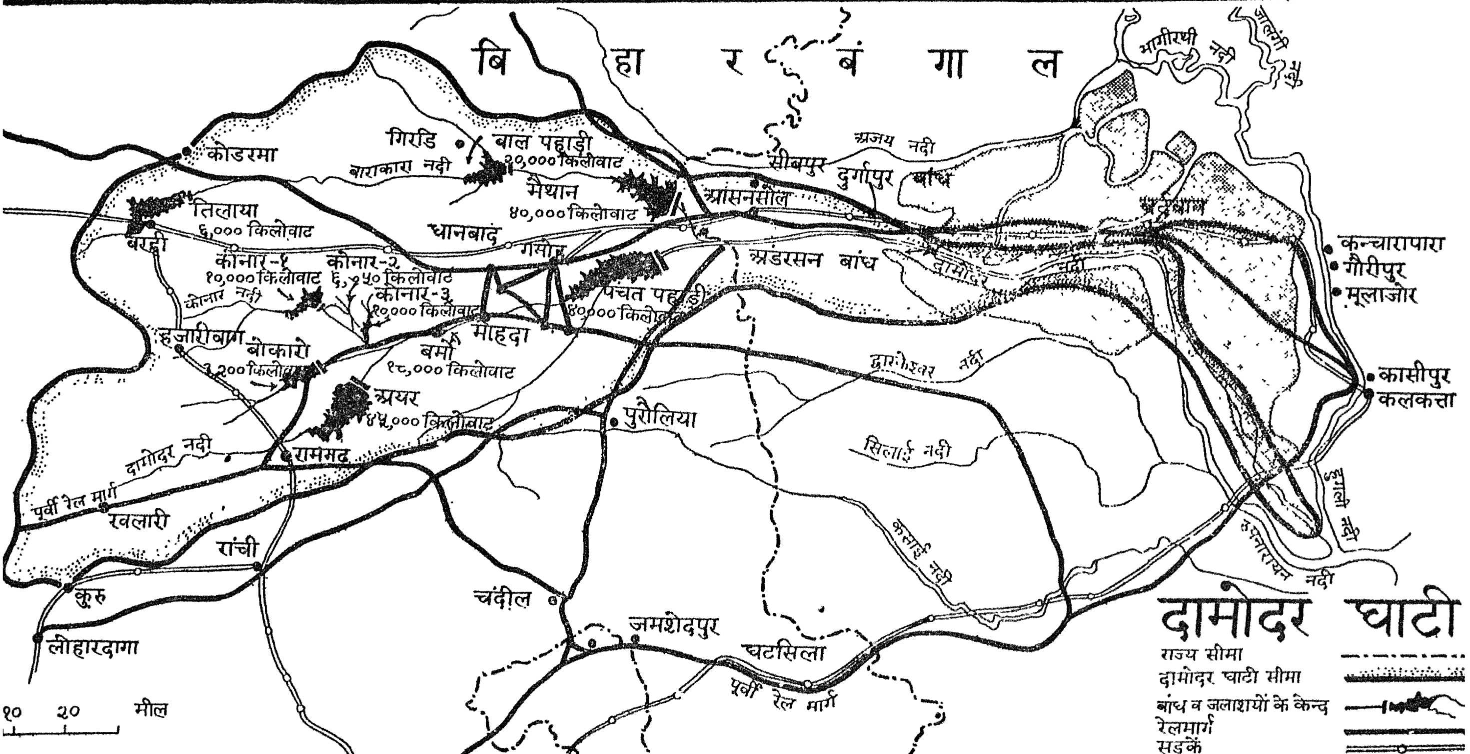
(४) भूमि का उचित व नियमित उपभोग करना।

(५) सारी घाटी की आर्थिक उन्नति करना।

इस योजना के पूरी होने पर ७ लाख ५० हजार एकड़ भूमि को सदा हरी भरी रहने वाली नहरों द्वारा सींचा जा सकेगा और ३ लाख किलोवाट जल-विद्युत उत्पन्न की जावेगी जिसकी सहायता से आस-पास के प्रदेशों की औद्योगिक उन्नति हो सकेगी।

दामोदर नदी की घाटी व उसके आस-पास का भाग भारत का सबसे प्रमुख औद्योगिक क्षेत्र है। इसी प्रदेश के अन्तर्गत भारत के सबसे महत्वपूर्ण स्पात उद्योग के केन्द्र जमशेदपुर व बर्नपुर में स्थित हैं। सिन्दरी में देश का सबसे महान् खाद का कारखाना और चितरंजन में स्थित रेल इंजिनों सरकारी का कारखाना भी इसी क्षेत्र में है। इसके अलावा सीमेन्ट तैयार करने के भी कई केन्द्र हैं।

दामोदर की घाटी में प्राकृतिक सम्पत्ति की बहुलता है। उत्तरी दामोदर घाटी के जंगलों में लकड़ी, लाख और टसर की बहुतायत है। निचली घाटी की भूमि बड़ी उपजाऊ है परन्तु सिंचाई के साधनों के अभाव में इसमें गहरी खेती नहीं हो सकती। इस क्षेत्र में कोयले का विस्तृत भंडार है और साथ-साथ अल्यूमिनियम तथा बाक्साइट की भी खानें हैं। अग्नि मिट्टी. चीना मिट्टी, अभ्रक, चूने का पत्थर, जस्ता, चान्दी, सुरमा और हीरे भी इस प्रदेश में उपलब्ध हैं। सस्ती शक्ति की सहायता से इस प्रदेश की विविध खनिज सम्पत्ति का भी उपयोग हो सकेगा।



चित्र नं० ३८—उचित जल-विद्युत के तैयार होने से इस प्रदेश में स्थित उद्योग-धंधों को बढ़ाया जा सकेगा और नये उद्योग भी खोले जा सकेंगे।

भारत सरकार ने कानून द्वारा एक कारपोरेशन स्थापित कर दिया है। दामोदर घाटी योजना के काम की देखभाल इसी संस्था के अधिकार में है। सिंचाई, जल-विद्युत, उत्पादन और बाढ़ को रोकने जैसे विविध उद्देश्यों को पूरा करने के लिए काम की विभिन्न प्रणालियां आदि चालू करना इसी संस्था का काम है। घाटी के निवासियों के लिए नाव्य जल-मार्ग प्रदान करना, जंगल लगाना, स्वास्थ्यप्रद व औद्योगिक केन्द्र तथा सामान्य आर्थिक विकास व उन्नति की व्यवस्था करना इसी संस्था का कर्त्तव्य है। इसपर कार्य भी प्रारम्भ हो चुका है।

इस योजना के अन्तर्गत आठ बांध और एक बड़ा अवरोधक बनाया जावेगा। बाराकर नदी में मैथों स्थान पर; दामोदर नदी में अय्यर स्थान पर; कोनार व बोकारो में; बाराकार में बल्पाहारी और तिलैया पर और दामोदर में पन्चेत पहाड़ी के पास ८ छोटे-छोटे बांध बनाये जायेंगे। बड़ा बांध दुर्गापुर पर बनाया जावेगा। परन्तु यह सब कार्य कब तक पूरा हो सकेगा यह कुछ भी नहीं कहा जा सकता। निर्माण कार्य की प्रगति सामान, मशीनों व इन्जीनियरों के यथाशीघ्र उपलब्ध होने पर निर्भर है।

नवीन जल-विद्युत उत्पादन केन्द्रों से १ लाख किलोवाट पन-बिजली प्राप्त हो सकेगी और यह बोकारो के कोयला बिजली केन्द्र से प्राप्त १ लाख ५० हजार किलोवाट बिजली से अतिरिक्त होगी। सिंचाई प्रणाली पर भी काम शुरू कर दिया गया है। इसके अन्तर्गत १५५० मील लम्बी नहरें व नालियां होंगी जिनसे पश्चिमी बंगाल की १० लाख एकड़ भूमि को सींचा जा सकेगा। सिंचाई की प्रणाली के पूरा हो जाने पर ४ लाख टन और अन्न उत्पन्न किया जा सकेगा। सिंचाई की मुख्य नहर ८० मील लम्बी होगी और दामोदर नदी को कलकत्ता से ३० मील ऊपर की ओर हुगली नदी से मिलावेगी। इस नहर पर नाव व बजरों के प्रयोग द्वारा रेलों पर भार वाहन को कम किया जा सकेगा और सस्ते दामों पर कलकत्ता व घाटी के बीच कोयला आदि वस्तुएं लाई ले जाई जा सकेंगी।

हीराखड्ड योजना—इस योजना के अन्तर्गत उड़ीसा की महानदी पर एक बांध बनाया जावेगा। नदी के प्रवाह में ९ मील ऊपर की ओर स्थित सम्बलपुर के समीप यह बांध बनाया जावेगा। इस बांध के दोनों ओर से नहरें निकाली जावेंगी और दोनों स्थानों पर जल-विद्युत उत्पन्न की जायेगी।

हीराखड बांध नदी तल से १५० फीट ऊंचा होगा और इसके द्वारा ५३ लाख टन फीट जल को एकत्रित किया जा सकेगा। महानदी पर दो बांध बनाये जायेंगे—एक टिक्करपारा में और दूसरा नारज में। नारज कटक से कुछ मील पश्चिम में स्थित है। इन तीनों बांधों के तैयार हो जाने पर २५ लाख एकड़ भूमि पर सिंचाई हो सकेगी, ३ लाख ५० हजार किलोवाट बिजली पैदा की जायेगी और अनेक नाव्य जल-मार्ग बन जायेंगे। इस योजना से सम्पूर्ण महानदी घाटी और विशेषकर सम्बल, सोनपुर तथा डेलटा प्रदेशों को लाभ पहुंचेगा।

इस योजना से महानदी घाटी के डेलटा प्रदेश में बाढ़ को रोका जा सकेगा और

करीब १९ लाख एकड़ भूमि की सिंचाई की जा सकेगी। करीब २ लाख किलोवाट जल-विद्युत भी उत्पन्न की जावेगी। इससे उड़ीसा के प्राकृतिक साधनों व सम्पत्ति

चित्र नं० ३९—महानदी पर बांधों की स्थिति ध्यान देने योग्य है

का उपभोग हो सकेगा। इस समय ही राज गंगपुर नामक स्थान पर एक सीमेंट फैक्टरी चालू हो गई है। इसके आसपास अल्युमिनियम मिश्रण, फेरोक्रोम, फेरो सिलकन आदि के उत्पादन के कारखाने भी सस्ती शक्ति के उपलब्ध होते ही खुल जायेंगे। यहां के बाक्साइट और अन्य खनिज पदार्थों का भी उपभोग हो सकेगा।

यहां से सिंचाई की योजना से देश का खाद्यान्न उत्पादन ७५०,००० टन अधिक हो जायेगा और ३ लाख टन जल अधिक उत्पन्न किया जा सकेगा।

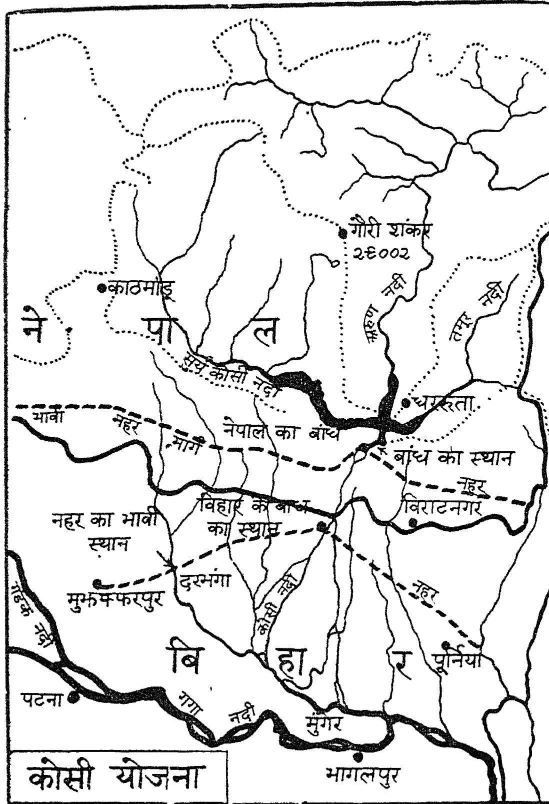
कोसी योजना—यह बिहार की सबसे महत्वपूर्ण योजना है और इसके द्वारा निम्नलिखित उद्देश्यों की पूर्ति हो सकेगी:—

१. सिंचाई, २. जल-विद्युत उत्पादन और ३. जल-मार्गों की व्यवस्था।

इन तीनों मुख्य उद्देश्यों के अतिरिक्त इस योजना के पूरा होने पर भूमि का कटाव रुक जायेगा। मिट्टी जो अब तक नदी द्वारा बहा ले जाई जाती थी उसे रोक कर खेती योग्य बनाया जा सकेगा। पानी से घिरे हुए क्षेत्रों से पानी के निकास का उचित प्रबन्ध करके उन भागों को खेती के काम में ले आया जायेगा। इसके अलावा मलेरिया के प्रकोप को रोक लिया जायेगा और आमोद-प्रमोद तथा मछली पालने की सुविधाएं प्रदान की जायेंगी।

इस योजना के अन्तर्गत नेपाल में छत्र-कन्दरा के आरपार ७५० फीट ऊंचा एक बांध बनाया जावेगा और इस प्रकार ११० लाख घन फीट जल को एक जलाशय के

रूप में इकट्ठा किया जायेगा। कोसी नदी पर दो जगह अवरोधक बनाये जावेंगे—एक नेपाल में और दूसरा नेपाल-बिहार की सीमा पर। प्रथम अवरोधक के दायीं और बायीं ओर से दो नहरें निकलेंगी और इन दोनों नहरों की सहायता से नेपाल की १० लाख एकड़ भूमि को सींचा जावेगा। नेपाल-बिहार की सीमा पर दूसरे अवरोधक से ३ नहरें निकाली जावेंगी। दो नहरें बायें किनारे पर होंगी और एक दाहिने किनारे पर। इन तीनों नहरों से उत्तरी बिहार के पूर्निया, दरभंगा और मुजफ्फरपुर जिलों में कोई २० लाख एकड़ भूमि पर सिंचाई होगी।



चित्र नं० ४०—इस योजना से उत्तरी बिहार को विशेष लाभ होगा।

बांध के स्थान पर जल-विद्युत उत्पन्न करने का आयोजन किया जायेगा और १८ लाख किलोवाट सस्ती शक्ति उत्पन्न की जायेगी। इस योजना के पूरा होने में १० साल लग जायेंगे और लगभग ९० करोड़ रुपया व्यय होने का अनुमान है।

तुंगभद्रा योजना—तुंगभद्रा कृष्णा की सहायक नदी है। इसके आरपार १६० फीट ऊंचा और ८,२०० फीट लम्बा एक बांध बनाया जायेगा। इस प्रकार बनाये हुए जलाशय में २६ लाख घन फीट पानी एकत्रित हो सकेगा और इससे निकाली हुई नहरों द्वारा मद्रास और हैदराबाद राज्यों की ६ लाख एकड़ भूमि को सींचा जा सकेगा। इससे मद्रास में थोड़ी जल-विद्युत भी पैदा की जायेगी। इसके दाहिने किनारे से निकाली जाने वाली नहर २२५ मील लम्बी होगी और मद्रास राज्य की २,५०,००० एकड़ भूमि को सींचेगी। इसके बायें

किनारे से १२७ मील लम्बी नहर निकाली जावेगी जो हैदराबाद राज्य की ४३ लाख एकड़ भूमि को सींचेगी ।

भाकरा-नंगल योजना—यद्यपि इस योजना को सन् १९०९में तैयार कर लिया गया था परन्तु कुछ कारणों वश सन् १९४६ तक इस पर काम न शुरू हो सका। सन् १९४१ में सिंध सरकार की मांग पर पंजाब सरकार पर काम न शुरू कर सकने का एक ४ सालाना प्रतिबंध लगा दिया गया। इसकी मियाद सन् १९४५ में खतम हुई और सन् १९४६ में इस योजना पर काम शुरू कर दिया गया। इस समय यह भी देखा गया कि पंजाब की पांचों नदियों के जल का अधिकतर उपभोग पश्चिमी पंजाब में ही होता है और भविष्य में सिंचाई के साधनों को बढ़ाने का एकमात्र उपाय मानसून के जल को इकट्ठा करना है। इस खयाल से और भी अधिक जल्दी की गई।

इस समय पूर्वी पंजाब में सिर्फ यही एक बहुधंधा योजना है। पूर्वी पंजाब में शक्ति के साधनों के अभाव के कारण उद्योग-धंधों की कोई विशेष उन्नति नहीं हो पाई है। पूर्वी पंजाब में न तो कोयला ही है और न खनिज तेल। इसलिये उद्योग-धंधों के लिये केवल एक शक्ति का साधन रह जाता है—जल-विद्युत। जल-विद्युत के उत्पादन से ट्यूबवैल भी खुल सकेंगे और उनके द्वारा खेती की उन्नति होगी। भाग्यवश पूर्वी पंजाब में जल-विद्युत के उत्पादन की बड़ी संभावनाएं हैं। सतलज नदी से भाकरा ओर नंगल स्थानों पर जल-विद्युत बनाई जा सकती है।

भाकरा योजना के अन्तर्गत सरहिन्द नहर के स्रोत से कोई ५० मील ऊपर भाकरा कन्दरा में सतलज नदी पर आरपार एक बांध बनाया जावेगा। यह बांध मजबूत सीमेंट व कांक्रीट का बनाया जावेगा और इसकी ऊंचाई ६८९ फीट होगी। इस प्रकार लगभग ७२ लाख घनफीट जल को इकट्ठा किया जावेगा और इसमें से करीब ५५ लाख घनफीट जल की सहायता से जल-विद्युत उत्पन्न की जावेगी और बाद में उसी जल से सिंचाई भी होगी। यह जलाशय समुद्रतल से १६८० फीट ऊंचा होगा; बांध की कुल ऊंचाई ६८० फीट होगी और संसार के सीधे बांधों में यहसबसे प्रमुख होगा। इस पानी से करीब ६६ लाख एकड़ भूमि पर सिंचाई होगी जिस का व्योरा इस प्रकार है—

पंजाब	४३,३०,००० एकड़
पेप्सू	१२,०९,५१० एकड़
राजस्थान	१०,८१,२४० एकड़

इस व्यवस्था से खेती की उपज इस प्रकार बढ़ जावेगी—

गेहूं और अन्य खाद्यान्न	१३ लाख टन
कपास	८ लाख टन
गन्ना	५ लाख टन
दालें और तिलहन	१ लाख टन
जानवरों का चारा	१५ लाख टन

इस सुविधाजनक स्थिति के उत्पन्न हो जाने पर ३०,००० की आबादी की कम से कम ३० और मंडियां बन जायेंगी जिनमें करीब ९ लाख शहरी जनता को फिर से बसाया जा सकेगा। ६६ लाख खेतिहर भूमि पर २५ लाख किसानों को फिर

से बसाने का प्रबन्ध हो सकेगा। और करीब २,३०,००० किलोवाट बिजली तैयार होगी। इसके अलावा भाखरा नहर व्यवस्था की सहायक नंगल-जलविद्युत नहर से १,७०,००० किलोवाट बिजली और उत्पन्न की जा सकेगी।

इस बांध की लम्बाई ऊपर शिखर पर १७०० फीट होगी और नीचे जल के भीतर इसकी चौड़ाई ११०० फीट। ऊपर शिखर पर एक ३० फीट चौड़ी सड़क बनाने की भी योजना है। इस बांध के निर्माण के समय सतलज नदी के पानी को ५० फीट चौड़ी दो नालियों द्वारा दाई-बाईं ओर बहा दिया जायेगा। प्रत्येक नाली करीब आधा मील लम्बी होगी और पहाड़ी भूमियों से होकर जायेगी।

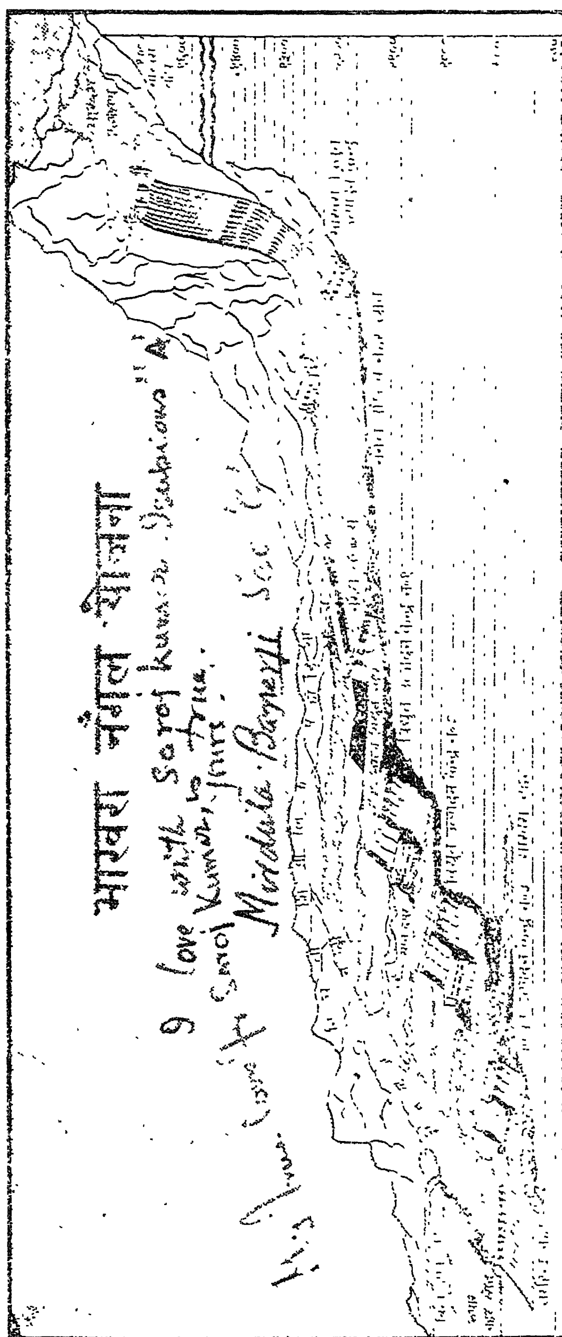
नंगल-योजना के अन्तर्गत सतलज नदी के आरपार भाकरा से ८ मील नीचे नंगल स्थान पर एक सहायक बांध या अवरोधक बनाया जावेगा। इस बांध की सहायता से नदी के जल को नंगल जल-विद्युत नहर में फेर दिया जावेगा। इससे भाकरा बांध में नित्य-प्रति होने वाले न्यूनाधिकरण के लिये स्थान मिल जायेगा और इनसे और अधिक बिजली उत्पन्न हो सकेगी। नंगल बांध बनकर तैयार हो गया है।

नंगल बांध मजबूत कांक्रीट से तैयार किया गया है और १०२९ फीट लम्बा व ४०० फीच चौड़ा है। नदी के जल के अन्दर ५० फीट की गहराई पर इसकी नींव डाली गई है। इससे निकलने वाली नहर में ३० फीट चौड़ी २८ खाड़ियां हैं और प्रत्येक में एक लोहे का दरवाजा लगा है। इसकी सहायता से नदी के जल को वर्तमान सतह से ५० फीट ऊपर पहुंचा दिया गया है।

नंगल जल-विद्युत व्यवस्था से रूपड़, अम्बाला, करनाल, पानीपत, हिसार, भिवानी, रोहतक, नाभा, पटियाला, फीरोजपुर, फरीदकोट, काल्का, कसौली, शिमला, जलन्धर, होशियारपुर, कपूरथला, धिलावान और ४९ अन्य छोटी-छोटी बस्तियों को बिजली भेजी जा सकेगी। जब भाकरा की योजना भी तैयार हो जायेगी तो दिल्ली, गुरगांव, पालवाल और रिवाड़ी तक बिजली का प्रबंध हो जायेगा।

इस जल-विद्युत की सहायता से पूर्वी पंजाब में और अधिक यंत्र संचालित कुएं बनाये जायेंगे और उनसे सिंचाई के साधनों में वृद्धि हो सकेगी। ट्यूब-वेल के बन जाने से पानी से भरे हुए भागों का पानी हटाकर शुष्क भागों को पहुंचाया जा सकेगा। कुछ समय बाद इस शक्ति का उपभोग रेलों में भी हो सकेगा, विशेषकर अमृतसर और दिल्ली के बीच मुख्य रेलगाड़ियों में। इस योजना से सिंचाई के क्षेत्र में भी विशेष लाभ होगा। इससे ५ नहरें निकाली जावेंगी जो अपनी नालियों द्वारा राजस्थान व पंजाब के रेगिस्तानी प्रदेश में ९,२०,००० एकड़ भूमि की सिंचाई करेंगी। इसमें सबसे बड़ी नहर का नाम करनी सिंह नहर होगा और इसपर काम शुरू भी कर दिया गया है। राजस्थान और खासकर बीकानेर के लिए तो इस योजना का चम्बल की योजना के बाद सब से अधिक महत्व है।

सन् १९५१ में भाकरा का बांध कांक्रीट द्वारा बनना शुरू हुआ। आशा है कि कुल



चित्र नं० ४१

५३ हफ्तों में या एक सवा साल में यह बिलकुल ही बन कर तैयार हो जायेगा। जल-विद्युत उत्पादन के लिये विभिन्न मशीनें आदि भी सन् १९५५ तक लग जायेंगी। परन्तु इस समय के भीतर तभी काम पूरा हो सकता है जब योजना के अनुसार सामान मिलता रहे।

रिहान्द बांध योजना—यह उत्तर प्रदेश की सब से प्रमुख बहुधंधा योजना है। रिहान्द नदी सोन की सहायक है और इसके आर-पार पिपरी में बांध बना कर भारत का सब से बड़ा जलाशय तैयार किया जायेगा। यह बांध ३००० फीट लम्बा होगा और इसमें ९० लाख घनफीट जल इकट्ठा किया जा सकेगा। इस प्रकार बनाई गई झील का क्षेत्रफल १८० वर्गमील होगा।

इस योजना के पूरा होने पर उत्तर प्रदेश को अनेक सुविधाएँ प्राप्त हो जायेंगी।

(१) राज्य के पूर्वी भागों में सिंचाई की कोई व्यवस्था नहीं है और इसलिये वहां की फसलें वर्षा पर ही निर्भर रहती हैं। इस योजना से घाघरा और गंगा यमुना से ४००० मील लम्बी पम्पदार नहरें निकल सकेंगी और ३००० ट्यूब-वेल बनाये जायेंगे। इनकी सहायता से नई भूमि पर भी खाद्यान्न उगाये जा सकेंगे।

(२) विस्तृत झील में मछलियों को पाला जा सकेगा।

(३) नहरों द्वारा सोन घाटी और गंगा की घाटी के बीच सम्पर्क स्थापित हो जायेगा और रिहान्द व हुगली के बीच माल से लदे बड़े-बड़े जहाज आ-जा सकेंगे।

(४) इस प्रदेश में बहुत अधिक खनिज सम्पत्ति पाई जाती है और शक्ति के उपलब्ध होने पर प्रदेश की औद्योगिक उन्नति हो सकेगी।

(५) उत्तरी रेलवे के कुछ विभागों में कोयले के स्थान पर विद्युत प्रयोग की जा सकेगी। इस प्रकार प्रति वर्ष कोई २० हजार गाड़ी कोयले की बचत की जा सकेगी।

इस योजना से अन्य बहुत से लाभ हैं। इसके द्वारा रिहान्द और सोन की बाढ़ रुक जायेंगी, रिहान्द घाटी में भूमि कटान कम हो जायेगा और रीवां में जंगलों को लगाया जा सकेगा। इसके अलावा किनारे की भूमि का उचित उपयोग हो सकेगा। इस प्रकार इस योजना से बहुत से लाभ होने की संभावनाएं हैं और देश के विकास व उन्नति में इसका बड़ा महत्त्व है।

प्रश्नावली

१. अतिरिक्त भूमि को खेती योग्य बनाने और वर्त्तमान भूमि की प्रति एकड़ उपज बढ़ाने के लिये भारत सरकार ने क्या कुछ किया है? विभिन्न योजनाओं का विवरण दीजिये।

२. बहुधंधा योजनाओं से आप क्या समझते हैं? उत्तरी भारत की दो प्रमुख योजनाओं का वर्णन करिये।

३. "खेती के लिये सिंचाई का उतना ही महत्त्व है जितना उद्योग-धंधों के लिये

जल-विद्युत का।" इस उक्ति का समर्थन करिये और उदाहरण देते हुए भारत की मुख्य सिंचाई योजनाओं का विवरण दीजिये।

४. 'बहुध्येय सिंचन योजना' से आप क्या समझते हैं ? महानदी (हीरा खड्ड) योजना का पूर्ण विवरण लिखिए।

५. भारत में सिंचाई क्यों आवश्यक है ? भारत के एक मानचित्र पर नहरों, कुओं व तालाबों द्वारा सिंचित प्रदेशों को दिखलाइये और प्रत्येक प्रणाली का महत्व प्रदेश विशेष की भौगोलिक परिस्थितियों के अनुसार बतलाइये।

६ दामोदर घाटी योजना का एक संक्षिप्त विवरण दीजिये। इससे बंगाल व बिहार को क्या लाभ होने की संभावना है ?

७. भारत में सिंचाई की कौन-कौन सी रीतियां काम में लाई जाती हैं। प्रत्येक का क्षेत्र बतलाइये।

८. "उत्तर प्रदेश में नहरों द्वारा सिंचाई बहुत विकास कर गई है।" इस कथन पर अपने विचार प्रगट कीजिये।

९. भाखरा नंगल बहुधंधा योजना के बारे में आप क्या जानते हैं ? इससे दिल्ली व पूर्वी पंजाब राज्यों को क्या लाभ होने की संभावना है ?

अध्याय : : पांच

वन-सम्पत्ति और उनकी उपज

भारत में विस्तृत वन प्रदेश पाये जाते हैं और भारत भूमि के १/६ भाग में जंगल पाये जाते हैं। इस विस्तृत वन प्रदेश में कई तरह की वनस्पति पाई जाती है, और मिट्टी, जल-वायु तथा अन्य स्थानीय दशाओं के अनुसार कहीं घास के मैदान हैं तो कहीं कांटे-दार झाड़ियां; कहीं कठोर लकड़ी के वन हैं तो कहीं मुलायम लकड़ी के विशाल वृक्ष। भारत के समस्त भू-खंड के एक-चौथाई भाग में या १,५५,००० वर्गमील क्षेत्रफल में जंगल पाये जाते हैं। इसमें से १२ प्रतिशत वन प्रदेश की व्यापारिक महत्ता है और उनका आर्थिक उपयोग भी। जम्मू व काश्मीर को छोड़कर भारत की ९३० लाख एकड़ भूमि पर वन पाये जाते हैं जिनका प्रादेशिक वितरण इस प्रकार है:—

हिमालय प्रदेश १५३ लाख एकड़; उत्तरी मैदान ४८ लाख एकड़; दक्षिणी पठार ५५७ लाख; पश्चिमी घाट व तटीय मैदान ७९ लाख एकड़; पूर्वी घाट व तटीय मैदान ९५ लाख एकड़।

वन प्रदेशों का भौगोलिक वितरण (१९४८-४९)

राज्य	वन प्रदेश का क्षेत्रफल (वर्ग मील)	राज्य	वन प्रदेश का क्षेत्रफल (वर्गमील)
आसाम	२०,९२९	काश्मीर	११,०५८
बिहार	२,४७३	मैसूर	४,४४८
बम्बई	१५,३४७	पेप्सू	३३२
मध्य प्रदेश	१९,४१४	राजस्थान	१२,७८२
मद्रास	१७,५०४	सौराष्ट्र	६३१
उड़ीसा	२,८७४	ट्रावनकोर कोचीन	३,०६५
पंजाब	४,८७३	'सी' वर्ग राज्य	१९,३०३
उत्तर प्रदेश	१०,७४३	अन्डामन	२,१९९
पश्चिमी बंगाल	२,६८०		
हैदराबाद	९,४५५	कुल योग	१६०,१०४

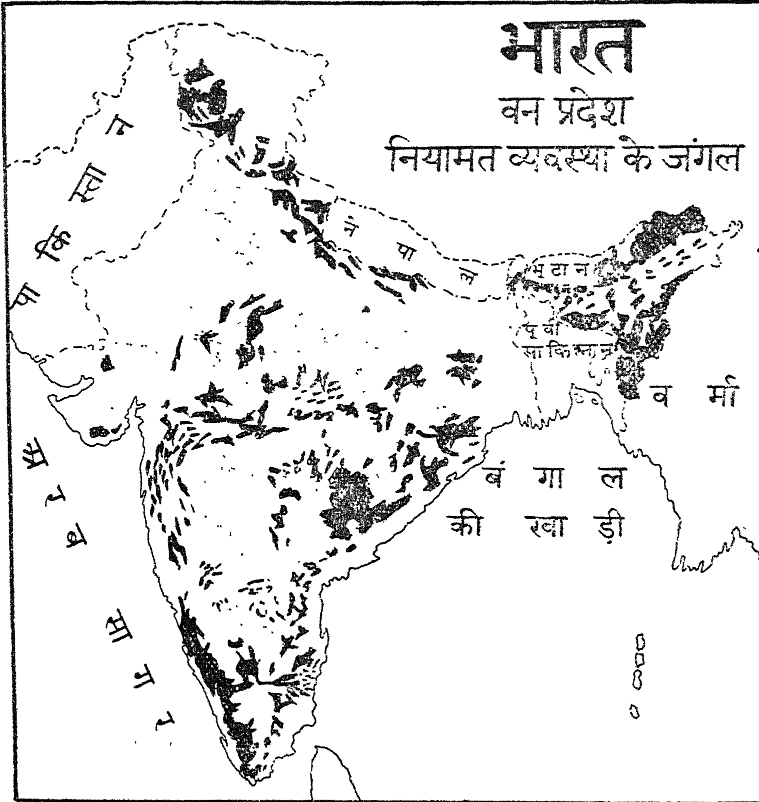
वनों के प्रकार—भारत में पाये जाने वाले वन प्रायः ५ प्रकार के हैं:—

१. शुष्क प्रदेशों के जंगल—इनका सब से महत्वपूर्ण वृक्ष बबूल है और यह राज-पूताना तथा दक्षिणी पंजाब में पाया जाता है।

२. पतझड़ वन—ये जंगल हिमालय की तराई तथा प्रायद्वीप के पठार पर पाये जाते हैं और गर्मी के मौसम में अपनी पत्तियां गिरा देते हैं इन जंगलों की मुख्य लकड़ी साल व

टीक है। परन्तु इनके अलावा और बहुत सी बहुमूल्य वस्तुएं इनसे प्राप्त होती हैं।

३. सदाबहार वन—जहां वर्षा की मात्रा अधिक है वहां ये वन पाये जाते हैं। दक्षिणी प्रायद्वीप के पश्चिमी तट और हिमालय की पूर्वी निचली पहाड़ियों पर ये वन पाये जाते हैं और इनके मुख्य पेड़ बांस, ताड़, फर्न और रबड़ हैं।



चित्र नं० ४२—भारत में वन प्रदेशों और खेतिहर भूमि में कोई संतुलन नहीं है। कुर्ग, मद्रास और मध्य प्रदेश में विस्तृत वन प्रदेश हैं परन्तु इनके अलावा अन्य प्रदेशों में वनाच्छादित भूमि बहुत कम है।

४. पहाड़ी वन—वर्षा की मात्रा और ऊंचाई के अनुसार पहाड़ी वनों में विभिन्नता पाई जाती है। पूर्वी हिमालय प्रदेश और आसाम में इन वनों में ओक व मेगनोलिया के वृक्ष पाये जाते हैं। आसाम में ३००० से ६००० फीट की ऊंचाई तक चीड़ के पेड़ बहुतायत से मिलते हैं। उत्तरी-पश्चिमी हिमालय प्रदेश के इन वनों में देवदार, चीड़ और ओक के वृक्ष पाये जाते हैं। भारत की मुलायम लकड़ी इन्हीं वनों से प्राप्त होती है।

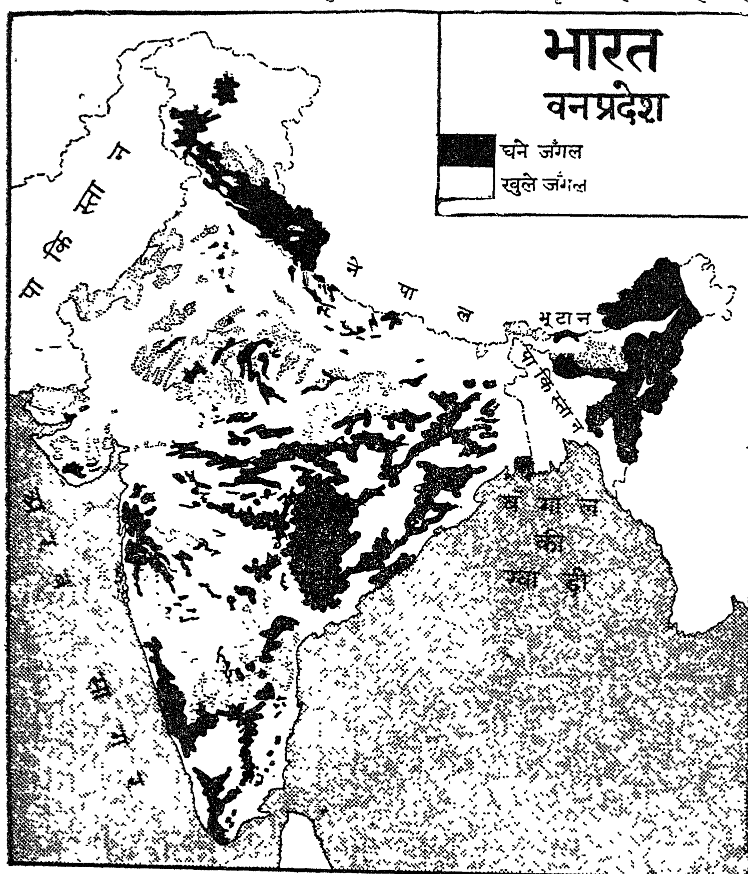
५. समुद्री वन—समुद्र के किनारों व ज्वारभाटा के स्थानों पर इस प्रकार के वन पाये जाते हैं। इनमें पाये जाने वाले वृक्षों में सुन्दरी जाति के वृक्ष प्रधान हैं।

भारतीय वन प्रदेशों का आर्थिक महत्व—भारतीय वनों से बहुत लोगों की जीविका चलती है। बढ़ई, लकड़हारे, लकड़ी चीरने वाले, बोझा ढोने वाले और सामान ले जाने वाले भारतीय वन-सम्पत्ति के सहारे ही अपनी जीविकोपार्जन करते हैं। इसके अलावा भारतीय वनों से अनेक प्रकार का कच्चा माल प्राप्त होता है और इसके सहारे बहुत से उद्योग-धंधे उन्नति कर गये हैं। भारतीय वनों से दो प्रकार की उपज प्राप्त होती है—

(१) प्राथमिक उपज—लकड़ी और ईंधन

(२) गौण उपज—लाख, चमड़ा साफ करने की छाल, तेल, तारपीन, गोंद इत्यादि।

भारत का कागज व्यवसाय वन प्रदेशों से उपलब्ध बांस और घास पर ही निर्भर है। इसी प्रकार दियासलाई उद्योग के लिये मुलायम लकड़ी भी वनों के वृक्षों से ही प्राप्त होती है।



चित्र नं० ४३—भारत में घनी उपज के जंगल ८०० लाख एकड़ भूमि पर पाये जाते हैं।

वनों से अपहरण की हुई सामग्री को पूरा किया जा सकता है पर बहुत मन्द गति से। इसलिये वनों की लकड़ी का ईंधन के लिये उपयोग करना बहुत हानिकर है। वास्तव में

वन-सम्पत्ति का उपभोग और अधिक महत्वपूर्ण उद्देश्यों के लिये किया जाना चाहिये। लकड़ी को किसी भी दशा में ईंधन की तरह प्रयोग नहीं करना चाहिये।

भारत में प्रतिवर्ष २६०० लाख घन फीट व्यापारिक लकड़ी उत्पन्न होती है। इनमें देवदार, साल, रोज, पदौक, शीशम, महोगनी, आवनूस और टीक की लकड़ी विशेष रूप से महत्वपूर्ण हैं। भारत से हांगकांग, संयुक्त राष्ट्र और अन्य देशों को ईंधन, चन्दन और टीक की लकड़ी के तख्ते निर्यात किये जाते हैं। सन् १९५१-५२ में भारत से २२७७ घन टन तोल की कठोर व अन्य व्यापारिक लकड़ी बाहर भेजी गई।

लाख—लाख को उत्पन्न करने वाला एक कीड़ा होता है जो विभिन्न वृक्षों के रस को पीकर रहता है। लाख को उत्पन्न करने वाले कीड़े प्रधानतः पलास, पीपल और कुसुम नामक वृक्षों पर रहते हैं। ये वृक्ष अधिकतर बिहार के दक्षिणी-पूर्वी जिलों में, पश्चिमी बंगाल के सीमान्त प्रदेशों में, उत्तर प्रदेश, विन्ध्यप्रदेश, मध्यप्रदेश, उड़ीसा और आसाम में पाये जाते हैं। अतः इन्हीं प्रदेशों में ही लाख का उत्पादन होता है। भारत के कुल उत्पादन का ६० प्रतिशतांश केवल बिहार के छोटा नागपुर प्रदेश से ही प्राप्त होता है। परन्तु उद्योग-धंधों का अधिक विकास न होने के कारण भारत में कुल २ प्रतिशत लाख खर्च होता है। बाकी सब दूसरे देशों को भेज दिया जाता है।

भारत में लाख से वस्तु निर्माण करने के कई छोटे-छोटे कारखाने उत्तर प्रदेश, बिहार और पश्चिमी बंगाल में स्थित हैं। उत्तर प्रदेश के मिरज़ापुर और बिहार के पकूर स्थानों का लाख-निर्माण उद्योग विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

लाख के व्यापार में भारत का एकाधिपत्य है। सब से अधिक लाख ग्रेट ब्रिटेन और संयुक्त राष्ट्र को जाती है और निर्यात की कुल मात्रा का ९८ प्रतिशत भाग कलकत्ता के बन्दरगाह से बाहर भेजा जाता है। सन् १९५१-५२ में भारत ने ७,१७,००० हन्डरवेट लाख बाहर के देशों को निर्यात किया।

भारत में लाख का उपभोग

ग्रामोफोन रिकार्ड	३५ प्रतिशत
पालिश और वार्निश	२० प्रतिशत
बिजली निरोधक	१५ प्रतिशत
टोप को कड़ा बनाने में	१० प्रतिशत
सील करने की बत्ती	५ प्रतिशत
लीथोग्राफ की स्याही बनाने इत्यादि	१५ प्रतिशत

हाल में भारतीय चपड़ा उद्योग को स्याम की सस्ती लाख की स्पर्धा का सामना करना पड़ा है। ऐसा अनुमान है कि कई प्रकार की कृत्रिम लाख व सस्ती स्यामीज़ लाख की स्पर्धा के कारण भारतीय चपड़े की मांग कम हो जायेगी। संयुक्त राष्ट्र अमरीका अब ग्रामोफोन के रिकार्ड बनाने के लिये भारत से बहुत कम लाख मंगवाता है। भारतीय चपड़ा व लाख व्यवसाय की दूसरी बड़ी समस्या मिलावट की है। बहुधा भारतीय चपड़े में ३० प्र. श. तक गोंद मिला रहता है। कभी-कभी शीरा व चूर्ण मिट्टी भी मिली पाई जाती है। चपड़ा व्यवसाय की प्रगति के लिये इस प्रकार की मिलावट पर रोक लगाई जाना अति आवश्यक है।

गोंद—हिमालय प्रदेश और आसाम की पहाड़ियों पर चीड़ के वृक्षों से गोंद प्राप्त होता है। इससे चिपकाने वाला गोंद तथा तारपीन का तेल तैयार किया जाता है। इसके अलावा लाख की चूड़ियां इत्यादि बनाने में, कागज़ के कारखानों में तथा साबुन की मिलों में भी गोंद का उपभोग होता है। इससे प्राप्त तारपीन का तेल दवाइयों व वार्निश बनाने में प्रयोग किया जाता है।

मेराबोलन—यह वृक्ष मद्रास, बम्बई, पश्चिमी बंगाल, छोटा नागपुर, उड़ीसा तथा अन्य बहुत से प्रदेशों में पाया जाता है। इसी मेल का एक वृक्ष कोयम्बटूर में भी उगता है परन्तु उसके फल बहुत छोटे होते हैं और पूरा वृक्ष पीपल के वृक्ष से ऊंचा होता है। इस मेराबोलन के वृक्ष की हर वस्तु काम की होती है। इसके फल, छाल, पत्ते और लकड़ी सभी का विविध कामों में उपभोग होता है। इसकी लकड़ी बड़ी मजबूत होती है। जबलपुर क्षेत्र का मेराबोलन सबसे अच्छा होता है और इसे बहुत-सी दवा व रंग बनाने में प्रयोग करते हैं। इसकी छाल से चमड़ा साफ किया जाता है। इसके फल व पत्ते के छाल को बहुत से रंगों व दवाइयों में मिलाते हैं। मद्रास में सूत, ऊन व रेशम को रंगने में इसका विस्तृत उपयोग होता है। आसाम में अंडी और मूगा रेशम को मेराबोलन के क्षार में ही रंगा जाता है। सन् १९५१-५२ में भारत से ८,३४,००० हन्डरवेट मेराबोलन निर्यात किया गया। इसमें से आधा निर्यात तो मद्रास से हुआ और एक-चौथाई बम्बई से। ग्रेट ब्रिटेन, जर्मनी, बेल्जियम, चीन, जापान, संयुक्तराष्ट्र और आस्ट्रेलिया में इनकी बड़ी मांग रहती है और भारत के निर्यात का अधिकतर भाग उन्हीं देशों को जाता है।

हाल के दिनों में भारत के वनों से प्राप्त गौण उपज का महत्व बहुत बढ़ गया है और इस प्रकार के कच्चे माल से बहुत प्रकार की दवाइयां व सुगन्धित वस्तुएं बनाई जाती हैं। चन्दन का तेल, बीरोज़ा, पालमरोजा, लीनालोल तथा नीम का तेल वन से उपलब्ध सामग्री से ही बनाये जाते हैं। इनका साबुन व दवाई में विस्तृत प्रयोग होता है। भारत में कुछ ऐसे पौधों व जड़ी-बूटियों की भी मांग है जिनके अन्दर दवा के गुण मौजूद रहते हैं। कुचला, पिपरमिन्ट, जूनिपर आदि इसी प्रकार की वस्तुएं हैं जो वन से प्राप्त होती हैं।

देहरादून की वन अनुसंधानशाला में वैज्ञानिक लोग विविध प्रकार की खोजों में संलग्न हैं। वे लोग ऐसी लकड़ी का पता लगाना चाहते हैं जिसको हवाई जहाज़ बनाने में प्रयोग किया जा सके और दूसरी ऐसी वस्तुएँ जिनसे सस्ता छपाई का कागज तैयार हो सके। बैटरी को अलग करने की या विद्युत निरोधक उपयुक्त देशी लकड़ी की खोज भी हो रही है। साथ-साथ पेंसिल बनाने के लिये उपयुक्त लकड़ी खोजने का भी प्रयत्न किया जा रहा है। वैज्ञानिक खोज से पता चला है कि भारतीय देवदार की लकड़ी पेंसिल बनाने के लिये बहुत उपयुक्त है। इस समय भारतीय पेंसिल व्यवसाय पूर्वी अफ्रीका के देवदार पर निर्भर है। भारतीय देवदार इससे कहीं अच्छा है और इससे उच्चकोटि की पेंसिलें बन सकती हैं।

भारत में वन-सम्पत्ति के उपयोग में कई अड़चनें हैं जिनमें सबसे महत्वपूर्ण रुकावट यातायात सम्बन्धी है। भारी लकड़ी तथा अन्य वस्तुओं को वन प्रदेशों से निकाल कर सड़क, रेल व नदी द्वारा कारखानों तक लाने का प्रश्न बड़ा टेढ़ा है। इस समय यह काम निम्नलिखित

दो तरीकों से किया जाता है—(१) बैल, भैंस या हाथियों की सहायता से इस सामग्री को सड़कों, रेलों अथवा नदियों तक लाया जाता है और फिर उनमें से किसी एक साधन द्वारा कारखानों तक पहुंचाया जाता है।.(२) वर्षा के महीनों में जब नदियों में पानी अधिक रहता है लकड़ी के तख्तों को वहा दिया जाता है और फिर बहुत दिनों के बाद इन्हें पानी में से घसीट कर लकड़ी चीरने के कारखानों में पहुंचाते हैं। यातायात की यह अड़चनें हिमालय प्रदेश के वनों के उपभोग में सबसे बड़ी रुकावट हैं। यही कारण है कि भारत में मुलायम लकड़ी का काफी भंडार होते हुए भी इसे उपयोग नहीं किया जा सकता है।

भारत की प्रमुख व्यापारिक लकड़ी—आजकल के युग में लकड़ी का विशेष महत्व है और विशेषज्ञों का विचार है कि दबाये हुए बांस तथा अच्छी तरह तैयार की हुई लकड़ी के तख्ते लोहे व इस्पात की तरह मजबूत होते हैं और इस्पात के स्थान पर इस प्रकार की लकड़ी या बांस का प्रयोग सर्वथा संभव है। भारत में अनेक प्रकार की लकड़ी के वृक्ष पाये जाते हैं और बांस का तो अटूट भंडार है। भारत में उपलब्ध विभिन्न प्रकार के वृक्ष निम्नलिखित हैं:—

वेंग—यह सफेद रंग की मुलायम लकड़ी होती है और इसका वृक्ष आसाम में पाया जाता है।

सागौन—यह साधारण कठोर लकड़ी है और लाल-भूरे रंग की होती है। इसका वृक्ष पश्चिमी तटीय प्रदेशों में पाया जाता है और कहवा के डिब्बे, मेज़, कुर्सी तथा पानी के जहाज़ बनाने में प्रयोग किया जाता है।

बीजसाल—बम्बई, मद्रास और बिहार में उपलब्ध यह लकड़ी मजबूत, ठोस व कठोर होती है। इससे दरवाजों व खिड़कियों की चौखटें, मेज़-कुर्सी तथा खेती के औजार बनाये जाते हैं।

नीला चीड़—इसका वृक्ष पूर्वी पंजाब में पाया जाता है और गृह-निर्माण में बहुत प्रयोग किया जाता है।

देवदार—यह भी साधारणतया कठोर होता है। इसमें तेल का अंश काफी रहता है और तेज सुगन्धि भी आती है। इसे रेल के स्लीपरों व गृह-निर्माण में प्रयोग किया जाता है।

धूप—पश्चमी घाट के ढालों पर यह वृक्ष उगता है। इससे गोंद निकलता है और इसकी लकड़ी से चाय के बक्स व सामान बन्द करने की पेटियां भी बनाई जाती हैं।

हल्दू—यह पेड़ भारत के हर प्रदेश में पाया जाता है। इसका रंग पीला और लकड़ी कठोर व ठोस होती है। इससे मेज़-कुर्सी तथा सिगार के डिब्बे बनते हैं।

भारतीय रोज लकड़ी—संसार भर में प्रसिद्ध है और इसके वृक्ष पश्चिमी घाट के दक्षिणी भाग में पाये जाते हैं। वैसे ये मध्यप्रदेश व उड़ीसा में भी पाया जाता है। इसकी लकड़ी वहुत कठोर और ठोस होती है। इसका रंग काला-भूरा होता है और इन्हीं सब कारणों से इसका मूल्य बहुत अधिक होता है। इससे मेज-कुर्सियां बनती हैं।

शीशम—इसका वृक्ष उत्तर प्रदेश, पूर्वी पंजाब और पश्चिमी बंगाल में पाया जाता है। इसकी लकड़ी बड़ी कठोर व ठोस होती है। इसका रंग भूरा होता है और इस पर पालिश का रंग खूब चढ़ता है। इससे गाड़ी, बैलगाड़ी तथा नाव आदि बनाई जाती है।

मेसुआ—इसका वृक्ष मद्रास में बहुत होता है। बहुत मजबूत होने के कारण इससे रेल के स्लीपर बनाये जाते हैं। आसाम में भी यह पेड़ मिलता है।

साल—इसकी लकड़ी की उत्तरी भारत में बड़ी मांग रहती है और इससे रेलों के स्लीपर, मकानों की धरनी, खंभे, तख्ते तथा किवाड़ व खिड़कियां बनाई जातीं हैं। इसका वृक्ष आसाम, पश्चिमी बंगाल, बिहार, मध्य प्रदेश, उड़ीसा और उत्तर प्रदेश में पाया जाता है।

चन्दन—चन्दन की लकड़ी दक्षिण भारत के शुष्क प्रदेशों से प्राप्त होती है और इसका मूल्य भी बहुत अधिक होता है। यह कठोर व ठोस होती है। इसका रंग पीला-भूरा होता है और इसमें से एक तेज सुगन्धि आती रहती है। इस लकड़ी में तेल का अंश भी रहता है और इससे प्राप्त किया हुआ सुगन्धित तेल बड़ी कीमत का होता है। इस पर नक्काशी करके छोटी-छोटी वस्तुएं बनाई जाती हैं जो बड़ी अच्छी मालूम पड़ती हैं। कमरे व घर को सजाने के लिये इनकी विशेष मांग रहती है।

सेमूल—इसका वृक्ष आसाम, बिहार और मद्रास में विस्तृत रूप से पाया जाता है। इसकी लकड़ी मुलायम व सफेद रंग की होती है। इससे खिलौने, सामान बन्द करने के बक्स और तख्ते बनाये जाते हैं।

सुन्दरी—इसका वृक्ष केवल पश्चिमी बंगाल के तटीय भागों में पाया जाता है और इसी के आधार पर इसके वन का नाम सुन्दरबन पड़ गया है। इसकी लकड़ी बड़ी ठोस व कठोर होती है। इससे नाव, मेज, कुर्सी, बल्लियां, तख्ते और खंभे बनाये जाते हैं।

सागौन—इसके पेड़ मध्य प्रदेश, मद्रास और बम्बई में पाये जाते हैं। पानी के जहाजों तथा घर के दरवाजों, फर्श और छतों के लिये यह लकड़ी बड़ी ही उपयुक्त होती है और संसार भर में प्रसिद्ध है। भारत में इसे गृह-निर्माण व पोत-निर्माण के लिये प्रयोग करते हैं। इससे पुल, स्लीपर तथा मेज-कुर्सी भी बनाई जाती हैं। परन्तु इस समय अधिकतर सागौन की लकड़ी बाहर भेज दी जाती है।

यदि वैज्ञानिकों की खोज के फलस्वरूप इस्पात के स्थान पर लकड़ी का उपयोग संभव हो सका तो भारत तथा अन्य एशियाई देशों की वन-संपत्ति का उचित उपयोग होगा और इन प्रदेशों की आर्थिक व औद्योगिक उन्नति हो जायेगी।

प्रश्नावली

१. निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणियां लिखिये—
   (अ) वनों के प्रकार
   (आ) फिर से वन लगाना
   (इ) भारतीय वनों की गौण उपज

२. भारत में सागौन के जंगल कहां-कहां पाये जाते हैं? उनके पाये जाने के क्या भौगोलिक कारण हैं? जर्मनी के जंगलों की अपेक्षा भारतीय वनों का उपभोग कम होने का क्या कारण है?

३. भारतीय लकड़ी के व्यापार को किस प्रकार बढ़ाया जा सकता है? भारत से विदेशों को लकड़ी निर्यात करने के विभिन्न उपायों को बतलाइये। भारत के जंगलों की कौन-सी लकड़ी इस दृष्टि से सब से महत्वपूर्ण है?

अध्याय : : छः

भारत के पशु और उनसे प्राप्त सामग्री

भारत में पशुओं की संख्या बहुत अधिक है परन्तु उनकी दशा बहुत गिरी हुई है।

भारत में पशुओं की संख्या (१९५०–५१)

(लाख में)

गाय-बैल	१३३८	घोड़े	१४
भैंस	३९५	खच्चर	११
भेड़	३५४	ऊँट	६
बकरी	४४१	सुअर	३६

गाय-बैल—संसार में गाय-बैल की कुल संख्या ६९०० लाख है। इनमें से १३४० लाख गाय-बैल भारत में पाये जाते हैं। इस प्रकार स्पष्ट है कि भारत में संसार के सब से अधिक गाय-बैल पाये जाते हैं और इन्हें खेत जोतने व दूध निकालने के लिये प्रयोग किया जाता है। दूध से मक्खन और घी बनाया जाता है। वैसे सादा दूध भी काफी मात्रा में पिया जाता है। भारत के अधिकतर लोग शाकाहारी हैं। इसलिये उनके भोजन में दूध, दही, मक्खन और घी का बड़ा महत्व है। इसके अलावा भारत की खेती का तो यहां के पशु सहारा हैं। यदि ये पशु न होते तो भारत के मैदानों व खेतों पर कोई भी फसल न उग सकती और अनाज के भंडार खाली पड़े रहते। इस प्रकार भारत के गाय-बैल यहां के भोजन के मेरुदंड हैं, परन्तु खेद की बात है कि इनकी विशेष देख-भाल नहीं हो पाती। इन्हें पूरी खुराक भोजन भी नहीं मिलता। इनका प्रादेशिक वितरण भी अनियमित है। भारत के बहुत से भागों में घास काफी नहीं होती इसलिये चारा उगाने की विशेष जरूरत है। उत्तर भारत में कृषि उद्यम के विस्तृत होने के कारण प्रायः भूमि के हर उपजाऊ टुकड़े को खेती के काम में ले आया गया है। फलतः पशुओं के चारण के लिये तृण-भूमियों का अभाव ही है। चारा भी अलग से बहुत कम ही उगाया जाता है। अधिकतर विविध फसलों से बचे हुए भूसे व डंठल को ही पशु खाते हैं। भारत के मुख्य पशु-पालन क्षेत्र गुजरात, मध्य भारत, नेल्लोर, उत्तर प्रदेश, मैसूर और बम्बई हैं।

राज्य सरकारें पशुओं की नस्ल सुधारने की ओर ध्यान दे रही हैं। इस समय भारत के गाय-बैलों की प्रमुख नस्लें निम्नलिखित हैं—

साहीवाल, (दिल्ली, फीरोजपुर, नागपुर), हरियाना (करनाल और हिसार), गीर (बम्बई और बंगलौर), कांकरिंग (बड़ौदा), नागौरी (राजस्थान), रंगयाम (मद्रास)।

चाहे हम प्रति मनुष्य पीछे या प्रति एकड़ पर पशुओं की संख्या लें, यहां हर तरीके से संसार के सब से अधिक पशु पाये जाते हैं। इनका देश के आर्थिक जीवन में बड़ा महत्व है। पशु की मेहनत, दूध, दही, घी, खाद तथा अन्य वस्तुओं के दृष्टिकोण से भारत की

पशु संपत्ति का वार्षिक मूल्य १३०० करोड़ रुपये होगा।

परन्तु खेद की बात तो यह है कि यहां के पशुओं की दशा बहुत गिरी हुई है। पशुओं की संपत्ति को पूरी तरह से उपभोग किया जा सकता है परन्तु प्रश्न यह उठता है कि इतने बड़े देश में जहां इतनी विभिन्न परिस्थितियां पायी जाती हैं वहां इस काम को किस प्रकार सुचारु रूप से किया जाय।

पशुओं की दशा खराब होने से उत्पन्न समस्याओं को हम पाँच प्रकार का कह सकते हैं।

(१) नस्ल की निम्नता (२) चारे की कमी तथा चारे का खराब होना (३) पशुओं में प्रचलित रोगों की अधिकता (४) कार्य-संचालन व देख-भाल (५) उनसे प्राप्त वस्तुओं की बिक्री का इन्तजाम।

इन सब समस्याओं को हल करने के लिए निम्नलिखित काम करना जरूरी है— (१) अच्छी नस्ल के पशुओं और खासतौर पर बैलों का प्रबंध (२) अधिक और अच्छे किस्म के चारे को उगाने का प्रबंध (३) पशुओं के स्वास्थ्य की देखभाल और उनके रहने की दशाओं को स्वच्छ बनाना (४) बे पढ़े लिखे किसानों में प्रचार द्वारा इस प्रकार की देखभाल के तरीकों पर जोर दिलवाना।

इस दृष्टिकोण से हमारी सरकार की भारतीय खेती अनुसंधान समिति विशेष काम कर रही है और बंबई सरकार द्वारा खोली गई दुग्धशाला व पशु शाला बहुत ही सराहनीय है।

भेड़—भारत में लगभग ३५० लाख भेड़ हैं। परन्तु भेड़ पालने वाले गड़रिये अधिकतर बे पढ़े-लिखे हैं और व्यवसाय की वर्तमान दशाओं से बिल्कुल अनभिज्ञ हैं। पंजाब के हिसार जिले, उत्तर प्रदेश के गढ़वाल, अल्मोड़ा और नैनीताल जिलों, काठियावाड़, गुजरात और मैसूर तथा मद्रास के बेलारी, करनाल और कोयम्बटूर प्रदेशों में भेड़ों को विशेष रूप से पाला जाता है। परन्तु दक्षिणी अफ्रीका और आस्ट्रेलिया की अपेक्षा भारत की भेड़ें मामूली होती हैं। फलतः इनका ऊन व मांस दोनों ही निम्न कोटि का होता है। उत्तरी भारत की भेड़ों का ऊन सफेद व बढ़िया होता है। इसके विपरीत दक्षिणी भारत की भेड़ों का ऊन छोटा, रूखा व भूरे रंग का होता है। भारत में ऊन का औसत उत्पादन ५५० लाख पौंड है। भारत की मंडियों में अधिकतर मरी हुई या मारी हुई भेड़ों के बालों से तैयार किया हुआ ऊन ही आता है।

ऊन का उत्पादन लाख पौंड में

प्रदेश	उत्पादन
जोधपुर	८०
बीकानेर	५७
उत्तर प्रदेश	५२
मद्रास	४५
पूर्वी पंजाब	४३

हैदराबाद	४२
जैपुर	३५

भारत में उत्पन्न अधिकतर ऊन गांव की दस्तकारी में खप जाती है। इससे अधिकतर मोटे कम्बल तथा दरियां व गलीचे बनाये जाते हैं। बहुत थोडी मात्रा में यह बाहर भेजी जाती है। भारत से ऊन का वार्षिक निर्यात कुल ४२० लाख पौंड है। परन्तु विदेशी ग्राहक भी ऊन की किस्म से संतुष्ट नहीं रहते क्योंकि इसमें बालू आदि गन्दगी मिली रहती है। निर्यात के पहले ऊन को धोकर साफ कर लेना चाहिये। उचित वर्गीकरण द्वारा ऊन की कोटि निर्धारित कर देना भी आवश्यक है।

बकरी—गरीब आदमी के सस्ते दूध का सहारा है। इसके दूध में बहुत से स्वास्थ्य-वर्धक गुण पाये जाते है परन्तु बकरी से प्राप्त होने वाली दूध की मात्रा बहुत कम होती है। भारत में ५०० लाख बकरियां पाई जाती हैं और इनका मुख्य महत्व दूध, मांस व कहीं-कहीं बालों के कारण है। बकरियां बहुत होती हैं और इन्हें पालने में कोई विशेष खर्च भी नहीं होता। प्रायः घर की झूठन आदि पर ही यह पल जाती हैं।

घोड़े, खच्चर व ऊंट—भारत में करीब ३० लाख घोड़े व खच्चर पाये जाते हैं और पंजाब, उत्तर प्रदेश व बम्बई में इनकी संख्या विशेष अधिक है। इनसे बोझा ढोने का काम लिया जाता है ओर विविध प्रकार की गाड़ियों में जोत कर सवारी के लिये प्रयोग करते हैं। ऊंट विशेष रूप से पूर्वी पंजाब व पश्चिमी राजस्थान में पाये जाते हैं। इन प्रदेशों में ये जानवर बोझा ढोते हैं और खेत जोतते हैं। एक विशेष प्रकार की गाड़ी में भी इन्हें जोता जाता है।

पशुओं से प्राप्त सामग्री

भारत में पशुओं से कई प्रकार की वस्तुएं प्राप्त होती हैं जिनमें खालें व चमड़ा, हड्डी, ऊन, दूध, मक्खन व घी का विशेष महत्व है। खालों व चमड़े से घोड़ों का साज व काठी, थैले, सूटकेस, ट्रंक, मशीनों की पट्टियां, मोटरगाड़ियों की सीटें व छत, बन्दूक आदि रखने के बक्स, जूते तथा दस्ताने बनाये जाते हैं। खालों में गाय-बैल, घोड़े व ऊंट की खालें विशेष महत्वपूर्ण होती हैं। चमड़ा बकरी, भेड़ व बछड़ों से प्राप्त होता है। भारत में चमड़ा व खालों को बहुधा सार्वजनिक वधशालाओं से इकट्ठा किया जाता है। पश्चिमी बंगाल और मद्रास में गाय-बैल की सब से अधिक खालें प्राप्त होती हैं। मद्रास में भैंसे का चमड़ा व भेड़ी की खाल का उत्पादन बहुत अधिक है। उत्तर प्रदेश, पश्चिमी बंगाल और विहार से बकरी की खाल प्राप्त की जाती है। कानपुर, आगरा, कलकत्ता, दिल्ली और मद्रास भारत के चमड़ा व्यवसाय के केन्द्र हैं।

चमड़ा व खालों का उत्पादन और निर्यात (१९५१–५२)

	उत्पादन	निर्यात
भैंस का चमड़ा	५२ लाख अदद	२७,००० अदद
गाय का चमड़ा	१६५ ,, ,,	१९,५००० ,,
बकरी की खाल	२९७ ,, ,,	१०,३०० ,,
भेड़ों की खाल	११८ ,, ,,	२,१४,००० ,,

भारत की खालों व चमड़े की संयुक्त राष्ट्र, जर्मनी, ग्रेट ब्रिटेन, फ्रांस, बेल्जियम, ईराक, ईरान और बर्मा में विशेष मांग रहती है। सन् १९५१-५२ में भारत से इन देशों को १८००० टन चमड़ा व खाल निर्यात किया गया। अविभाजित भारत से ३०,००० टन खाल व चमड़ा निर्यात किया जाता था। परन्तु देश-विभाजन से भारत में खाल व चमड़े का उत्पादन व निर्यात सीमित हो गया है।

यद्यपि देश-विभाजन से चमड़ा व खालों के प्रमुख क्षेत्र पाकिस्तान में चले गये हैं परन्तु भारत की घरेलू मांग की पूर्ति के लिये बाहर से कुछ विशेष अधिक आयात नहीं करना पड़ता है। हां, निर्यात की मात्रा जरूर कम हो गई है। दूसरी बात यह हुई कि दिल्ली व पेप्सू के प्रदेश इस उद्योग के केन्द्र हुआ करते थे परन्तु अधिकतर व्यापारियों के पाकिस्तान चले जाने से इस प्रदेश के उद्योग को काफी धक्का लगा। इन बाह्य कारणों के अलावा कुछ आन्तरिक कारणों से भी चमड़ा व खालों का उत्पादन कम हो गया है। बैल-भैंस की कुल संख्या में कमी हो गई है और फिर विभिन्न राज्यों ने पशु-वध पर रोक लगा रखी है। मैसूर में तो पशु-वध विरोधक कानून बना दिया गया है। बम्बई व उत्तर प्रदेश में पशुओं के अत्यधिक वध को रोकने के लिये सरकारी प्रतिबन्ध लगा दिये गये हैं। दिल्ली व पंजाब में ऐसा कोई कानून तो नहीं बना है परन्तु कुछ राजनीतिक दलों के 'गोहत्या बन्द करो' आंदोलन के फलस्वरूप लोगों ने जानवरों का बध करना स्वयं भी कम कर दिया है। फलतः चमड़ा व खालों के उत्पादन में भारी कमी आ गई है।

इस उद्योग की उन्नति के लिये यह आवश्यक है कि (१) तैयार व साफ किये हुए चमड़ा उद्योग की ओर अधिक ध्यान दिया जाना चाहिए। (२) पशु-वध निरोधक विधान बनाने के पहले इस व्यवसाय पर पड़ने वाले हानिकारक असर की पूरी जांच-पड़ताल की जानी चाहिए और (३) गांवों में खालों को देशी ढंग से साफ करने के उद्योग को विकसित करने के लिये पूरे प्रयत्न किये जाने चाहिये।

भारत में दूध का वार्षिक उत्पादन ३२०० लाख मन है। दूध के उत्पादन में संसार के देशों में भारत का दूसरा स्थान है और केवल संयुक्तराष्ट्र का उत्पादन ही इससे अधिक है। भारत में दूध का उत्पादन ग्रेट ब्रिटेन से चौगुना, डेनमार्क का पांच गुना, आस्ट्रेलिया का छः गुना और न्यूजीलैंड का सात गुना है। परन्तु प्रति पशु से प्राप्त दूध की मात्रा में बड़ा हेर-फेर रहता है। कुछ पशु तो केवल एक दिन में ५ पौंड दूध देते हैं और कुछ १७ पौंड तक। थोड़ा ध्यान देने पर अधिकतर पशुओं के लिये यह दैनिक मात्रा १५ पौंड प्रतिदिन तक की जा सकती है।

भारत के विभिन्न राज्यों में दूध का अनुमानित उत्पादन (लाख मन में)

मध्य प्रदेश	८२.५
उत्तर प्रदेश	११०१.५
बिहार	५५९.१८
उड़ीसा	४८.८९
आसाम	२७.८
बम्बई	१८२.६६
मद्रास	४६५.१९

भारत में दूध से दो वस्तुएं विशेषकर बनाई जाती हैं—मक्खन और घी। पिछले दिनों में पशुपालन उद्योग में वृद्धि होने से मक्खन का उत्पादन भी बढ़ गया है। पशु-पालन व दुग्धशाला का उद्योग आगरा, अलीगढ़, बम्बई और कलकत्ता में केन्द्रित है। मक्खन का कुल उत्पादन देश में ही खत्म हो जाता है।

भारत में प्रति मनुष्य पर केवल ८ औंस दूध उत्पन्न होता है और दूध की औसत खपत आसाम में १.३ औंस से लेकर पूर्वी पंजाब में १६.३ औंस प्रति मनुष्य तक रहती है।

भारत में **घी** की बड़ी मांग रहती है और प्रत्येक घर में मक्खन को धीमी आंच पर गर्म करके **घी** तैयार करते हैं। मक्खन को गर्म करने से एक तेल सी वस्तु ऊपर तैरने लगती है। उसी को घी की तरह प्रयोग करते हैं। घी की सहायता से अनेक प्रकार का भोजन व मिठाइयां तैयार की जाती हैं। भैंस के दूध से तैयार किये हुए मक्खन से गाय के दूध के मक्खन की अपेक्षा अधिक घी निकलता है। उत्तर प्रदेश, राजस्थान, मध्य भारत और पूर्वी पंजाब में घी बनाने का व्यवसाय विशेष उन्नत है। भारत में घी का वार्षिक उत्पादन १४० लाख मन है। मौसम के अनुसार घी अच्छा या बुरा होता है। घी की किस्म मौसम, पशुओं के भोजन व स्वास्थ्य पर निर्भर रहती है। जाड़े के मौसम का घी सबसे अच्छा होता है और बरसात का घी सबसे निम्न कोटि का होता है। बहुधा अच्छे घी के साथ सस्ती व कम अच्छी चर्बी का मेल कर देते हैं जिससे उसकी किस्म खराब हो जाती है।

देश में तैयार किये हुए कुल घी का ३० प्रतिशत भाग किसानों द्वारा अपने घरेलू उपभोग में खर्च कर दिया जाता है। शेष ७० प्रतिशत भाग बाजार में बेचने के लिये लाया जाता है। भारत से स्ट्रेट्स सेटलमेंट्स, मलाया, लंका, दक्षिणी अफ्रीका, मारीशस और हांगकांग को घी निर्यात किया जाता है। इन प्रदेशों में प्रवासी भारतीय जनता में भारतीय घी की बड़ी मांग रहती है। साधारण समय में भारत नेपाल से ६६,००० मन घी आयात करता है।

पिछले कुछ दिनों से वनस्पति घी की स्पर्धा के कारण देशी घी के उत्पादन व व्यापार को बड़ा धक्का लगा है। शुद्ध घी का मिलना बड़ा कठिन हो गया है। अच्छे घी के स्थान पर बहुधा मिलावट का घी मिलता है। इसलिये देश में घी की परीक्षा कर वर्गीकरण करने के लिये विविध केंद्रों में पूरी व्यवस्था होनी चाहिये।

भारत के कई स्थानों पर पशु-पालन व दुग्धशाला व्यवसाय की उन्नति की ओर विशेष ध्यान दिया जा रहा है। बंबई राज्य ने इस दिशा में विशेष प्रगति की है। बंबई के २६६ मील उत्तर में कैरा जिले में आनन्द स्थान पर एक बहुत बड़ा मक्खन का कारखाना बनाया गया है। इस कारखाने से १०,००० पौंड मक्खन प्रति दिन प्राप्त हो सकेगा। टीन के डिब्बों में बन्द किया हुआ यह मक्खन देश के हर प्रदेश में बिकता है। बम्बई नगर को इसी इलाके से प्रतिदिन ५००० गैलन दूध मिलता है। बम्बई के कोई २० मील उत्तर में राज्य सरकार ने ३००० एकड़ भूमि पर एक आदर्श दुग्धशाला बनाने का काम शुरू कर दिया है। इस क्षेत्र में करीब १५००० दुधारू पशु रक्खे जा सकेंगे। इस केंद्रीय दुग्धशाला में दूध जमाने का एक कारखाना भी होगा जिसमें ४०००

गैलन दूध प्रतिदिन जमाया जा सकेगा।

मद्रास में उटकामंड स्थान पर दूध जमाने का एक बिलकुल ही नवीन कारखाना स्थापित किया गया है। उत्तर प्रदेश में दुग्धशाला व्यवसाय के प्रमुख केंद्र अलीगढ़, कानपुर, लखनऊ, बनारस और इलाहाबाद हैं।

मुर्गी-बत्तख—भारत में मुर्गी व बत्तख के अंडों की अधिक खपत नहीं, इसका कारण यह है कि भारत की अधिकतर जनता शाकाहारी है। भारतवर्ष में प्रति वर्ष प्रत्येक मनुष्य ८ अंडों का उपभोग करता है जबकि कनाडा में २९६ और ग्रेट ब्रिटेन में १५४ अंडे प्रतिवर्ष प्रत्येक मनुष्य द्वारा प्रयोग किये जाते हैं। फिर भी देश में अंडों के उत्पादन के लिये पर्याप्त क्षेत्र है। भारत प्रति वर्ष ५ करोड़ रुपये मूल्य के सुखाये हुए व गीले अंडों का निर्यात करता है। भारत में होने वाले मुर्गी के अंडों का ६० प्रतिशत भाग और बत्तख के अंडों का ८० प्रतिशत भाग निर्यात कर दिया जाता है। प्रतिवर्ष ७$\frac{१}{२}$ करोड़ रुपये मूल्य की मुर्गियां व बत्तख भी बाहर भेजी जाती हैं।

प्रश्नावली

१. "भारत में १,२०,००० से भी अधिक पशु हैं परन्तु दुग्धशाला का उद्योग फिर भी बहुत पिछड़ा हुआ है।" इस कथन पर अपने विचार प्रकट कीजिये।

२. भारत में ऊन किन पशुओं से प्राप्त की जाती है और उसका क्या महत्व है?

अध्याय : : सात

मछलियां

आजकल मछलियों का महत्व बहुत बढ़ गया है। इसका मुख्य कारण यह है कि भोजन की सामग्री के रूप में उनका अटूट भंडार है। यद्यपि भारत के अधिकतर लोग शाहाकारी हैं परन्तु फिर भी हर जाति व धर्म के लोग मछली खाते हैं। इसलिये भोजन के दृष्टिकोण से मछलियों का उतना ही महत्व है जितना खेती या पशुपालन का। कुल जनसंख्या में से केवल ३ करोड़ २० लाख लोग जो जाति के ब्राह्मण, वैश्य या जैन हैं, मछली व मांस नहीं खाते चूंकि उनके धर्म में इस प्रकार के भोजन का निषेध है। मांसाहारी भी बहुधा शाकाहारी भोजन करते हैं। उसका मुख्य कारण या तो मछली की अलब्धता है या इसके ऊंचे दाम।

मछलियां प्रायः समुद्र व नदियों में पाई जाती हैं। इसी आधार पर उन्हें खारे पानी और मीठे पानी की मछलियों के नाम से पुकारते हैं। खारे पानी की मछलियां छिछले तटीय समुद्रों, नदियों के मुहाने और खाड़ियों में पाई जाती हैं। मीठे पानी की मछलियां नदियों, नहरों, तालाबों तथा बाढ़ के भागों में मिलती हैं। भारत के आर्थिक जीवन में इन दोनों ही प्रकार की मछलियों का बहुत कम महत्व है।

भारत में समुद्री मछलियाँ का उत्पादन

क्षेत्र	कुल पकड़ (हजार मनों में)	कुल का प्रतिशत
कठियावाड़	९९·८	०·९९
बम्बई :		
गुजरात	१०७·७	१·०७
उत्तरी थाना प्रदेश	१६३·९	१·६३
दक्षिणी थाना प्रदेश	३८०·६	३·७८
रत्नगिरि तट	३५४·३	३·५२
उत्तरी कनारा तट	४९०·९	४·९०
मद्रासः—		
पश्चिमी तट—		
दक्षिणी कनाडा तट	१६०४·०	१५·९२
मालाबार तट	२२६६·६	२२·४९
पूर्वी तट—		
दक्षिणी भाग	१८२·४	१·८१
मध्य भाग	२७०·४	२·६७
उत्तरी भाग	५४६·७	५·४१
कोचीन	३०८·४	३·०६

क्षेत्र	कुल पकड़ (हजार मनों में)	कुल का प्रतिशत
ट्रावनकोर	२४२३·०	२४·०३
उड़ीसा तट	३०३·३	३·०
बंगाल तट	५७७·२	५·७

भारत का तट २९२० मील लम्बा है और इसके १०० फैदम से कम गहरे तटीय समुद्र का क्षेत्रफल लगभग १,१०,००० वर्ग मील है। परन्तु इसके बहुत कम भाग में मछलियां पकड़ी जाती हैं। मछली पकड़ने के उद्यम के दृष्टिकोण से गुजरात, कनारा, मालाबार तट, मन्नार की खाड़ी, मद्रास और कोरोमंडल का तटीय प्रदेश ही अधिक महत्वपूर्ण है। अधिकतर समुद्री मछलियां तट के समीप के छिछले पानी में ही पकड़ी जाती हैं और छिछले जल का भी पूरा उपभोग नहीं हुआ है। १०० फैदम से अधिक गहरे समुद्रों में मछली पकड़ने का व्यवसाय व्यापारिक दृष्टिकोण से नगण्य-सा है। भारत में समुद्र से मछली पकड़ने के व्यवसाय के अवनत दशा में होने के कई कारण हैं। भारत के पास समुद्र में दूर जाकर मछली पकड़ने के लिये उचित प्रकार के जहाजों का अभाव है। फिर गर्म जलवायु और शीत भंडारों के अभाव में पकड़ी हुई मछलियों को अधिक दिन तक रखा नहीं जा सकता। मछली पकड़ने के व्यवसाय के दृष्टिकोण से पोताश्रयों तथा यातायात के साधनों के असुविधाजनक होने के कारण पकड़ी हुई मछलियों के क्रय-विक्रय में बड़ी कठिनाई पड़ती है। इन्हीं सब कारणों से भारत में समुद्री मछली पकड़ने के व्यवसाय ने बहुत कम उन्नति की है।

इस समय समुद्र में १० फैदम की गहराई तक मछलियां पकड़ी जाती हैं। समुद्री जल में उपलब्ध मछलियों को ठीक तरीके से पकड़ने के लिये समुद्री जल विज्ञान की सभी शाखाओं का सम्यक् अध्ययन किया जाना चाहिये—प्राकृतिक, रासायनिक और जननसंबंधी। भारत में इस प्रकार के अध्ययन की ओर अभी तक कोई ध्यान नहीं दिया गया है। परन्तु भारत में मछली पकड़ने का व्यवसाय तभी उन्नति कर सकता है जब यहां के जलाशयों की मछली जनन व पालन शक्ति की ठीक खोज के लिये कोई अनुसंधानशाला स्थापित की जाये।

भारत के तटीय समुद्रों में पाई जानेवाली मछलियां खाने योग्य होती हैं और उन्हें तैरते हुए, बांधे हुए या फेंक कर डाले हुए जालों से पकड़ते हैं। भारत के मछुवे अधिकतर किनारे से ५-७ मील के इर्द-गिर्द में ही मछली पकड़ते हैं। वे समुद्र में अधिक आगे जाने से झिझकते हैं। भारतीय समुद्रों में निम्नलिखित प्रकार की मछलियां पाई जाती हैं—हैरिंग, मैकरल, प्रान, जिउ, कैट, मुलट, पामफ्रट और भारतीय सालमन। मैकरल अधिकतर मद्रास, ट्रावनकोर और बंबई के तटीय प्रदेशों में पाई जाती है। विभिन्न प्रकार की मछलियों की पकड़ की मात्रा इस प्रकार है:—

मैकरल	३४ प्रतिशत
हैरिंग	१५ प्रतिशत
प्रान	९ प्रतिशत
पामफ्रेट	१·७ ,,
मुलेट	१·९ ,,

भारतीय सालमन	१·३ प्रतिशत
अन्य प्रकार	१·१ ,,

भारत की प्रथम पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत मछली का उत्पादन सन् १९५०-५१ के १० लाख टन से बढ़कर सन् १९५५-५६ में १५ लाख टन हो जायेगा।

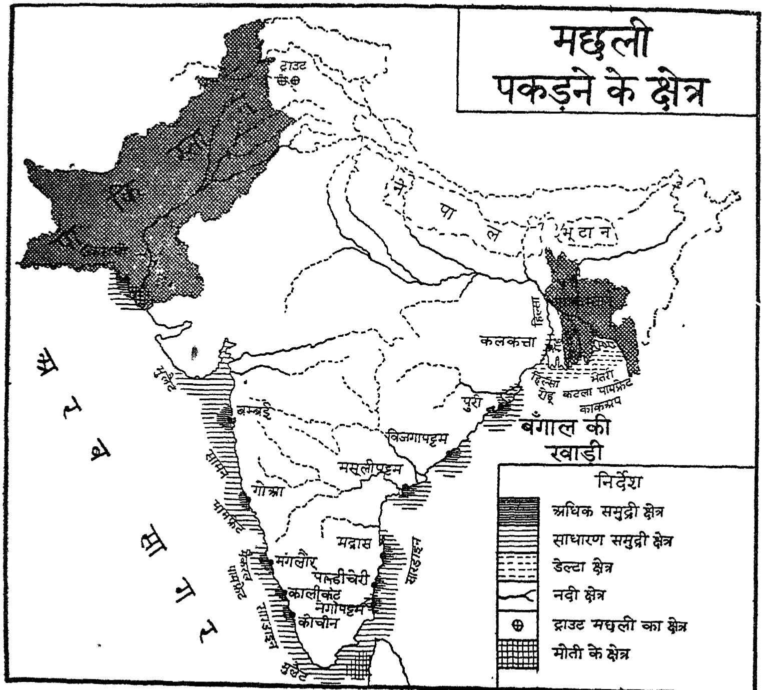
डेल्टा प्रदेश की मछलियाँ—प्रायः नदियों के मुहाने, समुद्री खाड़ियों तथा समुद्र से कटे हुए जलाशयों व झीलों में पकड़ी जाती हैं। इनकी उन्नति की भविष्य में विशेष संभावनाएं हैं। इस समय इनका विशेष विकास नहीं हुआ है। उड़ीसा की चिल्का झील, मद्रास, कोचीन और ट्रावनकोर के समुद्री जलाशयों में काफी मछलियां पकड़ी जाती हैं परन्तु सुन्दरबन और महानदी के डेल्टा प्रदेश में मछली पकड़ने के पूरे प्रयत्न नहीं किये गये हैं। ट्रावनकोर-कोचीन के समुद्री जलाशय व झीलें ३०० वर्गमील में फैली हैं और वहां पर डेल्टा प्रदेश की मछलियों को पाला जा सकता है। मुलेट, बेक्ती और मोतिया जाति की मछलियां बहुत शीघ्र बढ़ने वाली हैं और शुरू में इन्हीं को पालकर कार्य प्रारम्भ किया जा सकता है।

महानदी और गंगा के डेल्टा व मुहाने पुरी से हुगली तक फैले हुए हैं और मछली संपत्ति में विशेष धनी हैं। इनमें काकान, हिल्सा, पामफ्रेट, प्रान, कटेला, कैट, रोहू आदि जाति की मछलियों का भंडार है और इन्हें बहने वाले, घसीटने वाले, फेंके हुए व थैलेदार जालों की सहायता से पकड़ा जाता है।

मीठे पानी की मछलियों को नदियों, नहरों, तालाबों व पानी से भरे गड्ढों से पकड़ा जाता है। इस समय भारत में मीठे पानी की मछलियों का उत्पादन इन्हीं पर निर्भर है। उत्तर प्रदेश, बिहार व बंगाल में गंगा व उसकी सहायक नदियों, आसाम में ब्रह्मपुत्र नदी, उड़ीसा में महानदी और मध्य भारत की नर्मदा, ताप्ती-गोदावरी, तथा दक्षिणी भारत की किस्ना-कावेरी नदियां—मछलियों का भंडार है और इन्हीं के जल से मछलियाँ विशेष रूप से पकड़ी जाती हैं। इन प्रदेशों में लोग ताजे पानी की मछलियों को पसन्द करते हैं परंतु उनका अधिकतर स्थानीय या प्रांतीय महत्व ही है। ताजे पानी की मछलियों की मात्रा का कोई अन्दाज नहीं है और न उनके उत्पादन का कुछ अनुमान ही लगाया जा सकता है।

भारत में प्रतिवर्ष अनुमानतः ४० लाख मन मीठे पानी की मछलियां विभिन्न मंडियों में बिकने के लिये आती हैं। इनमें से ९५ प्रतिशत भाग की मांग तो विभिन्न प्रांतों में रहती है और केवल ५ प्रतिशत उन देशी राज्यों में जो अब भारत में मिला लिये गये हैं। विभिन्न प्रांतों में पश्चिमी बंगाल सबसे आगे है। मछलियों की मात्रा व मूल्य दोनों ही दृष्टिकोण से यह अन्य प्रांतों से बढ़ा हुआ है। बंगाल में पकड़ी गई मछलियां कुल मात्रा की २९ प्रतिशत और कुल मूल्य की ३६ प्रतिशत बैठती है। बंगाल के बाद बिहार और तब आसाम का स्थान है। इन तीनों राज्यों से कुल मिलाकर ७२ प्रतिशत मछलियां प्राप्त होती हैं। मद्रास, समुद्री मछलियों का सबसे बड़ा उत्पादक है। परन्तु यहां केवल ४·७ प्रतिशत मीठे पानी की मछलियां पकड़ी जाती हैं। उड़ीसा की महानदी से देश में मीठे पानी की मछलियों के कुल उत्पादन का ८·३ प्रतिशत भाग प्राप्त है और उत्तर प्रदेश की गंगा नदी से केवल ३·८ प्रतिशत।

मछली पकड़ने के उद्यम के क्षेत्र—भारत में मद्रास, बम्बई और बंगाल के राज्यों में सबसे अधिक मछलियां पकड़ी जाती हैं। **मद्रास** के १७५० मील लम्बे समुद्र-तट के पास ४०,००० वर्गमील क्षेत्रफल का जल-प्रदेश उपस्थित है। इस प्रदेश का जल बहुत छिछला है और भूखंड पर रहने वाले मछुओं की संख्या भी बहुत अधिक है। मछली पकड़ना मद्रास का मुख्य व्यवसाय भी है परन्तु मछली पकड़ने, रखने व डिब्बों में बन्द करने की रीति बड़ी पुरानी है। देशी नावों के द्वारा सारडाइन, मैकरेल, जिउ, रिबन आदि जाति की मछ-



चित्र नं० ४४—भारत में खारी व मीठे पानी की मछलियों को पकड़ने के क्षेत्र। काठियावाड़ के किनारे से बंगाल की खाड़ी तक का समुद्री प्रदेश ध्यान देने योग्य है। कुल उत्पादन का ७१ प्र. श. समुद्र से प्राप्त होता है।

लियां पकड़ी जाती हैं। पूर्वी तट पर गन्जाम, गोपालपुर, विजगापटम, कोकनाडा, मसूलीपटम, नेल्लोर, मद्रास, पांडीचेरी और नागापटम तथा पश्चिमी किनारे पर कालीकट और बंगलौर मछली व्यवसाय के मुख्य केंद्र हैं। मद्रास में नदी व गहरे समुद्र से बहुत कम मछलियां पकड़ी जाती हैं।

पश्चिमी बंगाल के लोगों का मुख्य भोजन मछली है और बहुत-से लोग इसी धंधे पर अपनी जीविका के लिये निर्भर रहते हैं। बंगाल में प्रायः नदियों, नहरों व तालाबों से मछली पकड़ी जाती है। समुद्र से मछली पकड़ने का धंधा अभी बिल्कुल अविकसित है। यदि प्रयत्न किये जायें तो बंगाल की खाड़ी के जल से उत्तम मेल की मछलियां

बहुत अधिक मात्रा में पकड़ी जा सकती हैं। इस दृष्टिकोण से सन् १९५० में पश्चिमी बंगाल सरकार ने डेनमार्क के मछलीमार विशेषज्ञों को बुलाया था ताकि वे भारतीयों को मछली पकड़ने की वैज्ञानिक रीति बतला सकें और बंगाल की खाड़ी के उत्तरी भाग के जल में मछली पकड़ने की संभावनाओं को कार्यरूप में परिणत कर सकें। देश के विभाजन से पश्चिमी बंगाल के मछली उद्यम को बहुत धक्का पहुंचा है। कलकत्ता में आने वाली ८० प्रतिशत मछली उन क्षेत्रों में पकड़ी जाती है जो आजकल पाकिस्तान में हैं। इसलिये अब मछली के उत्पादन को बढ़ाने का एकमात्र तरीका यही है कि विभिन्न तालावों व जलाशयों में मछलियां पाली जायें। इस दृष्टिकोण से पश्चिमी बंगाल को एक विशेष लाभ है कि वहां पर बहुत से ताल विद्यमान हैं जिनका सम्यक् उपयोग हो सकता है। रोहू व मृगल मछलियां तालावों में उसी प्रकार पाली जा सकती हैं जैसे घरों में मुर्गियां व वत्तखें। ये मछलियां प्रायः उबाला हुआ चावल, आलू व घर की जूठन व कूड़ा-करकट खाकर बढ़ती हैं।

बंबई में अधिकतर मछलियां समुद्र से प्राप्त होती हैं। इस दृष्टिकोण से बम्बई को एक प्राकृतिक सुविधा प्राप्त है। उसके किनारे पर कई अच्छे बन्दरगाह व पोताश्रय हैं जहां से मछलीमार जहाज आ-जा सकते हैं। साल के सात महीने मौसम बड़ा अच्छा रहता है और मछली पकड़ने का उद्यम बराबर होता रहता है। बम्बई की मछली पकड़ने वाली जनता भी और प्रदेशों की अपेक्षा अधिक जागृत है तथा वहां के मछुए अधिक हिम्मती भी हैं।

भोपाल में मछली पकड़ने के उद्यम के विकास की पर्याप्त संभावनाएं हैं। भोपाल में नर्मदा, बेतवा और पारवती नदियां तथा बहुत से बड़े-बड़े सदा भरे रहने वाले तालाब पाये जाते हैं। इन नदियों में मछली का अपार भंडार है और तालाबों में मछलियां पाल कर इस संपत्ति की और भी वृद्धि हो सकती है।

परन्तु भारत में मछली पकड़ने के उद्यम के विकास में सबसे बड़ी बाधा यह है कि यहां मछली की खपत बहुत कम है। भारत में प्रतिवर्ष प्रत्येक मनुष्य के पीछे मछली की खपत का औसत ३ पौंड है। पश्चिमी बंगाल में मछली सबसे अधिक खाई जाती है—प्रत्येक मनुष्य पीछे ६ पौंड। पूर्वी पंजाब में यह औसत ९ पौंड और बिहार में २ पौंड है। फिर भारत के निवासी केवल कुछ विशेष प्रकार की मछलियों को ही खाना पसन्द करते हैं। इसलिये उद्यम को बढ़ाने के लिये भारतीयों में न केवल ज्यादा मछली खाने की आदत ही डालनी होगी बल्कि यहां की जनता को अन्य प्रकार की मछलियों के खाद्य गुणों के विषय में बतलाना भी पड़ेगा ताकि वे अन्य विविध प्रकार की मछलियों के उपभोग करने के लिये आकर्षित हों।

भारत में मछलियों का उद्योग—भारत में ताजी मछली का उपभोग बहुत अधिक है। निम्न तालिका से उपभोग की मात्रा व प्रकार स्पष्ट हो जायेगा।

ताजी मछली	५० प्रतिशत	धूप में सुखाई हुई मछली	२० प्रतिशत
नमक लगाई हुई मछली	२० ,,	मछली की खाद	१० प्रतिशत

भारत में मछली को सुखाकर डिब्बों में भरने का उद्योग नहीं के बराबर है। डिब्बों में भरी हुई मछलियों की मांग बहुत कम है और थोड़ी बहुत मांग की पूर्ति आयात से की जाती

हैं। भारत में इस उद्योग के विकास में अनेक बाधायें हैं। एक तो हर समय पर्याप्त मात्रा में मछलियां नहीं प्राप्त होतीं और दूसरी तरफ जाड़े का मौसम जब यह उद्योग हो सकता है बहुत छोटा होता है। इसके अलावा भारत में अच्छे व सस्ते डिब्बों की भी कमी रहती है। इसलिये भारत में मछली के पेट को फाड़ कर व नमक भर कर रखते हैं। शराब तथा सिरके में डुबो कर भी मछलियां रक्खी जाती हैं। यहां के मछुये मछली को धूप में सुखाते हैं। वर्षा काल में जब धूप कम निकलती है तो नमक लगा कर रखते हैं। डिब्बों में बन्द करके रखने की प्रणाली सबसे अच्छी है। इस प्रकार रक्खी हुई मछलियां बहुत दिनों तक ताजी बनी रहती हैं। पहले मछलियों की गरदन काट दी जाती है और फिर उन्हें अच्छी तरह से धोकर साफ कर लिया जाता है। फिर इनको गाढ़ी शराब में डालकर सुखाया जाता है और अन्त में तेल से भरे डब्बों में बन्द कर दिया जाता है। इस प्रणाली से सारडाइन, मकरेल और प्रान जाति की मछलियों को रक्खा जाता है और इस उद्योग के प्रमुख केंद्र बम्बई व मद्रास हैं।

भारत में मछली उद्योग की पूरी उन्नति के लिये देश के मछलीमार बन्दरगाहों में शीत भंडारों का इन्तजाम होना चाहिये। इस दृष्टिकोण से प्रत्येक राज्य की सरकारों ने प्रयत्न शुरू कर दिये हैं। प्रत्येक राज्य में मछलियों की मात्रा व क्षेत्र के विषय में अन्वेषण हो रहा है और मछली उद्योग की उन्नति के लिये नये तरीकों की खोज की जा रही है। भारत सरकार की ओर से मछली अनुसंधानशालायें खोली गई हैं। कटक में मीठे पानी की मछलियों की अनुसंधानशाला है और मद्रास में समुद्री मछलियों की खोज का केंद्रीय कार्यालय है। ये दोनों ही संस्थायें मछली उद्योग के विकास के लिये प्रयत्नशील हैं परन्तु धन की कमी और मछुओं की पिछड़ी हुई सामाजिक व आर्थिक दशा के कारण, विशेष प्रगति की संभावना नहीं है। इसके अलावा यातायात के साधनों तथा मंडियों से संबंध रखने वाली और बहुत सी असुविधायें हैं। कुशल विशेषज्ञों तथा यंत्रादि संबंधी कठिनाइयों को विदेशी राष्ट्रों की सहायता से बहुत कुछ हल कर लिया गया है परन्तु इन स्थानीय असुविधाओं को पार किये बिना कुछ विशेष विकास की आशा कम ही है।

भारत सरकार अपने खर्चे से भारत के तट पर कई मछलीमार केंद्र स्थापित करने की सोच रही है। इन केंद्रों में वर्तमान यंत्रादि की सभी सुविधाओं का आयोजन किया जावेगा। इस प्रकार के केन्द्र बम्बई, विजगापटम, चन्दबली और कलकत्ता में स्थापित किये जायेंगे। प्रत्येक केंद्र में शीत भंडार होगा जिसमें ५०० टन तक मछलियां रक्खी जा सकेंगी और देश के भीतरी भागों में मछलियां ले जाने के लिये शीत भंडार युक्त मोटर गाड़ियों का एक काफिला भी रक्खा जायेगा।

विभिन्न तटीय राज्यों की सरकारों ने मिल कर यह निश्चय किया है कि मछलियों के वितरण व विक्रय के लिये सहकारी समितियों द्वारा काम होना चाहिये।

इस समय मछलियों के अनुसंधान की तीन शालायें देश में हैं—आंतरिक जलाशय में उपलब्ध मछली अनुसंधानशाला बैरकपुर में है, समुद्री जल की मछलियों की अनुसंधानशाला मंडापाम में है और गहरे समुद्र की मछलियों का केंद्र बंबई में है।

इस सिलसिले में भारत सरकार के खाद्य व खेती मंत्रालय द्वारा चलाई गई आंतरिक मछली अनुसंधानशाला, कटक ने विशेष प्रगति की है। वहां ७२ तालाबों में मछली पालने का प्रबंध है। छोटी-छोटी मछलियां सरसों की खली के चूर्ण पर पाली जाती हैं और जब बड़ी हो जाती हैं तो विभिन्न मछली पालने वाले उन्हें ले जाते हैं।

इसी प्रकार की एक योजना पर उत्तर प्रदेश की सरकार भी काम कर रही है। झांसी जिले में १८००० एकड़ जल भूमि में रोहू, काटला, नान और कन्वास जाति की मछलियों को पाला जायेगा। अभी हाल में जौनपुर जिले से ३०००० मछलियों के अंडों को हवाई जहाज द्वारा झांसी ले जाया गया है।

मछली से प्राप्त वस्तुएं और व्यापार—भारत में मछलियों से कई प्रकार की वस्तुएं प्राप्त की जाती हैं जिनमें मछली का तेल, भोजन, खाद, जबड़े व शार्क के फिन मुख्य हैं। व्यापारिक दृष्टिकोण से भारत में मोती निकालने का काम बड़ा महत्वपूर्ण है। भारत के तटीय समुद्रों से दो प्रकार की सीप निकाली जाती है। एक तो झूठी होती है। परन्तु चमक के कारण घरों के दरवाजों व खिड़कियों को सजाने में प्रयुक्त होती है। दूसरी प्रकार की सीप से सच्चे मोती निकाले जाते हैं। झूठी सीप कोरोमंडल, मद्रास और कोचीन के तटीय समुद्रों में बहुत पाई जाती है। भारत और लंका के बीच की खाड़ी से लेकर काठियावाड़ के नीचे के समुद्र तक का पूरा प्रदेश और कच्छ की खाड़ी सच्चे मोती की सीपों का विस्तृत भंडार है। इनसे बहुमूल्य मोती प्राप्त होते हैं। परन्तु जापानी सीपों के विपरीत यहां की सीपें गहरे पानी वाले क्षेत्रों में पाई जाती हैं।

भारत के कुछ प्रदेशों से लंका, बर्मा और सुदूरपूर्व के देशों को मछलियां निर्यात भी की जाती हैं। भारत का निर्यात सदैव नहीं होता। जब कभी दशाओं के सुविधाजनक होने से अधिक मछलियां पकड़ ली जाती हैं, उस समय घरेलू उपभोग से बची हुई मात्रा को निर्यात कर दिया जाता है। मद्रास, त्रावनकोर और बम्बई निर्यात के मुख्य केंद्र हैं। सन् १९५१—५२ में भारत से ३.२७ करोड़ रुपये मूल्य की मछलियां बाहर भेजी गईं। भारत से आयात करने वाले देशों में लंका का स्थान सर्वप्रथम है। भारत के निर्यात का ८० प्रतिशत भाग लंका को जाता है। उसके उसके बाद बर्मा का स्थान आता है।

भारत में कच्ची मछली का आयात बहुत कम है। यूरोप और कनाडा से मंगाई गई मछलियों की मात्रा नहीं के बराबर है। लेकिन डिब्बों में बन्द की हुई मछलियां काफी मात्रा में आयात की जाती हैं। कुल मिला कर प्रतिवर्ष १६.३ लाख रुपये मूल्य की मछलियां आयात की जाती हैं।

प्रश्नावली

१. बंगाल में मछली पकड़ने के व्यवसाय की वर्त्तमान दशा कैसी है? भविष्य में इसकी उन्नति की क्या संभावनायें हैं?

२. भारत के किन प्रदेशों में मछली पकड़ने का व्यवसाय होता है? देश के मानचित्र पर दिखलाइये।

३. मछली पकड़ने के व्यवसाय के विकास के लिये किन दशाओं का होना जरूरी है? देश के किन राज्यों में ये दशायें उपस्थित हैं और वहां इस उद्यम का किस प्रकार विकास किया जा सकता है?

अध्याय : : आठ

खनिज सम्पत्ति

भारत में प्रकृतिदत्त खनिज संपत्ति का विस्तृत भंडार है। अभी तक तो भारत में खनिज संपत्ति के अन्वेषण के लिये बहुत कम काम हुआ था। पिछले कुछ दिनों में भारत की खनिज संपत्ति का निरीक्षण किया गया और फलस्वरूप बहुत से नये खनिज क्षेत्रों का पता लगा है। सन् १९५० में भारत की विविध खानों में ४ लाख ६० हजार व्यक्ति काम करते थे। इन में से ३ लाख ५० हजार व्यक्ति कोयले की खानों में लगे हुए थे।

भारत में खान खोदने वाले मजदूर—(१९५०)
(प्रतिदिन की संख्या का औसत)

कोयला	३४९,८८९	अभ्रक	३१,०१०
लोहा	१७,३७९	खनिज तेल	६,७७६
तांबा	३,६५५	अन्य पदार्थ	३४,८७६
मैंगनीज	३४,९५२		
		कुलजोड़	४७१,७६१

भारत में उपलब्ध विविध खनिज पदार्थों में कोयला, मैंगनीज, सोना, अभ्रक, लोहा और नमक का स्थान विशेष महत्वपूर्ण है। संसार का अधिकतर लिमनाइट, मोनाजाइट, जिरकन और अभ्रक भारत से ही प्राप्त होता है। सन् १९०९ में जर्मन विज्ञानवेत्ता श्री C.W.D.Schembers ने ट्रावनकोर कोचीन की तटीय बालू में मोनाजाइट का पता लगाया। नीलगिरी व अन्य पहाड़ियों की चट्टानें पानी से कट कर समुद्र की ओर वहा ले जाई जाती हैं और समुद्र में मिल जाती हैं। इनमें से कुछ बालू फिर बह कर किनारों पर इकट्ठी हो जाती है और इसी से लिमनाइट, मोनाजाइट व चिरकन प्राप्त होता है। इनके अलावा भारत में बहुत से प्रकार के अन्य बहुमूल्य खनिज पदार्थ पाये जाते हैं जिनका आजकल के उद्योग-धंधों में विशेष महत्व है। इस खनिज संपत्ति का यदि ठीक तरह से उपभोग किया जाय तो यह देश औद्योगिक दृष्टिकोण से आत्मनिर्भर बन सकता है। देश के विभाजन से भारत की खनिज संपत्ति पर कोई विशेष असर नहीं पड़ा है। खनिज तेल, क्रोमाइट, जिप्सम और फुलरस अर्थ (Fuller's Earth) को छोड़कर अन्य सब खनिजों के उत्पादन में भारत का एकाधिपत्य है।

गंधक, टीन, जस्ता, शीशा और निकल जैसी व्यापारिक धातुओं की भारत में कमी है। इनकी मांग पूर्ति में भारत आत्मनिर्भर नहीं है और अपनी ७५ प्रतिशत मांग की पूर्ति के लिये उसे अन्य देशों पर निर्भर रहना पड़ता है।

जस्ता व शीशा राजस्थान में पाया जाता है। गंधक भी कई जगह मिलता है पर भारत में प्रायः सारी मांग आयात द्वारा ही पूरी की जाती है। सन् १९५० में भारत ने ५६·४८८ टन गंधक बाहर से मंगाया था।

भारत में खनिज संपत्ति और औद्योगिक मांग पूर्ति—देश के विस्तार और जन-संख्या को देखते हुए भारत की खनिज संपत्ति कुछ विशेष अधिक नहीं है। भारत में औद्योगिक खनिज वस्तुओं का उत्पादन इस प्रकार है—

(१) वे खनिज पदार्थ जिनका निर्यात करके भारत अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार पर प्रभाव डालता है—

लोहा	टिटानियम	अभ्रक

(२) वे खनिज जिनका भारत से निर्यात महत्वपूर्ण है—

मैंगनीज	स्टीयेटाइट
बाक्साइट	सिलिका
मैगनेसाइट	बेरिलियम
रिफ्रेक्टरी खनिज	कोरनडम
प्राकृतिक घर्षक पदार्थ	मोनाजाइट
जिप्सम	

भारत सरकार ने अभी हाल में दो फ्रांसीसी कम्पनियों के साथ एक १५ वर्षीय समझौता किया है। इसके अनुसार एक कारखाना स्थापित किया जावेगा ताकि भारत की **मोनाजाइट बालू** का विश्लेषण हो सके। ट्रावन कोर के किनारे पर मोनाजाइट बालू बहुलता से पाई जाती है और इसके उचित विश्लेषण से थोरियम, सेरियम तथा अन्य दुर्लभ वस्तुएं प्राप्त की जा सकती हैं। इस समय भारत में गैस की बत्ती बनाने तथा धातु गलाने के उद्योग के लिये इन वस्तुओं को बाहर से मंगाया जाता है। इस कारखाने के चालू हो जाने से भारत की यह समस्याएं बहुत कुछ सुलझ जायेंगी। ऐसा अनुमान है कि अणु शक्ति के उत्पादन में प्रयुक्त यूरेनियम को भी इससे प्राप्त किया जा सकता है।

(३) वे खनिज जिनके उत्पादन में भारत आत्मनिर्भर है।

कोयला	चूने का पत्थर व डोलामाइट
सीमेंट बनाने की सामग्री	जिप्सम
सोना	सीसे बनाने की बालू
अल्युमिनियम	बोरक्स
तांबा	पिराइट
क्रोम	नाइट्रेट (शोरा)
भवन निर्माण के पत्थर	फासफेट
संगमरमर	जिरकन
स्लेट	तेजाब व संखिया
खनिज रंग (Mineral Pigments)	बेरटीज
औद्योगिक मिट्टी	बहुमूल्य मणियां
नमक व क्षार	वेनाडियम

(४) वे खनिज जिन्हें भारत बाहर से मंगाता है।

चांदी	टंगस्टन
निकल	मोल्बेडिनम

खनिज तेल	प्लेटिनम
गंधक	ग्रेफाइट
सीसा	अस्फाल्ट
जस्ता	पोटाश
टीन	फ्लूराइड
पारा	सुरमा

भारत में **गन्धक** की विशेष कमी रहती है। यद्यपि इस समय इसकी वार्षिक मांग ६२ हजार टन से अधिक नहीं है परन्तु रासायनिक व खाद उद्योगों की उन्नति व विकास के साथ २ निकट भविष्य में गंधक की मांग बहुत बढ़ जायेगी। भारत में गंधक बिल्कुल ही नहीं होती और अपनी मांग की पूर्त्ति के लिये संयुक्त राष्ट्र व इटली पर निर्भर रहता है। देश के विभाजन के पहिले बलूचिस्तान से थोड़ी बहुत गंधक प्राप्त होती थी परन्तु अब यह प्रदेश भी पश्चिमी पाकिस्तान में सम्मिलित है। सन् १९५१-५२ में भारत ने १·१६ करोड़ रुपये मूल्य की ७,४५,६१८ हन्डरवेट गंधक आयात की।

इसके पहिले के वर्षों में गंधक के आयात के आंकड़ों को देखने से साफ जाहिर होता है कि पिछले कुछ वर्षों में औद्योगिक विकास के साथ-साथ गंधक का आयात भी बढ़ता रहा है—सन् १९३८ में भारत ने केवल २२,९६४ टन गंधक आयात की परन्तु आयात की मात्रा सन् १९४६ में ४०,५७९ टन और सन् १९५० में ५६,४८८ टन हो गई।

गंधक की बढ़ती हुई मांग पूर्त्ति के लिए जिप्सम, पिराइट, पटसिला में तांबा गलाने वाली कम्पनी से छोड़ी हुई गैसों, जोधपुर में सोडियम सल्फेट की राशि, काठियावाड़ के नमक क्षेत्रों और आसाम में पाये जाने वाले गंधक मिले कोयले से गंधक निकालने का उद्योग शुरू किया जाना चाहिये।

भारत सरकार के भूगर्भतत्व अन्वेषण विभाग ने बिहार के शाहाबाद जिले में पिराइट से गंधक निकालने की संभावना में खोज करना शुरू कर दिया और गंधक प्राप्त करने के अन्य स्रोतों पर विचार किया जा रहा है।

देश में **सीसे** का उत्पादन भी काफी नहीं होता है। साधारणतया भारत में १७००० टन सीसे की आवश्यकता रहती है परन्तु देश में इस वस्तु का उत्पादन केवल १५०० टन से अधिक नहीं है। इसलिये संयुक्तराष्ट्र अमरीका, आस्ट्रेलिया, मेक्सिको, और जापान से सीसे का आयात करना पड़ता है।

सीसे का आयात (हन्डरवेट में)

१९४८-४९	१,६४,८४९	१९५०-५१	३,११,७३८
१९४९-५०	१,४८,१०९	१९५१-५२	१,५४,१९४

भारत में सीसे की खानें राजस्थान के उदयपुर व जैपुर स्थानों में पायी जाती हैं और केवल १० वर्ष पहिले सन् १९४३ से इन खानों पर काम शुरू हुआ।

भारत में रासायनिक व इंजीनियरिंग उद्योगों के लिये **निकल** की मांग रहती हैं। परन्तु देश में **निकल** की एक भी खान नहीं है और न भविष्य में इसकी खानों का पता

लगने की कोई आशा ही है । भारत में प्रतिवर्ष १००० टन निकल आयात किया जाता है और यह सब का सब कनाडा से आता है । नेपाल में निकल की खानों के कुछ चिन्ह मिले हैं और भविष्य में इन खानों के विकसित होने की आशा है ।

भारत में प्रतिवर्ष ४००० **टन टीन और १२००० टन टीन की चद्दरों** की मांग रहती है । भारत के बिजली, टीन के डिब्बों तथा दवाई निर्माण उद्योग में टीन की सबसे अधिक खपत रहती है । भारत में इस समय टीन की कोई भी खान नहीं है और इसलिए भारत को मलाया, सिंगापुर तथा अन्य देशों से टीन का आयात करना पड़ता है ।

भारत में टीन का आयात (हन्डरवेट में)

१९४८-४९	६६,५६६	१९५०-५१	८५,७९२
१९४९-५०	७१,३९४	१९५१-५२	७३,०३७

भारत में **जस्ता** भी बाहर से मंगवाया जाता है । यद्यपि राजस्थान, काशमीर और नेपाल में जस्ते की खानें स्थित हैं फिर भी भारत में जस्ते का उत्पादन बिल्कुल नहीं होता अतः भारत रोडेशिया, आस्ट्रेलिया, संयुक्त राष्ट्र और हालैंड से जस्ता मंगवाता है ।

जस्ते का आयात (हन्डरवेट में)

१९४८-४९	७,५७,८०५	१९५०-५१	७,४८,२७५
१९४९-५०	६,०९,८१८	१९५१-५२	४,१७,८३०

भारत के खनिज उत्पादन उद्योग में कई दोष हैं । मैन्गनीज़, अभ्रक, ऐंब्रोनाइट, क्रोमाइट, रिफ्रेक्टर आदि खनिज पदार्थों को केवल निर्यात के वास्ते खानों से निकाला जाता है । यदि यही नीति जारी रही तो शीघ्र ही भारत की खानों में महत्वपूर्ण धातुओं व खनिज की भारी कमी पड़ जायेगी । दूसरा बड़ा दोष यह है कि भारत के औद्योगीकरण व खनिज सम्पत्ति उत्पादन में कोई सामंजस्य या संतुलन नहीं है । उचित अन्वेषण व निरीक्षण के उपरान्त देश की खनिज सम्पत्ति का नियमित तथा आयोजित उपभोग होना चाहिए । देश की खनिज सम्पत्ति को पूरी तरह प्रयोग में लाने के लिए आयात निर्यात दोनों पर ही भारी कर लगा देने चाहिएं । इस प्रकार कच्ची मैंगनीज़, क्रोम, अभ्रक, टिटेनियम जैसे खनिज तथा फोसफेट व रिफ्रेक्टरी वस्तुओं के बेतरतीब निर्यात पर रोक लगाई जा सकेगी । आयात पर प्रतिबन्ध लगाकर देश की खानों की उन्नति की जा सकेगी । अतएव देश की खनिज सम्पत्ति के उपभोग की उचित व्यवस्था होना अति आवश्यक है ।

भारत में खनिज का उत्पादन

पदार्थ	**१९४८-४९**	**१९४९-५०**	**१९५०-५१**
सोना (औंसों में)	१,८०,४३०	१,६३,८७१	१,९६,८४८
लोहा (हजार टनों में)	२,२८५	२,८०९	२,९५७
मैंगनीज़ (हजार टनों में)	५२६	६४६	९०२
अभ्रक (हन्डरवेट में)	१,५१,२७३	१,५१,७०९	अज्ञात
ताम्बा (टनों में)	३,२२,२८२	३,२९,३०४	३,६०,३०८
इलमेनाइट (टनों में)	२,२९,४१६	२,५०,०२३	२,१२,६६३
भवन निर्माण पत्थर (हजार रुपयों में)	३१,६२८	३०,०३१	अज्ञात
कोयला (लाख टनों में)	३१७	३२०	३४१

ानिज तेल (लाख गैलन में)	६५६	अज्ञात	अज्ञात
ोमाइट (टनों में)	२२,५५५	"	"
ांदी (औंसों में)	१२,७९७	"	"
ीरा (कैरट में)	२,४२६	"	"
फाइट (टनों में)	१,६४९	"	"

लोहा (Iron ore)

इस समय लोहा सबसे महत्वपूर्ण खनिज धातु है और आधुनिक सभ्यता का आधार । वर्त्तमान आर्थिक व्यवस्था में मशीनों का प्रयोग अधिकाधिक बढ़ रहा है और कोयला, ल अथवा जल शक्ति से संचालित ये विविध मशीनें लोहे से ही बनती हैं। लोहे की सहायता आधुनिक मशीन युग आ सका है। दूसरे प्रकार से यूं कहा जा सकता है कि मशीनों बढ़ते हुए प्रयोग से लोहे की मांग बहुत बढ़ गई है। इस प्रकार लोहा व वर्त्तमान सभ्यता ा अटूट सम्बन्ध है।

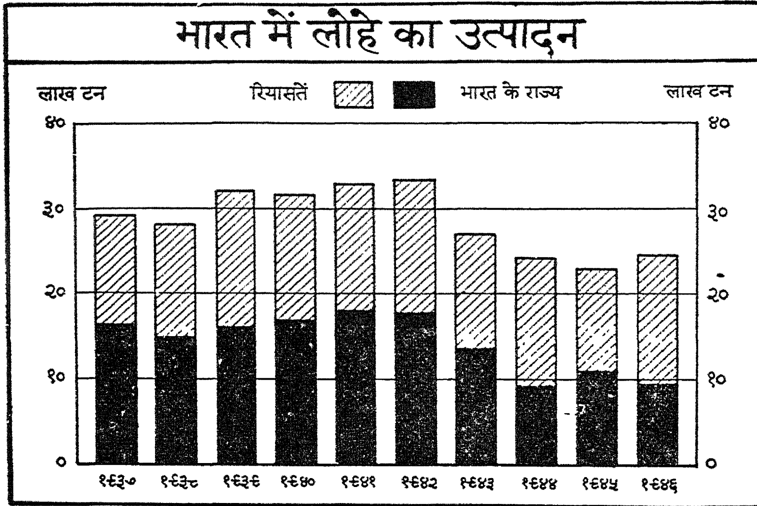
लोहे के उत्पादन में भारत का बड़ा प्रमुख स्थान है। ब्रिटिश कामनवेल्थ राष्ट्रों ं लोहा उत्पादन के दृष्टिकोण से इसका दूसरा स्थान है। संसार के लोहा उत्पादक देशों ं भारत का नवां स्थान है। ब्राजील को छोड़कर उत्तम प्रकार के लोहा भंडार वाले देशों ं भारत का स्थान सर्वप्रथम है। भारत में प्रतिवर्ष ३० लाख टन कच्चा लोहा खानों से िकाला जाता है। इस उत्पादन की मात्रा से बढ़ कर भारत का विस्तृत लोह भंडार है जसको अभी तक छुआ भी नहीं गया है। भारतीय भूगर्भ अन्वेषण विभाग के अनुसार ारत के विविध क्षेत्रों में ३०,००० लाख टन लोहा सन्निहित है। अमरीकी खोज मशन ने सन् १९४२ में भारत की खनिज सम्पत्ति का अन्वेषण किया था। उनके अनुसार वल सिंघभूम जिले में ही ३०,००० लाख टन लोहे का भंडार है। इसके अलावा बस्तर ाज्य में भी ७२४० लाख टन लोहा पृथ्वी के गर्भ में छिपा है। लोहे के इन सब भंडारों में च्चकोटि का लोहा पाये जाने की उम्मीद है और ऐसा अनुमान है कि कच्ची धातु में ० प्रतिशत तक लोहे का अंश होगा ।

सन् १९३८ में भारतीय खानों से कुल ३,१६६,००० टन लोहा निकाला गया परन्तु न् १९५० में यह उत्पादन की मात्रा केवल २,९५७,००० टन ही रह गई। वास्तव में त्पादन की मात्रा देश के इस्पात उद्योग की मांग के अनुसार घटती बढ़ती रहती है। हुधा कोयले की कमी तथा यातायात की असुविधाओं के कारण उत्पादन की मात्रा में धिक वृद्धि नहीं होने पाती है।

लोहे के प्रकार और उत्पादन क्षेत्र—लोहे की खान का महत्व केवल लोहे की उत्तमता र ही निर्भर नहीं रहता है। बल्कि खानों की स्थिति और खान खोदने की सहूलियत या कठिनाई के अनुसार ही विविध क्षेत्रों में लोहे की खानों का विकास हुआ है। इस दृष्टि-कोण से भारत की खानें बड़े अच्छे प्रदेश में स्थित हैं। लोहे के क्षेत्रों के आस-पास ही कोयला भी उपलब्ध है और लोहा गलाने व साफ करने में प्रयुक्त चूने के पत्थर व डाल-माइट भी निकटवर्त्ती प्रदेशों में पाये जाते हैं।

भारत की खानों से ४ प्रकार का लोहा प्राप्त होता है—मेगनाटाइट, लेटराइट,

लोहे की मिट्टी मिले पत्थर और हेमाटाइट। भारत का हेमाटाइट लोहा सबसे उत्तम प्रकार का होता है और इसी प्रकार के अमरीकी लोहे की अपेक्षा भारत के इस लोहे में धातु का अंश अधिक रहता है तथा कोटि भी उच्चतर होती है।



चित्र नं० ४५—अब तक जो प्रदेश देशी राज्य कहलाते थे उनमें लोहे का उत्पादन ध्यान देने योग्य है।

यद्यपि अच्छी प्रकार का लोहा भारत के विभिन्न प्रदेशों में पाया जाता है परन्तु सबसे महत्वपूर्ण खानें उड़ीसा के सिंघभूम, क्योनजहार, बेनाई और मयूरभंज जिलों में स्थित हैं। उत्पादन की दृष्टि से कम महत्व के क्षेत्र मध्य प्रदेश, मद्रास और मैसूर में स्थित हैं।

लोहे के उत्पादन का वितरण (१९५०)

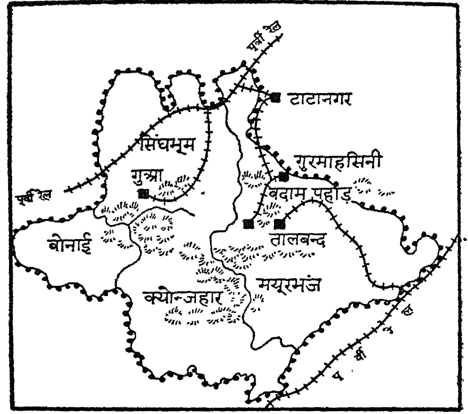
प्रदेश	उत्पादन (टनों में)
१. उड़ीसा	
क्योनजहार	३,००,०००
मयूरभंज	९,००,०००
सिंहभूम	१२,००,०००
२. मध्य प्रदेश	८००
३. मैसूर	२४,०००
४. अन्य प्रदेश	५,३२,२००
भारत का कुल योग	२९,५७,०००

इन सभी क्षेत्रों में टाटा इस्पात कम्पनी, बर्ड एंड कम्पनी और भारतीय लोहा व इस्पात कम्पनी की तरफ से ही अधिकतर लोहा खानों से निकाला जाता है।

उड़ीसा के लोह क्षेत्र—उड़ीसा के लोहा उत्पादक तीन क्षेत्र हैं—मयूरभंज, सिंघभूम और कीनझार।

मयूरभंज में उच्च कोटि के लोहे का विस्तृत भंडार है जो तीन प्रमुख खानों से प्राप्त होता है। ये खानें गुरुमाहीसनी, सुलेमपत और बदाम पहाड़ नामक उच्चभूमियों में स्थित हैं। पूर्वी रेल मार्ग की शाखाओं द्वारा इन तीनों प्रदेशों को इस्पात के मुख्य केन्द्र टाटा नगर से सम्बद्ध कर दिया गया है। इन प्रदेशों से कोयला, चूने के पत्थर व डालमाइट उत्पादक क्षेत्र भी समीप हैं। भारत के कुल उत्पादन का एक तिहाई लोहा इन क्षेत्रों मे निकाला जाता है।

सिंघभूम में सबसे अधिक लोहा निकाला जाता है और कलहान राज्य के पनसीरा, बूरू, गुआ, बूदाबूरू, तथा नोआमेन्दी स्थानों पर उच्च कोटि का हेमाटाइट लोहा निकाला जाता है। मयूरभंज राज्य के लोहे की अपेक्षा यहां के लोहे में धातु का अंश अधिक है। विभिन्न खानें पूर्वी रेल मार्ग की शाखाओं द्वारा एक दूसरे से सम्बद्ध हैं।



चित्र नं० ४६

कोनझार जिले में दो खानें पायी जाती हैं। एक वार्गया बूरू पहाड़ी में और दूसरी उत्तर पूर्वी भाग में। दूसरी खान वास्तव में सिंघभूम की नोआमुन्दी खान की ही भाग है। इसके करीब में ही मैंगनीज़ व डालमाइट भी उपलब्ध है।

मध्यप्रदेश में भी कच्चे लोहे का भंडार है परन्तु अभी तक कुछ विशेष खानें नहीं खोदी गई हैं। इस समय यहां का कुल उत्पादन ८०० टन है और दो खानों से प्राप्त किया जाता है। ये खानें लोहारा तथा चन्दा जिले के पीपल गांव में स्थित हैं। द्रुग जिले में दाली व राजहारा की पहाड़ियों तथा बस्तर राज्य के प्रदेशों में लोहा प्राप्त करने की बहुत संभावनाएं हैं।

मैसूर राज्य में लोहे के उत्पादन के लिये बाबाबूदन पहाड़ी की किम्मानगुन्दी खान विशेष महत्वपूर्ण है। इसमें ६० प्रतिशत लोहा होता है। मैसूर के अन्य क्षेत्रों में भी लोहे का भंडार निहित है परन्तु अभी तक उसे खोदा नहीं गया है। **गोआ** और **बम्बई** के रत्नगिरी क्षेत्र में भी लोह उत्पादन की विशेष संभावनाएं हैं। हाल में **मद्रास** के सलेम, ट्रिचिनापली, सन्डूर और कुरनूल जिलों में लोहे की खानों का पता चला है। अनुमानतः सलेम और ट्रिचिनापली में ३०४० लाख टन, कुरनूल में ३० लाख टन और सन्डूर में १३०० लाख टन लोहे का भंडार निहित है। इन खानों को खोदकर दक्षिणी भारत में एक विशाल इस्पात उद्योग स्थापित किया जा सकता है।

भारत में कोक बनाने वाला कोयला बहुत कम मिलता है। इसलिये उपलब्ध लोहे का पूरा उपभोग नहीं हो पाता। अतः बहुत-सा कच्चा लोहा भारत से जापान, संयुक्त राष्ट्र

और ग्रेट ब्रिटेन को निर्यात कर दिया जाता है।

मैंगनीज़ (Manganese)

आजकल के उद्योग-धंधों में मैंगनीज़ का बहुत महत्व है। इसे मिला कर लोहा व इस्पात को कठोर बनाते हैं। ब्लाकों की पालिश, और रासायनिक उद्योग में प्रयुक्त कपड़ा धोने के पाऊडर बनाने में भी यह धातु प्रयोग की जाती है। बिजली और शीशे के उद्योग में भी इसकी बहुत मांग रहती है।

रूस और गोल्ड कोस्ट के बाद मैंगनीज़ उत्पादन में भारत का तीसरा स्थान है। वास्तव में इस धातु का उपयोग भारी इस्पात वस्तु निर्माण में ही अधिक होता है। व्यापार में हेरफेर के कारण तथा लड़ाई के दिनों में अस्त्र शस्त्र निर्माण उद्योगों में वृद्धि तथा बाद में अवनति की दशाओं के कारण इसकी मांग अस्थिर-सी है। कभी बढ़ जाती है तो कभी कम हो जाती है।

विश्वव्यापी उत्पादन (१९४७)

(हज़ार टनों में)

रूस	२,८००	संयुक्त राष्ट्र	१२४
भारत	३९३	ब्राज़ील	११०
गोल्डकोस्ट	५८९	फ्रांसीसी मरक्को	१०२
दक्षिणी अफ्रीका	२८४		

भारत में मैंगनीज की खानों में लगभग १०,००० मनुष्य काम करते हैं। ये लोग आसपास के प्रदेशों से ही आते हैं और अनपढ़ व साधारण मजदूरों से ही इस धातु की खोदाई हो सकती है।

भारत में मैंगनीज उत्पादन के क्षेत्र—भारत के मध्य प्रदेश, मद्रास, उड़ीसा, बम्बई और मैसूर प्रदेशों में मैंगनीज़ निकाला जाता है। सन् १९५० में भारत के विभिन्न प्रदेशों से कुल मिलाकर ९,१६,०८० टन मैंगनीज निकाला गया।

भारत में मैंगनीज का अटूट भंडार है। अनुमानतः भारत के भूगर्भ में १००० लाख टन उच्च कोटि का और २००० लाख टन निम्न कोटि का मैंगनीज निहित है।

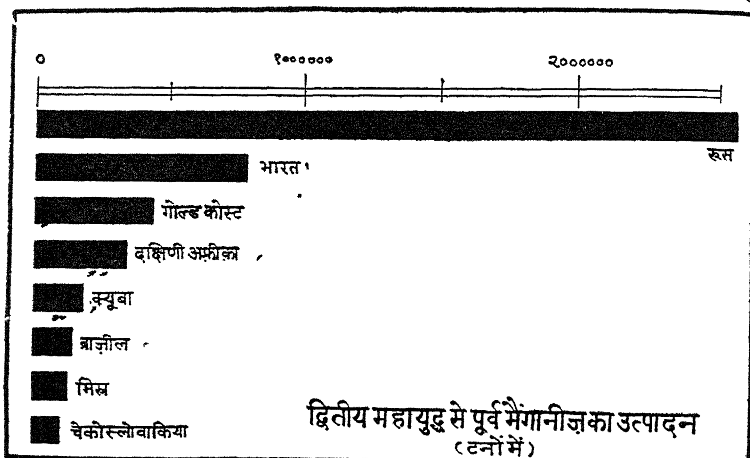
भारत के विभिन्न प्रदेशों में मैंगनीज के उत्पादन का वितरण (१९५०-५१)

(टनों में)

मध्य प्रदेश	६,४६,४६५	बंबई	६१,५९८
मद्रास	३३,८०९	मैसूर	५,३२३
उड़ीसा	७६,६९१	संपूर्ण भारत	९०२,०००

मध्य प्रदेश में सबसे अधिक मैंगनीज़ उत्पन्न होता है और बालाघाट, भंडारा, छिन्दवाड़ा, नागपुर और जबलपुर जिलों में इसकी खानें पाई जाती हैं। इस राज्य में भारत के कुल उत्पादन का ६० प्रतिशत मैंगनीज़ निकाला जाता है। विज़गापट्टम बन्दरगाह खुल जाने से मैंगनीज़ उत्पादन को विशेष प्रगति प्राप्त हुई है। बाल्टेयर रायपुर रेल द्वारा इस खनिज को विभिन्न उत्पादन केंद्रों से बन्दरगाह तक पहुंचाया जाता है। इस बन्दरगाह के खुलने से पहले मध्य प्रदेश को मैंगनीज़ के निर्यात के लिये बम्बई

या कलकत्ते पर निर्भर रहना पड़ता था। मध्य प्रदेश से बम्बई या कलकत्ते तक धातु ले जाने में इतना अधिक खर्चा बैठता था कि अन्तर्राष्ट्रीय मंडियों में द्वितीय श्रेणी के मैंगनीज़ का दाम बहुत बढ़ जाता था। फलतः भारत के इस प्रकार के मैंगनीज़ को विदेशों के हाथ बेचना बहुत कठिन होता था। परन्तु अब नये बन्दरगाह तथा नये रेलमार्ग के खुल



चित्र नं० ४७

जाने से मध्य प्रदेश के मैंगनीज़ का निर्यात बहुत बढ़ गया है और मैंगनीज़ के बढ़ते हुए निर्यात के कारण विजगापट्टम बन्दरगाह में भी उत्तरोत्तर वृद्धि होती जा रही है। निम्न तालिका से विज़गापट्टम, बंबई और कलकत्ता से मैंगनीज़ के निर्यात के आंकड़े स्पष्ट हो जायेंगे।

मैंगनीज के व्यापार में विविध बन्दरगाहों का भाग (टनों में)

साल	विजगापट्टम	बम्बई	कलकत्ता	मारमागोआ
१९३०	४५००	२९७७३८	३००२११	१७०५७७
१९३५	४१२६८३	६४१००	२२५५०४	१६२४११
१९३९	३३७३४९	५५४६६	२६१५७५	१२८२२६
१९५१	६१०३१२	——	१६५४४८	३६७५९६

मद्रास राज्य की खानों से मध्य प्रदेश के उत्पादन की आधी मात्रा प्राप्त होती है। उत्पादन के प्रमुख क्षेत्र बेलारी, सुन्दूर और विजगापट्टम के जिले हैं। यहां के उत्पादन का अधिक भाग विजगापट्टम और मारमागोआ के बन्दरगाहों से निर्यात कर दिया जाता है।

बिहार में छोटा नागपुर प्रदेश के कल्हान और सिंघभूम क्षेत्रों से मैंगनीज प्राप्त किया जाता है। थोड़ी बहुत मात्रा में मैंगनीज छैबासा प्रदेश की खानों से भी निकाला जाता है।

उड़ीसा के गंगपुर राज्य और क्योनजहार जिले में मैंगनीज निकाला जाता है। गंजाम और बोमनाई राज्य में भी मैंगनीज प्राप्त होता है।

बम्बई के पंचमहल, छोटा उदयपुर और रत्नगिरि जिलों में मैंगनीज का विस्तृत भंडार है। मैसूर में मैंगनीज़ की खानें काफी दूर पर स्थित हैं। चितालदुर्ग, कदूर, शिमोगा, और टनकूर के जिले इस दृष्टि से विशेष महत्वपूर्ण हैं। मजदूर सस्ते होने से मैसूर को खान खोदने में विशेप सुविधा है।

मैंगनीज का व्यापार—भारत में करीब १० लाख टन मैंगनीज प्रतिवर्ष निकाला जाता है परन्तु भारतीय लोहा व इस्पात उद्योग की मांग १ लाख टन प्रतिवर्ष से अधिक नहीं है। अतएव शेष ९ लाख टन वि`शों को निर्यात कर दिया जाता है। भारत के औद्योगीकरण के साथ साथ मैंगनीज की खपत बराबर बढ़ रही है। परन्तु साथ-साथ मैंगनीज का उत्पादन भी बढ़ रहा है। इसलिए मैंगनीज उत्पादन उद्योग की सफलता के लिये सस्ते मूल्य पर धातु का निर्यात करना बहुत जरूरी है।

भारत के मैंगनीज को आयात करने वाले प्रमुख देश ग्रेट ब्रिटेन, बेलजियम, फ्रांस और संयुक्त राष्ट्र हैं। सन् १९३८ में भारत से केवल ५,३८,००० टन मैंगनीज निर्यात किया गया था परन्तु सन् १९५१-५२ में भारत से निर्यात किये गये मैंगनीज की मात्रा ११ लाख टन थी। दूसरे महायुद्ध के प्रारम्भ होने से कुछ पहले विश्व में मैंगनीज की मांग बहुत कम हो गयी थी। इसके तीन कारण थे—(१) विविध उत्पादक राष्ट्रों में धातु का अत्यधिक उत्पादन (२) यूरोप और संयुक्त राष्ट्र के इस्पात व्यवसाय में कमी और (३) रूस की बढ़ती हुई स्पर्धा। परन्तु भारतीय मैंगनीज की मांग फिर से बढ़ रही है।

तांबा (Copper)

तांबा प्रायः चांदी, सोना, लोहा, सीसा और गंधक जैसी धातुओं के साथ मिला हुआ पाया जाता है। बिजली के तारों में, टेलीफोन और टेलीग्राफ यंत्रों में, पोत निर्माण और रेल उद्योग में इस धातु का विशेष उपयोग होता है। विभिन्न धातुओं के साथ मिलाने में भी इसका प्रयोग किया जाता है। सोने के साथ मिलाकर गहने बनाये जाते हैं। इससे पीतल तैयार किया जाता है और मुद्रायें भी बनायी जाती हैं।

संसार के तांबा उत्पादक देशों में भारत का तेरहवां स्थान है। सन् १९४० में संसार का कुल तांबा उत्पादन २५ लाख टन था और इसमें से ४,०२,००० टन तांबा केवल भारत से प्राप्त हुआ था। यह मात्रा संयुक्त राष्ट्र के ३,३०,००० टन वार्षिक उत्पादन से भी बढ़कर है परन्तु संयुक्त राष्ट्र, ग्रेट ब्रिटेन और अन्य औद्योगिक देशों की अपेक्षा भारत में तांबे की खपत बहुत कम है। संयुक्त राष्ट्र में प्रति मनुष्य पीछे तांबे की १८ पौंड खपत है और ग्रेट ब्रिटेन में १६ पौंड परन्तु भारत में यह मात्रा अपेक्षाकृत ४ औंस है। साधारणतया भारत में वर्त्तमान व भविष्य की मांग पूर्त्ति के लिये काफी तांबा पाया जाता ह।

तांबे के उत्पादन क्षेत्र—कुछ दिनों पहिले दक्षिणी भारत के मैसूर और मद्रास प्रदेशों में तथा उत्तरी भारत के राजस्थान तथा अन्य भागों में तांबा गलाने का उद्योग बढ़ा चढ़ा था। इस समय इसको दो प्रदेशों की खानों में विशेष रूप से निकाला जाता है—सिंघभूम और नेल्लोर।

सिंघभूम में तांबे की कई खानें एक ८० मील लम्बी पेटी में स्थित हैं। इनमें तीन

खानों—मोसाबनी, घटमिला और घोवनी—का स्थान विशेष रूप से प्रमुख है। सिंघभूम में ग्रेनाइट चट्टान के क्षेत्र तांबा के लिये विशेषतया उल्लेखनीय हैं। इन प्रदेशों की ग्रेनाइट चट्टानों तथा अभ्रक के क्षेत्रों में तांबे की धातु मिली पाई जाती है। तांबे की इन पट्टियों या रंगों की औसत मोटाई पांच से सात इंच तक रहती है परन्तु कुछ विशेष पट्टियाँ दो फीट तक मोटी हैं। इनसे प्राप्त तांबे में धातु का अंश २ प्रतिशत तक रहता है। इस क्षेत्र में करीव ८०० व्यक्ति खानों को खोदने में लगे हुए हैं।

मद्रास के नेल्लोर प्रदेश में तांबा नई रीतियों के अनुसार निकाला जाता है परन्तु उत्पादन की मात्रा बहुत कम है।

तांबा हजारी बाग, मध्य भारत और मैसूर में भी निकाला जाता है। हिमालय की बाहरी श्रेणी के कुल्लू, कांगड़ा, नेपाल, भूटान और सिक्किम प्रदेशों में तांबे का विस्तृत भंडार है परन्तु यातायात के साधनों की असुविधा तथा खपत के स्थानों से दूर स्थिति के कारण इनमें खान खोदने के उद्यम ने कोई विशेष प्रगति नहीं की है।

सन् १९३८ के वाद से भारत में तांबे की उत्पादन मात्रा बहुत कुछ स्थायी सी है।

भारत में ताँबे का उत्पादन

वर्ष	मात्रा (टनों में)	वर्ष	मात्रा (टनों में)
१९३८	२,८८,१२७	१९४६	३,५२,७१८
१९४०	४,०१,२९३	१९४८	३,२२,३८२
१९४२	३,६३,१६६	१९५०	३,६०,३०८
१९४४	३,२६,०१७		

भारत, संयुक्त राष्ट्र, कनाडा, रोडेशिया, जापान और पोर्त्तगीज़ पूर्वी अफ्रीका से तांबे को आयात भी करता है। सन् १९५१ में भारत में ७,४८,९५८ हन्डरवेट तांबा बाहर से मंगवाया गया।

भारत में तांबे का उद्योग बहुत कुछ पीतल बनाने के उद्योग पर निर्भर है। हाल में अल्युमिनियम की वस्तुओं की लोकप्रियता बढ़ जाने से पीतल के बर्त्तनों का उद्योग बहुत कुछ गिर सा गया है और इसीलिये तांबे की मांग भी कम हो गई है।

सोना (Gold)

भारत में सोने के सिक्के ढालने के लिए और आभूषण बनाने के लिये उपयोग किया जाता है। भारत के विविध खनिज पदार्थों में मूल्य के दृष्टिकोण से सोने का तीसरा स्थान है। परन्तु संसार के कुल उत्पादन का केवल २ प्रतिशत भाग ही भारत की खानों से प्राप्त होता है। लोहे के अतिरिक्त केवल सोना ही एक ऐसा खनिज है जो भारत के विभिन्न प्रदेशों में विस्तृत रूप से पाया जाता है। सन् १९५० में भारत की विविध खानों से १,९७,००० औंस सोना प्राप्त हुआ।

उत्पादन के क्षेत्र—भारत में सोने के उत्पादन के दृष्टिकोण से मैसूर, हैदराबाद, मद्रास, पंजाव, उत्तर प्रदेश, बिहार और उड़ीसा राज्यों का स्थान विशेष महत्वपूर्ण है। परन्तु इनमें सबसे बढ़कर मैसूर राज्य की **कोलार खान** है। इस खान से भारत का ९९ प्रतिशत सोना प्राप्त होता है।

कोलार खान में चार स्थानों से सोना निकाला जाता है। यह प्रदेश बंगलौर से ४० मील दूर स्थित है और समुद्रतल से इसकी ऊंचाई २८०० फीट है। इसमें ४ मील लम्बी सोने की पट्टी सी पाई जाती है जिसे चार स्थानों पर खोद कर सोना निकाला जाता है। इस कार्य में करीब २३००० मनुष्य लगे हुए हैं और ९२ मील दूर शिवसमुद्रम् से बिजली का प्रबंध किया गया है। कोलार प्रदेश की दो खानें—चैंपियन रीफ और ओरिगम— संसार की सबसे गहरी खानों में से हैं और उनकी औसत गहराई ९००० फीट है। यहां पर काम करने वाले मजदूरों में सभी प्रदेशों के लोग सम्मिलित हैं। केवल २६ प्रतिशत मजदूर मैसूर के है और बाकी मैसूर के आसपास वाले भागों के। इनमें से आधे मजदूर निम्न या शूद्र जाति के हैं। कोलार खान मे सोना निकालने का काम सन् १८८२ में शुरू हुआ। तब से लेकर सन् १९४३ तक कुल मिलाकर २०६ लाख औंस सोना निकाला गया। परन्तु अब धीरे धीरे सोने के उत्पादन में कमी होती जा रही है।

बंगलौर से ६० मील पश्चिम में **बेलारा की खान** से भी थोड़ा सोना प्राप्त किया जाता है। कुछ दिनों तक इस पर काम बन्द था पर मैसूर सरकार ने अब इसे फिर से खोल दिया है।

कुछ समय पहले **हैदराबाद के रायचूर जिले और बम्बई के धारबार प्रदेश** से काफी सोना निकाला जाता था परन्तु अब ये प्रदेश बिल्कुल बन्द से हैं। परन्तु हैदराबाद से **हट्टी क्षेत्र** में सब यंत्रादि लग चुके हैं और शीघ्र वहां से भी सोना निकाला जाने लगेगा। **मद्रास** के **अनन्तपुर** प्रदेश में भी सोने की कई चट्टानें विद्यमान हैं परन्तु अभी तक सोना नहीं निकाला जाता। **सलेम** और **चित्तूर** प्रदेशों में भी सोने के विस्तृत भंडार का पता लगा है। सरकार की ओर से इस दिशा में खोज हो रही है।

भारत के अन्य बहुत से भागों में गंगवार या नदियों द्वारा लाई हुई मिट्टी के साथ सोना मिला हुआ पाया जाता है। इसको निकालने का विशेष महत्वपूर्ण उद्योग नहीं है और वहीं की स्थानीय जनता के प्रयत्न की बात है। उड़ीसा का सिंघभूम प्रदेश, पंजाब का अम्बाला क्षेत्र, उत्तर प्रदेश का बिजनौर जिला और आसाम में ब्रह्मपुत्र की घाटी इस प्रकार के सोना प्राप्त करने के लिये विशेषतया उल्लेखनीय हैं। परन्तु इस प्रकार प्राप्त किये गये सोने का वार्षिक मूल्य ३०० पौंड से अधिक नहीं होता।

भारत, ग्रेट ब्रिटेन, अदन, कुवैत, हांगकांग और बेलजियम से सोना आयात करता है। सन् १९५१ में भारत ने विदेश से २००० औंस सोना आयात किया।

अभ्रक (Mica)

भारत में संसार का सबसे अधिक अभ्रक उत्पन्न होता है और विश्वव्यापी उत्पादन का दो तिहाई भाग यहीं से प्राप्त होता है। अति प्राचीन काल से भारत में दवाई बनाने, सजावट करने और आभूषण आदि में जड़ने के लिये धातु का उपयोग होता रहा है। अभ्रक में कई गुण पाये जाते हैं। यह पारदर्शक, लचीला, मुड़नेवाला तथा ताप व विद्युत-निरोधक होता है। तोड़ने पर इसकी पतली पतली महीन पट्टियां सी निकल आती हैं। अत: इसे कई उपयोग में लाते हैं। विद्युत निरोधक होने के कारण इसकी सहायता से वायुयानों में तीव्र शक्ति की मोटरें लगाई गई हैं और प्रत्येक रेडियो मशीन में काफी अभ्रक काम में

आता है। रेडियो स्टेशन पर उपयुक्त प्रत्येक किलोवाट बिजली के लिये ८ पौंड अभ्रक की आवश्यकता होती है। परन्तु आजकल इसका युद्ध व सैनिक दृष्टिकोण से विशेष महत्व है और विद्युत उद्योग तो इसी पर निर्भर है। बेतार के तार व रेडियो द्वारा बातचीत हवाई यन्त्र शास्त्र और मोटर गाड़ियों के विकास में इस धातु का बड़ा महत्वपूर्ण स्थान रहा है। वास्तव में इन उद्योगों की आधारशिला तो अभ्रक ही है। इसके अलावा इसे चूल्हों के अग्र-भाग, लालटेन की चिमनी, नेत्ररक्षक चश्मे आदि बनाने में भी प्रयोग करते हैं। अग्नि से न जलने वाले पदार्थों, छत्तें डालने के सामान और सजावट के सुन्दर कागज तथा खप्परों में मिलाया जाता है। अतः इसका औद्योगिक महत्व स्पष्ट है।

भारत में कच्ची अभ्रक को ठीक करने व काटने छांटने में बहुत अधिक नुकसान होता है। ७० से ८० प्रतिशत तक कच्ची धातु को हजारी बाग व नेल्लोर की खानों में वैसे ही डाल दिया जाता है और उसके ढेर से लग जाते हैं। इस रद्दी अभ्रक को संयुक्त राष्ट्र आयात करता है और इससे महीन चूर्ण बनाकर विद्युत निरोधक वस्तुएं बनाने में प्रयोग करता है।

अभ्रक निकालने के उद्योग में करीब ३२ हजार मनुष्य काम करते हैं। आदि जातियों की औरतें व बच्चे इस काम में विशेष चतुर हैं।

उत्पादन क्षेत्र—यद्यपि अभ्रक काफी विस्तृत रूप से पाया जाता है परन्तु इसके उत्पादन व व्यापार के दो प्रमुख क्षेत्र हैं। (१) **बिहार की पट्टी** जो १४ मील चौड़ी और ६० मील से अधिक लम्बी है। यह पट्टी हजारीबाग, गया, मुंगेर और मानभूम के जिलों में से टेढ़ी होकर फैली हुई है। और (२) मद्रास में नेल्लोर का जिला।

अभ्रक का भौगोलिक वितरण १९४९

क्षेत्र	उत्पादन (हन्डरवेट)	क्षेत्र	उत्पादन (हन्डरवेट)
बिहारः			
गया	२२,०००	नीलगिरी	४३
हजारीबाग	८०,०००	ट्रावनकोर	४१
मूंगेर	१,५००	**राजस्थानः**	
मानभूम	१४०	अजमेर	६००
मद्रासः		जयपुर	६००
नेल्लोर	१२,०००	भारत का कुल योग	१,५२,०००

सन् १९५० में भारतीय अभ्रक का कुल उत्पादन १८,३८४ टन था।

वास्तव में **बिहार राज्य** को अभ्रक का मुख्य स्रोत कहा जा सकता है। संसार के लिये यह अभ्रक का विशाल भंडार है। भारत के कुल उत्पादन का ८० प्रतिशत भाग बिहार से ही प्राप्त होता है। यहां का अभ्रक बढ़िया माणिक मेल का होता है और यह या तो बिल्कुल साफ या हल्के धब्बों वाला होता है। संसार में इस मेल का अभ्रक सबसे श्रेष्ठ होता है और विद्युत-उद्योग में बहुत काम आता है। बिहार में अभ्रक उत्पादन के लिये गया, हजारीबाग और मुंगेर के जिले विशेष महत्वपूर्ण हैं।

मद्रास के नेल्लोर जिले में गुंटूर, कवाली, आत्माकुर और रायपुर स्थानों पर अभ्रक

खोद कर निकाला जाता है। ये खानें तटीय मैदान में स्थित हैं और करीब ६० मील तक फैली हैं। यहां के अभ्रक का रंग कुछ हरा सा होता है और विहार के अभ्रक की अपेक्षा निम्नकोटि का होता है। इन खानों से कभी ३ गज व्यास के टुकड़े भी निकल आते हैं। जिन से पतली पट्टियां काटी जा सकती हैं।

व्यापार—भारत में अभ्रक की मांग बहुत कम है, इसलिये उत्पादन का अधिकतर भाग निर्यात कर दिया जाता है। या यूं कह सकते हैं कि निर्यात के लिये ही भारत में अभ्रक निकाला जाता है।

निर्यात व्यापार

वर्ष	मात्रा (हंडरवेट में)	मूल्यों (रुपयों में)
१९४७-४८	२,५५,२५९	५,६५,१३,७४२
१९४८-४९	३,४०,२५७	५,९३,७३,८६९
१९४९-५०	२,९७,७२६	६,८४,५८,४३०
१९५०-५१	४,०६,७०५	१०,००,४६,२७१

सन् १९५१-५२ में भारत से ४ लाख ८० हजार हंडरवेट अभ्रक बाहर भेजा गया। सन् १९३८-३९ की निर्यात मात्रा १,६१,८४४ हंडरवेट थी। अत: यह वृद्धि भारत के बढ़ते हुए अभ्रक व्यापार की द्योतक है। भारत से अभ्रक को आयात करने वाले मुख्य देश संयुक्त राष्ट्र, ग्रेट ब्रिटेन, पश्चिमी जर्मनी और फ्रांस हैं। इनमें संयुक्त राष्ट्र का स्थान सर्व-प्रथम है और निर्यात का ५० प्रतिशत भाग इसी देश को जाता है।

निर्यात के मुख्य बन्दरगाह कलकत्ता, मद्रास और बंबई हैं। कलकत्ते से ८५ प्रतिशत निर्यात व्यापार होता है। शेष १४ प्रतिशत मद्रास और १ प्रतिशत बंबई से बाहर भेजा जाता है।

विभिन्न बन्दरगाहों का अभ्रक निर्यात व्यापार में भाग (हज़ार हन्डरवेट में)

	कलकत्ता	मद्रास	बंवई
१९५०-५१	२८०	१२७	१४
१९५१-५२	३०४	१०४	२१२

भारतीय अभ्रक के व्यापार की कुछ समस्यायें—ग्रेट ब्रिटेन में कनाडा और ब्राजील से अभ्रक के आयात के कारण भारतीय अभ्रक की मांग पर असर पड़ा है। पिछले कुछ दिनों से अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में ब्राजील के अभ्रक की ओर से स्पर्धा बढ़ रही है और यही नहीं बल्कि ब्राजील इस चेष्टा में संलग्न है कि वह भारत में कच्चा अभ्रक भेजकर उसकी काट छांट करावे। अत: भारत के अभ्रक उत्पादन व व्यापार को ठीक रूप से व्यवस्थित रखने के लिये ब्राजील से भारत में अभ्रक के आयात पर प्रतिबंध लगाना अत्यावश्यक है।

दूसरी समस्या यह है कि कृत्रिम अभ्रक अब खूब बनने लगा है। आजकल कृत्रिम अभ्रक से पर्टीनक्स, बैकलाइट, पेक्सोलिन और फर्मालाइट आदि वस्तुएं बनाई जाती हैं। कृत्रिम अभ्रक से प्राकृतिक अभ्रक के प्रति बड़ी स्पर्धा रही है।

फिर भी अभ्रक उद्योग का भविष्य बड़ा उज्ज्वल है। विज्ञान की प्रगति व विकास से इसकी मांग के महत्व पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ रहा है। यदि इसके मूल्य को उचित

स्तर पर रक्खा जा सका तो इसकी मांग उत्तरोत्तर बढ़ती जायेगी। भारतीय अभ्रक मात्रा में ही अधिक नहीं है वल्कि प्रकार में भी सबसे अच्छा होता है। इसके टुकड़ों का विस्तार बड़ा तथा मिलावट रहित होता है। इसमें चूर-चरहोने जाने का भी दोष नहीं होता। अत: भारतीय अभ्रक की मांग तो रहेगी ही परन्तु देश में इसकी खपत बढ़ाने की बड़ी जरूरत है। भारत में कच्चे अभ्रक से वस्तु निर्माण के लिए एक कारखाना खोलने की बहुत जरूरत है।

नमक (Salt)

भारत में नमक प्राय: तीन स्रोतों से प्राप्त किया जाता है—(१) समुद्र के पानी से (२) झीलों और स्रोतों के जल से (३) नमक के पहाड़ों से। सन् १९५० में कुल मिलाकर भारत में ७०० लाख मन नमक उत्पन्न हुआ। भारत में नमक उत्पादन के मुख्य प्रदेश बंबई, मद्रास और राजस्थान हैं। बंबई और मद्रास के किनारों पर समुद्री खारे पानी से भारत के कुल उत्पादन का दो तिहाई नमक प्राप्त होता है।

बंबई में कच्छ केरन, कठियावाड़ और सूरत से मंगलौर तक बंबई राज्य के तट से नमक निकालने का उद्योग होता है। कैम्बे की खाड़ी के पूर्व में धर्सना और छारबाद तथा काठियावाड़ के ओखा स्थानों पर बहुत अधिक नमक तैयार किया जाता है। प्राय: नमक तैयार करने का मौसम जनवरी से जून तक रहता है। कच्छ के छोटे रन पर स्थित खारी पानी के कुओं से भी बहुत अधिक नमक निकाला जाता है। इस प्रदेश के पानी में नमक का अंश बहुत अधिक रहता है और धूप में पानी को सुखाकर नमक तैयार किया जाता है।

मद्रास में नमक तैयार करने का धंधा पूर्वी तट पर केन्द्रित है और जन्जाम के किले से लेकर धुर दक्षिण तूतीकोरिन तक तटीय प्रदेशों के निवासियों का यह मुख्य उद्यम है। मालावार के उदीपी जिलों में भी नमक बनाया जाता है। इस प्रकार इन विभिन्न केंद्रों से मिलाकर मद्रास राज्य देश के कुल उत्पादन का ३० प्रतिशत भाग उत्पन्न करता है। औसत रूप से मद्रास का वार्षिक उत्पादन १३० लाख मन है। इस मात्रा का ८५ प्रतिशत भाग तो राज्य में ही खप जाता है, शेष १५ प्रतिशत भाग उड़ीसा, मध्य प्रदेश, पश्चिमी बंगाल और मैसूर को भेज दिया जाता है।

पश्चिमी बंगाल के समुद्री किनारे वाले प्रदेशों में समुद्र के खारी पानी से नमक तैयार करने का काम कुछ छोटे कारखानों में होता है। वैसे नमक तैयार करने का काम इस प्रदेश का घरेलू धंधा है। कुछ विशेष स्थानों में कृत्रिम रूप से नमक तैयार किया जाता है फिर भी बंगाल को अपने घरेलू उपभोग के लिये अदन, पोर्ट सइद और लालसागर के बन्दरगाहों से नमक आयात करना पड़ता है। पश्चिमी बंगाल, मद्रास और भारत के पश्चिमी किनारे से भी नमक मंगवाता है। सुन्दरबन प्रदेश में नमक तैयार करने की विशेष सुविधायें हैं। इस भाग में बड़े-बड़े कारखानों को स्थापित करके नमक बनाने के उद्योग को बढ़ावा दिया जा सकता है। इसी प्रकार धूप में सुखाकर नमक तैयार करने के लिये मिदनापुर के कोन्टाई तट पर सम्यक् संभावनायें हैं। मद्रास व बंबई का नमक निम्नकोटि का होता है और अदन के नमक के मुकाबले इसे कम लोग पसन्द करते हैं। कलकत्ता क्षेत्र में जो आसाम, पश्चिमी बंगाल, बिहार और उड़ीसा से मिलकर बनता है, इसे लोग कम पसन्द करते हैं।

नमक प्राप्त करने का दूसरा स्रोत राजस्थान की खारी झीलें व कुयें हैं। इस प्रदेश की **साम्भर झील** सबसे बड़ी है और ९० वर्गमील क्षेत्रफल में फैली हुई है। इस झील से प्रतिवर्ष २.५ लाख टन नमक प्राप्त होता है।-यहां के पानी में नमक का अंश अधिक होने का मुख्य कारण दक्षिणी पश्चिमी हवायें हैं। ये हवायें कच्छ कैरन से नमक के कणों को उड़ाकर ले आती हैं और इस प्रदेश की भूमि पर इकट्ठा कर देती हैं। वर्षा के जल के साथ ये कण झील के पानी में समा जाते हैं। सन् १९४७–४८ में राजस्थान ने १२८ लाख मन नमक उत्पन्न किया। इसमें से केवल साम्भर झील से १०० लाख मन नमक प्राप्त हुआ था। राजस्थान का नमक पूर्वी पंजाब, दिल्ली, उत्तर प्रदेश और मध्य भारत को भेजा जाता है।

भारत में नमक का उपभोग

(१० लाख टनों में)

घरेलू भोजन में	२·०७
पशुपालन तथा अन्य कृषि के धंधों में	०·०३
मछली रखने में	०·०१
दुग्धशालाओं में	०·०१
चमड़ा व खालों में	०·०७
शिल्प उद्योगों में	०·३१
	२·५०

इस प्रकार भारत में औद्योगिक उपभोग के लिये नमक की मांग बहुत कम है। कुल मात्रा का चार पंचमांश घरेलू भोजन में इस्तेमाल होता है। इसके विपरीत संयुक्त राष्ट्र में नमक की तीन चौथाई मात्रा का उपयोग उद्योग-धंधों के लिये होता है। अतः भारत में उद्योग-धंधों के विकास के साथ साथ नमक की मांग का बढ़ना स्वाभाविक है।

देश के विभाजन के पहले भारत को पंजाब की नमक की पहाड़ी और सीमान्त प्रदेश के कोहाट जिले का पहाड़ी नमक उपलब्ध था। परन्तु अब पहाड़ी नमक के वे स्रोत पाकिस्तान में स्थित हैं। पूर्वी पंजाब के मंडी राज्य में भी पहाड़ी नमक का भंडार प्रस्तुत है। आज-कल भारत का अधिकतर पहाड़ी नमक यहीं से प्राप्त होता है। भारत सरकार का भूगर्भ तत्व विभाग इस दृष्टि से खोज कर रहा है कि किस प्रकार इस नमक का उत्पादन बढ़ाया जा सकता है।

अब भारत नमक के उत्पादन में बहुत कुछ आत्मनिर्भर हो गया है। सन् १९४८ में भारत ने १०० लाख टन नमक बाहर से मंगवाया था परन्तु अब सन् १९५१ में भारत में आयात की मात्रा कुल २५ लाख टन ही रह गई। यह कमी भारत की नमक संबंधी मांग पूर्ति में बढ़ती हुई आत्मनिर्भरता की द्योतक है। इस समय भारत अदन, पश्चिमी पाकिस्तान, ग्रेट ब्रिटेन, मिश्र और पूर्वी अफ्रीका से पहाड़ी व सफेद चूर्ण किया हुआ नमक मंगवाता है। सन् १९५२ में भारत ने ७६,०००,००० मन नमक तैयार किया। इसलिये अपनी घरेलू मांग यानी ७१,३००,००० मन को छोड़कर शेष को भारत ने जापान व पाकिस्तान भेज दिया। नमक के निर्यात को बढ़ाने के लिये इस समय भारत सरकार बड़े प्रयत्न कर रही है

और नमक की कोटि भी सुधर रही है। इस दृष्टि से तूतीकोरिन में उच्च कोटि का नमक तैयार किया जाने लगा है।

शोरा (Saltpetre)

विभिन्न उद्योगों में शोरे की बड़ी मांग रहती है। शीशा बनाने में, भोजन को ठीक तरह से अधिक समय तक रखने में और भूमि को खाद रूप देने में शोरा बहुत अधिक प्रयोग किया जाता है। इसके अलावा बारूद बनाने में भी इसका प्रयोग होता है। भारत में बिहार और उत्तर प्रदेश के राज्य शोरा उत्पादन के लिये विशेष प्रमुख हैं। उत्तरप्रदेश के फर्रुखाबाद जिले में इसका उद्योग केंद्रित है परन्तु उत्पादन का अधिक भाग निर्यात कर दिया जाता है। आसाम के चाय के बागीचों में खाद देने के लिये केवल थोड़ी सी मात्रा रख ली जाती है। भारत से शोरा मंगवाने वाले प्रमुख देश संयुक्त राष्ट्र, चीन, ग्रेट ब्रिटेन, मारीशस, लंका और स्ट्रेट्स सेटलमेंट्स हैं। सन् १९५० में भारत में ७००० टन शोरा निकाला गया।

चाँदी (Silver)

चांदी अलग से और सोना, सीसा तथा तांबा आदि धातुओं के साथ मिली हुई दोनों प्रकार से पायी जाती है। भारत में चांदी से आभूषण, खाने के बर्त्तन और सिक्के बनाये जाते हैं। इस प्रकार भारत में संसार के अन्य सब देशों की अपेक्षा चांदी की अधिक मांग रहती है। सन् १९३८ में भारत ने २५००० औंस चांदी उत्पन्न की।

चांदी प्राप्त करने के मुख्य क्षेत्र मैसूर में कोलार की सुवर्ण खान और बिहार का मानभूम क्षेत्र है। पहले मद्रास के अनन्तपुर जिले से काफी चांदी प्राप्त की जाती थी परन्तु अब उत्पादन बिल्कुल खत्म हो चुका है। सन् १९५१ में भारत का कुल उत्पादन केवल १७००० औंस था। अतः भारत, ग्रेट ब्रिटेन, बेलजियम और पश्चिमी जर्मनी से चांदी मंगवाता है। सन् १९५१-५२ में भारत ने विदेशों से १,६७,००० औंस चांदी आयात की।

क्रोमाइट (Chromite)

विविध उद्योगों में इस धातु की मांग बहुत अधिक रहती है। इसकी सहायता से लौह-मिश्रित क्रोम, क्रोम मिश्रित इस्पात और क्रोमाइट ईंटें बनायी जाती हैं। इसका प्रयोग क्रोमियम नमक तैयार करने में भी बहुत अधिक होता है। क्रोमियम नमक चमड़ा साफ करने व रंगने के कार्यों में काम आता है।

क्रोमाइट का मुख्य उत्पादक प्रदेश **मैसूर** है। यहां देश से कुल उत्पादन का ३५ प्रतिशत भाग प्राप्त होता है। भारत का कुल वार्षिक उत्पान १९००० टन है और मैसूर में ७००० टन क्रोमाइट प्राप्त होता है। मैसूर में शिमोगा और हसन की खानें विशेष महत्वपूर्ण हैं और इनसे धातु का उत्पादन बराबर बढ़ रहा है। मैसूर के बाद **उड़ीसा के क्योनजहार** जिले का स्थान आता है। यहां से भारत के कुल उत्पादन का एक तिहाई भाग प्राप्त होता है। इस प्रदेश का वार्षिक उत्पादन ५००० टन है। **बिहार** के रांची व भागलपुर जिलों में भी क्रोमाइट धातु मिलती है। बिहार के सिंघभूम से भारत के कुल उत्पादन का अष्टमांश प्राप्त होता है।

प्रायः उत्पादन की संपूर्ण मात्रा विदेशों को निर्यात कर दी जाती है। ग्रेट ब्रिटेन, नार्व,

स्वीडन, जर्मनी और संयुक्त राष्ट्र भारत से क्रोमाइट आयात करने वाले मुख्य प्रदेश हैं। मद्रास और कलकत्ता निर्यात के प्रमुख बन्दरगाह हैं। परन्तु भारत के क्रोमाइट को यूरोप की मंडियों में रोडीशिया और न्यूकैलीफोर्निया के क्रोमाइट की स्पर्धा का सामना करना पड़ता है।

सुरमा (Antimony)

मुलायम धातुओं के साथ मिलाने के लिये सुरमे का बड़ा महत्व है। इस समय भारत में सुरमे का उत्पादन बहुत अधिक नहीं है परन्तु इसका भविष्य बड़ा उज्ज्वल है और इस उद्योग के विकास की बड़ी संभावनायें हैं। मैसूर के चितालदुर्ग प्रदेश से बहुत अधिक सुरमा निकाला जा सकता है। देश का उत्पादन बराबर बढ़ रहा है। सन् १९४७ में केवल २३५ टन सुरमा निकाला गया था परन्तु सन् १९४८ में उत्पादन की मात्रा ३७० टन हो गई। सुरमे का कुछ भंडार कांगड़ा जिले में निहित है।

टंगस्टन (Tungsten)

इसे बोलफार्म भी कहते हैं और कठोर इस्पात तथा बिजली के बल्बों के अन्दर का तार बनाने में इसका प्रयोग किया जाता है। यद्यपि उड़ीसा के सिंघभूम, राजस्थान के मारवाड़ और मध्य प्रदेश में यह धातु कच्चे रूप में पाई जाती है परन्तु इसकी मात्रा बहुत कम है। यदि उत्पादन कम है तो उपभोग भी बहुत ही कम है। भारत में इसकी वार्षिक खपत ५० टन से अधिक नहीं है।

जिप्सम (Gypsum)

इससे रासायनिक खाद तथा कई प्रकार के विशेष कागज बनाये जाते हैं। भारत के सीमेंट उद्योग में भी इसको प्रयोग करते हैं और ऐसी धारणा है कि इससे गंधक का तेजाब (Sulphuric acid) भी तैयार किया जा सकता है।

इसका भंडार राजस्थान, पूर्वी पंजाब, काश्मीर, मद्रास और काठियावाड़ में पाया जाता है। राजस्थान के बीकानेर, जोधपुर और जैसलमेर क्षेत्रों में इस खनिज के विस्तृत भंडार हैं और इस समय देश के कुल उत्पादन का ८० प्रतिशत भाग इन्हीं क्षेत्रों से प्राप्त होता है। मद्रास के ट्रिचनापली प्रदेश के निकट भी जिप्सम का भंडार पाया जाता है।

सन् १९५० में भारत के सब प्रदेशों से जिप्सम का कुल उत्पादन १,३९,००० टन के लगभग था।

ग्रेफाइट (Graphite)

ग्रेफाइट को तीन प्रकार से प्रयोग किया जाता है—कागज पर लिखने की काली पेन्सिल बनाने में, मशीनों के लिये चिकना करने की वस्तु निर्माण करने में और कई प्रकार के रंग व पालिश बनाने में। भारत के ट्रावनकोर, गोदावरी, विजगापट्टम, उड़ीसा, मध्य प्रदेश, अजमेर मारवाड़ क्षेत्रों में इसका विस्तृत भंडार उपस्थित है परन्तु अभी तक इसका पूर्ण उपभोग नहीं हो पाया है। सन् १९५० में भारतमें केवल १००० टन ग्रेफाइट निकाला गया।

एसबेस्टोस (Asbestos)

यह रेशम की तरह रेशेदार खनिज है और प्रायः पट्टियों में पाया जाता है। इसको अग्नि से बचने वाले कपड़ों आदि के निर्माण में प्रयोग करते हैं। भारत में ऐसबेस्टोस

बहुत थोड़ी मात्रा में प्राप्त होता है और मैसूर के बंगलौर जिला, राजस्थान में अजमेर मारवाड़ा और मद्रास का कुड़ापा प्रदेश इसके प्रमुख उत्पादक क्षेत्र हैं। सन् १९४९ में कुल भारतीय उत्पादन १४६ टन था।

प्रतिवर्ष भारत को ऐसबेस्टोस की वस्तुएं आयात करनी पड़ती हैं। भारत में ऐसबेस्टोस के उद्योग के विकास की काफी संभावनाएं हैं।

हीरा (Diamond)

यद्यपि भारत का हीरा उद्योग संसार में सबसे पुराना है फिर भी इसका उत्पादन इस समय बहुत कम है। सन् १९४९ में कुल १६३२ कैरट हीरा प्राप्त हुआ और उसका स्रोत था विन्ध्य प्रदेश।

हीरे की खानें मद्रास के अनन्तपुर, बेलारी, किस्ना, गुन्टूर और गोदावरी जिलों में; उड़ीसा के सम्बलपुर जिले में और मध्य प्रदेश के चन्दा जिलों में पाई जाती हैं। उत्तर प्रदेश के बुन्देलखंड भाग में भी हीरे की कई खानें हैं।

भारत में शक्ति के साधन व स्रोत

देश के औद्योगिक विकास व उन्नति के लिये शक्ति के सस्ते साधन उपलब्ध होने चाहियें। शक्ति प्रदान करने के मुख्य साधन व स्रोत कोयला, लकड़ी का ईंधन, तेल, स्प्रिट हवा और जल हैं।

भारत में बिजली का वार्षिक उत्पादन २५००० लाख इकाई है। इस प्रकार भारत में प्रति मनुष्य पीछे बिजली का उपभोग अधिक से अधिक ७ इकाई है। यह मात्रा मेक्सिको की एक चौथाई और बलगेरिया की एक तिहाई है। मेक्सिको व बलगेरिया दोनों ही काफी पिछड़े हुए देश हैं। अतः स्पष्ट है कि विद्युत सभ्यता के अनुसार भारत का स्थान बहुत नीचा है। जहां तक बिजली के उपभोग का संबंध है भारत का स्थान चीन व अबीसीनिया की तरह है।

भारत में बिजली उत्पादन के लिये कोयला, लकड़ी व खनिज तेल की मांग पूर्ति की दशा बहुत अच्छी नहीं है। यहां का कोयला निम्नकोटि का है और सब जगह समान रूप से नहीं पाया जाता है। भारत के जंगल पहाड़ी प्रदेशों में पाये जाते हैं। वहां से यातायात की असुविधाओं के कारण लकड़ी को लाना कठिन व महंगा है। भारत में खनिज तेल का उत्पादन बराबर घटता जा रहा है। इसलिये जब तक नये तेल क्षेत्रों का पता नहीं लगता तब तक भारत में तेल की सहायता से शक्ति उत्पादन नहीं हो सकती है।

कोयला (Coal)

भारत में सब खनिज पदार्थों की अपेक्षा कोयले का मूल्य व मात्रा अधिक रहती है। अंग्रेजी कामनवेल्थ के देशों में कोयला उत्पादन के दृष्टिकोण से भारत का दूसरा स्थान है और संसार के कोयला उत्पादक राष्ट्रों में भारत का आठवां नम्बर है।

भारत में कोयले का उत्पादन (लाख टनों में)

१९४८	२९०
१९४९	३१४
१९५०	३१०

सन् १९५० में उत्पादन की मात्रा आसानी से ४०० लाख टन हो सकती थी। ३१० लाख टन कोयले में से केवल ८० लाख टन उच्चकोटि का धातु गलाने लायक कोक था। भारत के विविध उद्योग धंधों में केवल ३० लाख टन कोक की खपत हो सकती है। अतएव ५० लाख टन कोक को विदेशों को भेजा जा सकता है परन्तु भारत में इसे रेलगाड़ियों के इंजन में जलाया जाता है। यह इस प्रकार के कोयले का दुरुपयोग है विशेषकर उस हालत में जब इसकी अन्तर्राष्ट्रीय मंडियों में मांग है।

यद्यपि देश के विभाजन से भारत की कोयला संपत्ति पर कोई असर नहीं पड़ा है, परन्तु भारत के कोयला उद्योग में कई दोष पाये जाते हैं। भारत का कोयला साधारणतया निम्न कोटि का होता है। इसमें कारबन का अंश जिस पर इसकी ज्वालाशक्ति निर्भर रहती है, यूरोप और अमरीका के कोयले की अपेक्षा बहुत कम रहता है। झरिया क्षेत्र के कोयले के अलावा अन्य सब प्रकार का भारतीय कोयला नमी लिये हुए होता है। तीसरा बड़ा दोष यह है कि कोयले की खानों का वितरण बड़ा ही विषम है। ९८ प्रतिशत से अधिक कोयला केवल निम्न गोंडवाना क्षेत्र या पश्चिमी बंगाल, बिहार, उड़ीसा, मध्य प्रदेश और हैदराबाद में स्थित खानों से प्राप्त होता है। दक्षिण के प्रायद्वीप में कोयला बहुत कम पाया जाता है। उत्तर प्रदेश में कोयला नाम को भी नहीं है।

कोयला भारी होता है। इसलिये इसको एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जाने में बड़ा खर्च बैठता है। भारत की कोयले की खानें न तो समुद्रतट के समीप ही स्थित हैं और न नाव्य नदियों की घाटियों में ही। ग्रेट ब्रिटेन में समुद्रतट से निकटवर्ती प्रदेशों में कोयले की खानें पायी जाती हैं। जर्मनी में नाव चलाने योग्य नदियों की घाटियों में कोयले की खानें पायी जाती हैं। भारतीय कोयला क्षेत्रों को स्थिति संबंधी ये सब सुविधायें प्राप्त नहीं हैं। अतः उत्पादन क्षेत्रों से उपभोग केंद्रों तक कोयला पहुंचाने के लिये रेलमार्गों का ही सहारा लेना पड़ता है। फलतः यातायात संबंधी खर्च बहुत अधिक बैठता है। भारत में कोयले को बहुधा काफी दूरी तक ले जाना पड़ता है और अधिक खर्च के कारण इससे उत्पादित शक्ति बहुत महंगी पड़ती है।

एक और भी समस्या है। कोयला शक्ति उत्पादन काल में जलकर राख बन जाता है और फिर इसका भंडार धीरे धीरे रिक्त हो रहा है। अतः केवल इसी पर भरोसा नहीं किया जा सकता। वास्तव में कोयले की रासायनिक उद्योगों में बड़ी काफी मांग रहती है। इसके अतिरिक्त कुछ उद्योगों में कोयले की शक्ति का ही प्रयोग हो सकता है। अतएव कोयले के भंडार की रक्षा होनी चाहिये और कोयले के उपभोग में मितव्ययिता से काम लेना चाहिये।

भारत में कोयले का भंडार व उत्पादन—भारत में विविध प्रकार के कोयले का भंडार ६००,००० लाख टन है। साधारणतया यह तहों में पाया जाता है और तहों की मोटाई एक फीट से लेकर १००० फीट तक रहती है। इस भंडार का अधिकतर भाग गोंडवाना क्षेत्र में सीमित है और इनमें से कोई २००,००० लाख टन कोयले को खोदकर निकाला जा सकता है।

भारत में कोयले का भंडार (लाख टन)

१. दार्जिलिंग और पूर्वी हिमालय	१०००
२. गिरीडिह-देवघर	२५००
३. रानीगंज-झरिया	२,५६,५००
४. सोन घाटी	१००,०००
५. छत्तीसगढ़ और महानदी	५००,०००
६. सतपुड़ा प्रदेश	१०,०००
७. वार्धा घाटी	१,८०,०००
	६००,०००

इस भंडार में से केवल ५०,००० लाख टन कोयला उच्चकोटि का है। सन् १९४६ रित सरकार की ओर से देश की कोयला संपत्ति का निरीक्षण किया गया और यह भी सोचा गया कि वर्तमान उपभोग की दर से यह संपत्ति कितने समय तक चल सकती है। भारत सरकार की इस समिति के विचार से भारत के विविध क्षेत्रों की खानों में उपलब्ध बढ़िया कोक बनाने लायक कोयले की मात्रा ७००० से ७५०० लाख टन से अधिक नहीं है। इस प्रकार संयुक्त राष्ट्र, रूस, ग्रेट ब्रिटेन और जर्मनी की अपेक्षा भारत का कोयला भंडार बहुत कम है।

उपभोग के दृष्टिकोण से भारतीय खानों से प्राप्त कोयला निम्नलिखित ५ प्रकार का होता है।

१. धातु गलाने लायक कोक कोयला—यह झरिया, रानीगंज, बोकारो और गिरीडिह के क्षेत्रों में पाया जाता है।

२. उच्चकोटि का भाप बनाने लायक कोयला—यह रानीगंज, बोकारो, करनपुरा, तलचर, मध्य भारत, मध्य प्रदेश और सिंगरेनी क्षेत्रों में निकाला जाता है।

३. टरशियरी कोयला जो आसाम, राजस्थान और पूर्वी पंजाब की खानों से प्राप्त किया जाता है।

४. निम्न श्रेणी का भाप बनाने वाला कोयला।

५. लिगनाइट—यह राजस्थान में बीकानेर और मद्रास के दक्षिणी आरकाट में पाया जाता है।

कोयला उत्पादन के क्षेत्र—भूगर्भ तत्व के अनुसार भारत के कोयला उत्पादक क्षेत्रों को दो श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है—

(१) गोंडवाना चट्टानें जो बंगाल, बिहार, उड़ीसा, हैदराबाद, मध्य प्रदेश और मध्य भारत में पाई जाती हैं।

(२) आसाम व राजस्थान के टरशियरी कोयला क्षेत्र। आसाम की गारो पहाड़ियों में उच्चकोटि का कोयला मिलता है और भारत सरकार के संरक्षण में इस प्रदेश का निरीक्षण शुरू हो गया है। गौहाटी से ४० मील दूर उत्तरी कामरूप जिले में भूटान धुली नामक स्थान पर कोयले के एक क्षेत्र का पता चला है। यह कोयला क्षेत्र १ वर्गमील में फैला है।

राज्य के अफसरों का कहना है कि यहां का कोयला बहुत ही उत्तम कोटि का है। जब इन प्रदेशों में काम शुरू हो जायेगा तो आसाम कोयले के दृष्टिकोण से आत्मनिर्भर हो जावेगा और निर्यात भी कर सकेगा। रीवां, मध्य प्रदेश के पयकेरा और कोपा तथा बिहार के हुतार स्थानों में कोयले की नई खानों का पता चला है। इन खानों को रेलमार्गों द्वारा संबंधित किया जा रहा है। हाल में भूगर्भतत्व विभाग ने दक्षिणी आरकाट जिले में लिगनाइट कोयले के भंडार का पता लगाया है। यह कोयला भंडार १६ वर्गमील में फैला है और इसके कोयले की तहों की मोटाई ३२ फीट तक है। भारत की हाल की खोजों में यही सबसे विस्तृत भंडार है। परन्तु इस बात की अभी भी खोज होनी है कि इसे किस उपयोग में लाया जा सकता है—ईंधन के लिये या कृत्रिम खनिज तेल प्राप्त करने के लिये।

भारत में कोयले का प्रादेशिक वितरण व उत्पादन (१९४७)

१. गोंडवाना क्षेत्र

टन भार	प्रदेश	खानें
७६,४६,३५७	पश्चिमी बंगाल	रानीगंज
१,७३,१८,१६५	बिहार	झरिया, बोकारो, गिरीडिह, राजमहल पहाड़ी, पालामऊ, (औरंगा, हुतार और डाल्टनगंज) तलचर, रायपुर (सम्बलपुर जिले और मध्य प्रदेश के रायगढ़ राज्य में मिलाकर) रामगढ़, उत्तरी व दक्षिणी करनपुरा।
४,३१,७४२	उड़ीसा	
५,६९,०२६	मध्य भारत	मरिया, सोहागपुर, सिंगरोली
२५,९०,४११	मध्य प्रदेश	मोहयानी, शाहपुर, पेंच घाटी, बरारो, योटमल, बल्लालपुर (इसे सस्ती भी कहते हैं और इसका कुछ भाग हैदराबाद में स्थित है।)
११,६३,०७७	हैदराबाद	सस्ती, तन्दूर और सिंगरैनी
६२,०९९	राजस्थान	बीकानेर

२. टरशियरी क्षेत्र—

टन भार	प्रदेश	खानें
३.५५,००१	आसाम	नजीरा और माकुम
८,६२७	काश्मीर	

रानीगंज—भारत की सबसे पुरानी कोयले की खान है और करीब ६०० वर्गमील में फैली हुई है। भारत का लगभग एक तिहाई कोयला यहीं से प्राप्त होता है। भारत की ये सबसे गहरी खान है और २००० फीट की गहराई तक कोयले की तहें पाई जाती हैं। पूर्वी रेलमार्ग व उसकी शाखायें इसको अन्य प्रदेशों से मिलाती हैं।

झरिया—कोयले की दूसरी बड़ी खान है। यह कलकत्ते से १४० मील पूर्व में स्थित है और लगभग १७५ वर्गमील क्षेत्रफल में फैली हुई है। यह रानीगंज से १६ मील पश्चिम में स्थित है। यहां से भारत का आधे से अधिक कोयला प्राप्त होता है। दो हजार फिट की गहराई तक कोयले की तहें पाई जाती हैं। पूर्वी रेलमार्ग इसे भी अन्य प्रदेशों से मिलाता है। कोयले की मात्रा, निकटता तथा उपलब्ध कोयले की उच्चकोटि के कारण यह खान

भारत की सबसे प्रमुख खान हो गई है। दिल्ली से कलकत्ता तक गंगा की समस्त घाटी में औद्योगिक काम धंधों में झरिया का कोयला ही प्रयोग किया जाता है।

झरिया के समीप ही **बोकारो की खान** है जो २५० वर्गमील क्षेत्रफल में विस्तृत है। **उत्तरी करनपुरा** की कोयले की खान बहुत विस्तृत है और उसका क्षेत्रफल ४५० वर्गमील है। यद्यपि इस समय इसका विशेष महत्व नहीं है परन्तु इसका भविष्य बड़ा उज्ज्वल है। सन् १९३० में उत्तरी व दक्षिणी करनपुरा खानों में से भारत का दो प्रतिशत कोयला प्राप्त हुआ था। गिरीडिह की खान अपेक्षतः छोटी है परन्तु इससे प्राप्त कोयला बहुत बढ़िया मेल का होता है और अधिकतर धातु गलाने में प्रयोग किया जाता है।

मध्य भारत और विन्ध्यप्रदेश में दो प्रमुख खानें हैं—एक रीवां के **सोहागपुर** में और दूसरी कटनी के पास **उमरिया** में। सोहागपुर की खान का क्षेत्रफल १२०० वर्गमील है और प्रतिवर्ष इससे १० लाख टन कोयला निकाला जाता है।

मध्यप्रदेश में कोयले की बहुत सी खानें हैं और भूगर्भ के आधार पर इन्हें तीन भागों में बांटा जा सकता है—(१) रीवां गोंडवाना क्षेत्र (२) सतपुड़ा प्रदेश और (३) वार्धा घाटी। इन सब प्रदेशों में दो खानें विशेष महत्व की हैं—एक तो सतपुड़ा प्रदेश के पेंच घाटी में और दूसरी बार्धा घाटी के बल्लालपुर में। मध्य प्रदेश में कुल मिलाकर २० लाख टन कोयला उत्पन्न होता है। हाल में मध्यप्रदेश के **खोबरा** प्रदेश में कोयले की एक नई खान का पता लगा है। यह खान २०० वर्गमील में फैली हुई है और दो भागों में विभक्त है। प्रत्येक भाग में प्रति वर्गमील ६० लाख टन उच्चकोटि के कोयले का भंडार है।

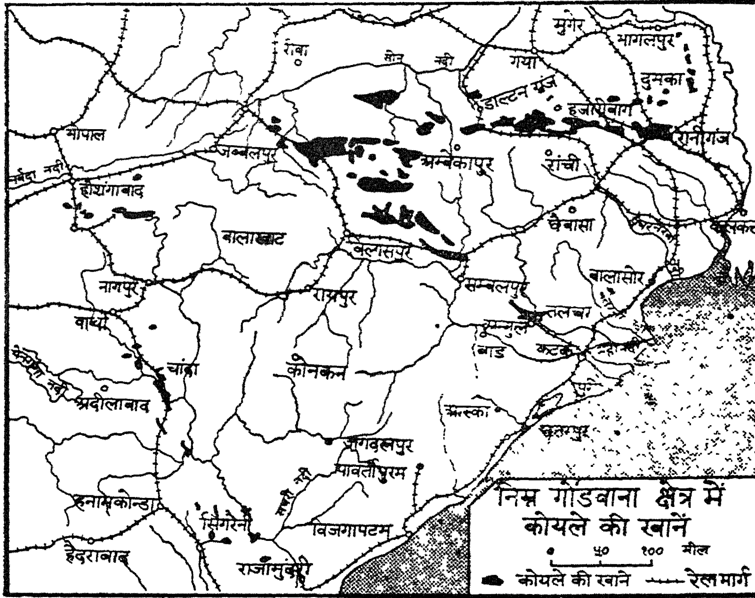
हैदराबाद राज्य में हैदराबाद नगर से १४६ मील दूर पर सिंगरैनी में कोयले की एक बड़ी खान है। यहां का कोयला विशेष गहरे रंग का है तथा अति कठोर है। कोक तैयार करने के लिये यह सर्वथा बेकार है पर भाप बनाने योग्य होने से दक्षिणी भारत की रेलों व मिलों में यही प्रयोग किया जाता है।

टरशियरी क्षेत्रों का कोयला आसाम और राजस्थान में निकाला जाता है और भारत के कुल उत्पादन का केवल २ प्रतिशत भाग इन प्रदेशों से प्राप्त होता है। टरशियरी कोयले का आधे से अधिक भाग अकेले आसाम में मिलता है। माकुम के उच्चकोटि के कोयले का विशाल भंडार है और यहां से निकाला हुआ कोयला रेलों, जहाजी कम्पनियों व चाय के बागीचों द्वारा इस्तेमाल किया जाता है।

भारत में कोयले का उपयोग—भारत में कोयला बिजली उत्पन्न करने के लिये, रेलों को संचालित करने के लिये, जहाजों व भाप आदि से चलने वाले अन्य उद्योगधंधों तथा धातु गलाने, शीशा व सीमेंट तैयार करने और घरों को गर्म रखने व भोजन तैयार करने में प्रयोग किया जाता है। वार्षिक उपभोग का ३३ प्र. श. भाग तो केवल रेलों द्वारा ले लिया जाता है। बहुत थोड़े कोयले से गैस तैयार की जाती है। वास्तव में रेलें लोहा व इस्पात उद्योग तथा पीतल के कारखाने अधिक से अधिक कोयला उपभोग करते हैं। यद्यपि पक्के कोयले या पत्थर के कोयले की घरेलू आवश्यकताओं के लिये लोकप्रियता बढ़ाने का

पूरा प्रयत्न किया जा रहा है परन्तु फिर भी भारत में कोयले का घरेलू उपभोग बहुत कम है।

इधर कुछ दिनों से रेलों में कोयले की मांग कम होती जा रही है। इसका मुख्य



चित्र नं० ४८–बंगाल, बिहार और मध्य प्रदेश के एक भाग की कोयले की खानें। इस प्रदेश में रेलमार्गों का जाल सा बिछा हुआ है।

कारण यह है कि पूर्वी रेलमार्ग में अपनी ही खानों से प्राप्त कोयला प्रयोग होने लगा है। सन् १९५१-५२ में भारत में कोयले का उपभोग इस प्रकार था :—

उपभोग के विषय	वार्षिक उपभोग की मात्रा (लाख टनों में)
१. निर्यात व जहाज में भार संतुलन के लिये	२०
२. रेलें	११०
३. सार्वजनिक सेवा (बिजली, पानी आदि में)	२०
४. सीमेंट	१०
५. इंजीनियरिंग, सूती वस्त्र और अन्य उद्योग	५०
६. घरेलू उपभोग	४०
७. ईट के भट्टों आदि में	४०
८. कोक की भट्टियों में धातु गलाने के वास्ते	४०
९. कोयले की खानों में	२०
कुल योग	३५०

भारत में कोयला उद्योग व व्यापार—भारत की कोयले की खानों में २,३०,०००

आदमी काम करते हैं और इनमें से अधिकतर मजदूर छोटा नागपुर, मध्यप्रदेश व बिहार राज्यों से आते हैं। इनमें से बहुत अधिक मजदूर साल भर बराबर काम नहीं करते। खेती के मौसम में और विशेषकर फसल काटने के समय ये लोग खानों को छोड़कर अपने खेतों पर काम करने चले जाते हैं। इस प्रकार खेती के काल में खानों पर मजदूरों की कमी हो जाती है और अब इस समस्या को बिजली के द्वारा हल किया जा रहा है। अब कोयला बाहर निकालने व काटने के लिये बिजली की शक्ति का प्रयोग होता है।

भारत के मजदूर बहुत कुशल भी नहीं होते। अतः प्रति मजदूर पर उत्पादन का औसत बहुत कम रहता है। ग्रेट ब्रिटेन में प्रति मजदूर पर कोयले का औसत उत्पादन २९० टन जमीन के ऊपर और ३०० टन खान के भीतर होता है। इसके विपरीत भारत में कोयला उत्पादन की औसत मात्रा जमीन के ऊपर १३० टन और जमीन के नीचे १८० टन है। एक तो यह मात्रा ही बहुत कम है और दूसरे यह बराबर घटती जा रही है। सन् १९३८ में प्रति मजदूर पर उत्पादन का औसत १४१ टन था परन्तु सन् १९४८ में यह केवल ९२ टन ही रह गया। इस कमी के ३ कारण हैं—(१) काम करने के घंटे कम हो गये हैं (२) ऊपरी तहों का कोयला खतम हो जाने से अधिक गहराई की नीची तहों को काटना पड़ता है। और (३) कोयला खोदने आदि के पुराने यंत्रों का अभी भी प्रयोग हो रहा है, यद्यपि घिस जाने के कारण अब वे बेकार से हो गये हैं।

पहले भारत से बहुत-सा कोयला निर्यात किया जाता था परन्तु अब उसमें भी कमी हो गई है। लंका, मलाया, स्टेट्स सेटलमेंट, पेनांग, अदन और पेरिस भारत से कोयला मंगवाते थे परन्तु दूसरे महायुद्ध के पहिले जापानी, आस्ट्रेलियन और दक्षिणी अफ्रीकन कोयले की स्पर्धा के कारण भारत के निर्यात व्यापार को विशेष हानि पहुंची है। सन् १९४९ से भारत से कोयले का निर्यात फिर बढ़ रहा है। अब पाकिस्तान और आस्ट्रेलिया भारतीय कोयले के पक्के ग्राहक हैं। सन् १९४९-५० में भारत से १२ लाख टन कोयला निर्यात किया गया था। परन्तु सन् १९५१-५२ में पाकिस्तान, जापान, आस्ट्रेलिया, लंका, बर्मा और सिंगापुर को कुल मिलाकर २३ लाख टन कोयला भारत से भेजा गया। अकेले पाकिस्तान में ही प्रति वर्ष ३४ लाख टन कोयले का आयात किया जाता है। यदि भारत व पास्कितान के बीच ठीक राजनीतिक व यातायात संबंध स्थापित हो जायें तो यह सारी की सारी मात्रा भारत से ही भेजी जा सकती है।

भारत में कोयले को जलाकर शक्ति उत्पन्न की जाती है। इससे बहुत सा कोयला सदा के लिये नष्ट हो जाता है। इसलिये कोयले से बिजली शक्ति तैयार करना अधिक लाभप्रद है। इस प्रकार न केवल शक्ति ही उत्पन्न होती है वल्कि अन्य बहुत से गौण पदार्थ भी मिल जाते हैं। बिजली के अधिक उत्पादन व उपभोग से उद्योग धंधों में उपभुक्त दो तिहाई कोयले और कोयले की खानों की मंडियों में प्रयुक्त चारपंचमांश कोयला बचाया जा सकता है।

खान खोदते समय बहुत सा कोयला चूर हो जाता है। इसमें से कुछ तो उठा लिया जाता है पर अधिक भाग प्रायः नष्ट हो जाता है। वैसे तो भारत का अधिकतर कोयला एक इंच से भी कम मोटा होता है पर चूर्ण कोयले को कोई भी नहीं लेता। इधर कुछ दिनों से

इस चूरे की थकिया तैयार करने का काम शुरू किया गया है। इससे कोयले का चूरा भी प्रयोग में आ सकेगा।

मजदूरों की कमी की समस्या को हल करने के लिये भारत सरकार ने स्त्रियों को जमीन के नीचे काम करने की आज्ञा दे दी है। सरकार ने एक 'कोयला नियंत्रण विधान' भी चालू किया है जिसके अनुसार कोयले की खानों के मालिकों को कम से कम एक निश्चित मात्रा अवश्य ही उत्पन्न करनी होगी और मजदूरों को रखने व मजदूरी देने में भी सरकार के कानूनों का पालन करना होगा।

खनिज तेल (Petroleum)

मूल्य के दृष्टि कोण से भारत के खनिज पदार्थों में तेल का पांचवां स्थान है। खनिज तेल से प्राप्त वस्तुओं का भारत के अनेक उद्योगधंधों के लिये बड़ा महत्व है। परन्तु प्रयोग से पहिले खनिज तेल को साफ करना पड़ता है। और इसको छानने पर अनेक गोण वस्तुएं प्राप्त होती हैं। तेल साफ करने के अधिकतर कारखाने तेल उत्पादक क्षेत्रों के समीप पाये जाते हैं और इनमें बहुत अधिक कच्चा तेल एक साथ ही साफ किया जा सकता है।

खनिज तेल से प्राप्त होने वाली वस्तुओं में मुख्य गेसोलीन, या पैट्रोल, जलाने का तेल, मिट्टी का तेल और अनेक चिकना करने के पदार्थ हैं। ये वस्तुएं जहाजों, रेलों, औद्योगिक कारखानों तथा घरेलू धंधों में प्रयोग की जाती हैं। परन्तु तेल के उत्पादन के विचार से भारत का स्थान नगण्य है। सन् १९५० में कुल मिलाकर ६६० लाख गैलन कच्चा तेल निकाला गया।

उत्पादन-क्षेत्र—भारत में तेल-उत्पादक क्षेत्र केवल एक है जो कि आसाम में हिमालय के पूर्वी सिरे पर स्थित है। यह क्षेत्र आसाम के उत्तरी पूर्वी सिरे से ब्रह्मपुत्र और सूरमा की घाटियों के पूर्वी सिरे तक विस्तृत है। यहां पर वे ही चट्टानें पायी जाती हैं जो ईरान व कैस्पियन सागर के तेल-क्षेत्रों में। लखीमपुर जिले का **डिग्बोई तेल-क्षेत्र** उत्तरी आसाम में स्थित है और २३/४ वर्गमील में विस्तृत है। भारत में यह क्षेत्र सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। इस प्रदेश में डिग्बोई, बधापुंग, और हंसापुंग पर तेल निकाला जाता है। हाल में ही डिगबोई में एक तेल साफ करने का कारखाना स्थापित किया गया है। इस उद्योग में ज्यादा-तर आसाम, पश्चिमी बंगाल, नेपाल और उत्तर प्रदेश के मजदूर काम करते हैं। आसामी मजदूरों की संख्या २२ प्रतिशत है। **सूरमा घाटी** में निम्नकोटि का कुछ तेल बदारपुर, मसीमपुर और पथरिया स्थानों पर निकाला जाता है। बदारपुर में कुछ दिनों से उत्पादन की मात्रा घटती जा रही है।

आसाम के तेल-क्षेत्र रेलों व नदियों द्वारा कलकत्ता से मिले हुए हैं। ये मार्ग पूर्वी पाकिस्तान द्वारा गुजरते हैं। हाल में पश्चिमी बंगाल और आसाम के बीच एक सीधा रेलमार्ग बनाया गया है। आसाम रेलमार्ग डिगबोई के और उत्तर में सदिया तक जाता है। रेल की एक शाखा द्वारा डिगबोई डिब्रूगढ़ से मिला हुआ है। डिब्रूगढ़ नदी का एक बन्दरगाह है। कछार का तेलक्षेत्र आसाम रेलमार्ग की मुख्य लाइन पर स्थित है।

खानिज तेल से विभिन्न वस्तुओं का उत्पादन (१९४८)

पेट्रोल	१५० लाख गैलन
मिट्टी का तेल	४००० टन
डीजल इंजनों का तेल	४००० टन

परन्तु भारत के उपयोग के लिए यह मात्रा बहुत कम रहती है। अतः भारत को विदेशों से खनिज तेल मंगवाना पड़ता है। भारत को खनिज तेल भेजने वाले मुख्य देश ईरान, बहरीन द्वीप समूह, साउदी अरब, संयुक्त राष्ट्र, सुमात्रा और सिंगापुर हैं।

भारत में आयात किये हुए तेल का उपभोग (१९५१)

पेट्रोल	२५५० लाख गैलन
मिट्टी का तेल	२५४० लाख गैलन
जलाने का तेल	३६६० लाख गैलन
चिकना करने का तेल	४९० लाख गैलन

कृत्रिम तेल—भारत में तेल के कम उत्पादन के कारण उद्योग-धंधों के विकास में बाधा नहीं पड़ सकती है क्योंकि भारत में गन्ने और तिलहन से कृत्रिम तेल बनाने की सम्यक् संभावनाएं हैं। भारत के चीनी के कारखानों से प्रतिवर्ष २½ लाख टन शीरा यूं ही फेंक दिया जाता है। इससे उच्चकोटि की स्प्रिट व अलकोहल तैयार किया जा सकता है। खनिज तेल के साथ मिलाकर इसे विविध प्रकार की मोटर गाड़ियों में प्रयोग किया जा सकता है। सन् १९४८ में भारत सरकार ने एक विधान द्वारा अलकोहल स्प्रिट का उद्योग अपने अधिकार में कर लिया और यह निश्चय किया कि २५ प्रतिशत से अधिक मात्रा में यह स्प्रिट न मिलाई जावे। इस समय शक्ति देने वाली अलकोहल स्प्रिट का वार्षिक उत्पादन ४५ लाख गैलन है और विशेषकर उत्तर प्रदेश व बिहार में बनाई जाती है। नासिक में एक नया कारखाना खोला गया जो १० लाख गैलन स्प्रिट प्रतिवर्ष बनायेगा। सन् १९५१ में इस उत्पादन की मात्रा एक सौ लाख गैलन हो जानी चाहिए थी और भविष्य में यह ३०० लाख गैलन तक बढ़ सकती है। भारत में तिलहन से भी जलाने का तेल बनाया जा सकता है।

भारत में कृत्रिम तरीके से कोयले से भी तेल निकाला जा सकता है। भारत सरकार इस विषय की ओर सक्रिय ध्यान दे रही है और एक अमरीकन फर्म इसके बारे में खोज कर रही है।

वैसे भारत में तेल-क्षेत्रों की वृद्धि व नई खोज की बहुत कम संभावना है। इस दिशा में प्रयत्न भी बहुत कम किये गये हैं। फिर भी थोड़ा बहुत तेल भंडार काश्मीर के दक्षिण से नेपाल के उत्तर तक के क्षेत्र में पाया जाने की आशा की जा सकती है। परन्तु इसको निकालना लाभप्रद होगा कि नहीं, कुछ कहा नहीं जा सकता। केवल खोज का खर्च ही बहुत अधिक है। ग्रेट ब्रिटेन के भूगर्भ विशेषज्ञ श्री ईवान्स के अनुसार आसाम प्रदेश के अतिरिक्त भारत के अन्य प्रदेशों में तेल-

भंडार की संभावनाएं बहुत कम हैं। आसाम में ही तेल की खोज में बहुत अधिक धन खर्च हो चुका है और कोई विशेष सफलता नहीं मिली है। अतः अब और खोज में व्यय करना निरर्थक सा मालूम पड़ता है। श्री ईवान्स के अनुसार अगर तेल मिल सकता है, तो केवल आसाम-तिपरह क्षेत्र से और किसी प्रदेश में तेल-भंडार स्थित होने की न तो आशा ही है और न संभावना ही।

भारत सरकार के प्रोत्साहन से खनिज तेल साफ करने की तीन कम्पनियां चालू की जा रही हैं। इनका व्योरा इस प्रकार है—

विदेशी कम्पनी का नाम	भारत में खुलने का स्थान
स्टैन्डर्ड वैक्युअम	बंबई
बर्मा शेल	बंबई
कैल्टेक्स	विशाखापटनम

इन तीनों कम्पनियों में प्रतिवर्ष ३,७१०,००० टन खनिज तेल को साफ किया जा सकेगा जिसे कि १४६, ९०००,००० गैलन गैसोलीन और १२०,३००,००० गैलन मिट्टी का तेल प्राप्त होगा।

सन् १९५२-५३ में भारत ने २४३,४००,०० गैलन पैट्रोल और २६४,८००,००० मिट्टी का तेल आयात किया जिनका मूल्य क्रमशः २५.१७ और २१.६९ करोड़ रुपये था। भारत की इस मांग को देखते हुए इन नई कम्पनियों का महत्व स्पष्ट है।

जल विद्युत (Hydro-Electricity)

देश की उन्नति के लिए सस्ती शक्ति का होना बहुत आवश्यक है। सन् १९४६ में भारत में कुल उत्पादित बिजली की मात्रा १४ लाख किलोवाट थी। इसमें से ४,९४,००० किलोवाट बिजली जल से उत्पन्न की जाती थी।

भारत में जल शक्ति की संभावित उत्पादन मात्रा ४०० लाख किलोवाट है। परन्तु इस समय संभावित शक्ति भंडार का केवल एक प्रतिशत भाग ही उपभोग किया जा रहा है। इससे ही भारत में जल शक्ति के भंडार का अन्दाज लगाया जा सकता है। संसार के विभिन्न देशों में विकसित जल शक्ति और संभावित जल शक्ति का प्रतिशत अनुपात निम्न तालिका से स्पष्ट हो जावेगा।

देश	प्रतिशत	देश	प्रतिशत
रूस	३४	स्वीडन	२७
फ्रांस	३२	नार्वे	५३
जर्मनी	५४	कनाडा	३४
स्विटजरलैंड	६७	संयुक्त राष्ट्र	२४
		भारत	१

अतः भारत में जल विद्युत शक्ति के उत्पादन की संभावनायें बहुत अधिक हैं। पूरा विकास हो जाने पर भारत में संसार के सब देशों की अपेक्षा अधिक जल शक्ति उत्पन्न की जा सकेगी। निम्न तालिका से यह स्थिति स्पष्ट हो जावेगी—

	जल भंडार व उसका उपयोग (दस लाख एकड़ फीट में)
उपस्थित जल राशि	१३३५.९६
जल का वर्तमान उपभोग	७६.६५
(अ) सिंचाई	७३.९२
(आ) जल शक्ति	१.६७
(इ) अन्य उपयोग	०.०६
आयोजित उपयोग	२८१.५३
(अ) सिंचाई	१४३.२५
(आ) जलशक्ति	१५०.५७
(इ) अन्य उपयोग	४२.७
शेष अनुपभुक्त राशि	९९८.७८

जलविद्युत शक्ति की एक विशेषता यह है कि इसमें शक्ति उत्पादक वस्तु का नाश नहीं होता। केवल जल के घनत्व को प्रयोग किया जाता है, जल की मात्रा वैसी ही बनी रहती है। इसके विपरीत यदि हम जलशक्ति का उत्पादन न करें तो इससे न तो कुछ बचत होती है और न कुछ संचय ही। केवल जल की निहित शक्ति बेकार चली जाती है। परन्तु भारत में जलविद्युत के विकास व उत्पादन में कई कठिनाइयां हैं। शक्ति के उत्पादन के लिए जल का प्रवाह व संचय सतत होना चाहिए। परन्तु भारत की वर्षा मौसमी है। इसलिये अधिक व्यय द्वारा निर्माणित जलाशयों का होना अत्यावश्यक है। देश के बहुत से पहाड़ी प्रदेशों में जहां वर्षा की मात्रा बहुत अधिक है, जलाशय निर्माण की सुविधायें पाई जाती हैं। इन्हीं का लाभ उठाकर बम्बई, मद्रास, मैसूर, काश्मीर, उत्तर प्रदेश और पूर्वी पंजाब में जलविद्युत उत्पादन का विशेष विकास हुआ है। पश्चिमी भारत में कोयला बिल्कुल भी नहीं पाया जाता है परन्तु कोयले की यह कमी पश्चिमी घाट की जलविद्युत उत्पादन की सुविधाओं से पूरी हो जाती है।

जल-विद्युत उत्पादन के क्षेत्र—बम्बई के पश्चिमी घाट पहाड़ों में तीन बड़े जल-विद्युत उत्पादन केन्द्र हैं। ये केन्द्र लोनावला, नीलामूला और आंध्र घाटियों में स्थित हैं। साधारणतया पश्चिमी घाट की वर्षा का पानी तेज बहने वाली नदियों के द्वारा बंगाल की खाड़ी की ओर बह जाता है। पूर्व वाहिनी यह नदियां दो सौ से ५ सौ फीट की उंचाई के बीच सैकड़ों मील नीचे गिरती हैं। चतुर इंजिनियरों की सहायता से यह पानी पूर्व से पश्चिम की ओर लाया जाता है और फिर बड़े-बड़े जलाशयों में इकट्ठा किया जाता है। बाद में इसे ऊंचाई से नीचे की ओर गिराकर शक्ति तैयार करते हैं। "टाटा जल-विद्युत व्यवस्था" का यही भेद है।

लोनावला का जल-शक्ति केन्द्र भोरघाट के शिखर पर स्थित है और यहां पर वर्षा का जल लोनावला, वलपों और शिरापटा नामक तीन झीलों में इकट्ठा किया जाता है। जलाशयों से पाइप के द्वारा इस पानी को पहाड़ की तलैटी में स्थित खोपोली स्थान पर गिराते

हैं, जहां इससे शक्ति तैयार की जाती है । **"आंध्र घाटी बिजली कम्पनी"** आंध्र नदी पर बसे हुए शिवपुरी स्थान में स्थित है । यहां पर नदी के बीच बांध बनाकर पानी इकट्ठा कर लिया गया है । बम्बई के दक्षिण पूर्व में नीलामूला नदी से सन् १९२७ में बिजली उत्पादन का काम शुरू किया गया और इसका कार्यालय भीरा में स्थित है । इन तीनों योजनाओं की उन्नति व विकास का श्रेय बम्बई की टाटा कम्पनी को है । इन तीनों केन्द्रों से उत्पन्न बिजली बम्बई, थाना, कल्यान और पूना में रोशनी, उद्योग धंधों, यातायात तथा अन्य बहुत से घरेलू कामों में उपयोग की जाती है ।

पिछले कुछ दिनों में दक्षिण भारत के विभिन्न स्थानों पर जल विद्युत उत्पादन करने का प्रबन्ध किया गया है । इस समय सब मिलाकर दक्षिण भारत में २,३०,००० किलोवाट बिजली तैयार की जाती है यद्यपि २० लाख किलोवाट बिजली और तैयार हो सकती है । मद्रास में इसका आधा भाग उत्पन्न किया जाता है और शेष आधा भाग मैसूर, ट्रावनकोर व कोचीन में । इस शक्ति की सहायता से दक्षिणी भारत के कुओं से सिंचाई के लिये जल निकाला जाता है । इस समय दक्षिण भारत में कुल १५००० बिजली के पम्पदार कुयें हैं जिनसे १ लाख एकड़ भूमि को सींचा जाता है । उत्पादित शक्ति का १० प्रतिशत भाग दक्षिण भारत के गांवों में प्रयोग किया जाता है । मद्रास, ट्रावनकोर, मैसूर और कोचीन में अल्युमिनियम, सूती वस्त्र, मशीनों के पुर्जे, खाद और बिजली व रासायिनक उद्योगों के कारखानों में इसी शक्ति का उपभोग किया जाता है । भविष्य में दक्षिण भारत की रेलों में विद्युत के प्रयोग से करीब १० लाख टन कोयले की बचत हो सकेगी और दक्षिण भारत की रेलों को कोयले के लिए उत्तरी भारत पर निर्भर नहीं रहना पड़ेगा ।

भारत की सबसे पहली जलविद्युत योजना **मैसूर** में कावेरी नदी पर बनाई गई । इसका उद्देश्य कोलार के सुवर्ण क्षेत्रों को सस्ती शक्ति प्रदान करना था । इसका शक्ति-उत्पादन केन्द्र शिव समुद्रम् में स्थित है और कोलार की सुवर्ण की खानों से ९२ मील दूर है । इस समय इसकी सहायता से कोलार प्रदेश के अलावा बंगलौर तथा २०० अन्य नगरों को बिजली पहुंचाई जाती है ।

ट्रावनकोर में जल विद्युत उत्पादन का एक केन्द्र पल्लिवसाल में स्थित है और करीब २२,५०० किलोवाट बिजली उत्पन्न करता है ।

मद्रास में जलशक्ति उत्पादन के तीन केन्द्र—**पाईकारा, मैटूर और पापनाशम** में स्थित हैं । **पाइकारा जलविद्युत योजना** सन् १९३२ में शुरू की गई । नीलगिरि जिले की पाइकारा नदी के जल से बिजली पैदा की जाती है । कोयम्बटूर, इरोड, त्रिचनापली, नगापट्टम, मटूरा और विरुथनगर इस जलशक्ति का उपभोग करते हैं ।

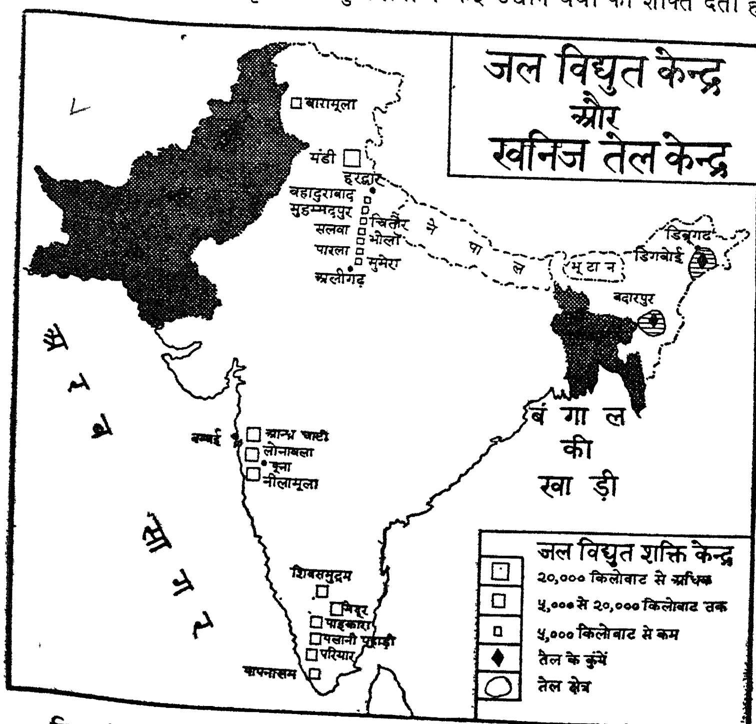
मेटूर जलविद्युत योजना कावेरी पर मेटूर बांध के बिल्कुल नीचे स्थित है । मेटूर बांध संसार के बड़े बांधों में से एक है और प्रधानतः सिंचाई के लिए बनाया गया था । सिंचाई के लिए निश्चित पानी के कुछ अंश से जलविद्युत भी तैयार की जाती है । इससे सलेम, त्रिचनापली, तंजोर, उत्तरी आरकाट, दक्षिणी आरकाट, और चित्तूर को शक्ति प्रदान की जाती है । मैटूर जलविद्युत केन्द्र को इरोड में स्थित पाइकारा केन्द्र से मिला दिया

गया है ।

मद्रास में पश्चिमी घाट के तल में टिनीवली जिले के पापनाशम के ऊपर **ताम्ब्रपानी** नदी पर भी जलविद्युत उत्पन्न करने का केन्द्र है। इस केन्द्र से टिनीवली, कोयलपट्टी, मदुरा, तेनकासी और राजपलायम को बिजली पहुंचाई जाती है । वास्तव में गांवों में बिजली पहुंचाने के लिये मद्रास का स्थान सर्वप्रथम है । इस राज्य के लगभग १५०० गांवों को बिजली की सुविधा प्राप्त है । इसके अलावा सूती कपड़ों की मिलों, सीमेंट, इस्पात, अल्यूमिनियम, कागज व रेल के कारखानों में भी जलविद्युत शक्ति का प्रयोग होता है ।

उत्तरी भारत में भी कई योजनाओं पर काम हुआ है विशेषकर काश्मीर, पूर्वी-पंजाब और उत्तर प्रदेश में । यहां जलविद्युत के साधनों से बिजली उत्पन्न की जाती है । **काश्मीर में श्रीनगर से** ३४ मील दूर बारामूला में जलविद्युत उत्पादन का केन्द्र है । यहां पर झेलम नदी के पानी से बिजली तैयार की जाती है ।

पूर्वी पंजाब की **उहल नदी** से ५०,००० किलोवाट बिजली तैयार को जाती है और पूर्वी पंजाब की रेल तथा अमृतसर व लुधियाना के कई उद्योग धंधों को शक्ति देती है ।



चित्र नं० ४९—भारत में जल विद्युत व खनिज तेल का वितरण । दक्षिणी भारत के पश्चिमी भाग में जल विद्युत उत्पादन केन्द्रों की स्थिति ध्यान देने योग्य है ।

उहल मंडी राज्य की एक छोटी नदी है, परन्तु इससे उत्पन्न विजली से गुरदासपुर और फिरोजपुर के बीच के नगरों तथा शिमला, अम्बाला, पटियाला और गुजरानवाला इत्यादि को रोशनी प्राप्त होती है। निकट भविष्य में इस योजना के विकास से सहारनपुर, मेरठ, दिल्ली तथा करनाल, पानीपत व रोहतक के जिलों को बिजली मिल सकेगी। इस योजना से पंजाब को ३ लाभ होंगे—(१) पंजाब के नगरों में बिजली की रोशनी का प्रबन्ध हो जावेगा (२) विभिन्न उद्योग-धंधों को सस्ती औद्योगिक शक्ति मिलेगी और (३) पानी को इकट्ठा होने से रोक कर तथा सिंचाई के लिये अधिक पानी प्रदान कर खेती के धंधे को सहायता दी जावेगी।

हाल में उत्तरी गंगा प्रदेश में कई जलविद्युत उत्पादक योजनायें चालू की गई हैं। इनसे **उत्तर प्रदेश** की कृषि व उद्योग-धंधों को लाभ पहुंचेगा। गंगा की नहर में हरिद्वार से मेरठ तक १२ जल-प्रपात पाये जाते हैं। इनकी ऊंचाई १० से १५ फिट तक है। सन् १९२६ में प्रान्तीय सरकार ने इन से बिजली उत्पन्न करने की एक योजना बनाई थी और आज कल जल से विद्युत उत्पन्न करने के सात कारखाने निम्नलिखित सात स्थानों पर स्थित हैं—बहादुराबाद, मोहम्मदपुर, चितौरा, सलावा, मोला, पालरा और सुमेरा। इन सात केन्द्रों से उत्पन्न बिजली गंगा की ऊपरी तलैटी के १४ जिलों को तारों द्वारा भेजी जाती है और इसकी सहायता से यन्त्र संचालित कुंए व उद्योग-धंधे चलाये जाते हैं तथा रोशनी का प्रबन्ध होता है। उत्तर प्रदेश के बनबासा स्थान पर स्थित **सरदार जलविद्युत केन्द्र** की विकास योजना का भविष्य बड़ा उज्ज्वल है। इसके पूरा होने पर ७०० इकाई बिजली उत्पन्न की जा सकेगी।

इसके अलावा विभिन्न बहुधंधा योजनाओं के पूरा होने पर ९० लाख किलोवाट और जलविद्युत देश के भिन्न-भिन्न भागों को प्राप्त हो सकेगी।

प्रश्नावली

१. निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणियां लिखिये:—
   (अ) भारत में जलविद्युत शक्ति का विकास।
   (आ) अभ्रक को खानों से प्राप्त करने का उद्यम।
२. भारत में लोहा कहां-कहां पाया जाता है और इसके वितरण का क्या कारण है? आजकल इस खनिज का क्या उपभोग है और भारत में इसके विकास की क्या संभावनाएं हैं?
३. भारत के किन प्रदेशों में चूने के पत्थर की चट्टानें पायी जाती हैं? इनका व्यापारिक महत्व क्या है और भारत में इनका किस प्रकार उपयोग किया जाता है?
४. भारत में पत्थर के कोयले की सम्पत्ति का पूर्ण विवरण दीजिये। इस कोयले के मुख्य दोष क्या हैं?
५. भारत संघ में अभ्रक खान से कहां निकाला जाता है? अभ्रक उत्पादन के विषय में भारत संघ की भूमंडल के अन्य देशों से तुलना कीजिए।

६. जलविद्युत शक्ति के उत्पादन के लिये कौन सी दशाओं का होना जरूरी है ? भारत में इस शक्ति का कैसा विकास हुआ है और भविष्य में क्या संभावनाएं हैं ?

७. भारत के उद्योग-धंधों के लिये जलविद्युत, कोयला व खनिज तेल की शक्ति का आपेक्षिक महत्त्व बतलाइये ।

८. भारत में टीन, खनिज तेल, मैंगनीज व अभ्रक के उत्पादन के स्रोत पर एक संक्षिप्त लेख लिखिये और इनमें होने वाले अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का विवरण दीजिये ।

९. भारत के विभिन्न जलविद्युत उत्पादन केन्द्रों का विवरण दीजिये और प्रत्येक का औद्योगिक महत्व व उपयोग बतलाइए ।

१०. भारत में कोयले की मुख्य खानें कहां पाई जाती हैं ? इनमें कौन सी खानों में सबसे अच्छा कोयला प्राप्त होता है ? भारतीय कोयला औद्योगिक उपभोग के लिये कहां तक उपयुक्त है ?

११. भारत के एक मानचित्र पर उन स्थानों को दिखलाइये जहां जल शक्ति का पानी सिंचाई के लिये प्रयोग किया जाता है ? इन स्थानों पर कौन से शिल्प उद्योग स्थापित किये जा सकते हैं ?

१२. भारत के किन क्षेत्रों में निम्नलिखित पदार्थ खानों से निकाले जाते हैं—मैंगनीज, तांबा, अभ्रक और नमक । प्रत्येक का व्यापारिक उपभोग भी बतलाइये ।

१३. भारत के अधिकतर जलविद्युत उत्पादक केन्द्र दक्षिणी भारत में स्थित हैं । इसका क्या कारण है ? जलविद्युत के विकास के लिये किन भौगोलिक दशाओं का होना आवश्यक है ।

१४. भारत के खनिज भंडार का विवरण दीजिये और बतलाइये कि इस समय उनका क्या उपयोग हो रहा है ?

अध्याय : : नौ

प्रमुख उद्योग-धन्धे

पिछले कुछ सालों में भारत में कई उद्योग-धन्धे स्थापित हो गए हैं। भारत के विभिन्न उद्योगों का आपेक्षिक महत्व उनमें लगे हुए मजदूरों की संख्या के अनुसार निश्चित होता है। सन् १९५१ में विभिन्न उद्योग-धंधों में कोई ४० लाख मजदूर काम करते थे।

भारत में उद्योग-धन्धों का वितरण (१९४७)

उद्योग	कारखानों की संख्या	उद्योग	कारखानों की संख्या
सूती वस्त्र	३९३	शीशा	७७
पटसन	१०६	रासायनिक	३५
चीनी	१४२	कागज	१०६
लोहा व इस्पात	१३	दियासलाई	१०७
सीमेंट	१३	ऊनी कपड़ा	२२
साबुन	१६	रेशमी वस्त्र	९०
		कुल योग	१,०३०

भारत में उद्योग-धंधों का वितरण बड़ा ही विषम है। देश के प्रमुख औद्योगिक प्रदेश निम्नलिखित हैं—

(१) **हुगली घाटी**—देश के पटसन के सभी कारखाने यहीं स्थित हैं। कुल मिलाकर देश के एक-तिहाई कारखाने यहीं केन्द्रित हैं।

(२) **बम्बई सूती व्यवसाय केन्द्र**—इस प्रदेश के मुख्य केन्द्र बम्बई, अहमदाबाद और शोलापुर हैं।

(३) **छोटा नागपुर प्रदेश**—इसका मुख्य केन्द्र जमशेदपुर है और लोहा व इस्पात उद्योग इसी प्रदेश में केन्द्रित हैं।

(४) **मद्रास और मैसूर का नीलगिरि क्षेत्र**—सूती वस्त्र व्यवसाय के लिये यह प्रदेश विशेष रूप से उल्लेखनीय है

प्रायः ऐसा देखा जाता है कि कुछ विशेष उद्योग-धंधे कुछ खास स्थानों या प्रदेशों में केन्द्रित हो जाते हैं। यह बात सूती वस्त्र, पटसन, चीनी, कागज, दियासलाई, ऊन, रेशम, चमड़ा और इस्पात के उद्योग के विषय में खास तौर पर लागू होती है। परन्तु केन्द्रीकरण या स्थानीकरण की यह नीति अब अच्छी नहीं समझी जाती। वर्तमान विशेषज्ञों का विचार है कि विभिन्न प्रदेशों में जनसंख्या के वितरण के अनुसार ही उद्योग-धन्धों का स्थानीकरण होना चाहिए। विकेन्द्रीकरण की नीति एक और कारण से भी आवश्यक है। वह यह कि सभी राज्यों को औद्योगिक प्रगति के लिये पूरा मौका मिलना चाहिए। सूती वस्त्र व्यवसाय में ही बम्बई, दिल्ली, बड़ौदा, मैसूर, अजमेर व मध्य भारत में वहां की जनसंख्या की मांग से

कहीं अधिक कपड़ा तैयार होता है जबकि आसाम, उड़ीसा, आंध्र और पूर्वी उत्तर प्रदेश में कपड़े का उद्योग बहुत कम विकसित हुआ है। इसी तरह पश्चिमी बंगाल और उत्तर प्रदेश में सूती कपड़े की और मिलें खोली जानी चाहियें क्योंकि वहां के घरेलू उपभोग के लिये बाहर से बहुत कपड़ा मंगवाना पड़ता है। इसी आधार पर अन्य राज्यों की जनसंख्या के अनुसार सूती कपड़े की नई मिलें खोली जानी चाहियें।

भारत के इस्पात, रेशम, चीनी, दियासलाई और कागज के उद्योगों में भी विकेन्द्रीकरण का काफी क्षेत्र है। परन्तु पटसन और ऊनी वस्त्र व्यवसाय को अभी कुछ समय तक सुविधाजनक स्थानों में केन्द्रीभूत रखना ही पड़ेगा।

भारत के प्रमुख उद्योग-धन्धों पर भारतीय व यूरोपियन दोनों ही प्रकार के मालिकों का आधिपत्य है। भारत के शिल्प उद्योगों में विदेशी पूंजीपतियों ने ९० करोड़ से अधिक रुपया लगाया हुआ है। बंगाल की पटसन मिलें, आसाम के चाय के बगीचे, सोने व कोयले की खानें, यन्त्र-निर्माण कारखाने और कानपुर के ऊनी वस्त्र व चमड़े के कारखाने प्रधानतः यूरोपियनों के अधिकार में हैं। भारत के पूंजीपति उद्योग-धन्धों में धन लगाने से हिचकते हैं या उचित मात्रा में पूंजी नहीं लगाते। इसलिये देश के औद्योगिक विकास में रोक पड़ती है और देश में विदेशी पूंजी के लिए अवसर मिलता है। भारत में विदेशी पूंजी के होने का यही कारण है। इसके अलावा देश में भारी मशीनों व विशेषज्ञों की कमी है। इनके लिये हमें विदेशी राष्ट्रों की सहायता पर ही निर्भर रहना पड़ेगा। पिछले कुछ सालों से देशी पूंजीपति नये उद्योगों में रुपया लगाने की हिम्मत करने लगे हैं और उनकी इस प्रवृत्ति के फलस्वरूप भारत के सूती वस्त्र, इस्पात, चीनी, सीमेंट और अन्य छोटे-छोटे उद्योग-धन्धों की काफी उन्नति हुई है। भारत के विभिन्न स्थानों में उच्च औद्योगिक शिक्षा के केन्द्र खोले जा रहे हैं। इनसे निकट भविष्य में भारतीय उद्योग-धन्धों को विशेषज्ञ मिल सकेंगे और विदेशी राष्ट्रों पर निर्भरता कम हो जावेगी।

भारत के उद्योग-धन्धों पर दृष्टि डालने से एक विशेषता दिखलाई पड़ती है। भारत के सब उद्योग-धन्धों में सूती वस्त्र व्यवसाय ने विशेष उन्नति की है और दूसरी ओर रासायनिक व कागज उद्योग बहुत ही पिछड़े हुए हैं।

सूती वस्त्र उद्योग

संसार के सूती वस्त्र व्यावसायिक देशों में भारत का बड़ा प्रमुख स्थान है। सूती कपड़े के उत्पादन के दृष्टिकोण से इसका संसार में दूसरा स्थान है और मजदूरों की संख्या के अनुसार इसका संसार के सूती वस्त्र उत्पादक देशों में तीसरा नम्बर है। वास्तव में देश का सूती वस्त्र उद्योग भारत के औद्योगिक विकास का चिन्ह है और इसके द्वारा हमें यह पता चलता है कि देश में औद्योगीकरण की कितनी विस्तृत संभावनाएं हैं।

सूती कपड़े की सबसे पहली मिल सन् १८२२ में हुगली नदी पर स्थित गूसरी स्थान पर बनाई गई। परन्तु सन् १८५३ तक इस उद्योग ने कोई विशेष प्रगति नहीं की। सन् १८५४ में बम्बई प्रांत की पहली सूती मिल का उद्घाटन हुआ और तभी से यह उद्योग उत्तरोत्तर उन्नति करता जा रहा है। सन् १९५० के अन्त के आंकड़ों के अनुसार भारत

में कुल मिलाकर ५१७ चालू मिलें हैं और इनमें करीब ५ लाख ३८ हजार मनुष्य लगे हुए हैं। भारत में सूती वस्त्र उद्योग का विकास बड़ी विलक्षण व द्रुत गति से हुआ है। सन् १९१२ में सारे विश्व में तकवों की संख्या १४१० लाख थी जिन में से ६० लाख तकवे भारत में थे परन्तु अब संसार के १२९० लाख तकवों में से भारत के पास १२० लाख तकवे हैं। यह निम्न तालिका से स्पष्ट हो जायेगा।

भारत में सूती वस्त्र उद्योग की प्रगति व विकास

साल	मिलों की संख्या	करघे (हजार में)	तकवे (हजार में)	सूत का उत्पादन (लाख पौंड)	कपड़े का उत्पादन (लाख पौंड)
१९४७-४८	४०८	१९७	९७६४	१३,२९०	३७,७००
१९४८-४९	४१६	१९७	१०१४५	१४,७६०	४२,९८०
१९४९-५०	४२०	१९८	१०३६६	१३,०३०	३८,३१०
१९५०-५१	४२०	१९४	१०९९९	११,९७०	३७,१८०

सूती कपड़े उद्योग के विकास को निम्नलिखित ५ स्थितियों या दशाओं में बांट सकते हैं—

(१) सन् १९१४ तक जब इसके प्रथम चरण कुछ स्थायी हुए।

(२) सन् १९१४ से १९२६ तक इस उद्योग के उत्पादन ने काफी वृद्धि की परन्तु फौरन बाद में ही विदेशी स्पर्धा के कारण इसे सरकार से संरक्षण मांगना पड़ा।

(३) तीसरी सीढ़ी सन् १९२७ से सन् १९३९ तक रही। इस काल में इस उद्योग को अनेकों बार उन्नति व अवनति का मुंह देखना पड़ा।

(४) चौथी सीढ़ी दूसरे महायुद्ध काल को कह सकते हैं। सन् १९३९ से सन् १९४७ तक इस उद्योग की दशा बड़ी ही समृद्ध रही।

(५) इसके विकास की पांचवीं और अन्तिम सीढ़ी देश के विभाजन के बाद से शुरू होती है। सन् १९४७ में देश का बंटवारा हुआ और उसके बाद से ही इस के सामने कच्चे माल की कमी की समस्या बनी रही। परन्तु इसी दौरान में यह देश का सबसे बड़ा निर्यातक उद्योग बन गया।

इस के प्रथम चरण में तो सूती मिल उद्योग ने आयात किये हुए सूती कपड़े या करघे से तैयार किये हुए कपड़े से स्पर्धा करने की कदापि भी कोशिश नहीं की परन्तु दूसरे चरण में प्रवेश करते ही इस उद्योग ने बहुत उन्नति की और युद्ध-काल में आयात के बन्द हो जाने तथा सैनिक जरूरत को पूरा करने के लिए अधिकतम उत्पादन किया गया।

तीसरी स्थिति में इस उद्योग को जापान से स्पर्धा करने के साथ-साथ ही स्वदेशी आन्दोलन से बड़ा प्रोत्साहन मिला और मिलों की संख्या जो सन् १९२४-२५ में केवल २७५ थी सन् १९३८-३९ में ३८९ हो गई और कुल मिलाकर १०० लाख तकवों तथा २ लाख करघों पर काम होने लगा।

इसी समय दूसरा महायुद्ध छिड़ गया जिससे मांग में एकाएक वृद्धि हो गई। मांग में बढ़ती का कारण सैनिक व असैनिक उपभोग की वृद्धि के साथ-साथ मुद्रा

प्रसार भी था। साथ-साथ आयात बिल्कुल ही बन्द हो गये। इसलिये भारतीय उद्योग को विदेशी मंडियों से संपर्क स्थापित करने का भी मौका मिल गया। सन् १९४४ में ४८५०० लाख गज़ कपड़ा तैयार किया गया और ४४-४५ में कपड़े का आयात तो केवल ५० लाख गज हुआ परन्तु निर्यात की मात्रा ४९७० लाख गज हो गई।

सन् १९४७ में पाकिस्तान बन जाने से भारतीय सूती उद्योग की खपत की एक बहुत बड़ी मंडी निकल गई और साथ-साथ लम्बे मेल की कच्ची कपास के लिए भी इसे बाहर के देशों पर निर्भर होना पड़ा। सन् १९५० में मजदूरों की हड़ताल से २०००लाख गज कम कपड़ा तैयार हुआ और फलत: सन् १९५१ में कपड़े की तंगी हो गई परन्तु अब हालत बहुत सुधर गई है। सन् १९५३ में देश की मिलों ने ४९००० लाख गज़ कपड़ा तैयार किया।

सूती वस्त्र उद्योग के केन्द्र—इस समय सूती वस्त्र उत्पादन के देश में चार मुख्य केन्द्र हैं—बम्बई, पश्चिमी बंगाल, मद्रास और उत्तर प्रदेश।

भारत में सूती मिलों का भौगोलिक वितरण १९४६

राज्य	मिलों की संख्या	राज्य	मिलों की संख्या
बम्बई	१९८	ग्वालियर	८
मद्रास	४७	राजस्थान	१०
उत्तर प्रदेश	२६	हैदराबाद	६
पश्चिमी बंगाल	४०	अजमेर-मारवाड़ा	४
मध्य प्रदेश	८	बेरार	४
पूर्वी पंजाब	४	मैसूर	६
दिल्ली	४	पांडीचरी	३
इन्दोर	७	ट्रावनकोर-कोचीन	३

भारत की मिलों में तैयार किये हुए सूतो माल में सूत और बुने हुए कपड़ों का अंश अधिक रहता है। भारत में मिल के बने हुए कपड़े की मांग का ८० प्रतिशत भाग इन्हीं बुने हुए कपड़ों द्वारा पूरा होता है। बुने हुए कपड़े में कोरे व धुले हुए कटपीस, रंगीन कटपीस, मोजा, बनियान, रेशम, ऊन आदि मिला कर बनाये गये सूती कपड़ों का स्थान प्रमुख है।

बम्बई में कुल मिलाकर १९८ मिलें हैं। बम्बई द्वीप और अहमदाबाद में अलग २ ७० मिलें हैं। उत्पादन की मात्रा व मूल्य के दृष्टिकोण से बम्बई नगर का स्थान सर्व-प्रथम है और उसके बाद अहमदाबाद का स्थान आता है। बम्बई राज्य में सूती वस्त्र का तीसरा केन्द्र शोलापुर है और इसके बाद पूना, सूरत, बड़ौच, हुगली, बेलगांव और जलगांव का स्थान क्रमश: आता है।

बम्बई के नगर व द्वीप में सूती मिलों का स्थानीयकरण प्राकृतिक सुविधाओं के कारण ही नहीं है। बम्बई के इस प्रदेश में पूंजी व मुद्रा की सुविधा है। इसीलिए यहां पर सूती वस्त्र उद्योग बहुत तरक्की कर गया है। इसके अलावा बम्बई के बन्दरगाह व रेलों-सड़कों के केन्द्र होने से यातायात की बड़ी सुविधा है। यहां की जलवायु इतनी उत्तम है कि महीन धागा जल्दी नहीं टूटता और महीन कपड़ा आसानी से तैयार किया जा सकता है। बम्बई की अपेक्षा अहमदाबाद का कपड़ा अधिक अच्छा होता है और कच्ची कपास उगाने वाले खानदेश, बरार और वार्धा के क्षेत्र बम्बई की अपेक्षा अहमदाबाद के समीप

पड़ते हैं। शुरू २ में जब बम्बई में सूती कपड़े की मिलें स्थापित की गई उस समय इस प्रदेश में जल-विद्युत की सुविधा भी नहीं थी और इसलिए बंगाल के कोयले पर निर्भर रहना पड़ता था। इन मिलों में काम करने के लिए मजदूर आसपास के कोनकन, सतारा और शोलापुर जिलों से आते हैं। दक्षिण भारत और उत्तर प्रदेश से भी काम करने के लिए मजदूर यहां आते हैं।

इन त्रुटियों के होते हुए भी बम्बई सूती वस्त्र निर्माण का केन्द्र हो गया है। अतः स्पष्ट है कि बम्बई में जरूर ही कुछ विशेष सुविधाएं हैं जिनका गुरुत्व इन दोषों से भी कहीं अधिक है। बम्बई में प्राकृतिक पोताश्रय हैं और बैंकों के होने से पूंजी व मुद्रा की सुविधा है। यूरोप से निकट होने के कारण यहां पर ग्रेट ब्रिटेन, जर्मनी और संयुक्त राष्ट्र से मशीनों का आयात किया जा सकता है। देश की और बम्बई प्रदेश की कच्ची कपास विक्रय व निर्यात के लिए बम्बई नगर में आती है। इस प्रकार उद्योग के लिये कच्चा माल मंगाने में भी कुछ विशेष प्रयत्न नहीं करना पड़ता है। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि बम्बई में मैनचेस्टर की सूती व्यवसाय विशिष्टता और लिवरपूल की व्यापारिक व आयात-निर्यात सुविधाओं का सामंजस्य तथा समन्वय पाया जाता है। इसी कारण यहां पर कुछ दोषों के होते हुए भी सूती वस्त्र उद्योग इतनी उन्नति कर गया है कि इस समय बम्बई का स्थान सर्वप्रथम है।

बम्बई नगर की मिलों द्वारा बनाया हुआ सूती कपड़ा हल्की महीन बुनाई का होता है परन्तु मध्यम श्रेणी के सूत से तैयार किया जाता है। पिछले कुछ दिनों से यहां पर महीन सूत का कपड़ा बनने लगा है। यहां के कुल उत्पादन का ५० प्रतिशत कपड़ा लट्ठा, कमीज व चद्दरों का कपड़ा, टी क्लाथ, गद्दे का कपड़ा व अन्य घरेलू उपभोग के लिये होता है। शेष आधे भाग में धोतियां व रंगीन कपड़े बनाये जाते हैं।

अहमदाबाद की पहली सूती मिल सन् १८५९ में स्थापित की गई। सन् १९२९ से इस उद्योग ने बहुत उन्नति की है। सन् १९४४ में अहमदाबाद में ७० मिलें थीं और उनमें १,३०,००० मजदूर काम करते थे। यहां की मिलों में मजदूर बड़ौदा, गुजरात और अहमदाबाद जिले से आते हैं। इन स्थानों से ६० प्रतिशत मजदूर आते हैं। लगभग १२ प्रतिशत मजदूर राजस्थान से आते हैं। अहमदाबाद की मिलों में कोरा या धुला हुआ, रंगीन बुना हुआ या छपा हुआ सभी प्रकार का कपड़ा बनाया जाता है और देश की मांग के अधिकतर भाग की पूर्ति यहीं से होती है। यहां की मिलों का वार्षिक उत्पादन १०,००० लाख गज है। यहां धोतियां व जनानी साड़ियां भी बनाई जाती हैं।

पश्चिमी बंगाल—पिछले १० वर्षों में पश्चिमी बंगाल के सूती कपड़ा उद्योग ने विशेष उन्नति की है। इस समय घरेलू उपभोग व प्रान्तीय मांग-पूर्ति के लिये धोतियां और कोरा व धुला हुआ कपड़ा बनाया जाता है। पश्चिमी बंगाल की मिलों की कुल संख्या ४० है और कई अन्य मिलें बनाई जा रही हैं। सूती वस्त्र उद्योग की ये सभी मिलें चौबीस परगना, हावड़ा और हुगली जिलों में केन्द्रित हैं। वास्तव में हुगली नदी के बेसिन में कलकत्ते से ३२ मील की परिधि में बंगाल का सूती वस्त्र व्यवसाय केन्द्रित है। इस प्रदेश में इस उद्योग के

उपयुक्त बहुत सी प्राकृतिक परिस्थितियां वर्त्तमान हैं । यहां पर रेलों व जलमार्गों का एक जाल-सा बिछा हुआ है । कलकत्ता बन्दरगाह मशीनों का आयात करके और कच्ची कपास को एकत्रित करके यातायात के इन साधनों की सहायता से विभिन्न केन्द्रों को वितरण कर देता है । झरिया व रानीगंज के कोयला क्षेत्र भी इस प्रदेश के सन्निकट हैं । इसके अलावा कलकत्ता में पूंजी, मुद्रा व बैंक सम्बन्धी सभी सुविधाएं मिल जाती हैं । आसपास के प्रदेशों से मजदूर भी आ जाते हैं । इन्हीं सब सुविधाओं के कारण कलकत्ता के इर्दगिर्द सोदपुर, सीरामपुर, पानीहटी, शामनगर, मौरीग्राम, बेलगुराह, पाल्टा, फुलेश्वर, सल्किया और घूसरी आदि स्थानों में कपड़े की मिलें स्थापित हो गई हैं । ये सभी केन्द्र हावड़ा व चौबीस परगना जिलों में हैं ।

पश्चिमी बंगाल के सूती वस्त्र उद्योग का भविष्य बड़ा उज्ज्वल है । यह प्रदेश सब से अधिक कपड़ा उपभोग करता है और यहां की बढ़ती हुई मांग की पूर्ति यहां की मिलें नहीं कर पातीं । इसलिए बंगाल की मिलों में विस्तार का विशेष क्षेत्र है । इसके अलावा आसाम, बिहार और उड़ीसा के निकटवर्त्ती प्रदेश भी पश्चिमी बंगाल की मिलों के कपड़े पर निर्भर रहते हैं । अतः उत्पादन में वृद्धि होने से इन प्रदेशों में माल की खपत हो सकेगी । चूंकि बंगाल प्रदेश में कई नदियों का प्रवाह है इसलिए यहां का वातावरण भी बड़ा नम है जो कि सूती वस्त्र उद्योग के लिये बड़ा ही उत्तम रहता है ।

बंगाल की नम व तर जलवायु भी इस दृष्टिकोण से विशेष महत्वपूर्ण है । सूती वस्त्र उद्योग को नम वातावरण चाहिये अथवा धागा टूट जाता है । इसलिये पश्चिमी बंगाल में यह प्राकृतिक सुविधा विशेष रूप से लाभप्रद है । यद्यपि बम्बई व अहमदाबाद से बढ़ कर तो नहीं कहा जा सकता परन्तु दिल्ली व कानपुर की अपेक्षा यहां प्राकृतिक वातावरण के कारण अधिक उन्नति होने की संभावना है । दिल्ली व कानपुर के उष्ण वातावरण में सूती वस्त्र उद्योग को चलाने के लिये मिलों के अन्दर कृत्रिम उपायों से नम वातावरण उत्पन्न करना पड़ता है । मजदूरों के दृष्टिकोण से भी बंगाल को एक विशेष सुविधा है कि साधारण बंगाली मजदूर अधिक चतुर होता है यद्यपि शारीरिक बल के दृष्टिकोण से वह अन्य प्रान्तों के लोगों की अपेक्षा कमजोर रहता है । परन्तु सूती कपड़ा मिलों में शारीरिक बल की अधिक आवश्यकता नहीं होती । उसमें तो केवल अंगुलियों की चपलता तथा स्पर्श-कुशलता की आवश्यकता होती है और ये दोनों ही गुण बराबर प्रयोग से आ जाते हैं ।

बंगाल में केवल एक असुविधा है—कच्चा माल सरलता से पास में उपलब्ध नहीं है । कच्ची कपास उगाने वाले क्षेत्रों से वह बहुत दूर पड़ता है । लेकिन कच्चे माल के लिये दिये गये अधिक मूल्य का कोयले व यातायात में की गई बचत के साथ संतुलन हो जायेगा । इस प्रकार यह दोष नगण्य-सा है ।

उत्तर प्रदेश—सूती वस्त्र निर्माण का तीसरा प्रमुख क्षेत्र है । कोयले क्षेत्रों से यह बहुत दूर है यही इसका मुख्य दोष है परन्तु इसके सामने सुविधाएं बहुत अधिक हैं । यहां की स्थानीय मांग बहुत अधिक है, यातायात के साधनों की सभी सुविधा है और सस्ते व कुशल मजदूर बहुतायत में उपलब्ध हैं । सूती वस्त्र उद्योग गंगा के किनारे बसे हुए नगरों

में केन्द्रित हैं। **कानपुर** इनमें सब से प्रधान है। कानपुर की पहली सूती कपड़ा मिल सन् १८६१ में खोली गई परन्तु सन् १९३५ तक इस उद्योग में कोई विशेष प्रगति नहीं हुई। अब शहर में १७ सूती मिलें हैं। आसपास के खेतिहर प्रदेशों से इन मिलों में काम करने के लिये काफी मजदूर मिल जाते हैं। उत्तर प्रदेश के सूती वस्त्र उद्योग की मुख्य वस्तुएं सूत, कोरा व धुला हुआ कपड़ा, दरियां और मोजा बनियान हैं। प्रतिवर्ष २३०० लाख गज कपड़ा तैयार होता है और इसमें से ९५ प्र. श. कोरी व धुली हुई मारकीन होती है। इधर सूती दरियां व गलीचे काफी प्रमुख होते जा रहे हैं। दरियों व गलीचों को बनाने के मुख्य केन्द्र बरेली, अलीगढ़, आगरा, मुरादाबाद और इटावा हैं। कानपुर में तम्बू-कनात का कपड़ा व दुसूती कपड़ा बनता है।

दक्षिणी भारत—पिछले कुछ दिनों में दक्षिणी भारत के सूती वस्त्र उद्योग ने आश्चर्यजनक उन्नति की है। दक्षिणी भारत में कुछ विशेष भौगोलिक सुविधाएं हैं। उच्च-कोटि की कच्ची कपास आसानी से उपलब्ध है और विभिन्न जल-विद्युत योजनाओं के फल-स्वरूप जल-शक्ति की भी सुविधा है। फलतः कोयम्बटूर, मदुरा ओर टिनीवली में सूती वस्त्र उद्योग के कारखाने पाये जाते हैं। सूती मिलों का वितरण इस प्रकार है—

कोयम्बटूर—३१ मिलें, मदूरा—१० मिलें, सलेम—४ मिलें, टिनीवली—४ मिलें, मालाबार—५ मिलें। इसके अलावा मद्रास, गुंटूर, बेलारी तथा पूर्वी गोदावरी में भी सूती वस्त्र उद्योग के अन्य केन्द्र हैं। मैसूर, ट्रिवानडरम ओर पदुआकोटा में भी सूती मिलें हैं। दक्षिणी भारत की इन विभिन्न मिलों में अधिकतर सूत काता जाता है। भारतवर्ष के १६ प्रतिशत तकवे यहीं केन्द्रित हैं। इसके विपरीत देश के केवल ४ प्रतिशत करघे दक्षिण भारत में हैं।

मध्य प्रदेश भी सूती वस्त्र उद्योग का प्रधान केन्द्र है। बरार और नागपुर के मैदान में पूर्ना व वार्धा नदियों की घाटी में अति उपजाऊ काली मिट्टी पाई जाती है और यह प्रदेश कपास उत्पादन का प्रमुख क्षेत्र है। सूती कपड़े की मिलें इसी कपास का प्रयोग करती हैं और नागपुर, अकोला, हिन्गनघाट, राजनन्दगांव, बुदनेरा, बुरहानपुर, इलीचपुर और पुलगांव में केन्द्रित हैं। मजदूरों की संख्या के अनुसार नागपुर की सूती कपड़ा मिलें सब से अधिक महत्वपूर्ण हैं। इन मिलों में काम करने वाले अधिकतर मजदूर दलित वर्ग या शूद्र जाति के हैं। सब मिला कर मध्य प्रदेश में सूती कपड़े की ८ मिलें हैं।

दिल्ली में मोटा कपड़ा बुना जाता है और धोतियां, तम्बू-कनात का कपड़ा तथा कमरों को सजाने व पर्दे के कपड़ों को बनाना यहां की मिलों की विशेषता है।

भारत की मिलों के लिए कच्चा माल—भारत की सूती कपड़ा मिलें प्रतिवर्ष ४०० पौंड कपास की ४२ लाख गांठों का उपभोग करती हैं। इनमें लम्बे रेशे की कपास की गांठें मिश्र, पूर्वी अफ्रीका, सूडान, संयुक्तराष्ट्र और पाकिस्तान से मंगवाई जाती हैं। अकेले पाकिस्तान से १० लाख गांठें मंगाई जाती हैं।

भारत की मिलों में कपास का उपभोग (४०० पौंड की गांठों में)

स्रोत	१९४७-४८	१९४८-४९
भारत	२८,६३,४५०	३१,२३,९१५
पाकिस्तान	७,२३,२१६	४,१०,९५६
मिश्र	३,०५,६९७	३,९५,८५०
अन्य देश	३,१८,५१९	३,२३,९१५
कुल जोड़	४२,१०,८८२	४२,५४,६३६

सूती वस्त्र उद्योग की समस्यायें व व्यापार—भारत में सूती वस्त्र उद्योग की उन्नति से लंकाशायर के सूती वस्त्र उद्योग को बड़ा धक्का लगा है। पहले भारत के बाजार पर लंकाशायर के वस्त्रों का आधिपत्य था।

दूसरे महायुद्ध से पहले जापानी कपड़े की स्पर्धा से भारतीय उद्योग को कुछ क्षति उठानी पड़ी। जापानी वस्त्रों के आयात से बम्बई की मिलों को विशेष धक्का लगा। जापान के वस्त्र उद्योग को बम्बई व लंका शायर की अपेक्षा कई सुविधाएं प्राप्त हैं। जापान में कपड़ा बनाने की छोटी-छोटी मिलें हैं जिनमें कम खर्च पर माल तैयार किया जाता है। जापान के किसानं, उनकी स्त्रियां तथा सम्बन्धी खेती से बचे हुए समय में मिलों में काम करते हैं। अत: उन्हें जो थोड़ी मजदूरी मिलती है उसी में वह सन्तुष्ट रहते हैं। इसके अलावा भारत व अमरीका से व्यवस्थित कपास क्रय में भी जापान का लाभ ही रहता है। कच्ची कपास व तैयार कपड़े के आने-जाने में भारत व जापान के बीच अधिक खर्च नहीं पड़ता। इसके अलावा जापानी सरकार का प्रोत्साहन भी महत्वपूर्ण प्रभाव डालता है।

भारत का सूती कपड़ा ग्रेट ब्रिटेन, अदन, पाकिस्तान, सिंगापुर और पूर्वी अफ्रीका को भेजा जाता है। सन् १९५०-५१ में भारत से १२,१०० लाख गज कपड़ा निर्यात किया गया और इसका ९० प्रतिशत भाग बंबई बन्दरगाह द्वारा बाहर भेजा गया।

भारत से सूत व डोरे के गट्ठे बर्मा, स्ट्रेट्स सेटलमेंट, सीरिया, अदन, स्याम, ईराक, अरब, फ्रांसीसी सोमालीलैंड तथा अन्य देशों को जहां भारतीय रहते हैं बहुत अधिक मात्रा में भेजे जाते हैं। बंबई इस निर्यात का प्रधान बन्दरगाह है। सन् १९५०-५१ में भारत से ७४४ लाख पौंड सूत निर्यात किया गया। इस निर्यात का ब्यौरा इस प्रकार है—हांग-कांग २२० लाख पौंड, ग्रेट ब्रिटेन १०० लाख, बेल्जियम १०० लाख, अदन ८० लाख, सिंगापुर ५० लाख और स्याम ३० लाख पौंड। सन् १९३९ से भारत में सूती वस्त्र आयात के बन्द हो जाने से भारतीय सूती वस्त्र उद्योग ने बड़ी उन्नति की है। अब यहां कई प्रकार के नये कपड़े बनने लगे हैं जिनमें खाकी जीन, कमीजों का कपड़ा, सूती जाली व बेल फीते प्रमुख हैं। पटसन व सूत को मिला कर एक प्रकार की दुसूती भी तैयार की जाती है।

भारत में सूती वस्त्र उद्योग का उत्पादन

वर्ष	सूत (हजार पौंड)	कपड़ा (हजार गज)
१९४८	१४,४७,६१६	४३,१९,३०३
१९४९	१३,५९,११९	३९,०५,९०३
१९५०	११,७४,०००	३६,६५,०००
१९५१	१२,९३,०००	४१,६६,०००

यदि भारत में उत्पादन का मूल्य घटाया जा सका तो यहां का सूती वस्त्र व्यवसाय अन्य देशों के साथ स्पर्धा कर सकेगा और भविष्य में इसकी विशेष उन्नति हो सकेगी। भारत के सूती वस्त्र की मांग मध्यपूर्व और दूरपूर्व के देशों में बराबर बढ़ती जा रही है। ईराक, ईरान, अरब, अदन, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड और दक्षिणी अफ्रीका के क्षेत्र विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। यहां के बाजारों पर भारत के सूती वस्त्रों का एकाधिपत्य-सा है। परन्तु इन बाजारों में माल की कीमत पर व्यापार निर्भर रहता है। अतः भारत में सूती वस्त्रों के उत्पादन का मूल्य घटाना चाहिये ताकि इन प्रदेशों में पहुंच कर यहां का माल महंगा न पड़े। पाकिस्तान में भी भारतीय सूती कपड़ों की मांग बढ़ने की पूरी संभावना है। यदि निकट भविष्य में पाकिस्तान में भारतीय वस्तुओं के लिये मांग उत्पन्न की जा सकी तो भारत का ५००० लाख गज कपड़ा वहां की मंडियों में खप सकेगा।

पटसन का उद्योग

भारत का पटसन उद्योग देश के प्रमुख धंधों में से एक है और इसके द्वारा भारत के विदेशी व्यापार को बड़ी सहायता मिलती है। शुरू-शुरू में पटसन उद्योग विदेशी सहायता व प्रोत्साहन से स्थापित हुआ। सन् १८२८ तक भारत और बंगाल के किसान जुलाहे ही टाट के बोरे व कपड़े को बनाते थे और उत्पादन बहुत कम होता था। सन् १८३२ के बाद डंडी के एक व्यापारी ने यह खोज की कि सन व पटुआ के स्थान पर पटसन का प्रयोग हो सकता है। तभी से पटसन की मांग बहुत बढ़ गई। धीरे-धीरे इसके रेशे को धोने व रंगने में नई-नई विधियां प्रयोग होने लगीं और इसकी लोकप्रियता बहुत बढ़ गई। इस प्रकार डंडी के पटसन उद्योग की नींव पड़ी। बाद में सन् १८५५ में एक अंग्रेज व्यापारी (Sir George Auckland) के परिश्रम के फलस्वरूप पहली पटसन मिल रिशरा में बनी।

भारत में सूती कपड़ा व्यवसाय के बाद इसी उद्योग का स्थान है और चतुर नियंत्रण व कुशल संचालन के दृष्टिकोण से तो पटसन उद्योग का स्थान सर्वप्रथम है। इसमें काम करने वाले मनुष्यों की दैनिक औसत संख्या ३ लाख सात सौ है। सन् १९४० में भारत की पटसन मिलों में ६८,४१६ करघे थे जो कि संसार के कुल करघों की संख्या का ५७ प्रतिशत है। जर्मनी और ग्रेट ब्रिटेन में क्रमशः ७ व ८ प्रतिशत करघे हैं।

भारत में पटसन उद्योग की प्रगति व विकास का अनुमान निम्न तालिका से हो सकता है।

भारत में पटसन उद्योग की प्रगति

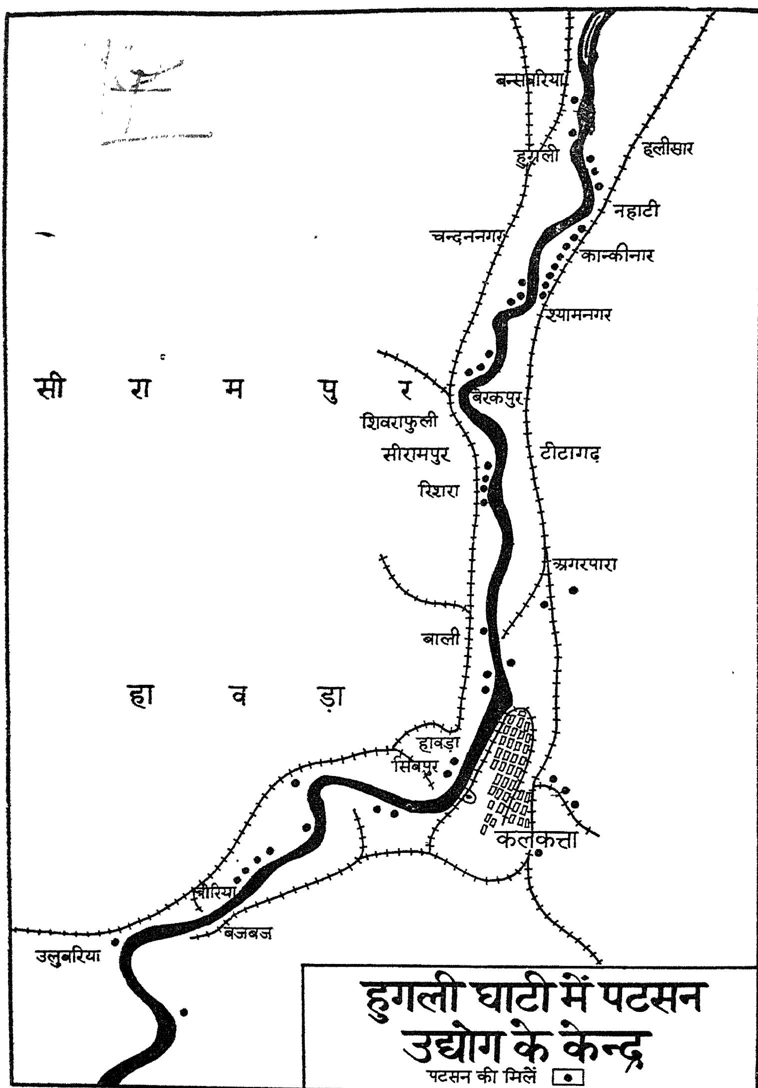
साल	मिलों की संख्या	उत्पादन (टनों में)	निर्यात (टनों में)	लगे हुए मनुष्यों की संख्या
१९४७-४८	९९	१०,७६,०००	८,९६,०००	३,२८,०००
१९४८-४९	९९	१०,८१,०००	८,७२,०००	३,३६,०००
१९४९-५०	९९	९,०१,०००	७,८६,०००	३,२७,०००
१९५०-५१	१००	८,२३,१५०	६,४९,०००	३,२७,०००

पटसन की सब से अधिक मिलें कलकत्ता में हैं। प्रायः हुगली नदी के किनारे पर

कलकत्ते के आसपास के क्षेत्र म पटसन की सभी मिलें पाई जाती हैं ।

पटसन मिलों का भौगोलिक वितरण

बिहार और उड़ीसा	३	उत्तर प्रदेश	३
मद्रास	४	पश्चिमी बंगाल	९५



चित्र नं० ५०—हुगली बेसिन ो पटसन मिलों का स्थानीकरण ध्यान देने योग्य है।

पश्चिमी बंगाल में कलकत्ता से २० मील परिधि में पटसन उद्योग के केन्द्रित होने के कई भौगोलिक कारण हैं। देश की पटसन वस्तुओं की अधिकतर मांग विदेशों में रहती है इसलिये बन्दरगाह से समीप होना विशेष सुविधाजनक होता है। हुगली नदी के किनारे इन मिलों में कच्चा माल आसानी से लाया जा सकता है और बन्दरगाह समीप होने से निर्मित वस्तुएं शीघ्र ही बाहर भेजी जा सकती हैं। यदि पटसन उद्योग के माल की खपत देशी मंडियों में अधिक होती तो ये मिलें स्वभावतः कच्चे माल उत्पादक क्षेत्रों के समीप बनी होतीं। इस समय पूर्वी बंगाल के कच्चा पटसन उत्पादक क्षेत्रों और हुगली नदी पर केन्द्रित मिलों के बीच नावों व स्टीमरों द्वारा आना-जाना होता है। कलकत्ता बन्दरगाह है, इसलिये निर्यात व विक्रय के लिये कच्चा पटसन यहां लाया जाता है और उसी से इसके आसपास की मिलों का भी काम चल जाता है। यह कच्चा माल लाने के लिये रेलों व नाव्य जलमार्गों की पूरी व्यवस्था है। १२० मील दूर स्थित रानीगंज व आसुन-सोल के क्षेत्रों से कोयला भी मिल जाता है और इस प्रदेश में पटसन उद्योग के उपयुक्त नम व तर जलवायु भी पाई जाती है। कलकत्ता एक औद्योगिक व व्यापारिक केंद्र है इसलिये मजदूर बराबर आते रहते हैं। बिहार, उड़ीसा और उत्तर प्रदेश से मजदूरों का एक प्रवाह-सा बना रहता है और ये इन मिलों में आकर काम करते हैं। इस समय पटसन उद्योग में लगे हुए ९०प्रतिशत मजदूर बाहरी प्रदेशों से आये हुए हैं। इसके अलावा कलकत्ता बन्दरगाह के समीप होने से विदेशी मशीनों को आयात करने की सुविधा रहती है।

इन्हीं सुविधाओं के कारण पटसन की मिलें कलकत्ता में भी पाई जाती हैं। कलकत्ता के अलावा पटसन की मिलें बाली, अगरपारा, रिशरा, सीरामपुर, स्यामनगर, काकीनारा, हुगली, बंसबरिया, उलूबरिया और बजबज में स्थित हैं। ये सभी स्थान हुगली बेसिन में कलकत्ता से ४० मील की परिधि में स्थित हैं।

पटसन की मिलों में काम करने वाले मजदूर प्रायः मिलों के समीप ही रहते हैं और उन्हें मुफ्त डाक्टरी उपचार की सुविधा भी दी जाती है।

मद्रास राज्य में पटसन की ४ मिलें हैं और इनमें करीब ६५०० मनुष्य काम करते हैं। इनमें से दो मिलें तो बहुत छोटी हैं और बाकी दो बड़ी मिलें **चीतावालशाह** तथा **नेल्लीमल्ली** में स्थित हैं। दक्षिणी भारत की पटसन मिलों के ७७ प्रतिशत मजदूर इन्हीं दो मिलों में काम करते हैं। विजगापट्टम जिले के विमलीपट्ट तालुक में चीतावालशाह पटसन का गांव है। करीब में ही कच्चा पटसन उगाया जाता है परन्तु निम्न कोटि का होने से उद्योग में इसे प्रयोग नहीं किया जाता है। पटसन मिलों के लिये कच्चा माल बाहर से मंगवाना पड़ता है। विजगापट्टम जिले में नेल्लीमारला की मिल में करीब २००० मजदूर काम करते हैं।

उत्तर प्रदेश में पटसन की ३ मिलें पायी जाती हैं जो **कानपुर** व **सहजनवा** में स्थित हैं। कानपुर में दो मिलें हैं और करीब ८००० मजदूर काम करते हैं।

पटसन के उद्योग से प्राप्त वस्तुएं और उनका व्यापार—पटसन से तैयार की हुई वस्तुओं को चार श्रेणियों में बांटा जा सकता है—

(१) टाट के बोरे जिसमें चावल, गेहूं, चीनी, तिलहन आदि भरा जाता है।
(२) टाट का कपड़ा।
(३) मोटी दरियां व बिछाने के टाट।
(४) रस्सियां

पटसन की वस्तुओं का उत्पादन (टन में)

वर्ष	टाट का कपड़ा	बोरे	कुलयोग (सब मिलकर)
१९३९	४८०,४००	६०८,०००	११,२९,२००
१९४१	५११,६००	५४९,२००	११,१३,१००
१९४६	४४३,९००	५५२,५००	१०,३४,८००
१९५०	३१७,२००	४८४,८००	८३६,०००
१९५१	३२२,०००	५२०,०००	८७४,१००
१९५२	३११,४००	६०७,२००	९५१,८००
१९५३	३८८,९००	४५०,५००	८६९,४००

पटसन का महीन और साफ रेशा बिजली के तार में इस्तेमाल किया जाता है। पटसन की ये विविध वस्तुएं ग्रेट ब्रिटेन, जर्मनी, फ्रांस, इटली, मिश्र, दक्षिणी अफ्रीका, आस्ट्रेलिया, जावा, जापान, अर्जेन्टाइना, कनाडा, संयुक्त राष्ट्र, क्यूबा और हालैंड को भेजी जाती हैं।

पटसन की वस्तुओं का निर्यात

(१) बोरे, पटसन का कपड़ा और बोरों का कपड़ा—

१९३७–३८ }
१९३८–३९ } ६०५० लाख

१९५१–५२–५१३० लाख

सन् १९५१–५२ में बोरे आयात करने वाले प्रमुख देश निम्नलिखित थे—

क्यूबा—३५० लाख, बर्मा—३५० लाख; स्याम—२६० लाख; आस्ट्रेलिया—७०० लाख; ग्रेट ब्रिटेन—७४० लाख; चिली—१३० लाख; अर्जेन्टाइना—१२० लाख; चीन—२०० लाख।

(२) बोरों का टाट—

१९३७–३८ }
१९३८–३९ } १५९६० लाख गज

१९५१–५२ १०८४० लाख गज

सन १९५१–५२ में भारत से टाट का कपड़ा खरीदने वाले मुख्य देश ग्रेट ब्रिटेन (२१०० लाख गज), संयुक्त राष्ट्र (५०८० लाख गज), अर्जेन्टाइना (१७४० लाख गज) और कनाडा (६६० लाख गज) थे।

पटसन से बनी वस्तुओं का निर्यात (टन में)

वर्ष	टाट का कपड़ा	बोरे	कुल (सब मिलाकर)
१९५१	३०१,१८५	४२४,३००	७७७,०००
१९५२	२८८,६७०	४१९,२३४	७३६,०००
१९५३	३८५,०००	३१८,०००	७२७,०००

संयुक्त राष्ट्र अमरीका में इस समय भारत से पटसन का सामान बहुत अधिक मंगाया जाता है। पटसन के कपड़े की वार्षिक निर्यात मात्रा का आधा भाग संयुक्त राष्ट्र को ही भेजा जाता है। मूल्य के दृष्टिकोण से भारत के कुल पटसन वस्त्र निर्यात का ३० प्रतिशत भाग वहीं जाता है। इसके बाद **ग्रेट ब्रिटेन** का स्थान आता है परन्तु यहां पटसन के कपड़े के आयात की मात्रा संयुक्त राष्ट्र की आधी है। पटसन की वस्तुओं की कुल निर्यात मात्रा का १० प्रतिशत भाग **अर्जेन्टाइना** मंगवाता है। अर्जेन्टाइना से आयात की हुई वस्तुओं के आंकड़े इस प्रकार हैं—पटसन का कपड़ा—१० प्रतिशत; टाट के थैले—३० प्रतिशत। इसके अतिरिक्त बोरे, बोरे का कपड़ा और बालू की बोरियां भी मंगवाता है। **आस्ट्रेलिया** में ऊन व गेहूं भरने के लिये पटसन के बोरों की विशेष मांग रहती है। मिश्र, लेवान्ट, दक्षिणी अमरीका तथा दक्षिणी व पश्चिमी अफ्रीका में भारतीय पटसन के दुसूती कपड़े की विशेष मांग बढ़ती जा रही है।

दूसरे महायुद्ध से पटसन वस्त्र उद्योग पर बहुत कम प्रभाव पड़ा। इसका कारण यह था कि यूरोप महाद्वीप में केवल ५ प्रतिशत माल की खपत होती थी।

कलकत्ता बन्दरगाह से होने वाली निर्यात वस्तुओं की आधी मात्रा पटसन व उसकी बनी हुई वस्तु होती है। समस्त भारत के निर्यात का एक-चौथाई भाग पटसन व उसकी बनी हुई वस्तुओं का रहता है।

पटसन उद्योग की समस्याएं—सन् १९२९ में भारत से भेजी गई पटसन की वस्तुएँ देश के निर्यात व्यापार का २८ प्रतिशत थीं। सन् १९३० के बाद पश्चिमी बंगाल के पटसन उद्योग को बड़ा धक्का लगा। कच्चा पटसन व उससे बनी हुई वस्तुओं का दाम बहुत गिर गया। वास्तव में विश्वव्यापी व्यापार में कमी और देश में पटसन के अत्यधिक उत्पादन के कारण ही यह धक्का लगा था। विभिन्न देशों में पटसन के स्थान पर दूसरी वस्तुओं के प्रयोग व आयात पर प्रतिबन्ध के कारण यह समस्या और भी जटिल हो गई। क्यूबा, इक्वेडर और हालैंड में पटसन की वस्तुओं के आयात पर रोक लगा दी गई। जर्मनी, रूमानिया और लिथूनिया में आयात सरकारी आज्ञा से किया जा सकता था। जर्मनी ने कोयला व ऊन के लिये पटसन के थैलों का प्रयोग बन्द कर दिया। इटली में सरकारी योजना के अनुसार पटसन के स्थान पर अन्य देशी रेशों से काम लेने का प्रयत्न होने लगा।

इन सब परिस्थितियों का सामूहिक प्रभाव यह पड़ा कि बहुत से विदेशी राष्ट्रों में जूट की मांग कम होने लगी। मांग की यह कमी दो रूपों में प्रकट हुई—(१) आस्ट्रेलिया, कनाडा और अर्जेन्टाइना में अनाज के भंडारों से वैसे ही जहाजों में लादने की प्रणाली से बोरों की मांग कम कर दी गई। (२) बहुत से देशों में पटसन के बोरों के स्थान पर कागज, कपड़ा, सन व पटुए के थैले प्रयोग किये जाने लगे। दूसरे महायुद्ध काल में जब लड़ाई के कारण माल मंगवाने की सुविधाएं नहीं थीं उस समय इस प्रकार के थैलों के प्रयोग को विशेष प्रोत्साहन मिला। कागज व कपड़े के थैलों की लोकप्रियता बढ़ी और इनकी स्पर्धा के फलस्वरूप संसार की बहुत-सी मंडियों में पटसन के बोरों की

मांग बिल्कुल घट गई। न्यूज़ीलैंड में फोरमियम टेनाक्स (Phormium Tenax) नामक एक वनस्पति रेशे से बने थैलों में ऊन भरा जाने लगा। रूस और अर्जेन्टाइना में अलसी के रेशे का प्रयोग बढ़ा और कनाडा, स्वीडन, संयुक्त राष्ट्र, दक्षिणी अफ्रीका व आस्ट्रेलिया में कागज व कपड़े के थैले प्रयोग किये जाने लगे। इनमें से कुछ वस्तुएं अभी भी प्रयोग की जा रही हैं क्योंकि युद्ध के बाद के इस काल में पटसन काफी महंगा हो गया है।

बोरों के स्थान पर मशीनों द्वारा अनाज को वैसे ही भरने की रीति से जो मांग में कमी हुई है, वह तो बहुत कुछ पक्की ही सी है। परन्तु इसके स्थान पर प्रयोग किये जानी वाली वस्तुएं कहां तक इसकी स्पर्धा में सफल हो सकेंगी यह कहना बहुत कठिन है। यदि पटसन का मूल्य उचित स्तर पर रक्खा जा सका तो शीघ्र ही इसके स्थान पर प्रयोग की जाने वाली वस्तुओं की मांग घट जायेगी और फिर से पटसन की वस्तुएं प्रयोग में लाई जाने लगेंगी।

इस धारणा का मूल आधार यह है कि पटसन के सामान गुणवान अन्य कोई भी वस्तु नहीं है। पटसन के मूल्य तो सस्ते होते ही हैं, इसके अलावा पटसन के बोरों को बार-बार प्रयोग में लाया जा सकता है, अथवा पुराने बोरों को बेचकर दाम खड़े किये जा सकते हैं। इस प्रकार उनका मूल्य और भी सस्ता बैठता है। इसके साथ २ अधिक मजबूत होने के कारण उन्हें हर मौसम में काम में लाया जा सकता है तथा उल्टे-सीधे सभी प्रकार से उठाया-रक्खा जा सकता है। फट जाने पर उन्हें आसानी से रफू करके फिर प्रयोग में लाया जा सकता है। इन सब विशेषताओं के कारण हम यह कह सकते हैं कि पटसन की मांग भले ही थोड़ी दिनों के लिये कम हो जाय परन्तु इसको स्थानान्तरित कर देना असंभव-सा है। वास्तव में अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में पटसन को दो ओर से स्पर्धा का सामना करना पड़ता है—एक तो उन वस्तुओं से जो इसके मुकाबले की हैं परन्तु बनावट में भिन्न हैं जैसे कागज, कपड़ा, सीसल या नारियल की जटा के थैले व टुकड़े। दूसरी वे वस्तुएं जिन्हें पटसन की तरह ही बुना जा सकता है। इनमें मेनीला पटुआ, करोआ, तांत पटुआ, कीनाफ, बिमली पटसन, बम्बइया पटुआ, दक्षिणी पटुआ और अम्बारी। इनमें पहली तीन वस्तुएं तो पत्ती के रेशे हैं और अन्य पीट कर निकाले जाने वाले रेशों वाले पौधे। साधारणतया इसी से मिलती-जुलती करीब ५० ऐसी वस्तुएं हैं जो पटसन के स्थान पर प्रयोग की जा सकती हैं। इसलिये जूट के स्थान पर प्रयोग की जाने वाली वस्तुओं की स्पर्धा वास्तविक है यद्यपि इतनी गहन नहीं। अतः पटसन के उद्योग को ठीक स्तर पर रखने के लिये और अन्तर्राष्ट्रीय मंडियों में इसकी मांग कायम रखने के वास्ते यह आवश्यक है कि कच्चा पटसन सस्ते दामों में मिले। इससे वस्तुओं के उत्पादन मूल्य में कमी हो सकेगी। पटसन की वस्तुओं का मूल्य कम करने के लिये इस पर लगाये हुए निर्यात कर को भी कम करना होगा।

इस दिशा में एक बात और ध्यान देने योग्य है। वह है कि पटसन के रेशे के उपभोग की अनेक संभावनाएं हैं। खोज करके इसे नये उपयोग में लाया जा सकता है। फिर यदि

आजकल की अन्तर्राष्ट्रीय मंडियों में पटसन की मांग कम भी हो जावे तो कोई बात नहीं क्योंकि नये उपयोगों के पता चलने पर और बहुमूल्य मंडियों पर कब्जा हो सकेगा। सच तो यह है कि भारत की आर्थिक व व्यापारिक उन्नति के लिये पटसन की वस्तुओं का निर्यात विशेष रूप से महत्वपूर्ण है। सन् १९४८ में पटसन के निर्यात द्वारा ही भारत ने एक-तिहाई विदेशी मुद्रायें प्राप्त कीं और इसी की सहायता से देश ने ६६ प्रतिशत डालर पूंजी प्राप्त की। इस समय भी भारत से ९० प्रतिशत पटसन की वस्तुएं बाहर भेज दी जाती हैं।

इन दोनों पहलुओं पर विचार करने के बाद भारत की केन्द्रीय पटसन समिति ने कुछ वैज्ञानिक खोज को प्रोत्साहन दिया है। इसकी खोज का कार्यालय कलकत्ते में है और वहां प्रयोग करके यह पता चलाया गया है कि सामान बांधने या भरने के अतिरिक्त पटसन को अन्य निम्नलिखित उपयोगों में लाया जा सकता है :—

१. घर निर्माण—ताप निरोधक; प्लास्टिक की मेज़ कुर्सियां; कालीन व पर्दे; सोफा आदि पर बिछाने के कपड़े; कम्बल, दीवालों पर टांगने की वस्तुएं आदि।

२. यातायात—मोटर-गाड़ियों की गद्दी का कपड़ा; पानी निरोधक ढक्कन; जीन; रस्सी व डोरी; डांडियों का कपड़ा।

३. उद्योग—बिजली प्रवाह निरोधक, प्लास्टिक को मजबूत बनाने के लिये।

४. वस्त्र—चिकने व मुलायम धुले हुए रेशों को ऊन व सूत के साथ मिलाकर।

इनमें से कुछ दिशाओं में तो वस्तु-निर्माण उद्योग ने प्रगति भी कर ली है परन्तु फिर भी भारतीय सरकार के प्रोत्साहन व देश के पूंजीपतियों तथा मिल-मालिकों के हिम्मत करने की बहुत अधिक आवश्यकता है।

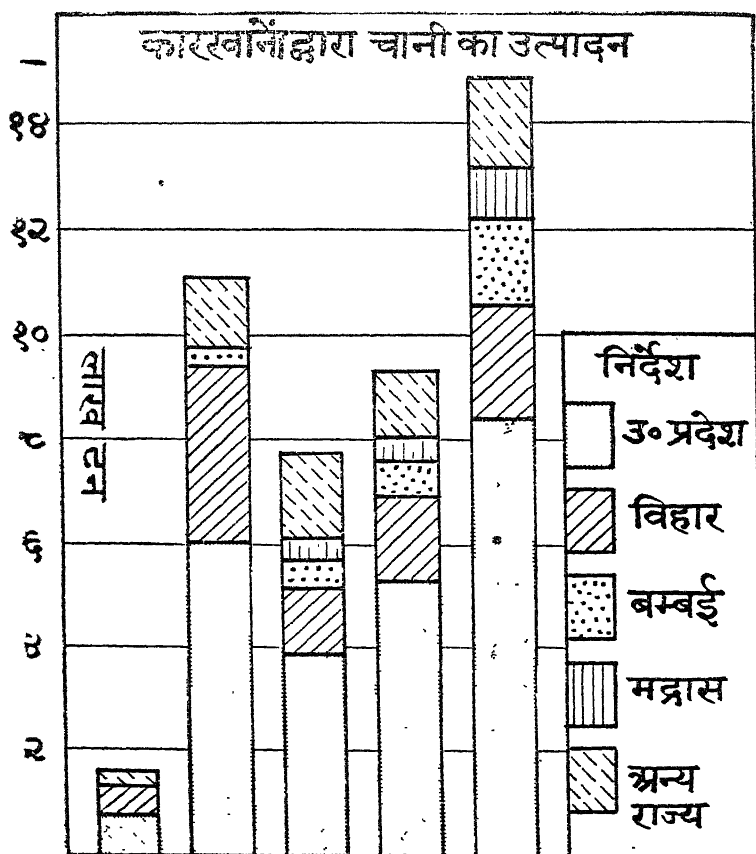
चीनी उद्योग

यद्यपि भारतवर्ष में सब से अधिक गन्ना उत्पन्न होता है परन्तु फिर भी सन् १९३१-३२ तक भारत को बाहर से चीनी आयात करके अपनी मांग-पूर्ति करनी पड़ती थी। सन् १९३२ में भारत सरकार ने देश के चीनी उद्योग को संरक्षण प्रदान किया और तभी से यह उद्योग उन्नति करता जा रहा है। यह संरक्षण सन् १९५० के मार्च महीने में उठा लिया गया परन्तु शुरू में इसी की सहायता व बल से आज भारत चीनी उत्पादन में संसार के सब देशों से आगे है और इसका वार्षिक उत्पादन मांग-पूर्ति से कहीं अधिक होता है। इस समय देश में चीनी की १३४ मिलें हैं जिनसे प्रतिवर्ष करीब १० लाख टन चीनी प्राप्त होती है।

भारत में चीनी मिल उद्योग का विकास व प्रगति निम्न तालिका से स्पष्ट हो जायेगा।

भारत में चीनी उद्योग की प्रगति व विकास

साल	चीनी के कारखाने	क्षेत्रफल (हजार एकड़)	गन्ने की कुचली हुई मात्रा (हजार टन)	चीनी (हजार टन)	चीनी का आयात (हजार टन)
१९३१–३२	३१	२९७२	१७८४	१५८	५८६
१९३८–३९	१३९	३२७०	७००४	६५१	३३१
१९४१–४२	१५०	२९४४	८०२६	७५१	३०
१९४७–४८	१३४	४०५६	१०,९१०	९०१	१४
१९४९–५०	१३९	३६२४	९,९०१	८७५	—
१९५०–५१	१३९	४१३८	११,००९	१,१००	६०



चित्र नं० ५१

उद्योग के केन्द्र—चीनी का उद्योग प्रधानतः उत्तर प्रदेश और बिहार राज्यों तक

सीमित है। इन दोनों राज्यों में चीनी उत्पादन के मुख्य केन्द्र कानपुर, गोरखपुर, लखनऊ, इलाहाबाद, चम्पारन, मुजफ्फरपुर और भागलपुर हैं। इनके अलावा मद्रास के कोयम्बटूर बम्बई के बेलापुर और पूर्वी पंजाब के अमृतसर में भी चीनी बनाई जाती है।

चीनी की मिलों का भौगोलिक वितरण (१९५१-५२)

राज्य	उत्पादन की मात्रा (टन में)	मिलों की संख्या
उत्तर प्रदेश	८,३४,०००	७२
बिहार	२,२४,०००	३०
पूर्वी पंजाब	२०,३८४	१
मद्रास	९८,९००	१६
बम्बई	१,५७,८९१	१५
पश्चिमी बंगाल, उड़ीसा और आसाम	९७७१	६
पेप्सू	२८,११४	२
मध्यभारत	१८,१५३	६
राजस्थान	७,४३९	२
अन्य राज्य	८१,७०२	७
केन्द्रीय राज्य	४,४५६	३
कुल योग	१४,८९,३७७	१६०

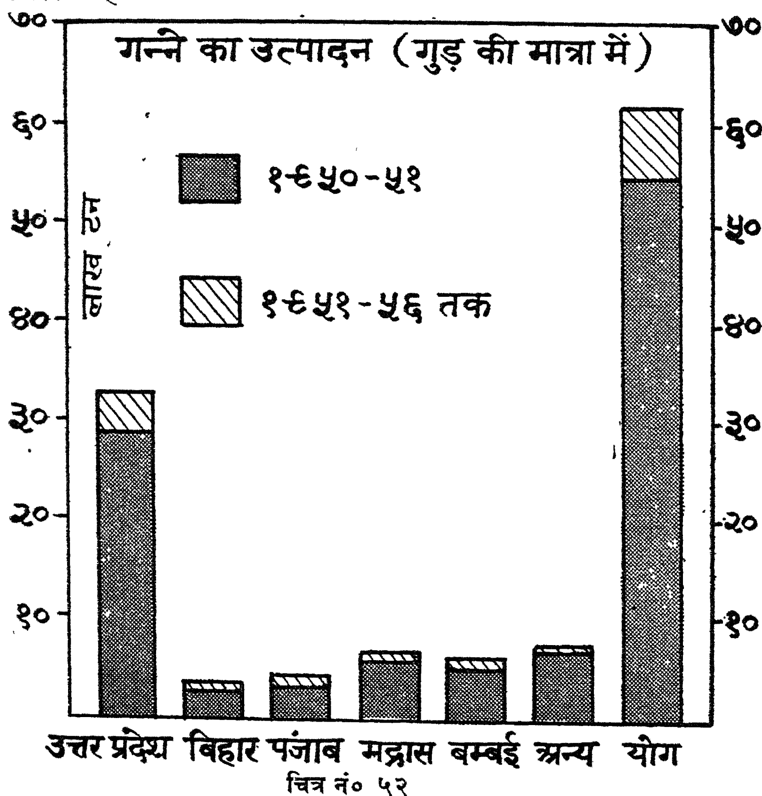
देश में चीनी तैयार करने वाली मिलों व उनकी रीतियों को ३ प्रकार का कह सकते हैं—(१) नवीन तरीकों व मशीनों से गन्ना कुचल कर, (२) साफ करने वाली मशीनों की सहायता से गुड़को साफ करके, (३) देशी कढ़ाव में गर्म करके जिसे हम खाण्डसारी रीति कह सकते हैं। इन तीनों प्रकारों में से पहली रीति व उस रीति के अनुसार काम करने वाली मिलों का बहुत अधिक महत्व है। इनसे देश के उपभोग के लिये सफेद चीनी प्राप्त होती है।

गुड़ साफ करके चीनी बनाने का उद्योग या खान्डसारी का धंधा बहुत पिछड़ा हुआ है। इससे प्राप्त होने वाली चीनी मटमैली तथा गन्दी होती है। इस तरीके से गन्ने का बहुत-सा रस बेकार चला जाता है : परन्तु फिर भी गन्ने के कुल उत्पादन का आधा भाग गुड़ बनाने के लिये प्रयोग कर लिया जाता है।

सन् १९५२–५३ में भारतीय मिलों ने १३० लाख टन गन्ने को कुचल कर १२ लाख ९७ हजार टन चीनी तैयार की। उद्योग के उत्पादन की इस प्रगति से भारत चीनी की मांग-पूर्त्ति में बहुत कुछ आत्मनिर्भर हो गया है और अब उसे बाहर से चीनी का बिलकुल भी आयात नहीं करना पड़ता। परन्तु यह प्रगति केवल मात्रा के दृष्टिकोण से ही हुई है। वास्तव में कोटि व उत्तमता के दृष्टिकोण से भारत की चीनी जावा की अपेक्षा बहुत ओछी पड़ती है।

भारतीय चीनी उद्योग की त्रुटियां—इतनी उन्नति कर जाने पर भी भारतीय चीनी उद्योग में कुछ दोष पाये जाते हैं। भारतीय मिलों में चीनी तैयार करने का खर्च बहुत अधिक बैठता है। इसका महंगापन इसकी सब से बड़ी कमजोरी है। खर्च अधिक बैठने के कई कारण हैं। एक तो यहां का उद्योग मौसमी है गन्ने के मौसम में तो ये मिलें चलती

हैं और उसके वाद बन्द हो जाती हैं। फिर गन्ने से रस निकालने की रीतियां बड़ी दोषपूर्ण हैं। इनसे न तो पूरा रस ही निकलता है और न साफ रूप से इकट्ठा किया जा सकता है। तीसरे, इस एकत्रित रस को साफ करने में बहुत क्षति होती है। यह तो है रीति व मिल-सम्बन्धी दोप। इसके अलावा यहां के गन्नों में रस व मिठास कम होती है। अतः चीनी की एक निश्चित मात्रा तैयार करने के लिये अधिक गन्नों का रस निकालना पड़ता है। दूसरी बात यह है कि मिलों के समीप गन्ने की खेती नहीं होती और कुछ विशेष क्षेत्रों में प्रयत्न करने पर भी ऐसा नहीं किया जा सकता। फलस्वरूप गन्ने को फैक्टरी तक लाने में काफी खर्चा पड़ जाता है। इन दोषों को दूर करके ही हमारा चीनी उद्योग वढ़ सकता है। इसके लिये हमारी सरकार व पूंजीपतियों दोनों को ही प्रयत्न करना होगा। नई खोज व वैज्ञानिक रीतियों के प्रयोग से देश के चीनी उद्योग के स्तर को उठाने की बड़ी आवश्यकता है।



चित्र नं० ५२

जावा में गन्ने के खेत फैक्टरियों के समीप हैं और वहां की चीनी बनाने की रीतियों म गन्ने की मिठास व रस की क्षति नहीं होती। जावा में चीनी बनाने के उद्योग से कई गौण वस्तुएं प्राप्त होती हैं जिनमें रस (शराब) और मेथीलेटिड स्प्रिट विशेष रूप से महत्व-

पूर्ण हैं। भारत में ऐसी कोई भी सुविधा नहीं है। यहां पर गन्ने की खेती किसानों के हाथ में है जिन पर चीनी मिल-मालिकों का कोई भी जोर नहीं होता। इन किसानों के पास छोटे-छोटे खेत होने हैं और बहुधा फसल के तैयार होने पर ये गन्ना नहीं काट पाते। गन्ने के ये खेत चीनी की मिलों से बहुत दूर होते हैं। अतः चीनी की फैक्टरी तक गन्ने को लाने में बड़ा खर्च पड़ता है जिससे कि चीनी का उत्पादन का खर्च भी बढ़ जाता है।

चीनी बनाने से प्राप्त सब से महत्वपूर्ण गौण वस्तु शीरा (Molasses) होता है। इससे अलकोहल तथा मेथिलेटिड स्प्रिट तैयार की जा सकती है। लेकिन भारतीय चीनी-उद्योग ने इस ओर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया। इसके अलावा रस निकालने के बाद बचा हुआ गन्नों का भाग जिसे बगास (Bagasse) कहते हैं कई रूप से काम में लाया जा सकता है। परन्तु भारतीय मिलें इसे जलाने के ईंधन के रूप में प्रयोग कर डालती हैं। बगास से सामान बांधने का मोटा कागज तथा गत्ते व दफ्ती तैयार किये जा सकते हैं। शीरे से मिला हुआ पानी बड़ा गंदा व बदबूदार होता है और इसे प्रायः नालों तथा नालियों द्वारा बाहर फेंक देते हैं। इस मल से उत्तम खाद का काम लिया जा सकता है यदि इसे ठीक तरह से इकट्ठा करके फिर नालियों व नहरों द्वारा खेतों में पहुंचाया जावे।

चीनी का व्यापार—भारत में चीनी की मांग बहुत अनिश्चित रहती है। चीनी के महंगा होने के कारण इस समय इसका उपयोग केवल धनी व मध्य श्रेणी के लोगों तक सीमित है। यदि इसके मूल्य को थोड़ा कम कर दिया जावे तो निम्न वर्ग की जनता भी इसे प्रयोग में ला सकेगी। इसी दृष्टिकोण से भारतीय टैरिफ बोर्ड ने चीनी के उत्पादन का मूल्य कम करने और उद्योग को बढ़ाने के लिये निम्नलिखित बातें सुझाई हैं।

(१) उत्तर प्रदेश व बिहार की मिलों को वहां से हटाकर अधिक उपयुक्त स्थानों पर स्थापित करना, (२) भारतीय गन्ना समिति को गन्ना व उद्योग अनुसंधान की पंच-वर्षीय योजना पर काम करने के लिये अधिक धन प्रदान करना और (३) गन्ने व चीनी के मूल्य को उचित स्तर पर निर्धारित करना।

भारत में प्रति मनुष्य का चीनी उपभोग अन्य देशों की अपेक्षा कितना कम है, यह निम्नलिखित तालिका से स्पष्ट हो जावेगा।

(पौंडों में)

संयुक्त राष्ट्र	१०३	आस्ट्रेलिया	११४
ग्रेट ब्रिटेन	११२	न्यूज़ीलैंड	११५
डेनमार्क	१२८	भारत	२४

चीनी के अधिक मूल्य के कारण देश में तो उपभोग कम है ही, साथ ही साथ पाकिस्तान तथा मध्य-पूर्व के देशों में भी भारतीय चीनी की मांग कम होती जा रही है क्योंकि उन्हें क्यूबा और ब्राज़ील से चीनी सस्ती मिल जाती है। वास्तव में चीनी के मूल्य की ६० से ७० प्रतिशत अधिकता गन्ने की महंगाई के कारण है। और गन्ने का मूल्य उस समय तक नीचा नहीं हो सकता जब तक कि इसका उत्पादन न बढ़ाया जावे। उत्पादन बढ़ाने के लिये गन्ने की प्रति एकड़ उपज में वृद्धि करनी होगी और गन्ने की कोटि भी उच्चतर करनी

पड़ेगी। गन्ने के खेतों के क्षेत्रफल में विस्तार करने से देश में खाद्यान्नों की फसल कम होने का डर है। अत: उत्तम कोटि के गन्ने की खेती करके और प्रति एकड़ उपज बढ़ा करके ही इस समस्या का हल हो सकता है।

सन् १९३८–३९ से चीनी का मूल्य कितना बढ़ गया है निम्न तालिका से स्पष्ट हो जायेगा—

साल	मूल्य रुपये प्रति मन
१९३८–३९	१०–१२ आना
१९४४–४५	१६– ४ ,,
१९४६–४७	२०–१४ ,,
१९४७–४८	२३– ७ ,,
१९५१–५२	३०– ० ,,

मूल्य में कमी होने से अफगानिस्तान, तिब्बत, नेपाल, बर्मा, लंका और पाकिस्तान को निर्यात की मात्रा में वृद्धि हो सकेगी। पाकिस्तान में ३५०० लाख पौंड से अधिक चीनी की मांग रहती है। चूंकि अब भारत की चीनी जावा की तरह साफ व अच्छी होती है इस लिये उचित दर पर इसे यूरोप के देशों को भी भेजा जा सकता है। सन् १९४९–५० में केवल ७१०० टन चीनी निर्यात की गई थी परन्तु सन् १९५१–५२ में १०,००० टन चीनी देश से बाहर भेजी गई।

पश्चिमी बंगाल में चीनी उद्योग की संभावनाएं—इस समय पश्चिमी बंगाल में चीनी उद्योग की स्थिति संतोषजनक नहीं है। यद्यपि वहां चीनी की खपत बहुत अधिक है परन्तु केवल तीन ही मिलें हैं। अत: इस समय वहां नई मिलें खोलने का मौका है। पश्चिमी बंगाल में गन्ने की खेती के लिये बहुत-सी प्राकृतिक व आर्थिक सुविधाएं हैं। इस-लिये जब कि बिहार व उत्तर प्रदेश में गन्ने की प्रति एकड़ उपज केवल १५ या १६ टन ही है, पश्चिमी बंगाल में प्रति एकड़ उपज ३० से ४० टन तक है। उत्तरी-पश्चिमी बंगाल और चौबीस परगना प्रदेश की जलवायु व भूमि गन्ने की खेती के उपयुक्त है। यहां पर स्थानीय मांग भी अधिक है और बने हुए माल पर रेल के कर भी कम हैं। अन्य प्रदेशों की अपेक्षा सस्ती शक्ति भी उपलब्ध है। कोयले का एक विस्तृत क्षेत्र समीप में ही स्थित है और रेल व जलमार्गों की सहायता से यह कोयला मिलों तक आसानी से लाया जा सकता है। परन्तु पश्चिमी बंगाल की चीनी मिलों को बाहरी स्पर्धा का सामना करना पड़ता है। इसका कारण यह है कि कलकत्ता के बन्दरगाह से विदेशों को चीनी आयात की जा सकती है।

चाय का धंधा

भारत का संसार के चाय उत्पादक देशों में दूसरा स्थान है। भारत की ८० प्रति-शत चाय बंगाल व आसाम के बगीचों में प्राप्त होती है। दक्षिण भारत में कुल उत्पादन की १८ प्रतिशत चाय उत्पन्न होती है और शेष दो प्रतिशत पूर्वी पंजाब व बिहार में होती है। सन् १९४९ में चाय का कुल उत्पादन उत्तरी भारत में ४६३० लाख पौंड और दक्षिणी भारत में १०५० लाख पौंड था।

भारत में चाय के कुल बगीचे ५००० से भी अधिक हैं। इनमें से ५० प्रतिशत पश्चिमी बंगाल में और २० प्रतिशत आसाम में पाये जाते हैं। परन्तु आसाम के बगीचों का क्षेत्रफल पश्चिमी बंगाल के बगीचों से बड़ा है। पश्चिमी बंगाल के प्रति बगीचे का औसत क्षेत्रफल ४ एकड़ है जबकि आसाम के चाय का एक बगीचा औसतन ४०० एकड़ क्षेत्रफल में होता है।

चाय के हर अच्छे बाग के बीच चाय की फैक्टरी होती है। यहां पर चाय की पत्तियों को बाजार के लिये ठीक किया जाता है। पत्ती चुनने के फौरन बाद ही इसे भिन्न-भिन्न रीतियों से ठीक करते हैं। काफी अच्छी फैक्टरियों में मशीनों से तथा कुशल विशेषज्ञों की देखरेख में चाय तैयार की जाती है।

भारतीय चाय उद्योग में करीब १० लाख मजदूर काम करते हैं। ये मजदूर अधिकतर उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्य प्रदेश, मद्रास और उड़ीसा से आते हैं। अकेले आसाम के बगीचों में ५ लाख से अधिक मजदूर काम करते हैं। पश्चिमी बंगाल के बगीचों में मजदूरों की संख्या २ लाख से अधिक है। आसाम की जनता को खेती का काम ज्यादा आसान लगता है इसलिये वे चाय के बगीचों में काम करना पसंद नहीं करते। अतः आसाम में मजदूरों की एक समस्या है। साधारणतया मजदूरों को ठेके पर रक्खा जाता है—कुछ वर्षों के लिये बगीचों में उन्हें रहने के लिये समझौते की शर्तों द्वारा बाध्य कर लिया जाता है।

चाय का व्यापार—भारत से निर्यात की जानेवाली वस्तुओं में चाय का दूसरा स्थान है। देश में केवल २५ प्रतिशत चाय की खपत होती है, शेष ७५ प्रतिशत को ग्रेट ब्रिटेन, कनाडा, आस्ट्रेलिया, मिश्र, संयुक्त राष्ट्र, फ्रांस और न्यूज़ीलैंड को निर्यात कर दिया जाता है। अकेला ग्रेट ब्रिटेन निर्यात का ६० प्रतिशत भाग ले लेता है। पहले ग्रेट ब्रिटेन अधिकतर चाय चीन से मंगवाता था परन्तु सन् १८४० से भारत और सन् १८७६ से लंका ने माल भेजना शुरू किया। फलतः सन् १९२७ में ग्रेट ब्रिटेन ने इन दोनों देशों से ८३ प्रतिशत चाय आयात की। इधर लंका, जावा, सुमात्रा, चीन, जापान, फारमोसा और इन्डोचीन की चाय की ओर से अमरीका व यूरोप की मंडियों में स्पर्धा काफी बढ़ गई है। फिर भी ईरान, मिश्र और रूस में भारतीय चाय की मांग को बढ़ाने के लिये पर्याप्त क्षेत्र है।

संसार के कुछ राष्ट्रों के चाय व कहवा आयात में भारतीय चाय का भाग (प्रतिशत)

(१९३९–४०)

ग्रेट ब्रिटेन	६०	फ्रांस	८
कनाडा	५६	आस्ट्रेलिया	४
संयुक्त राष्ट्र	१२	न्यूज़ीलैंड	३

इन आंकड़ों से स्पष्ट है कि भारतीय चाय को संयुक्त राष्ट्र, फ्रांस, आस्ट्रेलिया और न्यूज़ीलैंड में काफी स्पर्धा का सामना करना पड़ता है। संयुक्त राष्ट्र और कनाडा में सुगन्धिपूर्ण होने के कारण लंका की चाय अधिक पसंद की जाती है।

देश में ही चाय की मांग में वृद्धि करने का पर्याप्त क्षेत्र है और केन्द्रीय चाय समिति

विस्तृत प्रचार के द्वारा चाय को लोकप्रिय बनाने का प्रयत्न कर रही है। फलतः देश में ही चाय की मांग अब काफी बढ़ गई है और कहा जाता है कि मद्रास और बम्बई के ६० प्रतिशत लोग चाय पीने के आदी हो गये हैं। यह समिति इस प्रचार कार्य में प्रतिवर्ष २० लाख रुपया खर्च करती है। परन्तु यदि ध्यानपूर्वक प्रचार किया जाय तो अमरीका, मिश्र और दक्षिणी अफ्रीका में चाय की मांग काफी बढ़ सकती है।

चाय उद्योग की समस्याएं—सन् १९३९ से सन् १९४५ तक दूसरे महायुद्ध काल में भारतीय चाय उद्योग बड़ी समृद्ध दशा में था। इसका कारण यह था कि इन्डोनेशिया मे चाय की मांग-पूर्ति बन्द थी। अतः अन्तर्राष्ट्रीय चाय समिति को भारत से चाय की निर्यात मात्रा बढ़ानी पड़ी।

चाय का उत्पादन

साल	लाख पौंड
१९३८–३९	४५२०
१९४०–४१	४६३०
१९४१–४२	४७००
१९४३–४४	५७३०
१९४८–४९	५३२०

सन् १९५० में संसार में चाय का कुल उत्पादन ८१५० लाख पौंड था और भारत ने ५६७० लाख पौंड चाय उत्पन्न की। इसी साल संसार के विभिन्न राष्ट्रों में चाय की मांग का कुल योग ८४८० लाख पौंड था। इस प्रकार स्पष्ट है कि मांग से पूर्ति कम है। हाल में भारत सरकार ने ४ आना प्रति पौंड की दर से चाय पर निर्यात कर लगा दिया है। परन्तु जब तक इन्डोनेशिया, जापान और फारमोसा में चाय का उत्पादन पहले जैसा नहीं हो जाता, उस समय तक निर्यात कर से चाय के व्यापार पर कोई असर नहीं पड़ेगा। दूसरी बात यह है कि यद्यपि भारत में चाय का उत्पादन काफी बढ़ गया है—परन्तु साथ-साथ घरेलू उपभोग भी बढ़ गया है। इसलिये देश से चाय का निर्यात तभी बढ़ सकता है जब या तो उत्पादन में वृद्धि की जाय या घरेलू उपभोग कम हो जाय।

इधर कनाडा, संयुक्त राष्ट्र अमरीका और आस्ट्रेलिया के लिये भारत से अधिक चाय निर्यात होने लगी है। सन् १९५१–५२ में भारत ने ४२६० लाख पौंड चाय निर्यात की। इसमें से ग्रेट ब्रिटेन ने २८७० लाख पौंड, संयुक्त राष्ट्र ने २६० लाख पौंड, ईरान ने ११ लाख पौंड, रूस ने ५० लाख पौंड और कनाडा ने १९० लाख पौंड चाय मंगवाई।

भारतीय चाय उद्योग की समस्याएं—भारतीय चाय उद्योग के सम्मुख कई समस्याएं हैं। रासायनिक खादों की बड़ी कमी है जिसके फलस्वरूप उत्पादन की मात्रा या प्रति एकड़ उपज क्रमशः गिरती जा रही है। दूसरे, चाय के लिये मुलाम प्लाईवुड के बक्से भी बहुत कम मिलते हैं। भारत में इस प्रकार के उद्योग भी कुछ विशेष उन्नत नहीं हैं। तीसरे, चाय की नस्ल व किस्म बराबर गिरती जा रही है। जब तक इन समस्याओं का उचित हल नहीं होता चाय उद्योग में उन्नति असम्भव-सी है। निम्न कोटि की होने के कारण संयुक्त राष्ट्र में इसकी मांग कम होती जा रही है। इसके अलावा अन्तर्राष्ट्रीय

बाजार में इसके प्रति स्पर्धा भी बराबर बढ़ रही है। अतः चाय की इन समस्याओं की ओर ध्यान देकर शीघ्र हल करना बहुत जरूरी है। चाय के निर्यात से भारत को डालर मुद्राएं प्राप्त होती हैं। इस दृष्टिकोण से यह और भी जरूरी है। सन् १९५१–५२ में संयुक्त राष्ट्र ने ६ करोड़ २९ लाख रुपये और कनाडा ने ४ करोड़ ३१ लाख रुपये मूल्य की भारतीय चाय मंगवाई।

देश के विभाजन से चाय के यातायात की विकट समस्या उठ खड़ी हुई। इसका फल यह हुआ है कि माल को लाने ले जाने में अधिक खर्चा पड़ने लगा। कलकत्ता और आसाम व बंगाल के चाय के बगीचों के बीच का रेल-मार्ग पाकिस्तान भूमि से होकर जाता है अतः कोयला पहुंचाने और चाय बन्दरगाह तक लाने के लिये मोटर-लारियों द्वारा एक चक्करदार रास्ते से जाना पड़ता है। यह मार्ग ऊबड़खाबड़ पहाड़ी प्रदेशों से होकर जाता है। इस कारण उत्पादन का मूल्य भी बढ़ गया। अब ५ साल के सतत प्रयत्नों के बाद पश्चिमी बंगाल और आसाम के बीच बिहार से होकर एक नया रेल-मार्ग बना दिया गया है।

भारत सरकार ने भारतीय चाय लाइसेंस समिति की सलाह से सन् १९५२–५३ में चाय की निर्यात मात्रा ४५,२७,२०,०२१ पौंड निर्धारित की थी। यह मात्रा भारत की साधारण वार्षिक निर्यात मात्रा की १३० प्रतिशत है। परन्तु सितंबर-अक्टूबर सन् १९५२ में भारत सरकार ने 'अन्तर्राष्ट्रीय चाय प्रसार समिति' से अपने को अलग कर लिया। भारत सरकार ने खर्च में बचत करने के ध्येय से ही यह कदम उठाया परन्तु इससे चाय उद्योग पर एक भारी बोझ आ पड़ा है। एक तो पिछले १० सालों से इस साल चाय की कहीं अधिक उत्पत्ति हुई है, दूसरे, भारतीय चाय के प्रसार व प्रचार के लिये एक नई संस्था बनानी होगी। इसमें कुछ समय लगेगा और भय है कि इसी बीच अन्य चाय उत्पादक देश अन्तर्राष्ट्रीय मंडियों पर कब्जा न कर लें। ऐसा हो जाने पर भारतीय चाय उद्योग को भीषण स्पर्धा का सामना करना होगा जिसके लिये वर्त्तमान भारतीय चाय उद्योग तैयार नहीं है।

रेशम उद्योग

बहुत पहले भारत में रेशम का धंधा बड़ा समृद्ध व उन्नत था। सोलहवीं व सत्रहवीं सदी में भारत और विशेषकर बंगाल का रेशम के उत्पादन व व्यापार में बड़ा ऊंचा स्थान था। परन्तु इटली व जापान के रेशमी धागे व वस्त्र की स्पर्धा के कारण भारतीय रेशम उद्योग का ह्रास हो गया। पिछले कुछ दिनों से चीन का रेशम व कृत्रिम रेशम की वस्तुएं बाजार में आने लगी हैं। फलतः गिरते हुए भारतीय रेशम उद्योग को पनपने का कोई मौका ही नहीं मिला है।

कच्चा रेशम और इसके उत्पादन क्षेत्र—भारत में कच्चा रेशम बहुत पैदा होता है। देश के विभिन्न भागों में रेशम के कीड़ों को पाला जाता है और उनकी सहायता से अनेक प्रकार का रेशम तैयार किया जाता है। इनमें शहतूत का रेशम, टसर, अंडी और मूंगा का स्थान व नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। करीब ८०,००० एकड़

भूमि पर शहतूत के वृक्ष उगाये जाते हैं और इसमें से २०,००० एकड़ मद्रास में हैं तथा १५०० एकड़ बंगाल में।

कच्चा रेशम तैयार करने के लिये देश के तीन भाग खास तौर पर महत्वपूर्ण हैं—(१) मैसूर पठार का दक्षिणी भाग जहां का केन्द्र कोयम्बटूर है; (२) पश्चिमी बंगाल के मुर्शिदाबाद, माल्दा और वीरभूम जिले, और (३) काश्मीर और जम्मू तथा पूर्वी पंजाब के मिले हुए जिले। इन प्रदेशों के अतिरिक्त छोटा नागपुर व उड़ीसा और मध्य प्रदेश के कुछ भागों में एक विशेष प्रकार के कीड़ों को पाल कर टसर का रेशम तैयार किया जाता है। इसी प्रकार आसाम में अंडी व मूगा रेशम के कीड़ों को पाला जाता है। उत्तरी बिहार से टसर रेशम प्राप्त होता है और भागलपुर इससे कपड़े बुनने का केन्द्र है। परन्तु इन सबमें काश्मीर का क्षेत्र सबसे उच्चकोटि का है। वहां रेशम के कीड़ों को शहतूत के वृक्षों की पत्तियों पर पाला जाता है। राज्य की सरकार के हाथ में ही सारा रेशम उद्योग है और उपज की वस्तुओं का अधिकतर भाग यूरोप के देशों को निर्यात कर दिया जाता है।

भारत का रेशम उद्योग एक राष्ट्रीय सम्पत्ति है और इसमें कुछ विलक्षण विशेषताएं हैं। इसके दो विभाग हैं—(१) रेशम के कोओं (Cocoons) को उत्पन्न करना और (२) उससे कच्चा रेशम तैयार करना तथा विभिन्न गौण वस्तुओं का उपयोग करना। इसमें से पहला काम तो घरेलू धंधे की तरह किया जाता है परन्तु दूसरे विभाग के कार्य सम्पादन के लिये फैक्टरियां हैं।

भारत में रेशम उत्पादक प्रदेश

प्रदेश	लपेटा हुआ रेशम (पौण्ड)	प्रदेश	लपेटा हुआ रेशम (पौण्ड)
शहतूत का रेशम		**टसर रेशम**	
पश्चिमी बंगाल	१०,००,०००	बिहार व उड़ीसा	२,४०,०००
मैसूर	७,४०,०००	मध्य प्रदेश	१,६०,०००
काश्मीर	२,३२,०००	उत्तर प्रदेश	१,०००
मद्रास	९०,०००	**अन्य प्रकार का रेशम**	
आसाम	६,४००	आसाम का मूगा	१,००,०००
पूर्वी पंजाब	१०००	आसाम की अंडी	५०,०००

इस तरह रेशम का उत्पादन इस प्रकार है—

शहतूत का रेशम—२०,६९,४०० पौंड, **टसर का रेशम**—४,०१,००० पौंड, **मुगा व अंडी**—१,५०,०००। इस प्रकार चारों तरह के रेशम का कुल उत्पादन २६,२०,४०० पौंड रहता है।

रेशमी वस्त्र उद्योग—भारत में रेशम से वस्त्र तैयार करने का काम एक घरेलू धंधा है। भारत का अधिकतर रेशम हाथ के करघों द्वारा बुना जाता है। इस समय देश में रेशमी वस्त्र बनाने की ९० मिलें हैं परन्तु इनमें से केवल तीन मिलों में शक्ति द्वारा संचालित करघों पर बुनाई होती है। यह तीनों मिलें बंगाल, मैसूर और बम्बई में केन्द्रित हैं।

देश के मुख्य रेशमी वस्त्र-निर्माण केन्द्र निम्नलिखित हैं—

पूर्वी पंजाब—अमृतसर और जालंधर, **उत्तर प्रदेश**—बनारस, मिर्ज़ापुर और शाहजहांपुर; **पश्चिमी बंगाल**—मुर्शिदाबाद, बांकुड़ा और बिशनपुर; **बिहार**—भागलपुर; **बम्बई**—अहमदाबाद, पूना, बेलगांव, धारवार, हुबली और शोलापुर; **मैसूर**—बंगलौर, **उड़ीसा**—बरहामपुर; **मद्रास**—ट्रिचनापली, सलेम और तन्जोर; **काश्मीर**—श्रीनगर।

भारत के रेशमी वस्त्रों के कुल उत्पादन का दो-तिहाई भाग केवल मैसूर राज्य से प्राप्त होता है। पश्चिमी बंगाल के विभिन्न जिलों के अलग-अलग केन्द्रों में भिन्न-भिन्न प्रकार के रेशमी वस्त्र तैयार किये जाते हैं—बांकुड़ा के सोनामुर्खी और मुर्शिदाबाद के इस्लामपुर में बहुत प्रकार के कमीज के कपड़े तैयार होते हैं। बांकुड़ा के विष्णुपुर और मुर्शिदाबाद के मिर्ज़ापुर केन्द्रों में धोतियां व साड़ियां बनाई जाती हैं। बंगाली जुलाहे देशी व विदेशी दोनों ही प्रकार का रेशम खरीदते हैं। भारतीय रेशम के स्रोत बंगाल, बनारस और सूरत हैं तथा विदेशी रेशम इटली, जापान, फ्रांस, संयुक्त राष्ट्र और ग्रेट ब्रिटेन से आता है।

रेशम का व्यापार—भारतीय रेशम उद्योग की उन्नति के लिये सरकारी सहायता बहुत आवश्यक है। रेशम के जुलाहे बहुत गरीब हैं और इसलिये उचित यन्त्रादि खरीदने से लाचार हैं। मध्यस्थ व्यापारी व आढ़ती भी उन्हें खूब तंग करते हैं और शोषण करते हैं। इन दोषों को केवल सहकारिता द्वारा ही दूर किया जा सकता है।

भारत में रेशम का इतना अधिक उत्पादन होते हुए भी व्यापार बहुत कम है। किसी भी अंतर्राष्ट्रीय मंडी पर भारतीय रेशम का एकाधिपत्य नहीं है। फ्रांस व ग्रेट ब्रिटेन में भारत से कच्चा रेशम मंगवाया जाता है परन्तु बहुत थोड़ी मात्रा में। भारत से रेशम के कोये ही निर्यात कर दिये जाते हैं क्योंकि भारत में रेशम को लच्छियों में इतने खराब तरीके से लपेटा जाता है कि विदेशी राष्ट्र इस काम को खुद ही करना पसन्द करते हैं।

सन् १९५१–५२ में भारत ने ८,६८,४१४ पौंड कच्चा रेशम निर्यात किया। इसकी अपेक्षा सन् १९४९–५० की निर्यात मात्रा ५,६०,९१७ पौंड बहुत कम थी। सन १९५१–५२ में लगभग ३ लाख गज रेशमी वस्त्र भी निर्यात हुआ।

कृत्रिम रेशम या रेओन का रेशा लकड़ी की लुग्दी से तैयार किया जाता है। लकड़ी की लुग्दी को पतला करके महीन छिद्रों से डालते हैं और उसके रेशे बन जाते हैं। रेशों को सूत कातने वाली मशीनों पर कात लिया जाता है। साधारणतया कृत्रिम तरीकों से रासायनिक पदार्थों की सहायता से सेल्यूलूस से तैयार किया हुआ धागा रेओन कहा जाता है।

भारत में इटली, जापान, ग्रेट ब्रिटेन, फ्रांस और अन्य देशों से कृत्रिम रेशम काफी मात्रा में आयात किया जाता है। भारत में इस प्रकार के रेशम की विस्तृत मांग रहती है तथा इस समय देश में इस उद्योग की अनुपस्थिति के कारण इसके विकास की संभावनाएं स्पष्ट हैं। भारत में इस उद्योग के लिये कच्चा माल भी उपलब्ध है।

देहरादून की वन अनुसंधानशाला ने पता लगाया है कि भारतीय घास व बांस को मिला कर तैयार किये गये "फाइब्रो" से बढ़िया कृत्रिम रेशम तैयार किया जा सकता

है। दक्षिण भारत के ट्रावनकोर और मेटूर क्षेत्रों की विस्तृत वनस्पति से "फाइब्रो" तैयार किया जा सकता है। पल्लीवासल जल-विद्युत योजना से सस्ती शक्ति भी पास में मिल सकती है। इसके अलावा देश में कपास तथा सूती गूदड़ बहुत अधिक मात्रा में मिल सकता है। इसे भी रेयोन उद्योग में उपयोग किया जा सकता है। खोज से ज्ञात हुआ है कि कपास के गूदड़ से कृत्रिम रेशम का उत्पादन लकड़ी की लुग्दी की अपेक्षा कहीं अधिक होता है। यदि काष्ठमांड से ३० प्रतिशत कृत्रिम रेशम प्राप्त होता है तो कपास से ८५ प्रतिशत। इसमें प्रयोग किये जाने वाले प्रमुख रसायन जैसे कास्टिक सोडा, कारबन डिसलफेट, अमोनियम सलफेट, सफेद साबुन, धोने का तेजाब आदि भारत में खूब मिलते हैं। चूंकि इस उद्योग को साफ पानी की आवश्यकता होती है इसे भारत की विभिन्न नदियों के किनारों पर स्थापित किया जा सकता है। विशेषकर वहां जहां यातायात की सुविधाएं हैं।

- आजकल भारत वस्त्र बनाने के लिये रेओन के धागे का आयात करता है। इस समय रेओन से वस्त्र तैयार करने के कोई ३०० कारखाने हैं। और देश में सूती वस्त्र व्यवसाय के वाद इसका स्थान आता है। परन्तु सब से बड़ी समस्या रेओन के धागे को तैयार करने की है। इस समय कृत्रिम रेशम के तीन कारखाने हैं—ट्रावनकोर, हैदराबाद और बम्बई में।

भारत के कृत्रिम रेशम की कुवेत, अफगानिस्तान, पाकिस्तान, लंका और सूडान में बड़ी मांग रहती है। सन् १९५१–५२ में भारत से १ करोड़ १ लाख रुपये मूल्य का ८४ लाख गज कृत्रिम रेशम का कपड़ा निर्यात किया गया।

ऊनी वस्त्र उद्योग

संसार की मंडियों में भारत के ऊन को 'पूर्वी भारतीय ऊन' कहते हैं। इस समय भारत में कुल ४०० लाख भेड़ें हैं जो कि उत्तर भारत में ही पाई जाती हैं। देश में प्रतिवर्ष ५५० लाख पौंड ऊन उत्पन्न होता है। परन्तु यह अधिकतर छोटा होता है। यूरोप व आस्ट्रेलिया के ऊन का रेशा इससे बड़ा होता है।

ऊन के प्रमुख उत्पादन क्षेत्र पंजाब का हिस्सार जिला, उत्तर प्रदेश का गढ़वाल, अल्मोड़ा और नैनीताल प्रदेश और राजस्थान का बीकानेर क्षेत्र हैं। जलवायु और भू-रचना के अनुसार भारत के विभिन्न भागों में ऊन का उत्पादन बहुत या कम होता है। जहां भूमि उन्नत नहीं है तथा जलवायु उपयुक्त है जैसे राजस्थान में, भेड़ों को पाला जाता है तथा उनसे ऊन प्राप्त किया जाता है। बंगाल व उड़ीसा में अनुपयुक्त जलवायु के कारण यह उद्योग अविकसित है। गर्म व नम जलवायु में ऊन वाली भेड़ें नहीं पनपतीं। दक्षिणी भारत में भेड़ों की नस्ल इतनी गिर गई है कि उनसे प्राप्त ऊन बाल की तरह होता है।

ऊन का उद्योग—सन् १९५० में ऊनी कपड़े की ३९ मिलें थीं जिन में २५००० दैनिक मजदूर काम करते थे। इनके अलावा बहुत-से प्रदेशों में घरेलू करघों पर ऊन बुना जाता है। भारत में सबसे पहले सन् १८७६ में ऊन की मिलें स्थापित की गईं। ये मिलें पानी व सस्ते मजदूरों की उपलब्धता के कारण कानपुर व धारीवाल में स्थापित की गईं। घरेलू-धंधे की तरह ऊन कातना व उससे वस्त्र तैयार करना भारत में बहुत अर्से से होता आ रहा है परन्तु मिल उद्योग पिछली शताब्दी की देन है।

भारतीय ऊन से कम्बल व कालीन अच्छे बनते हैं और कम्बल व कालीन बनाने का काम कानपुर, मिर्जापुर, आगरा, बंगलौर, श्रीनगर और अमृतसर में केन्द्रित है काश्मीर में शाल-दुशाले बनाना घरेलू उद्योग है। बीकानेर का ऊन सब से अच्छा होता है और इसे मिलों में प्रयोग करते हैं। ऊन के वस्त्र तैयार करने की आधुनिक मिलें कानपुर व धारीवाल में स्थित हैं। इनके लिये आस्ट्रेलिया से ऊन मंगवाया जाता है। साधारणतया प्रतिवर्ष १९२४ लाख पौंड ऊन बाहर से मंगवाया जाता है। यदि देश में भेड़ों को पालने की रीति में सुधार हो जाय और बढ़िया व अधिक साफ ऊन तैयार की जा सके तो भारत की बाहरी आयात पर निर्भरता कम हो जायेगी।

भारत में ऊन का उपभोग और उससे तैयार वस्तुएं—भारतीय ऊनी मिलों में उपयोग किया जाने वाला ऊन चार वर्गों में बांटा जाता सकता है—

(१) **भारतीय सादा ऊन**—

(क) मोटे किस्म का जिससे कालीन व कम्बल बनाये जाते हैं।

(ख) महीन किस्म का जिससे ट्वीड, ओवर कोट का कपड़ा, दन व सर्ज का धागा बनाया जाता है।

(२) **पहाड़ी ऊन**—इससे मामूली मेल के मोजे, मफलर व दस्ताने बनते हैं, और फौज के लिये कम्बल तैयार किये जाते हैं।

(३) **मिश्रित नस्ल की भेड़ों का ऊन**—मध्यम श्रेणी की सर्ज, ट्वीड व बढ़िया ऊनी कपड़ा बनता है।

(४) **मैरीनो ऊन**—इससे फलालेन, ओवर कोट का कपड़ा तथा बहुत बढ़िया कपड़ा तैयार किया जाता है।

भारत में ऊनी वस्त्रों का उत्पादन (प्रतिशत)

कम्बल	४९.६ प्र. श.	ऊन	६.८ प्र. श.
मिल का कपड़ा	२८.७ प्र. श.	अन्य उपयोग	३.३ प्र. श.
कालीन	११.६ प्र. श.		

भारत के ऊनी वस्त्र उद्योग को सबसे बड़ी असुविधा यह है कि भारत में साल के केवल ४ महीनों में ही ऊनी कपड़े पहिने जाते हैं और मिलों को इस मांग की पूर्त्ति के लिये महीनों पहले से माल तैयार करना पड़ता है। कभी-कभी मांग के कम हो जाने से मिलों को हानि भी उठानी पड़ती है। अतः भारत में ऊनी वस्त्र उद्योग के व्यवसायियों ने एक संघ स्थापित किया है ताकि आपस में स्पर्धा न होने पावे।

भारतीय ऊन का व्यापार—भारतीय ऊन को बाहर भी निर्यात किया जाता है। ग्रेट ब्रिटेन, संयुक्त राष्ट्र, कनाडा और आस्ट्रेलिया को भारत से कालीन, दरियां, मोटे कम्बल व शाल दुशाले निर्यात किये जाते हैं। निर्यात व्यापार की सबसे बड़ी समस्या यह है कि भारतीय ऊन का उचित वर्गीकरण नहीं किया जाता। इससे भारतीय ऊन का अन्य राष्ट्रीय मंडियों में मूल्य कम लगता है।

ऊनी वस्तुओं का निर्यात व्यापार

वस्तुएं	१९४९-५०	१९५०-५१	१९५१-५२
कालीन व दरियां (लाख पौंड में)	.१०४	१४०	११६
थान के कपड़े (गज में)	३१,८८७	२१,२२५	६३,७८८
शाल-दुशाले (संख्या)	४८,०७१	५६,००८	३९,३०९
अन्य प्रकार की ऊनी वस्तुएं (लाख पौंड में)	१३	१५	१२
सब प्रकार के ऊन की वस्तुओं का कुल मूल्य (करोड़ रुपये में)	३.६	६.०	६.४९

लोहा व इस्पात उद्योग

ब्रिटिश कामनवेल्थ में लोहे के उत्पादन के दृष्टिकोण से भारत का दूसरा नम्बर है। केवल ग्रेट ब्रिटेन का उत्पादन इससे बढ़कर है। यद्यपि भारत में लोहे के उत्पादन को फ्रांस या संयुक्त राष्ट्र के उत्पादन के समान नहीं कह सकते परन्तु भारत में निहित विस्तृत लौह भंडार के आधार पर यह कहा जा सकता है कि भविष्य में लोहे व इस्पात के प्रमुख उत्पादक देशों में भारत का स्थान काफी ऊंचा हो जायेगा ।

भारत में कच्चा लोहा—भारत में कच्चे लोहे की खानें बिहार, उड़ीसा, मध्य भारत, मैसूर व मद्रास में पाई जाती हैं। लोहे की सबसे प्रमुख पट्टी उड़ीसा के मयूरभंज राज्य में गुरुमाहीसनी से क्योनजहार और बोनाई होती हुई सिंहभूम के कल्हान प्रदेश तक जाती है। बोनाई राज्य में कामपिलाई से सिंहभूम जिले में गुआ के समीप तक ३० मील के क्षेत्र में फैली हुई पहाड़ों की श्रृंखला में लोहे का विशाल भंडार है और कुल पट्टी का ६० प्रतिशत लोहा इसी ३० मील लम्बी पहाड़ी से प्राप्त होता है।

लोहे की खान का महत्व केवल उत्पादन की मात्रा पर ही निर्भर नहीं रहता बल्कि स्थिति व खान खोदने की सुविधा का भी विशेष प्रभाव पड़ता है। लोहा गलाने में प्रयोग की जाने वाली विभिन्न धातुएं भी लोहे की खानों के समीप ही पाई जाती हैं। मैंगनीज सिंहभूम क्षेत्र में ही उपलब्ध है और पास में ही डालमाइट व चूने के पत्थर भी पाये जाते हैं ।

भारत के विभिन्न उद्योग-धंधों में लोहे व इस्पात के उद्योग का स्थान बड़ा ही महत्वपूर्ण है। इसमें लगभग ३५००० मनुष्य लगे हुए हैं। यद्यपि लोहा व इस्पात उद्योग की पहली कम्पनी रानीगंज के पास सन् १८७५ में ही स्थापित कर दी गई थी परन्तु वास्तविक विकास सन् १९०८ से ही हुआ जब कि सिंहभूम क्षेत्र में साक्षी स्थान पर टाटा कम्पनी खुली। इस समय लोहा व इस्पात उद्योग में लगी हुई विविध कम्पनियां निम्नलिखित हैं—

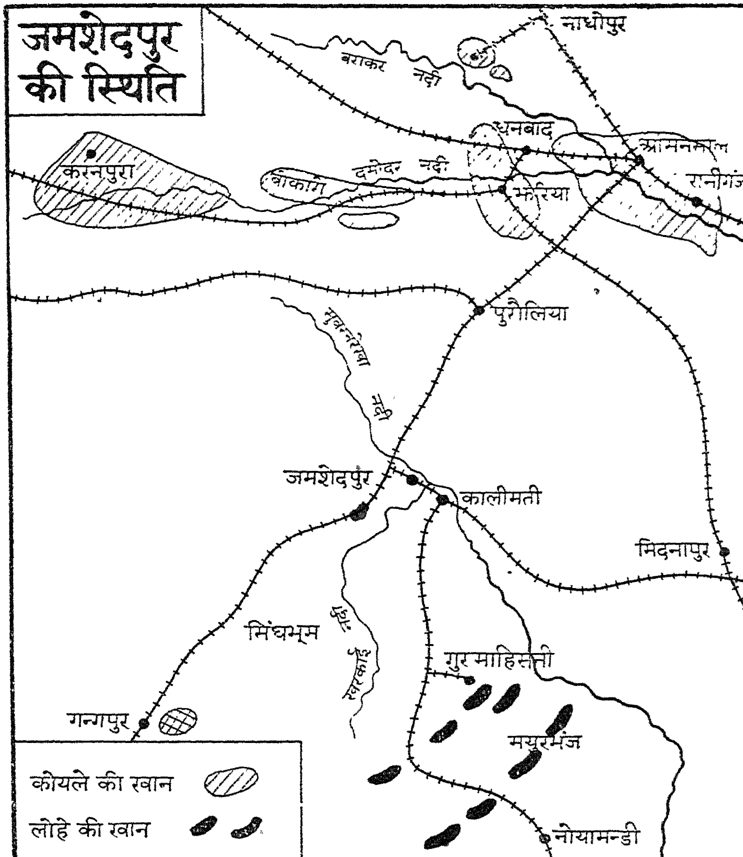
(१) **टाटा लोहा व इस्पात कम्पनी**—उड़ीसा के मयूरभंज राज्य और मध्य प्रदेश के रायपुर जिले में कोयले की खानों पर इसका अधिकार है। मैसूर की मैगनेसाइट व क्रोमाइट तथा झरिया की खानों के कोयला पर भी इसका अधिकार है।

(२) **भारतीय लोहा व इस्पात कम्पनी**—इसके कारखाने हीरापुर व कुल्टी में

हैं और यहां पिग आयरन, इस्पात व मैंगनीज मिश्रित लोहा तैयार किया जाता है ।

(३) **बंगाल का इस्पात कार्पोरेशन**—इसका कारखाना बर्नपुर में है और इसे क्योनजहार की खानों से कच्चा लोहा प्राप्त होता है ।

(४) **मैसूर लोहा उद्योग**—इसका कारखाना भद्रावती में है । इधर कुछ दिनों से प्रथम तीनों कम्पनियों को एक में मिला देने की योजना पर विचार किया जा रहा है । ऐसा करने का उद्देश्य देश के उत्पादन में वृद्धि करना और उद्योग संचालन में कुशलता लाना है ।



चित्र नं० ५३—जमशेदपुर की स्थिति कच्चे माल के दृष्टिकोण से बड़ी अच्छी है । उत्तर में कोयले की खानें और दक्षिण-पूर्व में लोहे की खानें ध्यान देने योग्य है ।

इस समय देश के लोहा व इस्पात उद्योग में भारी वस्तुएं नहीं तैयार की जा सकतीं । उच्चकोटि का इस्पात, कांटे-छुरी, रेल के इंजिन व विभिन्न प्रकार की मशीनों का उत्पादन इस समय नहीं के बराबर है । यद्यपि टाटा कम्पनी में और चितरंजन लोकोमोटिव वर्क्स में इस ओर प्रयत्न किया जा रहा है परन्तु अभी तक कोई विशेष उल्लेखनीय प्रगति नहीं

हो पाई है। इस समय इस उद्योग की प्रमुख वस्तुएं पिग आयरन, लोहे की छड़ें, इस्पात के नल, टीन की चद्दरें, इनामल्ड की चीजें, तार, कीली व रेल के डब्बे आदि हैं। भारत में पिग आयरन तैयार करने की असाधारण सुविधाएं हैं और संसार में भारत के पिग आयरन की उत्पादन मात्रा सबसे अधिक और मूल्य सबसे कम रहता है। टाटा कम्पनी में देश का ७० प्र. श. पिग आयरन तैयार किया जाता है। भारत के लोहा व इस्पात उद्योग को सरकार की ओर से संरक्षण प्राप्त है और देश के लिये आधार वस्तुएं इसी उद्योग से प्राप्त होती हैं।

निर्यात व्यापार—भारत से बहुत-सा पिग आयरन व इस्पात की वस्तुएं निर्यात की जाती हैं। निर्यात का मुख्य बन्दरगाह कलकत्ता है परन्तु मद्रास से भी काफी मात्रा में इस्पात व पिग आयरन निर्यात किया जाता है। ग्रेट ब्रिटेन, संयुक्त राष्ट्र, जापान और चीन भारत से पिग आयरन मंगवाते हैं। ग्रेट ब्रिटेन और जापान को इस्पात भेजा जाता है और फिर वहां विभिन्न वस्तुएं तैयार की जाती हैं।

पिछले तीन साल से भारत से जापान को पिग आयरन की निर्यात की मात्रा बराबर घटती जा रही है।

वर्ष	निर्यात की मात्रा (टन में)
१९४९-५०	२६७७३
१९५०-५१	२३,७९६
१९५१-५२	९,४२३

सन् १९५२-५३ के प्रथम तीन महीनों में पिग आयरन जापान बिल्कुल नहीं भेजा गया। यही हाल ग्रेट ब्रिटेन और संयुक्त राष्ट्र के बारे में भी सही है। सन् १९४९-५० में भारत से ग्रेट ब्रिटेन ने ४२७०८ टन पिग आयरन प्राप्त किया था परन्तु उसके बाद से पिग आयरन का जाना बिल्कुल ही बन्द हो गया है। इसके विपरीत संयुक्त राष्ट्र अमरीका ने सन् १९४९-५० में तो पिग आयरन का आयात नहीं किया परन्तु सन् १९५०-५१ और सन् १९५१-५२ में भारत से क्रमशः २९४६० टन और ५१५३ टन पिग आयरन भेजा गया। सन् १९५२-५३ के प्रथम तीन महीनों में पिग आयरन का निर्यात बिल्कुल भी नहीं हुआ।

इस घटते हुए निर्यात का प्रधान कारण यह है कि भारतीय लोहा-उद्योग में इसकी मांग बहुत बढ़ गई है।

भारत में लोहे व इस्पात का उत्पादन

	१८३८-३९	१९४६-४७	१९४८-४९	१९५१-५२
पिग आयरन	१५७६	१३५६	१५७२	१७०४
ढला हुआ लोहा	८८	१२२४	१३८०	१४८८
इस्पात के ढोके	९७७	—	—	—
अर्ध इस्पात	७९१	८७२	—	१२४८
तैयार पका हुआ इस्पात	७२६	९९०	१०४१	१०४५

भारत में इस्पात की वार्षिक मांग २५ लाख टन रहती है परन्तु देश में इस्पात का उत्पादन केवल १० लाख टन है।

उत्पादन केन्द्र—जमशेदपुर टाटा कम्पनी का केंद्र है और इस्पात उत्पादन के लिये देश में सबसे प्रमुख है। यह छोटा नागपुर प्रदेश में कलकत्ते से १५६ मील की दूरी पर स्थित है। करीब ५० मील की दूरी पर गुरुमाहीमनी की लोहे की खानों से इसे कच्चा लोहा प्राप्त करने की सुविधा है। यहां के लोहे में ६० प्र. श. से अधिक धातु होती है और अपेक्षाकृत सस्ता पड़ता है। सिंहभूम की सलाइपत, बदामपहार और नोआगुन्डी की खानों से भी कच्चा लोहा प्राप्त किया जाता है। १०० मील की दूरी पर स्थित झरिया की खान से कोयला आता है। नोआमुन्डी से ३० मील दक्षिण में मैंगनीज़ भी उपलब्ध है। चूने का पत्थर व डालमाइट भी पास में ही पाया जाता है—दक्षिणी-पश्चिमी सिंहभूम की ब्रह्मानी घाटी में पानपोश स्थान में।

यह केन्द्र आस-पास के भागों से रेलों द्वारा संबंधित है; अतएव यातायात में अधिक खर्च नहीं पड़ता। मध्य प्रदेश और छोटा नागपुर में सस्ते मजदूर भी मिल जाते हैं। सुबरनरेखा नदी नाव्य नहीं है परन्तु इससे उद्योग के लिये पानी मिल जाता है। गर्मियों में यह नदी सूख जाती है और इसलिये बांध बनाकर कराकाई नदी के पानी को इकट्ठा कर लिया जाता है।

टाटा आयरन स्टील कम्पनी का उत्पादन

(हज़ार टन)

	१९४७	१९४८		१९४७	१९४८
कोक	९३३	९६०	इस्पात के ढोके	९०१	१०२९
पिग आयरन	९५६	१०७५	इस्पात की वस्तुएं	६६४	७५३

पूर्वी रेल-मार्ग व इसकी शाखाएं इस केन्द्र को कच्चा माल पहुंचाती हैं और तैयार माल बाहर ले जाती हैं। यहां लगभग ४१००० लोग काम करते हैं। **बर्नपुर** लोहे व इस्पात का दूसरा महत्वपूर्ण केन्द्र है। यह कलकत्ता से १४२ मील दूरी पर स्थित है और भारतीय लोहा व इस्पात कारपोरेशन के हाथ में इसका संचालन है। सन् १९३६ में बंगाल आयरन कम्पनी को इसमें मिला दिया गया है। सन् १९३७ में दोनों मिली हुई कम्पनियों के द्वारा पिग आयरन का उत्पादन ७ लाख १३ हज़ार टन था। यहां पर विविध प्रकार की वस्तुएं ढालने के लिये भी लोहा तैयार किया जाता है।

भद्रावती—मैसूर में कच्चे लोहे की खानें बाबाबूदन पहाड़ियों और शिमोगा जिले में पाई जाती हैं। लोहे व इस्पात का उद्योग भद्रावती में केन्द्रित है। शिमोगा व कादूर जिलों के विस्तृत जंगलों से लकड़ी का कोयला मिल जाता है। भांडी गुड्डा से चूने का पत्थर प्राप्त होता है। प्रति वर्ष रेलों व अन्य उद्योगों के लिये २५० टन इस्पात की ढाली हुई वस्तुएं यहां तैयार की जाती हैं। इस कारखाने की वार्षिक उत्पादन शक्ति २५,००० टन है।

मद्रास में लोहे व इस्पात उद्योग की विशेष सम्भावनाएं हैं। सलेम व त्रिचनापली के

जिलों में उच्चकोटि के लोहे का अटूट भंडार है। इन्हीं मिलों में अन्य धातुएं भी मिल जाती हैं। कोयला अवश्य दूरी पर उपलब्ध है परन्तु लकड़ी के कोयले व जल-विद्युत की सुविधा है। लोहा व इस्पात उद्योग के लिये कुछ सहायक पदार्थों की भी आवश्यकता होती है। चूने का पत्थर व डालमाइट सलेम, त्रिचनापली व कोयम्बटूर जिलों में मिलता है और लोहे की खानों के साथ-साथ अग्नि मिट्टी (Fire clay), मैगनेसाइट, क्रोमाइट और अन्य विविध वस्तुएं पाई जाती हैं।

इस्पात उद्योग की संभावनाएं—दूसरे महायुद्ध से भारतीय इस्पात उद्योग को बड़ा प्रोत्साहन मिला और इसके फलस्वरूप इस उद्योग में विशेष समृद्धि हुई। उत्तम तैयार किये हुए इस्पात के उत्पादन की मात्रा दूनी हो गई। इसके अलावा इस्पात की विविध वस्तुएं भी तैयार की जाने लगीं। बन्दूक की गोलियों के लिये लोहे के छड़, गोली-निरोधक बख्तरबन्द चद्दरें, बन्दूक की नलियां, उत्तम इस्पात से मशीनों के पुर्जे तथा सफेद चमकदार इस्पात से डाक्टरी व चीर-फाड़ के यन्त्र बनाये जाने लगे हैं।

भारत के लोहा व इस्पात उद्योग का भविष्य बड़ा उज्ज्वल है। यहां पर इस उद्योग के लिये कुछ विशेष सुविधाएं प्राप्त हैं—(१) देश की प्राकृतिक सम्पत्ति व साधन अपार हैं। इतने अपार प्राकृतिक साधन और किसी पूर्वी राष्ट्र के पास नहीं है। (२) हिन्द व प्रशांत महासागरों में स्थित मंडियों को यहां का माल आसानी से भेजा जा सकता है। (३) भारतीय लोहा गलाने व इस्पात बनाने में बड़े कुशल होते हैं। (४) भारत से पिग आयरन के निर्यात में भारतियों की व्यापार कुशलता भी स्पष्ट है। (५) भारत में स्वयं इस्पात की वस्तुओं की मांग दिन-पर-दिन बढ़ती जा रही है और विश्व व्यापार के ठीक स्तर पर आ जाने से भारतीय इस्पात वस्तुओं की खपत विदेशों में भी हो सकेगी।

कागज़ बनाने का उद्योग

भारत में मशीनों से कागज तैयार करने का उद्योग सन् १८६७ में प्रारम्भ हुआ जब हुगली नदी के किनारे इसका पहला कारखाना स्थापित किया गया। इस समय देश में कागज़ बनाने की १८ मिलें हैं। कागज़ बनाने के उद्योग की स्थिति के लिये निम्नलिखित सुविधाओं का उपस्थित होना आवश्यक होता है:—

(१) हल्के साफ पानी की बहुलता।

(२) शक्ति के साधनों से समीपता।

(३) रासायनिक वस्तुओं का समीप में ही उपलब्ध होना।

(४) कागज़ उपभोगी मंडियों का पास में ही होना।

(५) किसी बन्दरगाह या व्यापारिक केन्द्र का समीप होना ताकि काष्ठमंड व अन्य कच्चा माल लुगदी बनाने के लिये आसानी से मिल सके।

उत्पादन केन्द्र—कलकत्ता व उसके आसपास के प्रदेश में भारत का कागज़ उद्योग केन्द्रित है। ट्रावनकोर में पुनालर, उत्तर प्रदेश में सहारनपुर व लखनऊ और बम्बई में बम्बई व पूना कागज़ की मिलों के अन्य केन्द्र हैं।

भारत में कागज़ की मिलें व उनके केन्द्र

राज्य	मिलों की संख्या	केन्द्र
पश्चिमी बंगाल	४	कांकीनारा, टीटागढ़, रानीगंज, नैहाटी
बम्बई	३	बम्बई, पूना और अहमदाबाद
उत्तर प्रदेश	२	लखनऊ, सहारनपुर
बिहार	१	डालमियानगर
उड़ीसा	१	ब्रजराजनगर (सम्बलपुर)
पूर्वी पंजाब	१	जगाधरी (अम्बाला)
मैसूर	१	भद्रावती
ट्रावनकोर	१	पूनालर
हैदराबाद	१	सीरपुर
मद्रास	१	राजामुंदरी (पूर्वी गोदावरी)

देश में बंगाल की मिलें सबसे महत्वपूर्ण हैं और एक समय देश के उत्पादन का ८० प्रतिशत भाग इन्हीं मिलों से प्राप्त होता था। पश्चिमी बंगाल की कागज़ की मिलों में बांस व सबाई घास से लुग्दी तैयार की जाती है। मध्य प्रदेश और बरार मे सबाई घास मिल जाती है और आसाम व पश्चिमी बंगाल में बांस खूब होता है। सन् १९५० में बंगाल की इन मिलों में १० हज़ार मजदूर काम करते थे।

बम्बई की सबसे बड़ी मिल पूना में है। बम्बई नगर की मिल में दफ्ती बनाई जाती है। साधारणतया भारतीय मिलों का अधिकतर उत्पादन लिखने व छपाई के कागज़ का है। सामान बांधने का कागज़, बढ़िया कागज़ व दफ्ती भी थोड़ी बहुत मात्रा में बनाई जाती है।

भारतीय कागज़ उद्योग की समस्याएं—भारत की कागज़ की मिलों में एक लाख से अधिक मनुष्य लगे हुए हैं। प्राय: विदेशों से लुग्दी का आयात किया जाता है। यहां पर काष्ठमंड पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध नहीं होता। यूरोप और अमरीका में नुकीली पत्ती वाले जंगलों में नम्र लकड़ी के वृक्षों से लुग्दी तैयार की जाती है। भारत में नुकीली पत्ती के जंगल जिनमें चीड़, स्प्रूस व फर के वृक्ष पाये जाते हैं हिमालय प्रदेश में स्थित हैं। यातायात की असुविधाओं के कारण उनमें लकड़ी काटने का धंधा असंभव-सा है। हां, काश्मीर राज्य के चीड़ के पेड़ों से लुग्दी बनाई जा सकती है। प्रतिवर्ष ४ लाख टन लकड़ी कागज के कारखानों में खप जाती है। देहरादून की वन अनुसंधानशाला में गन्ने से रस निकालने के बाद बचे हुए बगास से कागज़ बनाने का प्रयोग हो रहा है। उत्तरी भारत में सबाई घास खूब होती है और पूर्वी पंजाब व उत्तर प्रदेश में इसी से लुग्दी तैयार की जाती है। मामूली कागज तैयार करने के लिये कपड़े का गूदड़, सन व पटुआ, पटसन का शेषांश तथा रद्दी कागज से बनी हुई लुग्दी का प्रयोग किया जाता है। बंगाल में नैहाती के कारखाने में बांस की लुग्दी प्रयोग की जाती हैं।

आजकल अधिकतर भारतीय मिलें बांस व सबाई घास से कागज तैयार करती हैं। केवल १० प्र. श. काष्ठमंड प्रयोग किया जाता है।

भारत में बांस का अपार भंडार है और कागज उद्योग के क्षेत्रों में इसके विस्तृत वन हैं। अतः भारत में बांस की लुग्दी से सभी मिलों का काम चल सकता है और फिर निर्यात भी की जा सकती है। आसाम, मद्रास और बम्बई में इसका विस्तार बहुत अधिक है। बांस की कटाई हर चार वर्ष के बाद हो सकती है जबकि लकड़ी में ६० वर्ष का औसत रहता है। बांस के काटे हुए तने से ४ साल तक लुग्दी तैयार की जा सकती है। इस प्रकार यह इसकी सबसे बड़ी सुविधा है। सबाई घास की अपेक्षा इससे तैयार हुई लुग्दी मात्रा में अधिक और दाम में सस्ती पड़ती है। परन्तु बांस का कागज सबाई घास के कागज की अपेक्षा मामूली होता है। देश में उच्चकोटि के कागज की मांग कम होने से बांस की लुग्दी का भविष्य बड़ा उज्ज्वल है। बहुत दिनों के वैज्ञानिक अन्वेषणों के फलस्वरूप भारत में कागज उद्योग में गन्ने के रस निकालने के बाद बचे हुए हिस्से से कागज बनना सम्भव हो सका है। इस प्रकार की कागज फैक्टरी बिहार के डालमिया नगर में है।

यह तो हुई कच्चे माल की बात। इसके अलावा देश में कागज के उद्योग को कुछ असुविधाओं का सामना करना पड़ता है। कागज के उद्योग में कास्टिक सोडा, सोडा एश, नमक की पट्टियां, धोने का पाउडर जैसे रासायनिक पदार्थों और रंगों की आवश्यकता पड़ती है। भारत में इन वस्तुओं को बाहर से मंगवाना पड़ता है अतः अधिक मूल्य देना पड़ता है और फिर बन्दरगाहों से भीतरी भागों में स्थित मिलों तक ले जाने में काफी खर्चा पड़ता है।

शक्ति की समस्या भी विकट है। बिहार-बंगाल में दामोदर की घाटी में कोयले की खानों से कोयला मंगवाने में भी काफी खर्च होता है। लड़ाई से पहले २५ लाख हन्डरवेट कागज बाहर से भारत में आयात होता था। अतः देशी उद्योग को विदेशी कागज से स्पर्धा भी करनी पड़ती थी। परन्तु विदेशी कागज की स्पर्धा के प्रश्न को बहुत महत्व नहीं देना चाहिए क्योंकि नार्वे व स्वीडन जो विदेशी मंडियों के लिये ही कागज तैयार करते हैं, भारत में कागज नहीं भर सकते।

भारत में घास या बांस की लुग्दी से छपाई का (अखबारी) कागज नहीं बन सकता। अतः देश के अखबारी कागज की मांग-पूर्ति विदेशी आयात द्वारा ही की जाती है। भारत में अखबारी कागज बनाने वाली मिलों को स्थापित करना बहुत जरूरी है और वैज्ञानिक प्रयोगों द्वारा यह देखा गया है कि स्प्रूस, शहतूत और पुला की लकड़ी से अखबारी कागज की लुग्दी तैयार की जा सकती है। भारत के पूर्वी पंजाब, उत्तर प्रदेश और काश्मीर राज्यों के पर्वतीय ढालों पर स्प्रूस के वृक्ष पाये जाते हैं। निकटवर्ती प्रदेशों में युद्धकालीन कटाव के कारण अब उन प्रदेशों में जहां पर यातायात के साधनों द्वारा पहुंचा जा सकता है स्प्रूस के वृक्ष समाप्त से हो गये हैं। शहतूत के पेड़ जिनसे कागज की लुग्दी तैयार की जाती है उष्णकटिबन्धीय जलवायु में खूब उगता है जबकि स्प्रूस व फर के वृक्ष को पूरा बढ़ने में ६० या ७० वर्ष तक लग जाते हैं. शहतूत का पेड़ ७ से १० वर्ष में तैयार हो जाता है। देहरादून वन अनुसंधानशाला में किये गये प्रयोगों से स्पष्ट है कि इससे तैयार किया हुआ कागज आयात किये गये अखबारी कागज के समान ही मजबूत होता है। बहुत शीघ्र ही भारत

में अखबारी कागज के बनाने का काम शुरू किया जावेगा। इस समय भी करीब ३५००० टन अखबारी कागज प्रतिवर्ष भारतीय मिलें तैयार करती हैं। अन्य प्रकार के कागज की स्थिति निम्न तालिका से स्पष्ट हो जावेगी:—

भारत में बनने वाले कागज़ का प्रकार

	(प्रतिशत)
सफेद व बिना धोया हुआ छपाई वाला कागज	३० प्र. श.
लिखने वाला कागज व लिफाफे	१३ प्र. श.
सामान बांधने का कागज	१८ प्र. श.
गत्ते व दफ्ती	११ प्र. श.
अखबारी कागज, रंगीन कागज, बादामी कागज, सोख्ता आदि	२८ प्र. श.

निकट भविष्य में भारत में बहुमूल्य आर्ट पेपर, ब्ल्यू मैच पेपर आदि बनने की आशा नहीं की जा सकती। हाल में ही हुगली पर त्रिवेणी स्थान में रेखा-चित्रों का महीन 'टीशू' (Tissue) कागज बनाने की मिल खोली गई है। मध्य प्रदेश में अखबारी कागज की एक मिल खोली जा रही है। अखबारी कागज की मिलों के लिये अन्य उपयुक्त क्षेत्र काश्मीर, हैदराबाद और टेहरी गढ़वाल प्रदेश हैं।

भारत ग्रेट ब्रिटेन, नार्वे, स्वीडन, जर्मनी, जापान व हालैण्ड से कागज मंगवाता है। आयात की कुल मात्रा का एक-चौथाई भाग अकेले ग्रेट ब्रिटेन से ही आता है। दूसरे महायुद्ध काल में लड़ाई के कारण इन देशों से आयात बन्द हो गया था और इस प्रकार भारत के कागज उद्योग को उन्नति करने का बड़ा अच्छा अवसर मिला। भारतीय कागज उद्योग की प्रगति का अन्दाज़ इसी बात से लगाया जा सकता है कि सन् १९३३ में कागज का कुल उत्पादन ५५,००० टन था और २० वर्ष के अन्दर ही सन् १९५० में उत्पादन की यह मात्रा बढ़कर एक लाख ४ हजार टन हो गई। सन् १९५१-५२ में भारत की मिलों ने १ लाख ३२ हजार टन कागज तैयार किया।

इस प्रकार भारत में यद्यपि उत्पादन की मात्रा बहुत बढ़ गई है परन्तु साथ-साथ मांग में भी वृद्धि हुई है। अतः देश की कुल मांग-पूर्ति के लिये यहां का उत्पादन काफी नहीं होता और इसीलिए पिछले कुछ दिनों से भारत में हाथ के बने हुए कागज की खपत बढ़ गई है।

कुछ समय के अन्दर भारत का यह उद्योग अवश्य इतनी उन्नति कर लेगा कि इसके द्वारा न केवल घरेलू मांग की पूर्ति ही हो सकेगी बल्कि विदेशों को भी कागज निर्यात किया जायेगा। बर्मा, लंका, मलाया और पूर्वी अफ्रीका में कागज की मिलें नहीं हैं। इसलिये इन प्रदेशों में भारत के निर्यात व्यापार के लिये सम्यक संभावनाएं हैं।

रासायनिक उद्योग

भारत में इस समय विभिन्न रसायन तैयार करने की ३५ मिलें हैं। पिछले कुछ सालों में रासायनिक उद्योग ने विशेष प्रगति की है। अब कई प्रकार की वस्तुएं भी बनने लगी हैं। इनमें से कुछ वस्तुएं तो खेती व अन्य उद्योग-धंधों में प्रयोग की जाती हैं और कुछ जनता के दैनिक उपभोग में आती हैं।

रासायनिक उद्योग से बहुत से उद्योग-धंधों व खेती के लिये आवश्यक पदार्थ प्राप्त होते हैं। साबुन, चमड़ा, शीशा, रंग, वार्निश, दवाइयां, रबड़ आदि के कारखानों में भांति-भांति के रसायनों की आवश्यकता होती है और उनकी अनुपस्थिति में ये उद्योग-धंधे काम नहीं कर सकते।

भारत के रासायनिक उद्योग को तीन वर्गों में बांटा जा सकता है—

१. भारी रसायन उद्योग

२. कोलतार से रसायन उत्पादन

३. बिजली से रसायन बनाना

भारी रसायन उद्योग में अधिकतर गन्धक व उसकी मिश्रित वस्तुएं, हाइड्रोक्लोरिक एसिड, सोडा एश, कास्टिक सोडा व रासायनिक खादें बनाई जाती हैं। इनका विशेष उपयोग विभिन्न उद्योग-धंधों में किया जाता है और यदि देश के दूसरे उद्योग-धंधे काफी उन्नत हैं तो इन रासायनिक पदार्थों की बड़ी मांग रहती है। वास्तव में दूसरे महायुद्ध काल में ही भारत के भारी रसायन उद्योग की नींव पड़ी। युद्ध के कारण आयात कम हो गया, जहाजों द्वारा यातायात की सुविधाएं थोड़ी रह गयीं और साथ-साथ देश के अन्य उद्योग-धंधों के बढ़ जाने से रासायनिक पदार्थों की मांग में काफी वृद्धि हो गई। अतः इन परिस्थितियों के कारण भारत में रासायनिक पदार्थों के उद्योग को प्रोत्साहन मिला। इस समय कई प्रकार के भारी रसायन बम्बई, कलकत्ता, दिल्ली, कानपुर, अमृतसर, मद्रास व बंगलौर में बनाये जाते हैं परन्तु फिर भी उत्पादन इतना नहीं होता कि देश की मांग पूरी हो सके। वास्तव में भारत की खनिज सम्पत्ति इतनी विविध व विस्तृत है कि केवल नमक, चूने के पत्थर, जिप्सम, बाक्साइट, जिरकान, इलमेनाइट, बेरिल, मोनाजाइट, कयोलिन आदि खनिज पदार्थों के आधार पर अनेक बड़े-बड़े कारखानों में विभिन्न रसायन तैयार किये जा सकते हैं। परन्तु जहां यह सुविधा है वहां एक दोष भी है। शक्ति के दृष्टिकोण से समस्या बड़ी गहन है। केवल बंगाल को छोड़कर देश के अन्य किसी भाग में सस्ता व उत्तम प्रकार का कोयला नहीं मिलता। दिल्ली, मद्रास, बम्बई और बंगलौर में यह समस्या और भी विकट हो जाती है। इस समय दक्षिण की जल-विद्युत योजनाओं में कार्य-विस्तार की आवश्यकता है ताकि उनसे सस्ती जल-विद्युत मिल सके। दूसरी बड़ी असुविधा यह है कि रासायनिक उद्योग की मशीनें भारत में नहीं बनतीं परन्तु प्रयत्न करने पर कुछ छोटी-मोटी मशीनें तो देश में अवश्य ही बनाई जा सकती हैं।

कोलतार का रसायन उत्पादन—कोलतार से बेन्जाल, अंथ्रासीन और अंथ्रासीन तेल प्राप्त होता है। ये तीनों ही वस्तुएं रंग बनाने, गोला बारूद तैयार करने तथा मिठाई में डालने व सूंघने के इत्र आदि बनाने में काम आती हैं। प्लास्टिक, दवाइयों व तस्वीर खींचने के विविध रसायन बनाने में भी इनको प्रयोग किया जाता है। इस समय कोलतार का उत्पादन व उससे रसायन बनाने का काम कलकत्ता, कुल्टी, जमशेदपुर, बम्बई, झरिया और हीरापुर में केन्द्रित है।

बिजली से रसायन उत्पादन का काम अभी हाल में ही शुरू हुआ है। इसके द्वारा

हमें कैलशियम कारबाइड, अल्यूमीनियम. मैगनेशियम तथा फेरो मैंगनीज़ जैसी महत्वपूर्ण वस्तुएं प्राप्त होती हैं। इन वस्तुओं का सफल उत्पादन व मूल्य बिजली की शक्ति के उपलब्ध होने पर निर्भर रहता है। विभिन्न जल-विद्युत योजनाओं के पूरा हो जाने पर काफी जल-विद्युत शक्ति मिल सकेगी और फिर विद्युत-रसायन उद्योग को बंगाल, बम्बई, मद्रास, बिहार, मैसूर व उत्तर प्रदेश के विभिन्न केन्द्रों में स्थापित किया जा सकेगा।

रासायनिक पदार्थों का व्यापार—सन् १९४८-४९ में भारत ने ७८ करोड़ २९ लाख रुपये मूल्य के रसायन बाहर से मंगवाये। आयात किये रसायनों में सोडियम के मिश्रण व घोल, सोडियम कारबोनेट, कास्टिक सोडा, एसिड, पोटाशियम के मिश्रण व घोल, गन्धक साफ करने का पाउडर और ग्लीसरीन प्रमुख थे।

भारत में रसायन के आयात में विभिन्न देशों के भाग

(प्रतिशत)

ग्रेट ब्रिटेन	६०	इटली	५
जर्मनी	८	फ्रांस	८
संयुक्त राष्ट्र	१२	जापान	५

शीशा बनाने का धन्धा

भारत में बहुत दिनों से शीशा बनाया जाता है। कई शताब्दी पहले भी भारत में शीशे की भद्दी वस्तुएं व आभूषण बनाये जाते थे और ऐतिहासिक खुदाई में उनके चिन्ह भी मिले हैं। सोलहवीं सदी में भारत में शीशा बनाने का उद्योग काफी उन्नत था और चूड़ियां व छोटी बोतलें बनाई जाती थीं। सन् १९०८ में स्वदेशी आन्दोलन के फलस्वरूप बम्बई में सब से पहला कारखाना खोला गया। श्री ए. डी. काले ने एक-एक पैसा चन्दे में इकट्ठा करके कुछ राजनीतिक नेताओं की सहायता से बेलगांव में "पैसा फंड ग्लास वर्क्स" खोला। थोड़े दिन बाद सन् १९१४-१८ का प्रथम विश्वयुद्ध शुरू हो गया और उसके प्रोत्साहन से यह कारखाना खूब बढ़ गया। इस युद्धकाल में चेकोस्लोवाकिया, बेल्जियम, ग्रेट ब्रिटेन और जर्मनी से शीशे की वस्तुओं का आयात बन्द हो गया। फलतः देश के इस उद्योग में लगे मनुष्यों ने मांग-पूर्ति के लिये, अपना कार्य विस्तार किया।

उत्पादन के केन्द्र—भारत में इस उद्योग का भौगोलिक वितरण बहुत विस्तृत है। देश में इस समय शीशा व शीशे की वस्तुएं बनाने की १३१ मिलें हैं जिनमें १० हजार से अधिक मनुष्य काम करते हैं। इनके अलावा चूड़ियां व मोती बनाने के ९३ कारखाने और हैं। यद्यपि यह भारत का काफी पुराना उद्योग है परन्तु इसका विकास अभी भी अधिक नहीं है। प्रथम विश्वयुद्ध में इसे बढ़ने का कुछ अवसर मिला था परन्तु उसके बाद विदेशी माल फिर आने लगा और देश के उद्योग को विदेशी स्पर्धा का सामना करना पड़ा। अपने देश के उद्योग को बढ़ावा देने के लिये भारत सरकार ने चूड़ियों पर ३० प्रतिशत और अन्य वस्तुओं पर १५ प्र. श. की दर से आयात कर लगा दिया। सन् १९३१ में यह कर और भी बढ़ा दिया गया। सन् १९३२ में शीशे के ५९ कारखाने थे और उसके बाद कारखानों की संख्या बढ़ती ही गई। सन् १९५० में शीशे के कारखानों का भौगोलिक वितरण इस प्रकार था:—

राज्य	कारखानों की संख्या	राज्य	कारखानों की संख्या
उत्तर प्रदेश	२४	मध्य प्रदेश	६
पश्चिमी बंगाल	३४	मद्रास	४
बम्बई	३२	दिल्ली	३
बिहार	८	उड़ीसा	१
पूर्वी पंजाब	७	देशी राज्य	१३

इस उद्योग में दो रीतियों से शीशा बनाया जाता है:—

(१) घरेलू धन्धे की तरह और (२) बड़े-बड़े कारखानों में मशीनों से।

घरेलू धंधे की तरह—यह उद्योग देश के सभी भागों में फैला है परन्तु इसका मुख्य केन्द्र उत्तर प्रदेश का फिरोजाबाद जिला और बम्बई का बेलगांव प्रदेश है। इसी प्रकार मैसूर में भी कई स्थानों में यह घरेलू धंधा होता है। इस धंधे की मुख्य उपज चूड़ियां तथा अन्य प्रकार के आभूषण व मोती हैं। परन्तु जापानी माल और देश के कारखानों की स्पर्धा के कारण इस घरेलू धंधे को बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। अतः आजकल इस घरेलू धंधे में केवल अच्छी चूड़ियां थोड़ी मात्रा में तैयार की जाती हैं। देश में घरेलू धंधे के कुल ९३ कारखाने हैं।

वर्तमान कारखानों में शीशे की निम्नलिखित वस्तुएं तैयार की जाती हैं:—

(१) चूड़ियों के लिये शीशे की बट्टी

(२) मोती, बोतलें, चिमनियां, शीशियां, खाने के बर्त्तन इत्यादि

(३) शीशे की चद्दरें और दरवाजे, खिड़कियों में लगाने के शीशे

(४) चीर-फाड़ करने व प्रयोगशालाओं में प्रयुक्त होने वाली वस्तुएं।

शीशे के कारखानों के लिये उत्तर प्रदेश, बम्बई और पश्चिमी बंगाल के राज्य विशेष महत्वपूर्ण हैं।

उत्तर प्रदेश में शीशे के उद्योग ने विशेष उन्नति कर ली है और इस समय ७४ कारखाने चूड़ियां, पोले व ठोस बर्तन तथा शीशे की चद्दरें आदि बनाते हैं। मुरादाबाद जिले में **बहजोई** देश भर में शीशे की चद्दरें बनाने का अकेला केन्द्र है। देश में औसतन ३९० लाख वर्ग फीट शीशे की चद्दर की वार्षिक मांग रहती है। सन १९५०-५१ में कुल उत्पादन ९६ लाख वर्ग फीट था। अतः शेष कमी आयात से पूरी की गई। पंचवर्षीय योजना पूरी होने पर वर्त्तमान उत्पादन सतगुना हो जायगा। **फिरोजाबाद** में चूड़ियां बनाई जाती हैं और देश की एक-तिहाई मांग यहीं से पूरी होती है। फिरोजाबाद में चूड़ी बनाने का कारबार ऐसा केन्द्रित है कि देशी चूड़ियों को छोड़कर और किसी प्रकार की चूड़ियां देश में और कहीं नहीं बनाई जातीं। फिरोजाबादा में चूड़ी बनाना घरेलू धंधा है और ५ से ३५ मनुष्यों तक की मदद से चलने वाले छोटे-छोटे कारखाने हैं जहां चूड़ियां बनाई जाती हैं। **शिकोहाबाद, हाथरस, नैनी (इलाहाबाद) और बहजोई** में मोटर के लैम्प, रोशनी फेंकने वाले शीशे, बल्ब, चिमनियां आदि बनाई जाती हैं। विभिन्न प्रकार के बर्त्तन व फूलदान वगैरह भी यहीं बनाये जाते हैं। इस राज्य में बालू, पोटाश नाइट्रेट और चूने की उपलब्धता के कारण

इस उद्योग को उन्नति करने में विशेष सहायता मिली है। बिहार व पश्चिमी बंगाल से कोयला प्राप्त हो जाता है। परन्तु उत्तर प्रदेश के इस उद्योग में कुछ दोष भी हैं। यहां की चूड़ियों व बर्तनों की डिज़ाइन पुरानी होती हैं जिसका आधार या तो जापानी वस्तुएं होती हैं या मुरादाबाद के पीतल के बर्त्तनों की नकल। दूसरे, यह उद्योग छोटे-छोटे व्यापारियों के हाथ में है और इसलिये इनकी व्यवस्था उचित नहीं है।

बंगाल व बम्बई के कारखानों में अधिकतर लैम्प व लालटेनों के हिस्से, बोतलें, शीशे के ट्यूब, फ्लास्क, गिलास, प्रयोग के ट्यूब, शीशे की प्लेटें आदि बनाये जाते हैं। बम्बई में शीशा बनाने के ३२ कारखाने हैं जिनमें ४५०० व्यक्ति काम करते हैं। **पूर्वी पंजाब** में अमृतसर मुख्य केन्द्र है और वहां शीशे के चार कारखाने हैं। इन कारखानों में अधिकतर बोतलें बनाई जाती हैं। अम्बाला में भी एक कारखाना है जहां विज्ञान-सम्बन्धी वस्तुएं व खोखले बर्तन बनाये जाते हैं।

भारत में शीशा उद्योग की सुविधाएं व संभावनाएं—इस उद्योग में कोयला, बालू, बोरक्स, सोडा ऐश, नमक की बट्टी, डालमाइट, चूने का पत्थर, शोरा, गन्धक, मैंगनीज़ डाइआक्साइड और रंग करने के पदार्थों की आवश्यकता पड़ती है। बालू जिसकी सबसे अधिक मात्रा में जरूरत पड़ती है वह देश के हर भाग में ही प्राप्त होती है। बोरक्स देश में नहीं मिलता और इसलिये उसे ग्रेट ब्रिटेन और संयुक्त राष्ट्र से मंगवाना पड़ता है। देश में उच्चकोटि का डालमाइट, शोरा और चूने का पत्थर खूब मिल जाता है। गंधक, मैंगनीज डाइआक्साइड और रंग करने के पदार्थों की भी कमी है और उन्हें आयात करना पड़ता है। वास्तव में देश के शीशा उद्योग की सब से बड़ी समस्या सोडा एश प्राप्त करना है। कुछ तो देश के ही कारखानों से प्राप्त हो जाता है परन्तु बाकी को आयात करना पड़ता है।

देश में इस उद्योग का भविष्य बड़ा उज्ज्वल है। देश में शीशे की वस्तुओं की काफी मांग है और बहुत से कच्चे पदार्थ देश में ही उपलब्ध हैं। साथ-साथ अदन, बहरीन, लंका, बर्मा, मलाया, अरब, ईरान, अफगानिस्तान, इंडोनेशिया और इन्डोचीन जैसी समीपवर्ती मंडियों को भी भारतीय माल निर्यात किया जा सकता है।

अल्यूमीनियम उद्योग

भारत में अल्यूमीनियम तैयार करने के लिये बाक्साइट धातु का विस्तृत भंडार है। बाक्साइट धातु मध्य प्रदेश के जबलपुर और बालाघाट प्रदेश में, उड़ीसा बिहार के रांची पठार में, मद्रास, बम्बई के कोल्हापुर, बेलगांव, थाना और कैरा जिलों में तथा जम्मू और काश्मीर में पाई जाती हैं।

वास्तव में अल्यूमिनियम का महत्व इधर कुछ दिनों से ही इतना बढ़ गया है। इस धातु में कई विशेषताएं होती हैं। यह हल्की होती है और घिसती कम है। इसे आसानी से मिलाया जा सकता है और बिजली प्रवाह की सहायक है। अतः इसे यातायात, रासायनिक, मदिरा व भोजन भरने के उद्योगों में प्रयोग किया जाता है। वन-निर्माण, विद्युत-निरोध व रसों में भी इसे प्रयोग करते हैं। वायुयान निर्माण उद्योग इसी पर आश्रित है। वायुयान बनाने में अल्यूमीनियम मिश्रण को प्रयोग करते हैं। इसको बस, मोटरगाड़ियों

के शरीर व रेल के डिब्बों में भी प्रयोग करते हैं। इसके वर्त्तन अन्य धातु के बर्त्तनों की अपेक्षा अच्छे होते हैं और अब टीन के डिब्बों के स्थान पर अल्यूमीनियम के डिब्बों का प्रयोग बढ़ रहा है।

भारतीय अल्यूमीनियम उद्योग ट्रावनकोर के **अल्वए**, पश्चिमी बंगाल के **बेलूर** व **आसनसोल** तथा बिहार के **मरी** स्थानों में केन्द्रित है। अल्वए के कारखाने में प्रतिवर्ष २५०० टन अल्यूमीनियम तैयार होता है और पल्लीवासल केन्द्र जल-विद्युत शक्ति प्रदान करती है। मध्य प्रदेश में कटनी स्थान के समीप अल्यूमीनियम का एक नया कारखाना खोला जा रहा है। कुल मिलाकर वार्षिक उत्पादन ४००० टन है।

भारत में अल्यूमीनियम उद्योग की प्रगति

वर्ष	उत्पादन की मात्रा (टन)	वर्ष	उत्पादन की मात्रा (टन)
१९४६	३०००	१९४९	३४९१
१९४७	३२२३	१९५०	३५९१
१९४८	३३६७		

अभी भी उत्पादन का मूल्य बहुत अधिक है परन्तु आयात की हुई धातु से भारतीय उत्पादन की अधिक स्पर्धा नहीं रहती। भारत में इसका वार्षिक आयात ७००० टन है।

चमड़ा उद्योग

चमड़े उद्योग की स्थिति निम्नलिखित बातों पर निर्भर रहती है:—(१) चमड़ा व खालों की उपलब्धता। (२) साफ अच्छे पानी के जलाशयों से समीपता। (३) रासायनिक पदार्थों की सुविधा और (४) खाल साफ करने व सूतने की वस्तुओं का समीप होना।

भारत का चमड़ा उद्योग दो प्रकार का है—(१) पुराना घरेलू धंधा और (२) आधुनिक कारखानों का उद्योग।

घरेलू धंधा—चमारों द्वारा चलाया जाता है। इसमें मोटा चमड़ा, जूते के सोल का चमड़ा और कच्चा चमड़ा तैयार किया जाता है। इसमें वराम या तरवार की छाल से चमड़ा साफ किया जाता है। और मद्रास के कुछ भागों में बटन की छाल भी प्रयोग करते हैं।

भारत के **आधुनिक चमड़ा कारखानों** में **बबूल** और **मेरावोलन** की छाल से चमड़ा साफ करते हैं। बबूल की छाल काफी न होने से पूर्वी अफ्रीका से बैटल की छाल आयात की जाती है। कानपुर, आगरा, कलकत्ता, दिल्ली व मद्रास इस प्रकार के कारखानों के केन्द्र हैं। बाटानगर में जूते बनाये जाते हैं। भारत में क्रोम बनाने का काम भी पिछले कुछ दिनों से ही शुरू हुआ है और इस दृष्टिकोण से मद्रास का स्थान विशेष उल्लेखनीय है।

चमड़ा उद्योग के लिये **कच्चा माल** दो मुख्य स्रोतों से प्राप्त होता है—(१) बड़े जानवरों की खालों से जिन्हें हाइड कहते हैं और (२) छोटे जानवरों की खालों से जिन्हें स्किन कहते हैं। भारत में कच्ची व तैयार की हुई खालों व चमड़ों का सब से अधिक उत्पादन होता है। भारत में विविध प्रकार के चमड़े का वार्षिक उत्पादन इस प्रकार है— गाय-बैल की खाल २२० लाख, भैंस का चमड़ा ३५ लाख, बकरे व बकरी के बच्चों की खालें—

२२० लाख और भेड़ों की खाल ३० लाख। गाय-बैल की खालों में भारत का स्थान संसार के अन्य देशों से बहुत बढ़ा-चढ़ा है। सन् १९४८-४९ में भारत में ९ लाख ७९ हजार भैंस की खालें और १० लाख ८७ हजार गाय की खालें प्राप्त हुईं।

गाय, बैल, भैंस की खालों का ६० प्र. श. और बकरी व भेड़ की खालों का ४० प्र.श. यहीं साफ कर लिया जाता है। शेष को कच्ची हालत में बाहर भेज देते हैं। सन् १९४९-५० में भारत से ४१२ लाख मूल्य की कच्ची खालें और ६८६ लाख रुपये मूल्य की आधी साफ की हुई खालें निर्यात की गईं। इस निर्यात का ५० प्रतिशत भाग ग्रेट ब्रिटेन को जाता है और ३० प्र. श. संयुक्त राष्ट्र अमरीका को।

भारत से संसार को ३० प्र. श. बकरी की खालें प्राप्त होती हैं और भारतीय बकरी की खालें उच्चकोटि के 'किड' चमड़ा तैयार करने के लिये बड़ी उपयुक्त रहती हैं। इधर कुछ दिनों से भेड़ व बकरी के बच्चों का उनकी खालों के लिये निर्यात किया जाने लगा है। निकट भविष्य में भारतीय बालदार खालों का व्यापार बहुत अधिक बढ़ जायेगा।

खालों को साफ करना या सूतना एक व्यापक व्यवसाय है। इसके अन्तर्गत वे सभी क्रियायें आ जाती हैं जिनके द्वारा खालों को साफ करके चमड़ा बनाया जाता है। खाल को साफ करने में तीन प्रकार की वस्तुओं का सहारा लेना पड़ता है—(१) वनस्पति वस्तुएं (२) खनिज वस्तुएं और (३) तैल पदार्थ। कई प्रकार के पौधों को जिन में टैनिक एसिड होती है पानी में भिगोकर चमड़ा साफ करने की एसिड प्राप्त कर लेते हैं। इनके अलावा विभिन्न वृक्षों की लकड़ी छाल, पत्तियां व फल के छिलके भी काम में लाये जाते हैं। खनिज पदार्थों में चमड़े साफ़ करने के लिये अल्यूमीनियम और क्रोमियम की धातुएं विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। अल्यूमीनियम को जैतून के तेल, आटे के चोकर, अंडे के पीलेपन के साथ मिलाकर प्रयोग करते हैं। क्रोमियम को क्रोमियम सल्फेट के रूप में प्रयोग करते हैं। भारी खालों को साफ करने के लिये काड, हेरिंग, सील व ह्वेल मछलियों का तेल भी प्रयोग में लाते हैं।

दूसरे महायुद्ध काल में भारत के चमड़ा उद्योग को काफी प्रोत्साहन मिला। उस समय फोज के जूतों, बूट, घोड़े की काठी व साज तथा अन्य चमड़े की वस्तुओं की मांग-पूर्ति के लिये देशी उद्योग को ही काम करना पड़ता था। उत्तर प्रदेश में सब से अधिक फौजी बूट व जूते बनाये जाते थे। सन् १९३८-३९ में देश के विभिन्न केन्द्रों में सिर्फ ४० लाख जोड़ी जूते बनाये जाते थे परन्तु युद्धकाल में ८५ लाख जोड़ी से अधिक जूते तैयार होने लगे। घोड़े की काठी व साज के अन्य सामानों के वार्षिक उत्पादन का कुल मूल्य २२ करोड़ रुपये से अधिक ही रहता है। इसके अलावा युद्धकाल की अधिक मांग-पूर्ति के लिये चमड़े का उत्पादन सतगुना हो गया। इस वृद्धि का मुख्य कारण यह था कि फौजी सिपाहियों के लिये अधिक पशुओं का वध किया जाता था और उनसे अधिक खालें प्राप्त होती थीं। खालें तो अधिक मिलने लगीं परन्तु पशुओं के वध से दूध की कमी की समस्या उठ खड़ी हुई। अन्य समस्यायें सूतने व साफ करने वाले रासायनिक पदार्थों की कमी तथा यातायात की असुविधा है।

पोत-निर्माण उद्योग

प्राचीनकाल में १५०० बी. सी. से लेकर भारत में पोत-निर्माण उद्योग बहुत बढ़ा-चढ़ा था। १८वीं सदी में भी भारतीय जहाज काफी प्रगतिशील थे। परन्तु भारत पर विदेशियों के आधिपत्य तथा जहाज निर्माण में इस्पात के प्रयोग से भारतीय पोत-निर्माण उद्योग खत्म हो गया। दूसरे विश्वयुद्ध काल में पोत-निर्माण कार्य फिर से शुरू किया गया और पांच साल से कम समय में १ लाख टन के जहाज तैयार कर लिये गये। इनके अलावा दो विशाल तैरते हुए डाक भी तैयार किये गये। प्रत्येक का वजन ५०,००० टन था। यह सब निर्माण कार्य अस्थायी पोत-निर्माण क्षेत्रों पर किया गया जिन्हें बाद में नष्ट कर दिया गया। पोत-निर्माण उद्योग की सफलता के लिए निम्नलिखित दशाओं का होना अत्यावश्यक है: (१) जहाज बनाने व मरम्मत करने के विस्तृत मैदान हों, (२) पोताश्रय में पानी गहरा हो, (३) समीप में कच्चा माल उपलब्ध हो और (४) मजदूर काफी संख्या में उपलब्ध हों।

कलकत्ता और विजगापट्टम में इस समय भी कुछ पोत निर्माण क्षेत्र हैं जिन में मरम्मत के साथ हल्के जहाज व जहाजों के शरीर बनाये जाते हैं। कलकत्ता में कुछ सूखे डाक भी हैं। रेलों द्वारा वे दोनों ही स्थान गोंडवाना कोयले क्षेत्रों से मिले हुए हैं। यद्यपि देश में लोहा काफी मात्रा में पाया जाता है परन्तु देश के चार प्रमुख इस्पात केन्द्रों से जहाज बनाने के सामान प्राप्त हो सकते हैं। हां, प्रारम्भ में इंजन, चालक यन्त्र और अन्य मशीनों को बाहर से जरूर मंगवाना पड़ेगा।

देश का समुद्री व तटीय व्यापार बहुत अधिक है और अधिकतर विदेशी कम्पनियों के हाथ में है। समुद्रों के आरपार २५० लाख टन सामान लाया ले जाया जाता है और करीब २½ लाख यात्री आते-जाते हैं। रुपयों में इसका मूल्य ४०,००० लाख रुपये से भी अधिक आता है। भारत के तटीय व्यापार में ७० लाख वजन का माल तथा २० लाख यात्रियों का आना-जाना होता है। इस विस्तृत व्यापार के लिये एक विशाल व्यापारिक पोत-समूह की आवश्यकता होती है। इसके अलावा भारत देश तीन ओर समुद्र से घिरा है। इसलिये देश की सुरक्षा के लिये भी जहाजी बेड़े की आवश्यकता है। दूसरे महायुद्ध से पहले भारतीय जहाजों का समुद्री व्यापार में २ प्र. श. और तटीय व्यापार में २५ प्र. श. भाग रहता है। सन् १९५१ में भारत के पास कुल ३ लाख ९१ हजार टन वजन के जहाज थे। सन् १९५६ के अन्त तक २ लाख अतिरिक्त टन भार का जहाजी बेड़ा तैयार हो जाने की आशा है। इस समय भारत का ९३ प्र. श. तटीय व्यापार और भारत-बर्मा व भारत-लंका का ५० प्र. श. व्यापार देशी जहाजों द्वारा ही होता है।

भारतीय बन्दरगाहों में आने व जाने वाले जहाजों की संख्या (१९४९-५०)

बाहर से आने वाले		बाहर जाने वाले	
भारतीय	३४९	भारतीय	४६८
ब्रिटिश	१२६८	ब्रिटिश	१०१५
अन्य	७३१	अन्य	४२८

पोत-निर्माण के लिये विजगापट्टम की उपयुक्तता बड़ी ध्यान देने योग्य है। यह बन्दरगाह कलकत्ता व मद्रास के बीच में स्थित है। इसलिये इन दोनों बन्दरगाहों के पृष्ठ-प्रदेशों से कच्चा माल आसानी से मिल जाता है। इसका पोताश्रय गहरे पानी में है। अतः बड़े जहाजों को आसानी से पानी पर छोड़ा जा सकता है। ज्वारभाटे की उठान भी काफी रहती है। टाटानगर जो कि यहां से ५५० मील दूर है इसे इस्पात की सुविधा प्रदान करता है। गोंडवाना क्षेत्र की कोयले की खानें भी अधिक दूर नहीं हैं। छोटा नागपुर से अच्छे मेल की लकड़ी भी मिल जाती है और पोत-निर्माण में डेक, कमरे आदि बनाने के काम आती है। अगर रेल-मार्ग द्वारा पोत-निर्माण केन्द्र को वाल्टेयर से मिला दिया जाये तो कच्चा माल प्राप्त करने में और भी आसानी हो सकती है। स्थानीय मजदूर सस्ते होते हैं और आसानी से सिखाये जा सकते हैं। इस प्रकार निकट भविष्य में विजगापट्टम का पोताश्रय बड़ा महत्वपूर्ण पोत-निर्माण केन्द्र बन जायेगा।

अभी हाल में सिंधिया नेवीगेशन कम्पनी ने विजगापट्टम में पोत-निर्माण उद्योग केन्द्र स्थापित किया है और वहां मध्यम श्रेणी के समुद्री जहाज बनाये जाने लगे हैं। सन् १९४८ में यहां से ८००० टन वजन का पहला जहाज तैयार हुआ था। सन् १९५२ में विशाखापट्टम पोत-निर्माण क्षेत्र हिंदुस्तान लिमिटेड कम्पनी के अधिकार में आ गया। इस कम्पनी में भारत सरकार का दो-तिहाई और सिंधिया का एक-तिहाई धन लगा हुआ है।

भारत के अन्य प्रमुख बन्दरगाहों जैसे बम्बई और मद्रास में पोत-निर्माण का काम नहीं हो सकता। बम्बई लोहा व कोयला उत्पादन केन्द्रों से सैकड़ों मील दूर है और मद्रास बन्दरगाह कृत्रिम है व पानी छिछला है, इसलिये बड़े जहाजों का बनाना बहुत कठिन है। हां, कोचीन के समुद्री जलाशय में जहाजों की मरम्मत के लिये उचित सुविधाएं हैं। कलकत्ता के समीप उलूबेरिया और राजगंज में पानी काफी गहरा है। इसलिये वहां पोत-निर्माण केन्द्र स्थापित करने की सम्यक संभावनाएं हैं। कलकत्ता से समीप होने के कारण इसे कच्चा माल आसानी से मिल सकता है और इसके आसपास विशेष उन्नत इंजीनियरिंग उद्योग भी केंद्रित ह।

भारतीय पोत-निर्माण उद्योग की सब से बड़ी समस्या जहाजों में लगाई जाने वाली लोहे की चद्दरों की कमी है। गहरे समुद्रों में चलने वाले भारी जहाजों को बनाने के लिये प्रयत्न किये जा रहे हैं। हाल में बम्बई राज्य में बटकल स्थान पर पोत-निर्माण का एक छोटा केन्द्र स्थापित करने की चेष्टा की जा रही हैं।

वायुयान निर्माण उद्योग

देश में वायुयान निर्माण उद्योग का भविष्य बड़ा उज्ज्वल है। भारत जैसे विस्तृत देश में फौजी कार्य व यातायात के लिये वाययानों की विशेष आवश्यकता रहती है और वायु सेना तथा वायु यातायात के बढ़ने की देश में पूरी संभावनाएं हैं। इस समय देश में ४० वायु मार्ग हैं जिनकी कुल लम्बाई १४००० वायु मील है। इस समय वायुयानों की १६ दैनिक और ४२ साप्ताहिक उड़ानें होती हैं।

शुरू-शुरू में इस उद्योग को सरकारी संरक्षण की आवश्यकता होगी। सरकार की सहायता के द्वारा बाहर से मशीनें व कच्चा माल मंगाया जा सकेगा और वायुयानों की सरकारी मांग से ही उस उद्योग को प्रोत्साहन मिल सकता है। सन् १९३९ में सिंधिया कम्पनी ने वायुयान बनाने की एक योजना सरकार के सामने रक्खी थी पर उस समय सरकार ने उसकी ओर कोई ध्यान न दिया। परन्तु लड़ाई का रुख बदलने से सन् १९४० में भारत सरकार ने देश में वायुयान निर्माण का एक कारखाना स्थापित करने का निश्चय प्रकट किया। फलत: सन १९४१ में बंगलौर में यह कारखाना तैयार किया जाने लगा। अब यह कारखाना बिल्कुल तैयार हो गया है और केन्द्रीय सरकार के हाथ में है। भारत का यह कारखाना जहाज बनाने व मरम्मत का काम करने में संलग्न है।

बंगलौर की इस कम्पनी का नाम हिंदुस्तान एयर क्राफ्ट फैक्टरी है और आयात किये हुए माल को एकत्रित करके हवाई जहाज तैयार करती है। हाल में ग्रेट ब्रिटेन की परसीवल एयर क्राफ्ट कम्पनी से एक समझौता करके उनकी देख-रेख में कच्चे माल से हवाई जहाज तैयार करने का काम शुरू हुआ है। हवाई जहाज बनाने और मरम्मत करने का यह कारखाना पूर्व में सब से बड़ा है और इसका खुद का हवाई अड्डा है। इस कारखाने में भारतीय रेलों के लिये लोहे की गाड़ियाँ व डिब्बे भी बनाये जाते हैं। भारतीय सड़कों पर चलने वाली मोटर यातायात के लिये बस की गाड़ियां भी यहीं बनाई जाती हैं। इसके अलावा इस कारखाने में रेल इंजनों के हिस्से, हवाई जहाज के भाग तथा सूक्ष्म प्रकार की, ढाली हुई वस्तुएँ बनायी जाती हैं। वास्तव में मैसूर राज्य में बंगलौर में वायुयान निर्माण उद्योग के लिये आदर्श दशायें हैं। यहां पर सस्ती पन-बिजली उपलब्ध है। जलवायु सम है, समुद्र से दूर और केन्द्रीय स्थिति है और विज्ञान अनुसंधानशाला तथा इस्पात के कारखाने समीप ही में पाये जाते हैं। इसी प्रकार की सुविधायें जमशेदपुर में भी पाई जाती हैं। और आशा की जाती है कि वहां भी भविष्य में यह उद्योग केन्द्रित किया जा सकेगा।

मोटर-गाड़ियां बनाने का उद्योग

भारतवर्ष में मोटर-गाड़ियां बनाने के उद्योग की उन्नति की सम्यक संभावनाएं हैं। भारत में औसत रूप से प्रतिवर्ष २० करोड़ रुपये से अधिक मूल्य की मोटरें, मोटर सायकिलें, बसें और इनके विभिन्न भाग आयात किये जाते हैं। देश में करीब २॥ लाख मोटर-गाड़ियां हैं। देश की जनसंख्या व विस्तार देखते हुए यह संख्या बहुत कम है। संयुक्त राष्ट्र में ३०० लाख, कनाडा में २५ लाख, ग्रेट ब्रिटेन में २५ लाख और फ्रांस में २० लाख मोटर गाड़ियां हैं। इस दृष्टिकोण से भारत की दशा बहुत हीन है जैसा निम्न तालिका से भी स्पष्ट हो जायेगा।

प्रति मोटर पर जनसंख्या का अनुपात

ग्रेट ब्रिटेन	१५	फ्रांस	१६
कनाडा	८	न्यूजीलैंड	४७
संयुक्त राष्ट्र	३	ब्राजील	११०
		भारत	१३५०

प्रति हजार मील लम्बी सड़कों पर मोटर-गाड़ियों की औसत संख्या में भी भारत काफी पिछड़ा है।

प्रति हजार मील पर मोटरों की संख्या

ग्रेट ब्रिटेन—१४,८३४ संयुक्त राष्ट्र—१२,१४६ भारत—८२९

वास्तव में भारतीय जनता की आय कम होने व उनका रहन-सहन निम्न स्तर पर होने के कारण मोटरगाड़ियों की अधिक मांग नहीं है। इसके साथ-साथ दो अन्य असुविधायें भी हैं—उत्पादन का अधिक मूल्य व सड़कों की पिछड़ी हुई दशा। भारत में मोटर-गाड़ी बनाने के उद्योग की सब से बड़ी समस्या घरेलू मांग की कमी है और इसी कारण देश में इस उद्योग ने वैसी कोई प्रगति नहीं की जैसी अन्य विदेशी राष्ट्रों ने। यद्यपि भारत सरकार की ओर से इस उद्योग को संरक्षण प्राप्त है। इसके अलावा विदेशों से आयात की गई पुरानी मोटर-गाड़ियों तथा डीज़ल इंजन की ट्रकों से भी भारतीय उद्योग को स्पर्धा करनी पड़ती है। इस समय भारत में मोटर-गाड़ियों की सब से प्रमुख ग्राहक सरकार है और जैसे-जैसे भारत में सड़कें बनती जायेंगी वैसे-वैसे मोटर-गाड़ियों की मांग भी ज्यादा होती जायेगी।

उद्योग के केन्द्र—हाल में कलकत्ता, बम्बई और मद्रास में विभिन्न भागों में एकत्रित करके मोटरगाड़ी तैयार करने का उद्योग शुरू किया गया है। इस समय देश म इस प्रकार के ७ कारखाने हैं—३ बम्बई में, १ मद्रास में २ कलकत्ता में और १ ओखा में। इन केन्द्रों में विदेशी मोटरों के भागों को मिलाकर गाड़ियां तैयार की जाती हैं।

कलकत्ता केन्द्र में सन् १९४४ में हिन्दुस्तान मोटर कम्पनी ने काम शुरू किया। इस कम्पनी के पास पूरी मोटर व ट्रक तैयार करने की मशीनें हैं। केवल इन गाड़ियों का शरीर नहीं बन सकता है। ग्रेट ब्रिटेन की मारिस मोटर कम्पनी और संयुक्त राष्ट्र अमरीका की स्टूडीबेकर कम्पनी के साथ मिल कर हिन्दुस्तान व स्टूडीबेकर गाड़ियां भारत में तैयार करने की योजना है। कलकत्ते के उतरपारा स्थान पर इस प्रकार के एकत्रीकरण का एक विस्तृत कारखाना बनाया जा रहा है।

बम्बई केन्द्र में भी सन् १९४४ में ही काम शुरू हुआ और उद्योग आरम्भ करने वाली कम्पनी 'प्रीमियर आटोमोबाइल्स' थी। इसका सम्पर्क संयुक्त राष्ट्र अमरीका के 'चेरीस्लर समूह' से है और यहां मोटरकारें व ट्रकें बनाई जाती हैं।

सन् १९४७-४८ में भारत में २२००० मोटर गाड़ियां एकत्रीकरण द्वारा तैयार की गई। बर्नपुर और जमशेदपुर में इस उद्योग के लिए विशेष सुविधायें हैं। ये दोनों ही स्थान लोह क्षेत्रों के मध्य में स्थित हैं और यहां पर आयात की हुई मशीनों व मोटर के भागों को आसानी से लाया जा सकता है। चूंकि इन केन्द्रों में इंजीनियरिंग उद्योग पहले से ही स्थापित है इसलिए मजदूरों को भी आसानी से प्राप्त किया जा सकता है।

वास्तव में मोटर उद्योग निर्माण व एकत्रीकरण दोनों रीतियों का मिश्रण है। संसार के किसी एक मोटरकार कारखाने में सभी आवश्यक कल-पुर्जे नहीं बनाये जाते। अतः भारत को भी मोटर गाड़ियों के सभी कल-पुर्जे निर्माण करने की आवश्यकता नहीं

है। अतः भारत में भी कुछ भागों को बनाया जा सकता है और अन्य कल पुर्जों को आयात द्वारा पूरा किया जा सकता है। सन् १९५६ तक भारतीय उद्योग में मोटर सम्बन्धी ७५ प्रतिशत कलपुर्जे बन सकेंगे। इस समय केवल ८३ कल-पुर्जों में भारत आत्म-निर्भर है।

देश में प्रतिवर्ष २०,००० मोटरें और १५००० ट्रकें बाहर से मंगवाई जाती हैं जिन पर भारत को २० करोड़ से आधिक रुपये खर्चने पड़ते हैं। परन्तु विभिन्न औद्योगिक योजनाओं के पूरा हो जाने पर वर्तमान कारखानों में ही इतनी मोटर-गाड़ियां बनाई जा सकेंगी कि भारत को बाहर से मंगवाने की आवश्यकता न पड़े।

लाख उद्योग

लाख संस्कृत शब्द 'लक्ष' का अपभ्रन्श है। 'लक्ष' का अर्थ होता है एक लाख (सौ हजार) और यह पदार्थ भी लाखों कीड़ों द्वारा एकत्रित गोंद है। लाख का कीड़ा बहुत छोटा—$\frac{1}{40}$ इंच और छोटी नाव के समान होता है और प्रायः कुछ विशेष प्रकार के पेड़ों के रस पर जीवित रहता है। पलास, कुसुम, बेर खैर, घोट और अरहर के पेड़ों पर यह कीड़ा खूब पनपता है। और जैसे-जैसे यह रस पीता है, साथ-साथ यह गोंद के समान वस्तु निकालता भी जाता है। यह गोंद हवा लगते ही सूख जाती है और पेड़ों की डाल पर पपड़ी सी जमी रहती है।

छोटा नागपुर, उड़ीसा और मध्य प्रदेश में यह पेड़ खूब होते हैं और फलतः लाख के प्रमुख उत्पादन केन्द्र यही प्रदेश हैं। इन प्रदेशों से देश का ८५ प्रतिशत लाख प्राप्त होता है और आधे से अधिक उत्पादन छोटा नागपुर प्रदेश में ही होता है। भारत में लाख का वार्षिक उत्पादन १० लाख हन्डरवेट है और संसार में लाख के व्यापार पर भारत का एकछत्र राज्य है। भारत में उत्पन्न लाख की डंडी का ६० प्र. श. अंश बिहार से प्राप्त होता है। परन्तु बिहार में रोग फैल जाने के कारण, इस वर्ष उत्पादन बहुत कम हुआ है। इसका एक और कारण यह भी है कि लाख के दाम अब पहले से बहुत गिर गये हैं। दूसरा बड़ा उत्पादन प्रदेश मध्य प्रदेश है परन्तु वहां मालगुजारी की दिक्कत की वजह से इसके उत्पादन की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया जा सका है। इन्हीं कारणों से सन् १९५२ में केवल ३८,५०० मन लाख उत्पन्न हुई जब कि साधारण सालों में उत्पादन की मात्रा १५६,००० मन तक होती थी।

लाख से दो वस्तुएँ प्राप्त होती हैं—रंग और गोंद। रासायनिक रंगों के निकल आने से रंग के लिए लाख का महत्व तो खत्म-सा हो गया है। अब इसका प्रमुख उद्योग गोंद के रूप में है। प्रयोग में लाने के पहले पेड़ों की डालों से इकट्ठी की हुई लाख की पपड़ी को गला लेते हैं और इस गलाई हुई लाख में छोटी-छोटी पतली पटिटयां बन जाती हैं। साफ किये हुए इस लाख को चपड़ा (Shellac) कहते हैं।

भारत में लाख और लाख की बनी चीजें निम्नलिखित हैं—

(१) **दाल**—पेड़ से लाख की फसल डंडी के रूप में काटी जाती है। बाद में उसे चाकू से खुरच लेते हैं।

(२) **रंग**—जब दाल को बुक कर पानी से धो दिया जाता है, तब पानी में

घुल जाने वाली लाख का लाल रंग निकल आता है।

(३) **चौरी**—दाल की बुकनी को पानी से धोने पर चौरी प्राप्त होती है।

(४) **चपड़ा**—पिघले रालों को खींच कर फैलाने से पतली पपड़ी के रूप में प्राप्त होता है।

(५) **बटन लाख**—मोटे बटनों के आकार में बटन लाख चपड़ा का ही दूसरा रूप है। इसकी मुटाई ½ इंच और व्यास ३ इंच होता है।

(६) **गारनेट लाख**—भारतवर्ष में प्रतिवर्ष ५ लाख ४० हजार मन के करीब चमड़े का उत्पादन होना है जिससे ४० हजार ५ सौ मन से ५४ हजार मन तक अवशिष्ट उपपार्थ प्राप्त होता है जिसे किरी कहते हैं। इसमें ५०-६० प्र. श. लाख रहती है। इसे स्पिरिट में गलाकर और उसे गाढ़े घोल से धुलाकर काले रंग की विशुद्ध लाख प्राप्त होती है जिसे गारनेट लाख कहते हैं।

(७) **मोम**—लाख में ५ प्र. श. ऐसा कड़ा मोम होता है जो जूते की पालिश, चित्रकारी की पेंसिल आदि में किया जाता है। लाख को स्पिरिट या मिट्टी के तेल में घुला कर मोम निकाला जाता है। मोम रहित लाख का मूल्य अधिक होता है।

(८) **सफेद लाख**—हाइपोक्लोराइट (Hypochlorite) घोल के द्वारा लाख को सफेद किया जा सकता है। इसकी मांग विदेशों में बहुत अधिक है और भारत में खेल के सामान और साज सामान के हल्के रंग में रंगने के लिए सफेद लाख के वार्निश की सीमित मांग है।

लाख का जितना महत्व है उतना किसी और गोंद का नहीं। इसका प्रयोग विविध वस्तुएँ बनाने में किया जाता है। ३०-४० प्रतिशत भाग तो केवल ग्रामोफोन रिकार्ड बनाने के उद्योग में खप जाता है और अन्य ३५ प्रतिशत भाग बिजली, रंग व वार्निश के उद्योगों में चला जाता है। इसके अलावा सील करने की लाख, फोटोग्राफी सम्बन्धी वस्तुएं, मिठाइयां बनाने और चूड़ियां, खिलौने तथा जूता आदि बनाने में भी लाख का प्रयोग किया जाता है। जल-निरोधक स्याही, फेल्ट और फर के टोप, धार तेज करने के पत्थर, गोला बारूद और पटाखे आदि बनाने में भी इसका प्रयोग किया जाता है।

भारत में लाख का वार्षिक उत्पादन करीब ५०,००० टन है और कुल उत्पादन का ९७ प्रतिशत संयुक्त राष्ट्र अमरीका, ग्रेट ब्रिटेन, जर्मनी और जापान को निर्यात कर दिया जाता है। केवल संयुक्त राष्ट्र अमरीका में ३० प्रतिशत लाख मंगवा ली जाती है।

भारत से विदेशों को लाख का निर्यात (हन्डरवेट)

देश	१९३८	१९४७
ग्रेट ब्रिटेन	१,२५,४७५	१५४,३०२१
संयुक्त राष्ट्र	२,५७,९३७	२,५४,२२१
जर्मनी	६४,३७३	—
हालैंड	३६,०५४	८७९
जापान	१८,७२९	—
फ्रांस	११,४६०	९,१०५

सन् १९५१ में १४ करोड़ ८० लाख रुपये मूल्य की ७ लाख हन्डरवेट लाख निर्यात की गई। इस प्रकार भारत में लाख का उद्योग न केवल किसानों व मजदूरों की रोटी का साधन ही है बल्कि इसके सहारे देश को मुद्रा विनिमय में भी सहायता मिलती है।

भारतीय लाख उद्योग कि समस्याएं—यद्यपि इस समय लाख के उत्पादन व व्यापार पर भारत का एकछत्र राज्य है, परन्तु इसकी यह स्थिति बहुत दिनों तक बनी नहीं रह सकती। इसके दो कारण हैं—एक तो कृत्रिम वस्तुओं का अधिकाधिक प्रयोग और दूसरे स्याम की बढ़ती हुई स्पर्धा। पिछले कुछ दिनों से चपड़े के स्थान पर बिजली की वस्तुओं में बेकलाइट का प्रयोग होने लगा है और वार्निश में सेल्यूलोज़ मिलाया जाने लगा है।

पिछले महायुद्ध के पहले संसार की मांग का ९० प्रतिशत लाख भारत में ही उत्पन्न होता था। शेष १० प्रतिशत उत्पादन स्याम, इन्डोचीन और बर्मा में होता था। फिर भी लाख को साफ करके चपड़ा बनाने का उद्योग भारत को छोड़कर और कहीं नहीं होता था। दक्षिणी-पूर्वी एशिया के अन्य उत्पादक देश अपना कच्चा लाख भारत में चपड़ा बनाने के लिए भेज देते थे। परन्तु अब स्थिति कुछ दूसरी है। स्याम में लाख का उत्पादन काफी बढ़ गया है। और अब सरकारी सहायता से देश में ही लाख से चपड़ा तैयार कर लिया जाता है। फलतः संयुक्त राष्ट्र अमरीका और अन्य विदेशी राष्ट्रों को स्याम सीधा निर्यात कर देता है। स्याम में उत्पादन व निर्यात की इस वृद्धि का अन्दाज इसी से लग सकता है कि युद्धपूर्व स्याम से केवल ५००० टन लाख की छड़ियां भारत में चपड़ा तैयार करने के लिए आती थीं। परन्तु सन् १९४७ के प्रथम नौ महीनों में स्याम के बैंगकाक बन्दरगाह से १० हज़ार टन लाख की छड़ियां और १५०० टन चपड़ा निर्यात किया गया। इन दोनों मात्राओं का योग भारतीय उत्पादन का एक-चौथाई बैठता है। इसके अलावा स्याम में नये कारखाने खोले गये हैं जिनमें ६००० टन चपड़ा तैयार किया जा सकेगा यानी भारतीय उत्पादन की एक तिहाई मात्रा स्याम में तैयार होने लगेगी। साथ-साथ स्याम के चपड़े की किस्म भी अच्छी होती जा रही है और इन सबके ऊपर है उसका कम मूल्य। भारतीय चपड़े की अपेक्षा स्याम के चपड़े का मूल्य दो-तिहाई ही होता है। इधर भारतीय चपड़े की मांग बराबर घटती जा रही है। अब केवल ग्रेट ब्रिटेन और जर्मनी ही चपड़ा भारत से मंगाते हैं। संयुक्त राष्ट्र अमरीका पहले की अपेक्षा बहुत कम चपड़ा भारत से आयात करता है। सन् १९५२ में मांग की इसी कमी के कारण बिहार में १२९ चपड़ा कारखाने बन्द हो गये और करीब १०,००० आदमी बिल्कुल बेकार हो गये। परन्तु पिछड़े हुए देशों में औद्योगिक विकास होने पर भारतीय चपड़े की मांग बढ़ने की आशा है।

भारतीय चपड़ा व लाख उद्योग की एक और भी कमी है कि भारत में लाख का काम अभी घरेलू धंधे के रूप में या छोटे-छोटे कारखानों में होता है। इसके कार्य-विस्तार को व्यापारिक ढांचे पर लाने के कोई विशेष प्रयत्न नहीं हो रहे हैं।

सन् १९२५ में रांची के समीप नामकम स्थान में 'भारतीय लाख अनुसंधानशाला' स्थापित की गई। इसका उद्देश्य लाख के उत्पादन को बढ़ाना तथा उसकी किस्म को

सुधारना है। इसके अलावा खोज करके तथा लाख उपभोगी उद्योग-धंधों से सम्पर्क स्थापित करके चपड़े के नये प्रयोग व उपयोग ढूंढना है। हाल में 'लंदन चपड़ा अनुसंधान समिति' ने चपड़े से तेल की वार्निश को निकाला है और सन् १९३९ से सन् १९४५ तक लाख को सड़क रंगने, गैस निरोधक रंग, चमकदार रंग, शीघ्र जुड़ जाने वाली सीमेंट तथा शीघ्र सूख जाने वाले रंगों को बनाने में प्रयोग करते थे। यह उपयोग अभी भी होते है। साथ-साथ विविध प्रकार के नये उपयोग बढ़ रहे हैं जिनमें प्लास्टिक उद्योग में इसकी बढ़ती हुई मांग बहुत महत्वपूर्ण है। पिछले कुछ दिनों से चपड़े से विद्युत अवरोधक वार्निश, बिजली विरोधक वस्त्र, अकरक वस्तुयें (मैकानाइट), लचीले अबरकी पदार्थ, दुर्दर-(लैमिनेटेड) तख्ते, पटुआ के लाख से बने हुये तख्ते, मोमजामा, सरेस और सान के चक्के, बल्ब की टोपियों को बैठाने का सीमेंट तथा दबाव से ढाली जाने वाली अनेक वस्तुयें बनायी जाने लगी हैं।

इसके अलावा चपड़े से घरेलू उपभोग के बर्तनों तथा खेल खिलौने पर रंगाई भी की जाती है। चपड़े के इस नये उपयोग से एक नये गृह-उद्योग का जन्म हो गया है। पुरौलिया और झाल्दा इस गृह उद्योग के प्रधान केन्द्र हैं।

सीमेंट उद्योग

सीमेंट एक विशेष रूप से तैयार की हुई वस्तु है जिसे पत्थर या ईंटों को जोड़ने या कांक्रीट बनाने में प्रयोग किया जाता है। भारतीय राज्य संघ में सीमेंट बनाने की २१ फैक्ट्रियां हैं। इनमें प्राकृतिक सीमेंट बनाई जाती है। सन् १९५१-५२ में इनकी कुल संभावित उत्पादन शक्ति ३२ लाख टन थी, परन्तु उत्पादन केवल २६ लाख टन ही हुआ था। इन कारखानों से सीमेंट उत्पादन से सम्बन्धित बहुत-सी वस्तुएँ भी प्राप्त होती हैं जैसे साधारण कांक्रीट, मजबूत कांक्रीट संगमरमर के अनुरूप पत्थर तथा सीमेंट की चद्दरें।

भारत में सीमेंट उद्योग को अनेक प्राकृतिक सुविधायें प्राप्त हैं:(१) देश के अनेक भागों में रेल-मार्गों के समीप उच्च कोटि का चूने का पत्थर मिलता है। (२) चिकनी मिट्टी व जिप्सम का विस्तृत भंडार भी विविध स्थानों पर उपलब्ध है—एक टन सीमेंट बनाने में १.६ टन चूने का पत्थर लगता है। इसके अलावा एक टन सीमेंट में ४ प्रतिशत जिप्सम और ३८ प्रतिशत कोयले की आवश्यकता होती है। और सब सुविधायें तो हैं, परन्तु कोयला काफी दूर स्थानों में मिलता है। अधिकतर सीमेंट के कारखाने कोयले की खानों से दूर स्थित हैं और इसलिए कोयला लाने में विशेष खर्च बैठता है। उसके कारण उत्पादन का मूल्य भी बढ़ जाता है।

उद्योग केन्द्र—भारत में सीमेंट बनाने का काम सन् १९०४ में शुरू हुआ और सब से पहला कारखाना मद्रास में स्थापित हुआ, परन्तु उत्पादन की मात्रा नगण्य थी। प्रथम महायुद्ध से इस उद्योग को प्रोत्साहन मिला और काठियावाड़ के पोरबन्दर, मध्य प्रदेश के कटनी और राजपूताना में नये कारखाने खोले गये। उस समय से यह उद्योग बराबर प्रगति करता जा रहा है और अब सीमेंट उत्पादन में देश आत्मनिर्भर है।

सीमेंट के कारखानों की स्थिति

प्रदेश	कारखानों की संख्या	केन्द्र
बिहार	५	डालमियानगर, जपला, छैबासा, खलारी
मध्य प्रदेश	३	जब्बलपुर
मद्रास	५	मधुकराई (कोयम्बटुर), बेजबादा डालमियापुरम (ट्रिचनोपली,) मंगलागिरी (क्लिस्ना) टिरुनलवेली
पूर्वी पंजाब	१	अमृतसर
पश्चिमी बंगाल	१	चौबीस परगना
मैसूर	१	बंगलौर
हैंदराबाद	१	हैदराबाद
सौराष्ट्र	२	ओखामंडल (पोरबन्दर) जामनगर
ग्वालियर	१	ग्वालियर
ट्रावनकोर	१	कोटायाम

अब सीमेंट उद्योग से देश की मांग पूरी हो जाती है। इधर मुद्राओं की कमी के कारण कुछ सरकारी योजनाओं पर काम कम हो जाने से सीमेंट की मांग में भारी कमी हो गई है। देश में प्रति मनुष्य पीछे सीमेंट का उपभोग इतना कम है कि अत्यधिक उत्पादन का प्रश्न ही नहीं उठता। भारत में प्रति मनुष्य पीछे सीमेंट का उपभोग केवल १६ पौंड है जब कि इंग्लैंड में यह मात्रा २६० पौंड और अमरीका में २८० पौंड है। सीमेंट के उत्पादन में वृद्धि हो जाने से आयात की मात्रा में बहुत कमी हो गई है।

वर्ष	आयात	उत्पादन (टनों में)
१९३७-३८	४९,१००	९,९७,०००
१९४८-४९	१,४७,७०४	१५,१६,२२६
१९५०-५१	१८,६६४	२८,१५,०००

अब आयात पर १७ रुपये तीन आने प्रति टन की दर से कर लगा दिया गया है। सन् १९४९ में भारत सरकार ने यह निश्चय किया कि देश में सीमेंट के उत्पादन के बढ़ जाने से आयात की मात्रा को १५००० टन प्रति वर्ष न बढ़ने दिया जाय। अतः अब सीमेंट का आयात नहीं के बराबर है। केवल बन्दरगाहों में ही भारतीय सीमेंट उद्योग को विदेशी सीमेंट से स्पर्धा करनी पड़ती है। अन्य भागों में देशी सीमेंट का ही उपभोग होता है।

सन् १९४८ में भारत की सभी सीमेंट कम्पनियों का संचालन सीमेंट मार्केटिंग कम्पनी आफ इंडिया लिमिटेड के हाथ में था। मार्च सन् १९४८ से सीमेंट का क्रय-विक्रय दो अलग कम्पनियों के हाथ में चला गया है—एसोसिएटेड सीमेंट कम्पनी और डालमिया गुरुप। इधर थोड़े दिनों से भारतीय सीमेंट ईराक, लंका व इन्डोनेशिया को निर्यात भी किया जाने लगा है।

दियासलाई बनाने का उद्योग

भारत में दियासलाई बनाने का सबसे पहला कारखाना सन् १८९५ में अहमदाबाद में स्थापित किया गया और वह भी अभी चल रहा है। इसका नाम 'गुजरात इसलामिक

मैच फैक्टरी' है। सन् १९२१ तक इस छोटे कारखाने के अलावा और कोई कारखाना भी देश में नहीं था। लेकिन सन् १९२२ में इस उद्योग को सरकारी संरक्षण प्राप्त हुआ और दियासलाई के आयात पर कर लगा दिया गया। तभी से दियासलाई उद्योग ने विशेष प्रगति की है और घरेलू मांग तथा सस्ती मजदूरी की सुविधाओं की सहायता से यह उद्योग काफी उन्नति कर गया है।

भारत सरकार के आयात कर से बचने के लिए स्वीडन की एक कम्पनी ने सन् १९२४ और १९२५ में भारत के कई स्थानों में दियासलाई के कारखाने स्थापित किये। इस कम्पनी का नाम वैस्टर्न इंडिया मैच कम्पनी है और इसके कारखाने बरेली, कलकत्ता, मद्रास और अम्बरनाथ में हैं। देश की ८० प्रतिशत दियासलाई इसी कम्पनी के कारखानों से प्राप्त होती है।

इस समय देश में दियासलाई बनाने के १०७ कारखाने हैं, जब कि पाकिस्तान में केवल ६ कारखाने हैं। इस उद्योग में करीब १६००० मनुष्य काम करते हैं और दियासलाई बनाने के ये कारखाने ग्वालियर, हैदराबाद, धुबरी (आसाम), कोटा (मध्य प्रदेश) शिमोगा (मैसूर), पेटलैंड (बड़ौदा), त्रियुवत्तीयर (मद्रास से १८ मील दूर), कलकत्ता व ट्रिवाण्ड्रम में केन्द्रित हैं।

५० सींकों के ग्रुस बक्सों में दियासलाई का उत्पादन

(हजार की संख्या में)

	१९३७	१९४७	१९४८
विमको (Wimco)	१८,७९६	१७,२४७	२२,४९५
अन्य	६,७४५	१०,६९६	९,५००

भारत में इस उद्योग का विकास उपयुक्त प्रकार की मुलायम लकड़ी की उपलब्धता पर निर्भर है। भारतीय दियासलाई उद्योग में प्रति वर्ष ६० लाख घन फिट लकड़ी का उपभोग होता है। भारत के इस उद्योग के लिए लकड़ी का महत्वपूर्ण स्रोत अंडमान द्वीपसमूह के जंगल हैं।

मिट्टी के बर्तन बनाने का उद्योग

भारत में यह उद्योग थोड़े ही दिनों से शुरू किया गया है। पिछली सदी के मध्य में चीनी मिट्टी के बरतनों का एक कारखाना बिहार में खोला गया। इस सदी के शुरू में एक कारखाना कलकत्ते में और एक ग्वालियर में खोला गया। सन् १९२५ के बाद से बहुत से कारखाने खुल गये हैं जिनका विवरण इस प्रकार है—

प्रदेश	कारखाने की संख्या
उत्तर प्रदेश	२
बंगाल	११
दिल्ली	३
मद्रास	६
बम्बई	९
काश्मीर	३

प्रदेश	कारखाने की संख्या
रीवां	१
मैसूर	२
हैदराबाद	२
कोचीन	१
ट्रावनकोर	२
ग्वालियर	१

बरतन बनाने के उद्योग का विकास जरूरत से हुआ और देश का यह सबसे पुराना उद्योग है। इसके विकास में बड़ी उन्नति व अवनति हुई है। इसके अलावा बरतन बनाने का काम कुम्हार भी करता है और इस गृह-उद्योग में दिल्ली के नीले बरतन और चुनार के लाल बरतन बहुत ही प्रसिद्ध हैं।

प्रश्नावली

१. भारत के पोत निर्माण अथवा फल भंडार उद्योगों पर एक संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये।

२. भारत में कागज बनाने के कारखाने कहां पाये जाते हैं? उनमें कागज बनाने का उद्यम किस प्रकार होता है? भारत में अधिक कागज तैयार करने के विषय में क्या कुछ और किया जा सकता है?

३. "हमारा सूती वस्त्र उद्योग हमारे यहां कपास के उत्पादन का फल है।" इस कथन से आप कहां तक सहमत हैं? भारत में सूती वस्त्र निर्माण उद्योग के विकास का संक्षिप्त इतिहास लिखिये।

४. "भारत प्रधानतया कृषि-प्रधान देश है और औद्योगीकरण की संभावनायें सीमित हैं।" इस कथन पर अपने विचार प्रकट कीजिये।

५. भारत में सूती वस्त्र निर्माण उद्योग की स्थिति पर प्रभाव डालने वाली भौगोलिक परिस्थितियों का निरूपण कीजिये और किसी एक उद्योग केन्द्र का उदाहरण देते हुये समझाइये।

६. भारत में रासायनिक पदार्थों व कागज बनाने के उद्योग के स्थानीकरण पर भौगोलिक दशाओं व परिस्थितियों ने क्या प्रभाव डाला है?

७. भारत का चीनी उद्योग किन कारणों से इतनी उन्नति कर गया है? भारत के चीनी उद्योग की सहायक भौगोलिक परिस्थितियों का निरूपण कीजिये।

८. भारत में भारी शिल्प उद्योग स्थापन के लिए यहां की प्राकृतिक सम्पत्ति कहां तक पर्याप्त होगी? इस विषय में अपने विचार प्रकट कीजिये।

९. भारत के निम्नलिखित उद्योग-धंधों का वर्णन कीजिये और प्रत्येक के विषय में संभावनायें बतलाइये :—कागज, दियासलाई, लोहा और इस्पात।

१०. भारत में कपास के उत्पादन, वस्त्र निर्माण और विदेशी व्यापार पर प्रभाव डालने वाली विभिन्न भौगोलिक परिस्थितियों का विस्तृत निरूपण कीजिये।

११. "भारत में प्राकृतिक सम्पत्ति तो अपार व अटूट है, परन्तु उसके उद्योग-धंधे बहुत कम हैं।" इसके क्या कारण हैं। उद्योग-धंधों के विकास के लिए किन उपायों से काम लिया जा सकता है ?

१२. भारत में शिल्प उद्योगों के विकास व उन्नति पर एक लेख लिखिये।

१३. भारत के एक मानचित्र पर यहां के ऊन उत्पादक क्षेत्रों को दिखलाइये और यह भी बतलाइये कि ऊन के केन्द्र कौन-कौन से हैं। भारतीय ऊन की सबसे अधिक मांग कहां रहती है ?

१४. भारत में मोटर, हवाई जहाज और पानी के जहाज बनाने के उद्योगों का विकास किया जा रहा है। इन उद्योगों के दृष्टिकोण से भारत में क्या कमी है और उसे किस प्रकार दूर किया जा सकता है ?

१५. भारत का एक मानचित्र बना कर निम्नलिखित उद्योगों के विकास के संभावित स्थान बतलाइये और प्रत्येक के कारण लिखिये—पोत-निर्माण, मशीन, रासायनिक पदार्थ, शीशा और कृत्रिम तन्तु।

१६. भारत के लोहा व इस्पात उद्योग की वर्तमान दशा का वर्णन कीजिये।

१७. भारत के कागज निर्माण उद्योग की क्या दशा है ? इस उद्योग में कौन-सा कच्चा माल लगता है और कहां से प्राप्त होता है ? क्या भारतीय कागज उद्योग देश की मांग-पूर्ति कर सकता है ? कारण समझाते हुये उत्तर दीजिये।

१८. बम्बई में सूती वस्त्र व्यवसाय और कलकत्ता में पटसन उद्योग के स्थानीकरण के कारण बतलाइये।

१९. बम्बई में सूती कपड़ा मिलों के लिए क्या सुविधायें वर्तमान हैं ? बंगाल व उड़ीसा में इस उद्योग के विकास की क्या संभावनायें हैं ?

२०. भारत के लोहा व इस्पात उद्योग को विकास की आवश्यकता है। बिहार और पश्चिमी बंगाल को छोड़कर और किन राज्यों में यह उद्योग स्थापित किया जा सकता है और क्यों ?

२१. पश्चिमी बंगाल के आर्थिक जीवन में पटसन की मिलों का क्या महत्व है ? देश के विभाजन के बाद कच्चे पटसन का केवल एक चौथाई भाग ही भारत में रह गया है। अतः देश में कच्चे माल की मांग-पूर्ति के लिए क्या कुछ किया जा सकता है ?

२२. सीमेंट उद्योग के लिए कौन से कच्चे माल की आवश्यकता होती है ? भारत में इस उद्योग के मुख्य केन्द्र बतलाइये और इसके विकास की संभावनायें दिखलाइये।

२३. भारत के पटसन उद्योग की वर्तमान दशा और भावी संभावनाओं का वर्णन कीजिये।

२४. कच्चे माल की उपलब्धता और स्थानीकरण की भौगोलिक परिस्थितियों के दृष्टिकोण से भारतीय लोहा व इस्पात उद्योग का वर्णन कीजिये।

अध्याय : : दस

यातायात के साधन

देश की सफल आर्थिक व व्यापारिक उन्नति के लिये यातायात की सुविधाओं का होना बड़ा आवश्यक है। राष्ट्रीय समृद्धि के लिये जल, थल व वायु यातायात का सम्यक् विकास होना चाहिये। देश के लिये यातायात के साधन उतने ही महत्व के हैं जितनी शरीर के लिये रक्त-संचालन की धमनियां। जैसे उचित रक्त-संचालन न होने से शरीर के अंग शक्तिहीन व दुर्बल हो जाते हैं वैसे ही यातायात के साधनों की उचित व्यवस्था न होने से देश का विकास रुक जाता है। यातायात की व्यवस्था के द्वारा देश की प्राकृतिक संपत्ति व आर्थिक साधनों का पूरा उपभोग हो सकता है। १९ वीं शताब्दी के मध्य तक यातायात की पूरी सुविधाएं न होने के कारण भारत में कोई विशेष उद्योग-धंधों की उन्नति भी नहीं हुई थी। इस समय जल, थल व वायु यातायात की काफी उन्नति हो गई और फलतः उद्योग-धंधे भी बढ़ रहे हैं। भारत में यातायात के चार साधन हैं:—

(१) रेल मार्ग (२) सड़कें (३) जल मार्ग और (४) वायु मार्ग।

रेलमार्ग

यातायात के सभी साधनों में रेलों का स्थान सबसे महत्वपूर्ण है। भारतीय रेल व्यवस्था एशिया में सबसे बड़ी और संसार के सरकारी संगठनों में दूसरे नम्बर की है। इसमें कोई १० लाख मनुष्य काम करते हैं। शुरू-शुरू में सैनिक यातायात के लिये ही रेलें बनाई गई थीं परन्तु बार-बार अकाल पड़ने से रेलों की लाइनें विभिन्न प्रदेशों को बढ़ा दी गईं। रेलों के बन जाने से देश के व्यापार में संतुलन व समानता आ गई है। देश का औद्योगीकरण भी इन्हीं रेल-मार्गों के सहारे संभव हो सका है। रेलों के बनने से खेती को प्रोत्साहन मिला है और उद्योग-धंधों की तो नींव-सी पड़ गई है।

उत्तर भारत में गंगा व उसकी सहायक नदियों के विस्तृत मैदान में रेलें बनाने की विशेष सुविधाएं हैं। आबादी काफी घनी है और भूमि समतल है इसीलिये रेलों का जाल-सा बिछा हुआ है। परन्तु देश के अन्य भागों में कुछ आर्थिक दोषों के कारण रेलों का अधिक विकास नहीं हुआ है। उत्तर के पहाड़ व पश्चिमी घाट श्रेणियों के बीच से रेल-मार्ग निकालना बड़ा ही दुर्भर है। सतपुड़ा और विंध्याचल की पहाड़ियां तो नीची हैं और उनके ऊपर से या उनके बीच दर्रों के ज़रिये रेल-मार्ग निकाले जा सकते हैं। थार के रेगिस्तान में आबादी बहुत कम है और आर्थिक उन्नति के साधन भी विशेष नहीं हैं। अतः वहां रेलों की कमी है। इस प्रकार भारत की रेलें आर्थिक परिस्थितियों के अनुसार ही प्रभावित होती हैं।

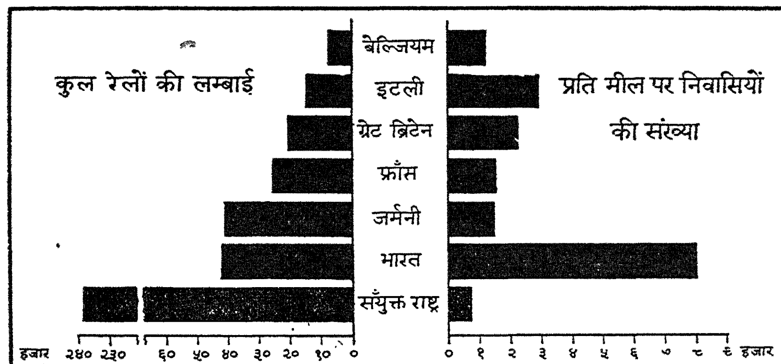
भारत की पहली रेल सन् १८५३ में चालू हुई। यह रेल-मार्ग बंबई और थाना के बीच २० मील की दूरी को संबंधित करने के लिये बनाया गया था। मुद्रा की कमी के कारण रेल-मार्गों का विकास बहुत धीरे-धीरे होता रहा। लेकिन १८८० के बाद सरकार

ने यह सोचा कि देश में पड़ने वाले अकाल पर काबू पाने के लिये रेल-मार्गों का बनाना अनिवार्य है अतः सरकारी धन की सहायता से कई अन्य रेल-मार्ग व उनकी शाखायें बनाई गई। सन १९४७ में देश के विभाजन के पहले ४३००० मील लम्बी रेलें थीं। परन्तु इस समय केवल ३४००० मील लम्बी रेलें रह गई हैं। देश के विभिन्न भागों में इनकी पटरियों के बीच की चौड़ाई भी अलग-अलग है:—५ फीट ६ इंच चोड़ी लाइन को बड़ी लाइन कहते हैं; ३ फीट ३⅜ इंच चौड़ाई को छोटी लाइन और २ फीट ६ इंच की चौड़ाई को संकरी लाइन के नाम से पुकारते हैं। पटरियों के बीच की चौड़ाई की यह विभिन्नता और बड़ी-बड़ी नदियों के ऊपर पुलों की कमी के कारण भारतीय रेलें अधिक विकसित नहीं हो पाई हैं। इसके साथ साथ एक तीसरी कमी यह है कि काश्मीर व नेपाल में रेलों का सर्वथा अभाव-सा है। भारत को और रेलों की आवश्यकता है। संयुक्त राष्ट्र, कनाडा और इंग्लैंड की अपेक्षा भारत काफी पीछे है।

रेलों की लम्बाई

देश	कुल रेलों की लंबाई	प्रति १०० वर्गमील पर रेल-मार्ग की लम्बाई का औसत	प्रति मील रेल-मार्ग पर जनसंख्या का अनुपात
भारत	३४,०००	२.२	७,८००
ग्रेट ब्रिटेन	२०,६००	२१.२	—
कनाडा	४०,३५१	१.१	२२२
आस्ट्रलिया	२७,८००	०.९३	—
संयुक्त राष्ट्र	२,५०,०००	८.४२	४५०

भारतीय रेलों पर प्रतिवर्ष ५००० लाख लोग सफर करते हैं और करीब ८०० लाख टन बोझा लाया ले जाया जाता है। सन् १९५०-५१ में भारतीय रेलों ने ४१,७०९० लाख यात्री और २,७०,००० लाख टन बोझा वहन किया।



चित्र नं० ५४—भारत व अन्य देशों में रेलों की लम्बाई

भारत के वर्त्तमान रेल-मार्गों को ६ वर्गों में बांट दिया गया है।—

१. उत्तरी रेल-मार्ग, २. उत्तरी पर्वी रेल मार्ग, ३. पूर्वी रेल-मार्ग, ४. पश्चिमी रेल मार्ग, ५. मध्यवर्ती रेल-मार्ग और ६. दक्षिणी रेल-मार्ग।

इस वर्गीकरण के पहले भारत में प्रमुख रेल-मार्ग तथा बहुत से देशी राज्यों की रेलें थीं। उन नौ रेल-मार्गों का नाम इस प्रकार था—(अ) ईस्ट इंडियन रेलवे (ब) बंगाल नागपुर रेलवे (स) अवध तिरहुत रेलवे (द) आसाम रेलवे (ई) साउथ इंडिया रेलवे (एफ) मद्रास और साउथ मरहटा रेलवे (जी) बंबई बड़ौदा सेंट्रल इंडिया रेलवे और (एच) पूर्वी पंजाब रेलवे। इस नये वर्गीकरण का उद्देश्य छोटी-छोटी विभिन्न रेलवे लाइनों को मिलाकर एक विस्तृत क्षेत्र बना देना है जिससे रेल संचालन व आर्थिक उन्नति में कम से कम खर्च और अधिक से अधिक सुविधा के साथ सहायता मिल सके।

१. **उत्तरी रेल-मार्ग** (Northern Railway)—५२५९ मील लम्बा है और पूर्वी पंजाब, पेप्सू, दिल्ली, उत्तरी व पूर्वी राजस्थान तथा बनारस तक उत्तर प्रदेश से होकर फैला हुआ है। इस प्रकार इस रेल-मार्ग के अन्तर्गत पूर्वी पंजाब रेलवे, जोधपुर रेलवे, बीकानेर रेलवे और ईस्ट इंडियन रेलवे का पश्चिमी भाग मिला दिया गया है। इसका प्रधान कार्यालय दिल्ली में है। इस रेल-मार्ग की निम्नलिखित शाखायें बड़ी लाइनें हैं—

(अ) दिल्ली से अटारी तक की ३३३ मील लम्बी शाखा जो मेरठ, सहारनपुर, अम्बाला, लुधियाना, जालन्धर और अमृतसर होकर जाती है। अमृतसर से एक उपशाखा पठानकोट होती हुई काश्मीर जाती है।

(आ) दिल्ली से भटिंडा होती हुई फीरोजपुर तक। इस शाखा की लम्बाई २४१ मील है।

(इ) दिल्ली से कालका तक। यह शाखा अम्बाला होकर जाती है और फिर कालका से शिमला तक एक संकरी लाइन जाती है।

(ई) दिल्ली से वनारस तक। यह शाखा अलीगढ़, कानपुर, इलाहाबाद और मुगलसराय होती हुई जाती है।

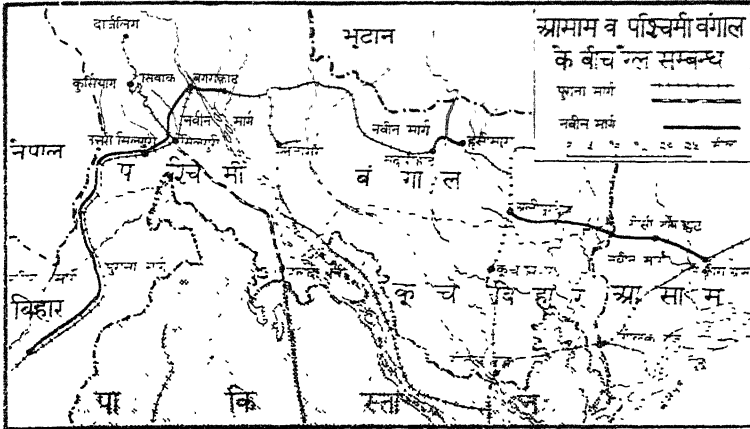
(उ) सहानपुर से बनारस तक। यह मार्ग लखनऊ व जंघई होकर जाता है।

२. **उत्तरी पूर्वी रेल-मार्ग** (North Eastern Railway)—६३२६ मील लम्बी है और छोटी लाइन है। यह उत्तर प्रदेश के उत्तरी भाग और उत्तरी बिहार, पश्चिमी बंगाल तथा आसाम के उत्तरी भाग में फैली हुई है। पहले की अवध तिरहुत रेलवे व आसाम रेलवे को मिलाकर इस रेलमार्ग को बनाया गया है। इसका प्रधान कार्यालय गोरखपुर में है। इस मार्ग का प्रदेश खेती के दृष्टिकोण से विशेष उन्नत है और गन्ना, तम्बाकू, चाय और चावल का व्यापार इसी के द्वारा होता है। इस रेल मार्ग का विविध मोटर योग्य सड़कों तथा गंगा व ब्रह्मपुत्र नदियों से भी संचालन संपर्क रहता है। इसकी प्रमुख शाखायें निम्नलिखित हैं—

(अ) गोरखपुर से अमीन गांव (आसाम) तक। यह छपरा व कटिहार होती हुई जाती है और सिलगुरी में नई रेलवे लाइन से मिल जाती है। पूर्वी पाकिस्तान के बन जाने

से आसाम और पश्चिमी बंगाल के बीच का सीधा रेल मार्ग हाथ से निकल गया है। सन् १९५० में कटिहार और सिलगुरी को रेल द्वारा मिला दिया गया। यह मार्ग दलदली व रोगग्रस्त भूमि से होकर जाता है। सिलगुरी से मदारीहाट तक रेलमार्ग पहले ही से था। मदारीहाट से फकीराग्राम तक एक नई रेल बना दी गई।

(अ) गोरखपुर से लखनऊ होती हुई कानपुर तक। इसकी कुल लम्बाई ५३० मील है। लखनऊ से एक शाखा बरेली तक जाती है।



चित्र नं० ५५—पूर्वी पाकिस्तान के बन जाने से आसाम भारत से बिल्कुल अलग हो गया और इसलिए भारत की भूमि पर से होते हुए एक रेल-मार्ग का बनाना अनिवार्य हो गया है।

(इ) गोरखपुर से सारन होती हुई बनारस तक।

(ई) मनीपुर रोड होती हुई पन्डू से गौहाटी व तिनसुखिया तक। इसकी लम्बाई ३२५ मील है। यह मार्ग ब्रह्मपुत्र की घाटी के साथ-साथ आगे बढ़ता है और इसलिये संपूर्ण मार्ग में कहीं भी पुल द्वारा ब्रह्मपुत्र नदी को पार नहीं करना पड़ता।

यह संपूर्ण रेल-मार्ग कानपुर, लखनऊ और बनारस में उत्तरी रेल-मार्ग से मिल जाता है।

३. पूर्वी रेल-मार्ग (Eastern Railway)—इसकी लम्बाई ५६७५ मील से भी अधिक है और मुगलसराय और हुगली के बीच गंगा के पूर्वी मैदान में चलता है। पश्चिमी बंगाल, छोटा नागपुर, मध्यप्रदेश का पूर्वी भाग और मद्रास का आंध्र प्रदेश इसी की शाखाओं द्वारा संबद्ध है। बंगाल नागपुर रेलवे और ईस्ट इंडियन रेलवे के पूर्वी भाग को मिलाकर इसको बनाया गया है। इस पर सब से अधिक यात्री सफर करते हैं और सब से अधिक माल ढोया जाता है। इसी मार्ग से ले जाये जाने वाले माल में कोयला, लोहा, मैंगनीज, पटसन, अभ्रक और इसी प्रकार की अन्य खनिज वस्तुओं का महत्व बहुत अधिक है। वास्तव में पूर्वी गंगा के मैदान में इस रेल-मार्ग के द्वारा विविध आर्थिक लाभ होते हैं।

इसके द्वारा प्रतिदिन ५३८,००० मुसाफिर सफर करते हैं और १४३,५०० टन माल ढोया जाता है। इस आर्थिक क्रियाशीलता का कारण यह है कि कलकत्ता बन्दरगाह है और इस प्रदेश में उद्योग धंधों का केंद्रीकरण भी विशेष है। इसका प्रधान कार्यालय कलकत्ते में है। इसकी मुख्य शाखायें निम्नलिखित हैं—

(अ) हावड़ा से मुगलसराय तक। यह शाखा गया व डेहरी ओनसोन होती हुई जाती है।

(आ) हावड़ा से मुगलसराय तक। यह शाखा पटना होती हुई जाती है। इसकी लम्बाई ४११ मील है।

ये दोनों ही लाइनें मुगलसराय में उत्तरी रेलों से मिल जाती हैं और फिर उनके द्वारा दिल्ली, सहारनपुर व उसके आगे तक भी चली जाती हैं।

(इ) हावड़ा से किउल तक। यह शाखा २५४ मील लम्बी है और बरहरवा, साहिबगंज, भागलपुर व जमालपुर होकर जाती है।

इन सभी शाखाओं को कई-उप-शाखाओं द्वारा एक दूसरे से मिला दिया गया है।

(ई) हावड़ा से नागपुर तक। यह मार्ग ७०३ मील लम्बा है ओर टाटानगर-बिलासपुर और रायपुर इसी मार्ग पर केंद्रित हैं। इस शाखा के मार्ग में पड़ने वाले क्षेत्र खनिज पदार्थों में धनी हैं तथा औद्योगिक विकास में आगे बढ़े हुए हैं। इनके द्वारा कोयला, मैंगनीज, लोहा आदि का अपनयन होता है। टाटानगर जैसा प्रमुख इस्पात केंद्र भी इसी मार्ग पर स्थित है। टाटानगर को बोनाई, कयोनहजार और सिंघभूम की लोहे व मैंगनीज़ की खानों से संबंधित करने के लिये कई छोटी-छोटी उप-शाखाओं का निर्माण हो गया है।

(उ) हावड़ा से बाल्तेर तक। यह शाखा बालासोर, कटक, बरहामपुर और विजयानगरम होकर जाती है और कुल ५४७ मील लम्बा है। यह शाखा मद्रास तक भी चली जाती है।

इसकी एक उप-शाखा जो रायपुर और वाल्टेयर को मिलाती है, बड़ी ही महत्वपूर्ण है। इस लाइन के बन जाने से पूर्वी रेलवे का महत्व बहुत बढ़ गया है। निर्यात की जो वस्तुएं पहले कलकत्ता तक ले जाई जाती थीं अब वे वाल्टेयर से ही बाहर भेज दी जाती हैं। इस शाखा पर करीब २०० लाख यात्री और १८० लाख टन माल को लाया ले जाया जाता है।

पूर्वी रेल मार्ग व उसकी शाखायें कलकत्ता बन्दरगाह को उसके पृष्ठ प्रदेश पश्चिमी बंगाल, बिहार, उड़ीसा, मध्य प्रदेश, विन्ध्य प्रदेश और मद्रास से मिलाती हैं। पश्चिमी बंगाल और बिहार के चावल व पटसन उत्पादक क्षेत्रों, उड़ीसा और मध्य प्रदेश के जंगलों, बिहार और पश्चिमी बंगाल की कोयले की खानों, मध्य प्रदेश, बिहार ओर उड़ीसा की लोहे की खानों और अभ्रक की खानों तथा टाटानगर के इस्पात कारखाने, सिंदरी का खाद कारखाना, चित्तरंजन में इंजन बनाने के कारखाने और विशाखापटनम में पोत-निर्माण क्षेत्रों से होकर जाने के कारण इस रेल-मार्ग का विशेष महत्व है। विशाखापटनम को बन्दरगाह को भी इसी द्वारा पहुंचा जा सकता है। इसके अतिरिक्त इसके मार्ग में अनेक धार्मिक व सैर करने वाले नगर भी स्थित हैं।

दामोदर घाटी योजना और हीराखड्ड बांध योजना के पूरा हो जाने पर इस क्षेत्र की औद्योगिक उन्नति के साथ-साथ इस रेल-मार्ग का महत्व भी बढ़ जावेगा।

४. **पश्चिमी रेल-मार्ग** (Western Railway)—पश्चिम रेलवे की स्थापना ५ नवम्बर १९५१ को की गयी। पुरानी बी. बी. एण्ड सी. आई. रेलवे (जिसके मीटर गेज के कुछ छोटे टुकड़े बाद में उत्तर और पूर्वोत्तर रेलवेज़ में मिला दिये गये), सौराष्ट्र, जयपुर और राजस्थान (उदयपुर) रेलवेज़, जोधपुर रेलवे का मारवाड़ जंकशन से फुलाद तक का १६ मील का टुकड़ा तथा संकरी लाइन कच्छ स्टेट लाइन (७२ मील) और कच्छ के आयोजित कांधला बन्दरगाह को मिलाने वाला डीसा—गांधीधाम का हाल में बनाया और खोला गया टुकड़ा इसमें शामिल है।

पश्चिम रेलवे अहमदाबाद, इंदौर, राजकोट, भावनगर आदि की सूती कपड़े की मिलों, लाखेरी, सेवालिया, द्वारका और पोरबन्दर के सीमेंट के कारखानों तथा मीठापुर की केमिकल फैक्टरियों वगैरह की सेवा करती है। इस रेलवे को भारत साम्भर, खारगोधा, कुड़, लवनपुर आदि नमक के प्राचीनतम क्षेत्रों की यातायात एजेंसी के रूप में काम करने का सौभाग्य तो विरासत में मिला है ही, पश्चिमी तट के दूसरे बड़े बन्दरगाह कांधला (जिस की नींव भारत के प्रधान मंत्री ने १० जनवरी १९५२ को रखी; की उन्नति में और उदयपुर की उदीयमान जस्त की फैक्टरी को, जो स्वेज के पूर्व में अपनी किस्म की अकेली फैक्टरी है, माल वगैरह पहुंचाने में भी यह रेलवे सहायक होगी। इन जिम्मेदारियों के अतिरिक्त, बंबई जैसे बड़े औद्योगिक नगर की रोजमर्रा की जरूरतों को, चाहे वे मांस, दूध सब्जी, फल वगैरह के यातायात की हों, चाहे बंबई की बिजली से चलने वाली लोकल गाड़ियों से नगर के लगभग ४ लाख व्यक्तियों को लाने-ले जाने की हों, घड़ी-जैसी नियमितता से अन्जाम देना भी इसी रेलवे के जिम्मे है।

यद्यपि आज पश्चिम रेलवे की आर्थिक सेवाओं का स्थान प्रमुख है, तथापि उन दर्शकों, यात्रियों और इतिहासकारों की, जो इस रेलवे पर स्थित महत्वपूर्ण स्थानों की यात्रा करते हैं, आवश्यकताओं का महत्व भी कम नहीं है। आम्बेर, मांडु, फतहपुर सीकरी, आगरा, चित्तौड़ और उदयपुर के नाम से ही बड़ी-बड़ी बातें याद हो आती हैं। पवित्र तीर्थस्थानों के यात्रियों की आवश्यकताओं का अपना महत्व है। यह ५५२२ मील से भी अधिक लंबी है और बंबई, राजस्थान, मध्य प्रदेश तथा मध्य भारत से होकर गुजरती है। इस मार्ग को बंबई बड़ौदा सेंट्रल इंडिया रेलवे, सौराष्ट्र रेलवे, राजस्थान रेलवे, और जयपुर रेलवे को मिलाकर बनाया गया है। इस मार्ग के द्वारा कपास व सूती कपड़े का व्यापार बहुत अधिक होता है। बंबई, अहमदाबाद और बड़ोदा के औद्योगिक केंद्र इसी मार्ग पर पड़ते हैं। देश विभाजन के बाद करांची के हाथ से निकल जाने पर इस मार्ग पर यात्रियों की भीड़ व माल का भार बहुत अधिक हो गया है। इस मार्ग के द्वारा लगभग १ करोड़ टन माल और ८० लाख मनुष्य आते जाते हैं। इसका प्रधान कार्यालय बंबई में है। इसकी मुख्य बड़ी लाइनें निम्नलिखित हैं—

(अ) बंबई से दिल्ली तक। यह ८६१ मील लम्बी है और सूरत, बड़ौदा, रतलाम,

नागदा. बयाना होकर जाती है। बयाना से एक लाइन आगरा को जाती है और आगरा व कानपुर के बीच छोटी लाइन द्वारा संबंध है।

(आ) बम्बई से अहमदाबाद। यह शाखा ३०६ मील लम्बी है और सूरत व बड़ौदा होकर जाती है। सूरत भुसावल से एक उप-शाखा द्वारा मिला हुआ है और भुसावल नागपुर से सम्बन्धित है।

प्रमुख छोटी लाइनें इस प्रकार हैं —

(अ) अहमदाबाद से दिल्ली तक। इस शाखा की लम्बाई ५३९ मील है और आबू रोड, बियम्बर, जैपुर और अलवर रास्ते में पड़ते हैं। अजमेर से एक उप-शाखा खंडवा तक जाती है ।

(आ) पोरबन्दर से डोहाला, राजकोट से वेरावल, कान्वला से भुज ओर सुरेंद्रनगर से ओखा तक अन्य शाखायें हैं।

५. **मध्यवर्ती रेल-मार्ग** (Central Railway)—इसकी संपूर्ण लम्बाई ५३१५ मील से भी अधिक है और यह मध्य भारत, मध्य प्रदेश तथा मद्रास के उत्तरी पश्चिमी भाग से होकर जाती है। जी. आई. पी. रेलवे, सिन्धिया रेलवे, धौलपुर रेलवे ओर निज़ाम राज्य रेलवे को मिलाकर यह रेल-मार्ग बना है। इसकी प्रमुख शाखायें निम्नलिखित हैं—

(अ) बंबई से दिल्ली तक। यह शाखा ९५८ मील लम्बी है और भुवासल, खांडवा, इटारसी, भोपाल, झांसी, आगरा, मथुरा होकर जाती है। इटारसी एक उप-शाखा द्वारा इलाहाबाद व नागपुर से भी संबंधित है ।

(आ) बंबई से रायपुर तक। रास्ते में पूना व वादी पड़ते हैं और कुल लम्बाई ४४३ मील है। यह शाखा आगे बढ़कर बंगलौर तक भी चली जाती है।

(इ) दिल्ली से बेजवादा तक। इटारसी, नागपुर, वार्धा और काजीपत होती हुई यह लाइन मद्रास तक चली जाती है । एक उप-शाखा द्वारा काजीपत हैदराबाद से संबंधित है।

इस मार्ग से बंबई, मध्य प्रदेश और भोपाल को विशेष लाभ पहुंचता है। मध्य प्रदेश की कपास व मैंगनीज़ तथा भोपाल की लकड़ी इसी मार्ग द्वारा व्यापार में आती है। साधारणतया इस पर ५०० लाख यात्री सफर करते हैं और ११० लाख टन माल लाया ले जाया जाता है। इसका प्रधान कार्यालय बंबई में है।

१६ अप्रैल, १८५३ ई. के दिन भारतवर्ष में सर्वप्रथम रेल, बम्बई से थाना तक २१ मील दूर चली थी। "दि ग्रेट इंडियन पेनिन्सुल रेलवे" (वर्तमान मध्य रेलवे) जो इस छोटे से रूप में उत्पन्न हुई थी, सालोसाल बढ़ती गयी। गत १०० वर्ष के जीवन में एक के बाद एक उसमें क्रम से अनेक प्रशंसनीय उन्नतियां हुई हैं। उसके सीमा-फैलाव के लिये अगम्य और अवेध पर्वतों को भेद कर जाने के लिये सुरंगें खोदी गयी हैं। और अनेक बड़ी बड़ी नदियों के आरपार पुल बनाये गये है। यात्रा शीघ्र और सुविधाजनक वनाने के लिये अच्छे डिब्बे और बड़े इंजन समनुविधान करके बनाये गये हैं। माल (असबाब) के बढ़ते हुए यातायात के लिये नवीन

और उत्तम प्रकार के माल के डिब्बे काम में लाये गये हैं। मनुष्य की प्राकृतिक भूल करने की वृत्ति को विकसित (इम्प्रूव्ड सिग्नेलिंग प्रैकटिमेज) मांकेनिक योजना द्वारा विफल करके यात्रा सुरक्षित करने का प्रयत्न किया गया है।

जी. आई. पी. रेलवे जिसका आरम्भ सन् १८५३ में बंबई और थाना के बीच के २१ मील के भाग मे हुआ था, अब बंबई से उत्तर में दिल्ली, कानपुर और इलाहाबाद तक, पूर्व में बेजवाड़ा और दक्षिण में रायचूर और हैदराबाद तक फैली हुई है।

थाना तक लाइन चालू करने के तुरन्त बाद ही भोर और थल घाट के पहाड़ी रेल-मार्ग बनाये गये थे जिससे अगम्य पश्चिमी घाट को भेद कर भारत के मध्य का द्वार खुला था। भोर घाट के १७ मील लम्बे विस्तृत ढालू रेल-मार्ग में २७ सुरंगें हैं, और थल घाट के १० मील विस्तृत ढालू मार्ग में १३ सुरंगें हैं। इन दोनों घाटों को बनाने में १० साल लगे थे और १,३५,००,००० रुपये से अधिक व्यय हुआ था।

इन पर्वतीय भागों में दो रेल मार्गों के बीच कम अंतर होने से उत्पन्न हुई अड़चनों को हटाना, कुछ सुरंगों को चौड़ा करना और नई सुरंगें बनाना हाल ही में आवश्यक समझा गया था। १० नई सुरंगें बनाई गई थीं, पूर्व-स्थित ६ सुरंगें चोड़ी की गई थीं, और २ सुरंगें खुले कटन में परिणत कर दी गई थीं। इन कामों में लगभग २½ करोड़ रुपया व्यय हुआ था और काम ५ साल, सन् १९४६ से १९५१ तक चालू रहा था। इस काम के करने में हाल ही की आविष्कारिक इंजीनियरिंग युक्तियां प्रयोग की गई थीं।

भारतवर्ष में सब से प्रथम रेलवे लाइन होने के अतिरिक्त, भारतवर्ष में सर्वप्रथम विद्युत-चालित रेलों का प्रयोग करने का अनुपम मान भी जी. आई. पी. रेलवे का है। ३ फरवरी १९२५ के दिन विक्टोरिया टर्मीनस से कुर्ला तक हारवर ब्रांच लाइन विद्युत-चालित करके यातायात के लिये चालू की गई थी। बंबई भाग की उप-नगरीय रेलों को विद्युत चालित करने के पश्चात ही बंबई से पूना और बंबई से इगतपुरी तक मूल (मेन) लाइन की रेलों को विद्युत चालित किया गया था। आज सारे भारतवर्ष में सब से अधिक दूरी तक विद्युत चालित रेल की लाइनें मध्य रेलवे के पास हैं।

६. **दक्षिण रेल-मार्ग** (The Southern Railway)—मैसूर रेलवे मद्रास और साउथ मरहटा रेलवे तथा साउथ इंडियन रेलवे को मिलाकर यह रेल-मार्ग बनाया गया है। इसकी कुल लम्बाई ५७२४ मील है। इसमें छोटी व बड़ी दोनों ही प्रकार की लाइनें मिली हुई हैं। इसका प्रधान कार्यालय मद्रास में है और मद्रास, मैसूर, ट्रावनकोर-कोचीन तथा दक्षिणी बंबई और हैदराबाद के कुछ भाग इसके मार्ग में पड़ते हैं। इसकी बड़ी लाइन वाली शाखायें निम्नलिखित हैं—

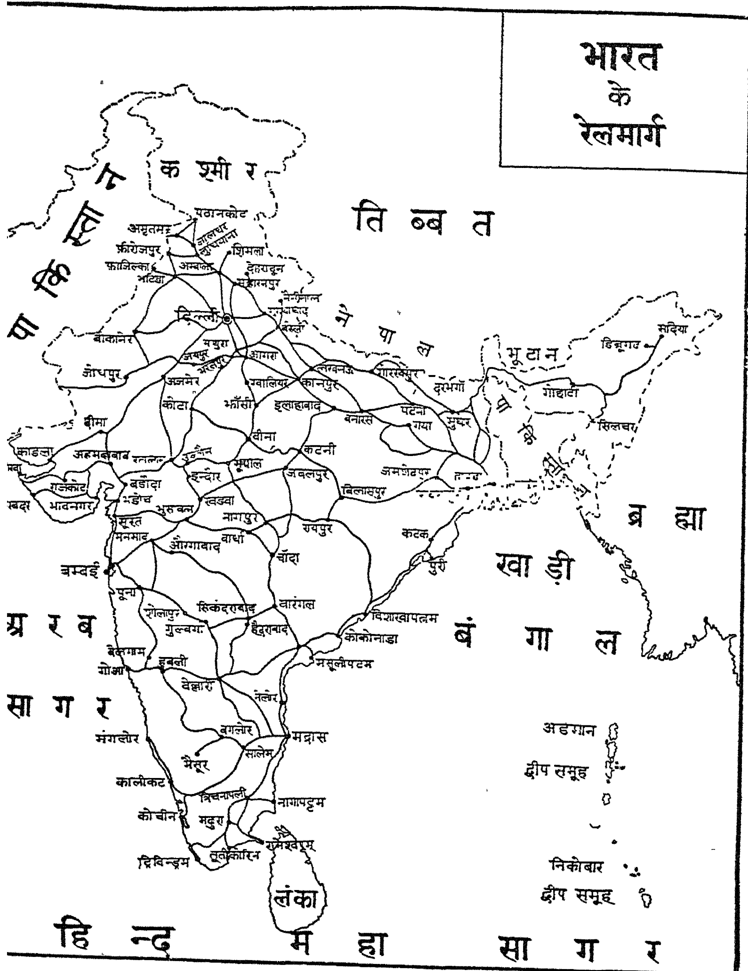
(अ) मद्रास से वाल्टेयर तक। नेल्लोर और बेजवादा होती हुई यह शाखा २६८ मील लम्बी है। इसके द्वारा मद्रास और कलत्ते के बीच संबंध स्थापित होता है।

(आ) कुड़ापा द्वारा मद्रास से रायपुर तक। इसकी लम्बाई ३५१ मील है और यह लाइन मद्रास व बंबई को मिलाती हैं।

(इ) मद्रास से बंगलौर तक। इसकी कुल लम्बाई २२२ मील है।

(ई) जलारपत से मंगलौर तक। यह शाखा ४२३ मील लम्बी है और सलेम, रोड, कोयम्बटूर व टेलीचरी से होकर जाती है। जलारपत बंगलौर और उटकामंड से भी मिला हुआ है।

छोटी लाइन की प्रमुख शाखायें निम्नलिखित हैं:—



चित्र नं० ५६

(अ) पूना से हरिहर तक। यह पूरा मार्ग ४१५ मील है। मद्रास से बंबई तक आने का यह वैकल्पिक मार्ग है। हरिहर से एक लाइन बंगलौर तक जाती है।

(आ) गुन्टाकल से मसूलीपटम तक। यह लाइन ३२० मील लम्बी है और बेज-

वादा होकर जाती है।

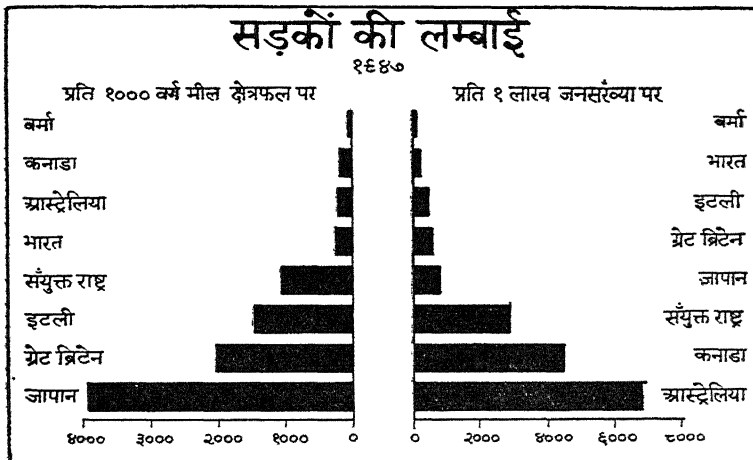
(इ) मद्रास से धनुपकोटी तक। तंजोर और ट्रिचनापली होता हुआ यह मार्ग ४२२ मील लम्बा है।

(ई) मद्रास से ट्रिवनड्रम तक। यह शाखा ट्रिचनापल्ली, विरुधनगर, मदुरा और क्यूलन होती हुई ५१२ मील का फासला पार करती है। विरुधनगर से एक उपशाखा तूतीकोरिन तक जाती है।

सड़कें

कई शाखाएं व उप-शाखाएं मद्रास, कोचीन, तूतीकोरिन, अल्लपी, क्यूलन और कालीकट को मिलाती हैं। खाद्यान्न, कपास, तिलहन, नमक, चीनी, तम्बाकू, लकड़ी और खाल व चमड़े इस मार्ग पर चलने वली विभिन्न वस्तुएं हैं।

भारत में सड़कों की कुल लम्बाई २,५०,००० मील है। देश की जन-संख्या व विस्तार देखते हुए यह बहुत कम है। इस कुल लम्बाई में केवल ६७००० मील लम्बी सड़कें ही पक्की हैं। पक्की सड़कों की इस कमी के कारण गांव प्रदेशों में बड़ी असुविधा रहती है। सड़कों की कमी के कारण भारत के बहुत से उपजाऊ क्षेत्र बिना खेती के पड़े हुए हैं क्योंकि यदि खेती की जाय तो उसे मंडी तक पहुंचाने के लिये काफी दिक्कत व खर्चा उठाना पड़ता है फ्रांस, जर्मनी, संयुक्त राष्ट्र, ग्रेट ब्रिटेन और इज़रायल में सड़कों के बनने से ही कृषि का विकास हुआ है। भारत में अभी भी बहुत से गांव अकेले अलग पड़े हुए हैं।



चित्र नं० ५७—भारत और अन्य देशों में सड़कों की लम्बाई। भारत की सड़क यातायात बहुत पिछड़ी हुई दशा में है। प्रति वर्गमील क्षेत्रफल पर $\frac{1}{2}$ मील सड़क का औसत है।

मोटर-गाड़ियों के भारत में बढ़ने से इन सड़कों की दशा में सुधार हो गया है और नई सड़कें भी पक्की बनाई जा रही हैं। आजकल देश के बहुत से भागों में मोटर यातायात ही

गमनागमन का मुख्य साधन है। फिर भी अन्य देशों की अपेक्षा भारत में सड़क यातायात बहुत पिछड़ी हुई दशा में है। सड़कों की उन्नति बहुत कुछ मोटर-गाड़ियों की संख्या पर निर्भर रहती है। भारत में प्रति १ लाख जन-संख्या पर केवल ९० मोटर-गाड़ियों का औसत पड़ता है। संयुक्तराष्ट्र अमरीका में मोटर-गाड़ियों का औसत २६,०००, कनाडा में १७,०००, आस्ट्रेलिया में १७,००० और ग्रेट ब्रिटेन में ६००० है। यही कारण है कि भारत की सड़कें इतनी पिछड़ी हुई हैं। साथ-साथ यह भी कहा जा सकता है कि यहां की सड़कों की हीन दशा के कारण ही यहां पर मोटर-गाड़ियों की संख्या इतनी कम है। भारत की अधिकतर सड़कें कच्ची हैं जो जून से सितम्बर तक वर्षा के कारण दलदली हो जाती हैं। भारत की सड़कों की अविकसित दशा का अनुमान इसी बात से लग सकता है कि भारत की १ लाख जनसंख्या पर सड़कों की लम्बाई का औसत ३ मील पड़ता है जबकि संयुक्त राष्ट्र, फ्रांस और ग्रेट ब्रिटेन में यह औसत क्रमश: २५०००, ९३४ और ४००० मील है।

उत्तर प्रदेश, काश्मीर, मध्यभारत और ट्रावनकोर में नई सड़कों का काफी विस्तार हुआ है। कई राज्यों में मोटर यातायात की व्यवस्था सरकारी संरक्षण में है। दिल्ली, कल-



चित्र नं० ५८

कत्ता, आगरा, इलाहाबाद, नागपुर, हैदराबाद, मदुरा, ट्रिवानड्रम और इंदौर सड़क यातायात के प्रमुख केन्द्र है और इन स्थानों से कई सड़कें भिन्न-भिन्न स्थानों को जाती हैं। वास्तव में भारत जैसे कृषि प्रधान देश में सड़क यातायात का उन्नत होना बड़ा आवश्यक है। भारत को अपनी आर्थिक प्रगति में रेलों से काफी सहायता मिली है। अब देश के भीतरी भागों की उन्नति के लिये नई सड़कों का बनना और कच्ची सड़कों को पक्का करके मोटर योग्य बनाना बहुत आवश्यक है। इसके यह अर्थ नहीं कि सड़कें रेलों से स्पर्धा करेंगी और रेलों का स्थान ले लेंगी ; बल्कि अच्छी सड़कों के बन जाने से रेलों को सहायता मिलेगी और दोनों की सहायता से आर्थिक उन्नति के मार्ग पर अग्रसर होगा।

भारत में विभिन्न राज्यों में सड़कों का विस्तार इस प्रकार है —

प्रदेश	विस्तार (मील)	प्रदेश	विस्तार (मील)
मद्रास	२७,११५	मध्य प्रदेश	७,५३५
बम्बई	१३,४००	बिहार और उड़ीसा	३,९६१
पूर्वी पंजाब	७,०००	पश्चिमी बंगाल	३,०००
उत्तर प्रदेश	७,७७६		

देश की रेलों की कुल लम्बाई के ४० प्रतिशत अंश के बराबर पक्की सड़कें हैं। इन पर बसें व मोटर-लारियां चलती हैं और भीतर के गांवों व शहरों तथा रेल स्टेशनों को आपस में मिलती हैं। वास्तव में छोटी-छोटी यात्राओं के लिये तो मोटरों का महत्व बहुत अधिक है। इनके द्वारा शीघ्र व सस्ते दामों पर आया जाया जा सकता है। इनके अलावा मोटर-गाड़ियां किसी भी दशा में जा सकती हैं। रेलों की भांति वे पटरियों पर आश्रित नहीं होतीं। सड़क द्वारा यातायात सस्ता भी पड़ता है क्योंकि उन्हें न तो स्टेशनों की ही आवश्यकता होती है और न विस्तृत मैदानों की ही। इसलिए कभी-कभी रेलों और मोटरों के बीच स्पर्द्धा उठ खड़ी होती है। परन्तु बड़े-बड़े नगरों व उनके समीपवर्ती प्रदेशों में जहां सड़कें रेल-मार्गों के समानान्तर चलती हैं प्रायः ५० मील के फासले तक तो यह स्पर्धा रहती है फिर उसके आगे नहीं। साधारणतया भारत की पक्की सड़कें रेल-मार्गों की सहायक व पूरक हैं। भारत में शाखान्तरित सड़कों की अधिक आवश्यकता है जो मुख्य सड़कों व रेल-मार्गों को सहायता पहुंचा सके और लाखों गांवों को व्यापार के मार्गों के साथ संपर्क में ला सके। भारत सरकार ने पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत अगले ५ सालों में सड़कों पर १०५ करोड़ रुपये खर्च करने की योजना की है। भारत में सड़क यातायात व्यवस्था को तीन श्रेणियों में बांटा जा सकता है—

(१) राष्ट्रीय राजपथ जो देश के विभिन्न भागों से होते हुए एक कोने से दूसरे कोने तक जाते हैं। इन के द्वारा प्रमुख बन्दरगाह, विदेशी थल मार्गों तथा राज्यों के शासन केंद्रों के बीच स्थापित कियाजाता है। इसी के अन्तर्गत वे सड़कें भी आ जाती हैं जो सैनिक संचालन और सुरक्षा के लिये देश के आरपार बनाई गई हैं।

(२) राजकीय सड़कें जो विविध राज्यों के भीतर एक स्थान को दूसरे स्थान से मिलाती थी।

(३) जिला बोर्डों की सड़कें जो गांवों को नगरों से तथा कस्बों को मंि
से मिलाती हैं।

इस समय देश में ४ बड़ी-बड़ी सड़कें हैं जो देश के एक कोने से दूसरे कोने तक ज
हैं। इनके नाम ये हैं :—

(१) कलकत्ता से दिल्ली तक
(२) कलकत्ता से मद्रास तक
(३) मद्रास से बम्बई तक
(४) बंबई से दिल्ली तक



चित्र नं० ५९

इन प्रमुख सीधी सड़कों से बहुत-सी शाखायें व उप-शाखायें भी निकलकर आसपा
के नगरों व गांवों को जाती है। यह सब पक्की हैं और इनकी कुल लम्बाई ५००० मील है

सड़कों का महत्व—सड़कों से रेलों को बड़ी सहायता मिलती है। स्थानीय मंडि
को किसान के खेतों से मिलाने वाली सड़कें ही होती हैं और सड़कों द्वारा ही निकटत

स्टेशनों तक भी पहुंचा जा सकता है। अच्छी व विस्तृत सड़कों के अभाव में रेलों तक माल पहुंचाना कठिन है। अतएव परस्पर स्पर्धा को कम करने के लिये सड़कों व रेलों का विस्तार इस प्रकार बढ़ाना चाहिये कि वे सदैव एक दूसरे की सहायक व पूरक ही हों। सड़कें रेलों को सहायता ही पहुँचायें उन्हें स्थानान्तरित न कर पायें।

सीमान्त मार्ग

यद्यपि भारत की स्थल सीमा बहुत विस्तृत है, परन्तु व्यापार अधिक नहीं है। भारत की स्थल सीमा ३००० मील लम्बी है परन्तु घने जंगलों, ऊंचे पर्वतों और विस्तृत मरुस्थलों के कारण सीमान्त व्यापार सीमित है। भारत और उसके सीमांत देशों के बीच कोई सीधा रेल-मार्ग नहीं है। अतः मध्य एशिया, तिब्बत और नेपाल से व्यापार या गमनागमन के मुख्य साधन याक, बैल, खच्चर और ऊंट ही हैं।

काश्मीर में लेह से एक मार्ग तिब्बत व सिक्यांग को जाता है। संसार से सबके कठिन मार्गों में से एक है और १९००० फीट की ऊंचाई पर स्थित कराकोरम दर्रे से होकर जाता है। तिब्बत के साथ सम्पर्क रखने के लिए दार्जिलिंग, नैनीताल और बेलिहा से भी पहाड़ी मार्ग जाते हैं।

उत्तरी-पूर्वी आसाम में लेडो से एक मार्ग बर्मा होता हुआ चीन को जाता है। इस मार्ग का महत्व दूसरे महायुद्ध काल में बहुत बढ़ गया था। दूसरे महायुद्ध में लेडो बर्मा सड़क का नाम स्टिलवेल रोड पड़ गया। लीडो से यह मार्ग दक्षिण की ओर भामो तक जाता है। रास्ते में मियतकीना पड़ता है। लाशियो से एक दूसरा मार्ग भी भामो तक आता है। भामो से पूर्व की ओर मार्ग जाता है और कई पहाड़ी ऊंचाइयों को पार करके पाओशान होता हुआ कन्मइंग पहुंचता है। लेडो और कन्मइंग तक इस मार्ग का विस्तार १०४४ मील है। यही सड़क आगे बढ़ जाती है और १००० मील के बाद स्थित चुंगकिंग को मिलाती है। स्टिलवेल रोड की सहायता से भारत व चीन के व्यापार को प्रोत्साहन मिल सकता है।

भारत व पाकिस्तान के बीच का बहुत-सा व्यापार सीमान्त मार्गों द्वारा ही होता है।

जल-मार्ग

बहुत प्राचीन काल से भारत के उत्तरी भाग में नाव्य नदियों की बहुलता और समतल भूमि के कारण अधिकतर व्यापार जल-मार्गों द्वारा ही होता रहा है। उत्तरी भारत की नदियों की कुल लम्बाई २०,००० मील के लगभग है परन्तु केवल ४००० मील का फासला ही नाव चलाने योग्य है। रेलों के निर्माण के पूर्व भारत का बहुत अधिक आन्तरिक व्यापार इन्हीं नदियों द्वारा होता था। परन्तु रेलों के बन जाने से जल मार्गिक व्यापारको विशेष हानि पहुंची है। आजकल जल-मार्गों द्वारा आन्तरिक व्यापार बहुत कम महत्व का है। रेलों की अपेक्षा नदियों द्वारा व्यापार १ प्रति शतांश से अधिक नहीं होता। इस समय केवल २५ लाख टन माल ही नावों द्वारा प्रतिवर्ष लाया ले जाया जाता है।

नदियों द्वारा बहुत काफी माल ढोया जा सकता है। इसलिए नदियों द्वारा यातायात

व्यवस्था की उन्नति की विशेष संभावनाएं हैं। परन्तु भारत की नदियों के मुहाने पर पानी छिछला है तथा नदियां बलुहे डेल्टा बनाती हैं। अन्य देशों में गहरी व चौड़ी एश्चुरी मुहानों की वजह से जहाजों को भीतर आने की सुविधा रहती है। यह लाभ भारत की नदियों को प्राप्त नहीं है। भारत की छोटी नदियों को तो बात विशेष महत्व की नहीं है परन्तु भारत की दो बड़ी नदियों—गंगा व ब्रह्मपुत्र—द्वारा काफी व्यापार होता है।

गंगा नदी—भारत की सब से महत्वपूर्ण नदी है। हिन्दुओं द्वारा यह नदी बड़ी पवित्र मानी जाती है और इसलिए इसके सम्पूर्ण मार्ग पर किनारे-किनारे बड़े-बड़े मन्दिरों व धार्मिक नगरों का निर्माण हुआ है। हिमालय प्रदेश में १४००० फीट की ऊंचाई पर गढ़वाल जिले से यह निकलती है। बर्फ से ढकी पहाड़ियों से निकलने के कारण इसमें साल भर बराबर पानी भरा रहता है। यह नदी १६०० मील लम्बी है। हरिद्वार में यह नदी पहाड़ों को छोड़कर मैदानों में प्रवेश करती है। हिमालय की तलहटी में हरिद्वार से यह नदी दक्षिण-पूर्व दिशा में उत्तर प्रदेश, बिहार और बंगाल से बहती हुए बंगाल की खाड़ी में गिर जाती है। इसके मुहाने से कोई ५०० मील ऊपर तक इस नदी की गहराई करीब ३० फीट है। इसलिए स्टीमर जहाज बड़ी अच्छी तरह ५०० मील तक आ-जा सकते हैं। छोटी-छोटी देशी नावें तो हरिद्वार तक चली जाती है। नदी में नाव चलाना बड़ा ही रमणीक है और नदी पर बहती हुई नावों का दृश्य बड़ा ही सुन्दर है। परन्तु रेलों के बन जाने से गंगा का महत्व बहुत कम हो गया है। सन् १८५४ तक इलाहाबाद से ४०० मील और ऊपर गढ़-मुक्तेश्वर तक स्टीमर जहाज चले जाते थे; परन्तु अब केवल बक्सर तक ही नदी पर नावें चलाई जा सकती हैं। इसको इलाहाबाद तक नाव्य बनाने की योजना पर विचार हो रहा है।

गंगा की अधिकतर सहायक नदियां—गोमती, घाघरा, गन्डक—इसके बायें किनारे पर हैं। मध्यभारत में कम जलवृष्टि और बर्फीली चोटियों के अभाव के कारण दाहिने किनारे पर सहायक नदियों की संख्या बहुत कम है। गंगा की सब से बड़ी सहायक नदी जमुना है जो ८६० मील तक गंगा के समानान्तर बहने के बाद इलाहाबाद में मिलती है।

गंगा पर स्थित प्रमुख नगर हरिद्वार, कानपुर, इलाहाबाद, मिर्ज़ापुर, बनारस, गाज़ीपुर, पटना, मुगेर, मुर्शिदाबाद और कलकत्ता हैं। जमुना पर स्थित दिल्ली, मथुरा और आगरा के नगर विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

गंगा बांध योजना (Ganges Barrage Project)—४०० वर्ष पहले गंगा के मुहाने के पास भगीरथी इसकी बड़ी प्रमुख शाखा थी परन्तु अब यह केवल एक छोटे से नाले के समान रह गई है। इसका मुख्य कारण गंगा के जल की दिशा-परिवर्तन है। भारी बाढ़ अथवा भूगर्भ में होने वाले किसी विशेष परिवर्तन के कारण गंगा बिल्कुल पूर्व की ओर बहने लगी और पूर्वी पाकिस्तान के फरीदपुर जिले में गोलान्दो स्थान पर ब्रह्मपुत्र नदी से मिल गई। तभी से भगीरथी शाखा का महत्व बिल्कुल ही घट गया है। इसी कालान्तर में भगीरथी की सहायक दामोदर नदी का मुहाना ७० मील खिसक गया है। इससे

भगीरथी की तलहटी में रेत भर गई और अब उसमें केवल वर्षा ऋतु का ही पानी भरता है। गंगा के सब से निचले भाग में, जिसे हुगली कहते हैं, अक्सर ज्वारभाटे आया करते हैं और इससे तलहटी का बहुत भाग रेत से भर जाता है।

गंगा के मीठे पानी के कम आने से और ज्वारभाटे की अधिकता के कारण हुगली नदी



चित्र नं० ६०

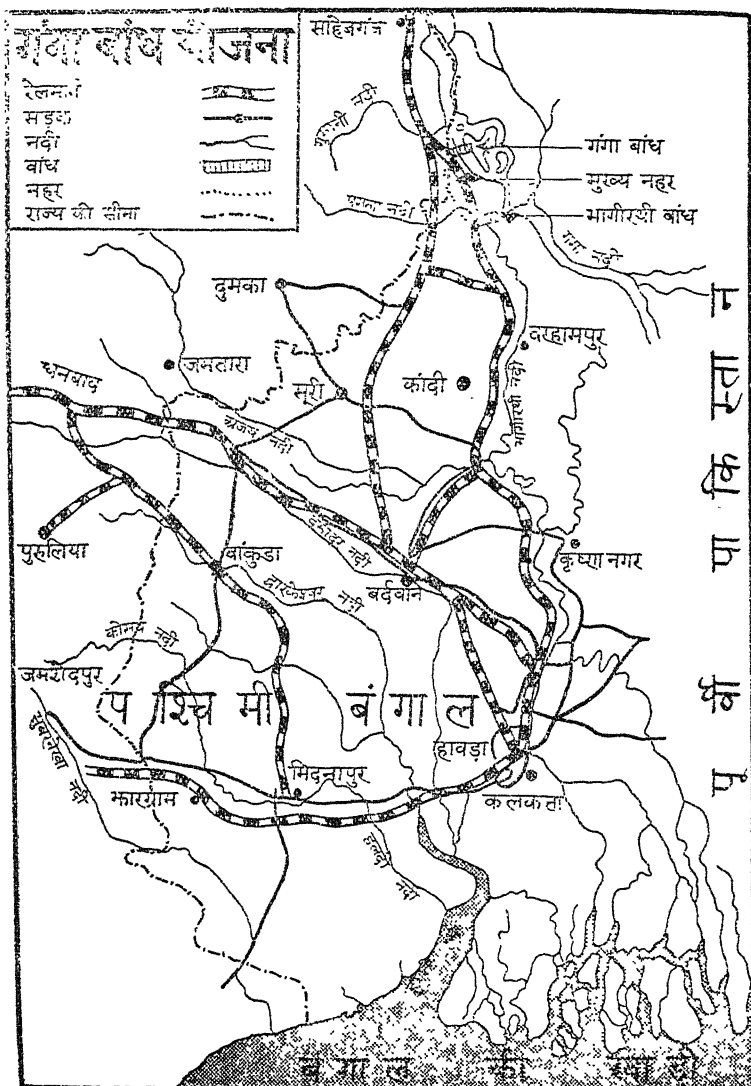
का पानी खारा हो गया है। इसी कारण कलकत्ता को पीने के लिये मीठा पानी प्राप्त करने की कठिनाई रहती है। दूसरे, भगीरथी से सूख जाने से कलकत्ता और उत्तरी भारत के बीच कोई नाव्य जल-मार्ग नहीं रह गया है। अतः कलकत्ता और उत्तरी मैदान के बीच जल-मार्ग की व्यवस्था पर काम हो रहा है। इसके अनुसार भगीरथी की तलहटी को काम में लाया जायेगा।

इस योजना के अनुसार गंगा नदी पर बिहार में स्थित साहिबगंज से २४ मील नीचे राजमहल स्थान पर एक बांध बनाया जावेगा। इसकी सहायता से गंगा नदी के पानी को एक नहर द्वारा भगीरथी की तलहटी में डाल दिया जावेगा। इस योजना के उद्देश्य निम्न-लिखित हैं:—

(१) बंगाल बिहार की सीमा पर गंगा नदी के आरपार बांध बनाया जावेगा परन्तु अभी तक स्थान का निश्चय नहीं हुआ है ।

(२) इस प्रकार भगीरथी और पश्चिमी बंगाल की अन्य नदियों में अधिक जल की व्यवस्था हो सकेगी ।

(३) कलकत्ता और गंगा के बीच का जल-मार्ग नाव्य हो जायगा ।



चित्र नं० ६१

(४) हुगली नदी में अधिक पानी आ जायेगा और इसके फलस्वरूप यह नदी नाव चलाने के योग्य बनी रह सकेगी।

इस समय भगीरथी की दशा के कारण कलकत्ता के बन्दरगाह को बड़ी असुविधा हो रही है। हुगली में स्टीमर जहाजों का चलाना दिन-पर-दिन खतरनाक होता जा रहा है। इस योजना के पूरा हो जाने पर दो लाभ होंगे—(१) भगीरथी में साल भर बराबर पानी बना रहेगा और (२) हुगली नदी के पानी का खारापन भी जाता रहेगा।

ब्रह्मपुत्र—संसार की सब से लम्बी नदियों में से है। यह करीब १८०० मील लम्बी है। और तिब्बत में मानसरोवर झील के थोड़ा पूर्व में १६००० फीट की ऊंचाई से निकलती है। हिमालय के उत्तरी ढालों के नीचे-नीचे पूर्व की ओर बहती हुई यह आसाम में प्रवेश करती है और एकाएक दक्षिण पश्चिम की ओर मुड़ जाती है। आसाम की घाटी को पार करने के बाद यह नदी फिर दक्षिण की ओर मुड़ जाती है और पूर्वी पाकिस्तान के पबना जिले के दक्षिणी-पूर्वी सिरे पर गंगा में मिल जाती है।

ब्रह्मपुत्र का आसाम के आर्थिक जीवन में विशेष महत्व है। इसके द्वारा आसाम का तेल, चाय, लकड़ी और पटसन कलकत्ता जाने वाली गाड़ियों तक लाया जाता है। इस नदी में साल भर बराबर स्टीमर जहाज चल सकते हैं और मुहाने से ८०० मील ऊपर डिब्रूगढ़ तक यह नदी नाव्य है। परन्तु नाव चलाने के दृष्टिकोण से इसमें कुछ दोष भी पाये जाते हैं जिनका दूर करना बहुत ही आवश्यक है। इसमें पाये जाने वाले दोष निम्नलिखित हैं:—

(अ) बालू की शिलायें, किनारे व द्वीप बन जाते हैं जिनसे नाव व स्टीमर चलाने में बड़ी असुविधा व खतरा रहता है।

(आ) वर्षा ऋतु में इसका प्रवाह बड़ा तेज हो जाता है और स्टीमर जहाजों के लिए बड़ी खतरनाक परिस्थिति उत्पन्न हो जाती है।

इस नदी में हर साल बाढ़ आती है और आसपास की भूमि पर मिट्टी जम जाती है। इसके कारण इसके आसपास की भूमि कृषि के दृष्टिकोण से बड़ी उपजाऊ हो गई है। कृषि व व्यापार के दृष्किोण से ब्रह्मपुत्र का गंगा के बाद दूसरा स्थान है।

दक्षिणी भारत की प्रमुख नदियां नर्मदा, ताप्ती, महानदी, कृष्णा, गोदावरी और कावेरी हैं। नर्मदा व ताप्ती पश्चिम की ओर प्रवाहित होती हैं परन्तु पश्चिमी घाट की अधिक ऊंचाई के कारण अन्य नदियां पूर्व की ओर बहती हैं। इन नदियों के निचले हिस्से में वर्षा ऋतु में ही नाव चलाई जा सकती हैं।

भारत में नाव्य नहर बहुत कम हैं। भारत की प्रमुख नाव चलाने योग्य नहरें निम्नलिखित हैं:—

(१) बंगाल की सरकुलर और पूर्वी नहरें। (२) हरिद्वार से कानपुर तक २७५ मील लम्बी गंगा नहर। (३) मद्रास के पूर्वी तट के समानान्तर २६० मील लम्बी बकिंघम नहर (उड़ीसा की तटीय नहर)।

इनके अलावा गोदावरी, कावेरी और कृष्णा के डेल्टा प्रदेश में नाव्य नहरों द्वारा ही

यातायात होता है। कोचीन और क्विलन के बीच पश्चिमी तट के जलाशय में भी नावें चलाई जा सकती हैं।

भारत में जल-मार्गों की बहुत अधिक आवश्यकता है। देश में बहुत-सी कठिनाइयां हैं परन्तु फिर भी उपस्थित जल-मार्गों में बहुत से हेर-फेर किये जा सकते हैं। जल-मार्गों की उन्नति से देश को दो लाभ होंगे—(१) रेलगाड़ियों में भीड़भाड़ कम हो जायेगी और (२) बहुत से प्रदेशों की फसल व्यापारिक मन्डियों तक पहुंच सकेगी। आजकल ऐसे बहुत से प्रदेशों की फसल मन्डियों तक आ भी नहीं पाती।

देश की नदियों की नाव्यता व जल यातायात की संभावनाओं की खोज के लिए कई निरीक्षण व अध्ययन समय-समय पर होते रहे हैं। फरवरी सन् १९५० में संयुक्त राष्ट्र संघ के 'एशिया व सुदूरपूर्व के लिए आर्थिक कमीशन' (Economic Commission for Asia and Far East) ने भारतीय जल-मार्गों के विकास की संभावनाओं में जांच-पड़ताल के लिए एक विशेषज्ञ समिति भेजी थी। उस विशेषज्ञ समिति ने निम्नलिखित जल-मार्गों के भावी विकास के बारे में अपनी खोज की—

(१) गंगा पर बक्सर से इलाहाबाद तक।

(२) घाघरा पर बहरामघाट तक

(३) ताप्ती पर औरकपुर तक।

(४) भगीरथी पर।

(५) महानदी व उड़ीसा की तटीय नहर।

(६) बकंघिम नहर।

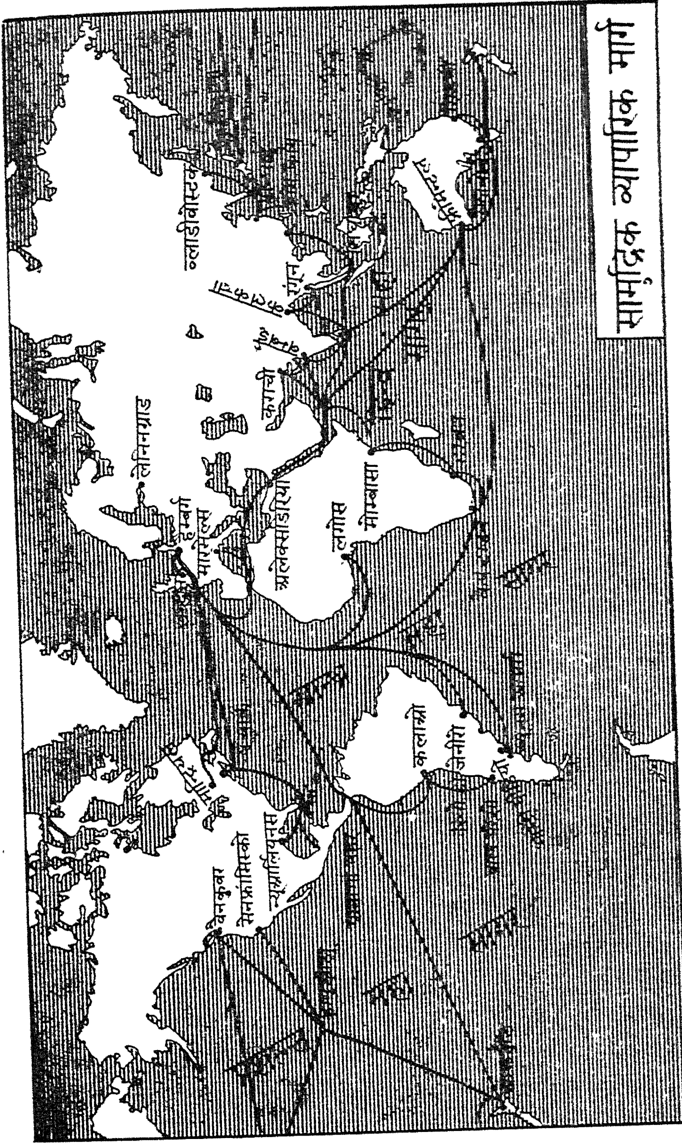
(७) ताप्ती पर काकवाया और उससे भी ५० मील ऊपर तक। उनकी रिपोर्ट पर भारत सरकार विचार कर रही है। नदियों द्वारा यातायात के प्रश्न पर विचार करने और विविध राज्य सरकारों के काम में सामन्जस्य लाने के लिए भारत सरकार ने एक 'गंगा ब्रह्मपुत्र जल यातायात बोर्ड' की स्थापना की है।

समुद्री मार्ग

भारत की तट रेखा ३५०० मील लम्बी है और दुनिया के हर कोने से व्यापारिक जहाज यहां से होकर गुजरते हैं। भारत के पांच प्रमुख बंदरगाह कलकत्ता, विजगापट्टम, मद्रास, बम्बई और कोचीन हैं। इन्हीं पांच केन्द्रों से भारत के समुद्री मार्ग शुरू होते हैं। भारत के दृष्टिकोण से चार अन्तर्राष्ट्रीय व्यापारिक मार्ग अधिक महत्वपूर्ण हैं और वे हैं—(१) स्वेज नहर मार्ग (२) केप मार्ग (३) आस्ट्रेलिया मार्ग और (४) सिंगापुर मार्ग।

१. **स्वेज़ मार्ग**—इस मार्ग के खुलने से भारत और यूरोप के बीच व्यापार बहुत बढ़ गया है। बी. आई. एस. एन. और पी. एण्ड ओ. कम्पनी के जहाज इस मार्ग पर भारत यूरोपीय व्यापार के साधन हैं। भारत इस मार्ग से भोजन की वस्तुएं व कच्चा माल भेजता है तथा तैयार किया हुआ माल मंगवाता है।

२. **केप मार्ग**—इसके द्वारा भारत और दक्षिणी व पश्चिमी अफ्रीका के बीच व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित होता है। कभी-कभी भारत से दक्षिणी अमरीका जाने वाले



चित्र नं० ६२—एशिया के तीन बड़े दक्षिण प्रायद्वीपों के मध्य भारत की भौगोलिक स्थिति का आर्थिक व राजनैतिक क्षेत्रों में विशेष महत्व है।

जहाज भी इसी मार्ग द्वारा आते-जाते हैं। इस मार्ग से भारत को कपास, कोयला व चीनी प्राप्त होती है।

३. **आस्ट्रेलियन मार्ग** का महत्व धीरे-धीरे बढ़ रहा है। भारत व आस्ट्रेलिया के बीच होने वाला व्यापार इसी के द्वारा होता है। ऊन, गेहूं, घोड़े, डिब्बों में बन्द फल तथा अन्य भोजन सामग्री भारत में आती है और पटसन, चाय तथा तिलहन भारत से बाहर जाती है। भारत-आस्ट्रेलिया के व्यापार के लिए ब्रिसबेन, सिडनी और मेलबोर्न के बन्दरगाह विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

४. **सिंगापुर मार्ग** का महत्व स्वेज मार्ग से कुछ कम है। इस मार्ग से भारत चीन व जापान के सम्पर्क में आता है। इसके द्वारा भारत, कनाडा व न्यूज़ीलैंड के बीच भी सम्बन्ध स्थापित होता है। दूसरे महायुद्ध से पहले इस मार्ग पर इन्डोचीन एस. एन. कम्पनी, एन. वाई. कैसा और ओ. एस. कैसा कम्पनियों के जहाज चलते थे। इस मार्ग से भारत में सूती व रेशमी वस्त्र, लोहा व इस्पात, मशीनें, चीनी मिट्टी के बर्तन, खिलौने, रासायनिक पदार्थ, कागज व लोहे के अन्य सामान आते हैं। भारत से निर्यात होने वाली कच्ची कपास, पिग आयरन, मैन्गनीज, पटसन, चमड़ा और अभ्रक इसी मार्ग से दूसरे देशों को जाता है।

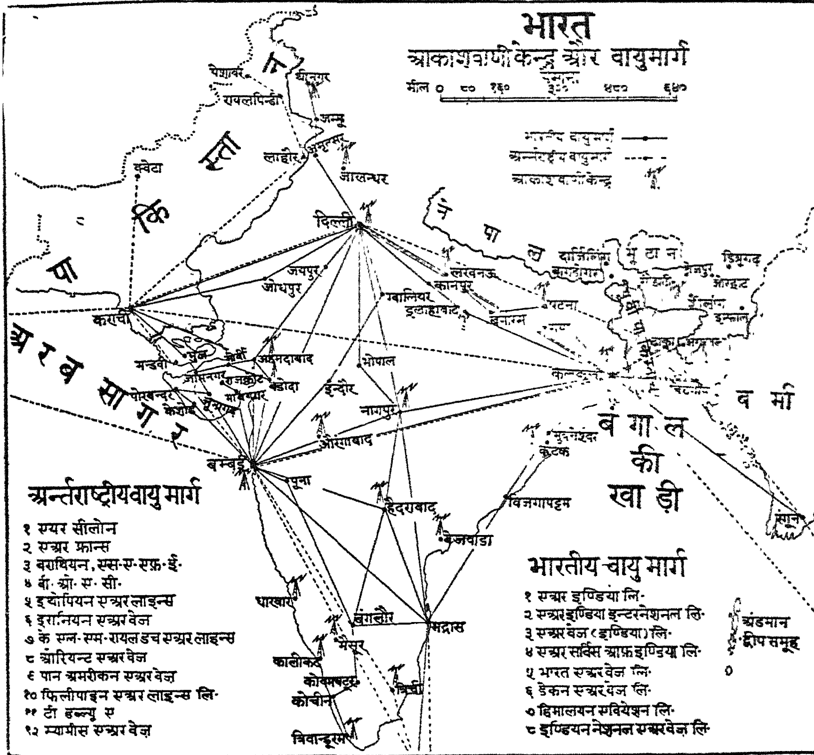
अन्तर्राष्ट्रीय समुद्री व्यापार में भारतीय जहाजों का भाग नगण्य है। कुल व्यापार का केवल २ प्रतिशत भाग ही भारतीय जहाजों द्वारा होता है। तटीय व्यापार में भी भारतीय पोतों का स्थान केवल बीस प्रतिशत ही है। स्पर्धा के कारण भारतीय जहाजी कम्पनियां जहाज चलाने में लाचार हैं। दूसरे महायुद्ध से पहले भारत के समुद्री व तटीय व्यापारिक मार्गों पर अंग्रेजी, फ्रांसीसी, जापानी व इटली जहाजी कम्पनियों के जहाज चला करते थे। स्वतन्त्रता के बाद से देश ने इस ओर ध्यान दिया और पिछले ४-५ सालों में कुछ प्रगति हुई है।

वायु यातायात

वर्त्तमान काल वायु का युग है और इसमें भारत का बड़ा ही महत्वपूर्ण स्थान है। संसार के वायु यातायात सम्बन्धी प्रमुख देशों में भारत का चौथा स्थान है और भारत में दिन प्रतिदिन हवाई यातायात की लोकप्रियता बढ़ रही है। अन्तर्राष्ट्रीय वायु यातायात में भारत का बड़ा ही महत्वपूर्ण स्थान है। पूर्व व पश्चिम के बीच सभी हवाई मार्ग भारत की भूमि पर से होकर जाते हैं। इसके विस्तार व उपयुक्त जलवायु के कारण यहां वायु यातायात के विकास की आदर्श दशाएं उपस्थित हैं।

भारत में कई बड़े हवाई अड्डे हैं:—बम्बई का सान्ताक्रूज, कलकत्ते का डमडम और दिल्ली का पालम तो अन्तर्राष्ट्रीय वायु-मार्गों के विश्राम स्थान हैं। इनका अन्तर्राष्ट्रीय महत्व है। इनके अलावा अहमदाबाद, इलाहाबाद, लखनऊ, मद्रास, नागपुर, पटना और विजगापट्टम के हवाई अड्डे काफी बड़े हैं। इनके अतिरिक्त १३ मध्यम और २२ अन्य छोटे-छोटे हवाई अड्डे या जहाजों के उतरने की पट्टियां हैं। इनके अलावा विभिन्न देशी राज्यों के संघ में २६ हवाई अड्डे हैं। निकट भविष्य में भारत सरकार निम्नलिखित

स्थानों पर १४ नये हवाई अड्डे बनाने का आयोजन कर रही है:—अजमेर, अलीगढ़, बरहामपुर, कालीकट, कडालोर, देहरादून, हुगली, मंगलौर, नेल्लोर, ऊटकामंड, सलेम, रत्नगिरि, सागर और सूरत।



चित्र नं० ६३—बम्बई, कलकत्ता और दिल्ली में विभिन्न वायुमार्गों का केन्द्रीभवन ध्यान देने योग्य है।

भारत में ३ प्रकार के वायु-मार्ग हैं—(१) देश के आरपार जाने वाले प्रधान मार्ग (२) प्रादेशिक मार्ग और (३) स्थानीय मार्ग। देश का सब से महत्वपूर्ण प्रधान मार्ग वह है जो बम्बई से कलकत्ते तक जाता है और इसका सम्पर्क विदेशी व अन्तर्राष्ट्रीय वायु-मार्गों से भी है। भारत के प्रादेशिक वायु-मार्ग बंगलौर, दिल्ली, हैदराबाद, नागपुर आदि को विदेशी अन्तर्राष्ट्रीय वायु-मार्गों के सम्पर्क में लाते हैं। स्थानीय वायु-मार्ग प्रादेशिक व प्रधान मार्ग को सहायता पहुंचाते हैं और देश के विभिन्न आंतरिक भागों के बीच सम्पर्क स्थापित करते हैं। इनम ट्रिवानड्रम-मद्रास, गौहाटी-कलकत्ता और दिल्ली-श्रीनगर मार्गों का विशेष महत्व है।

यह सब होने पर भी संयुक्त राष्ट्र और ग्रेट ब्रिटेन की अपेक्षा वायु-मार्गों का विकास

भारत में बहुत कम हुआ है। निम्नलिखित तालिका से भारत में वायु यातायात के विकास का अन्दाज लगाया जा सकता है:—

	१९४६	१९५१
उड़ान का विस्तार (मीलों में)	४५ लाख	१९५ लाख
यात्रियों की संख्या	१,०५,२००	४,४९,५००
डाक की तोल	१० लाख पौंड	७० लाख पौंड
अन्य भार की तोल	१३ लाख पौंड	८३२ लाख पौंड
कुल भार (टन-मील में)	६३,९१,०००	३,९०,१५,०००
संभावित भार वहन शक्ति (टन मीलों में)	८५ लाख	५७४ लाख
भार प्रतिशत	७४.८ प्रतिशत	६८.० प्र. श.

वास्तव में किसी देश की आर्थिक उन्नति व विकास पर वायु यातायात की प्रगति निर्भर रहती है। अतएव जैसे-जैसे भारत आर्थिक उन्नति व समृद्धि की ओर अग्रसर होगा वैसे ही वायु यातायात भी अधिक उन्नति करता जायेगा। इस समय देश के भीतर हवाई यातायात की लोकप्रियता कम होने के दो कारण हैं—(१) पेट्रोल का दाम काफी अधिक है जिसके फलस्वरूप भारत जैसे गरीब देश में हवाई यातायात का मूल्य काफी अधिक पड़ता है। (२) देश का विस्तार तो बहुत अधिक है परन्तु अपेक्षाकृत औद्योगिक व व्यापारिक केन्द्र बहुत कम हैं।

पिछले कुछ दिनों से भारत में दिल्ली, बम्बई, कलकत्ता और मद्रास में रात के समय हवाई जहाजों द्वारा डाक ले जाने का काम शुरू किया गया है। नागपुर में डाक विनिमय के लिए हवाई जहाज मिलते हैं। इन डाक वायुयानों में कुछ यात्री भी सफर करते हैं।

भारत की विभिन्न आन्तरिक वायु यातायात कम्पनियां हानि पर काम कर रही हैं। इसका मुख्य कारण यह है कि भारत में हवाई सफर के प्रति लोगों की रुचि बहुत कम है। दूसरा कारण यह है कि बहुधा एक ही मार्ग पर दो कम्पनियों के हवाई जहाज उड़ान करते हैं। वास्तव में भारतीय वायु यातायात के क्षेत्र में उड़ान करने वाली कम्पनियों की भरमार सी है। फिर रात में उड़ानों की कमी के कारण हवाई जहाजों से बहुत कम काम लिया जाता है। २४ घंटे के आधे से अधिक मार्ग में वायुयान प्रायः जमीन पर ही रहते हैं।

इन सब असुविधाओं के होते हुए भी भारत सरकार हवाई यातायात को प्रोत्साहन दे रही है। अतः हवाई कम्पनियों को सस्ते मूल्य पर पेट्रोल मिलता है। सरकार की तरफ से इस प्रकार की सुविधा में सन् १९४९-५० में करीब ४९ लाख रुपये खर्च हुए थे। प्रथम कम्पनियों को हवाई जहाज खरीदने के लिए सरकार आर्थिक सहायता भी देती है।

भारत में वायु-यातायात और उसकी कम्पनियां

मार्ग व कम्पनी	मील	उड़ान
१—एयर इंडिया लिमिटेड		
बम्बई, मद्रास, कोलम्बो	१७८०	दैनिक

मार्ग व कम्पनी	मील	उड़ान
बम्बई, अहमदाबाद, जैपुर, दिल्ली	७५०	दैनिक
बम्बई, कलकत्ता	१०३८	दैनिक
मद्रास, बंगलौर, कोयम्बटूर, कोचीन, त्रिवानड्रुम	५०९	दैनिक
बम्बई, दिल्ली		रात्रिकाल में प्रति दिन
बम्बई, करांची		दैनिक
२–इंडियन नेशनल एयरवेज़ लिमिटेड		
दिल्ली, लाहौर	२६४	दैनिक
दिल्ली, अमृतसर, श्रीनगर	२४५	दैनिक
दिल्ली, कलकत्ता	८१२	दैनिक
दिल्ली, जोधपुर, करांची	६८३	दैनिक
कलकत्ता, रंगून	—	दैनिक
कलकत्ता, काठमांडू, पटना	—	हफ्ते में तीन दिन
३–एयर सर्विस आफ इण्डिया लिमिटेड		
बम्बई,पोरबन्दर, जामनगर, भुज, करांची	६२०	हफ्ते में दो दिन
जामनगर, अहमदाबाद	१६२	साप्ताहिक
बम्बई, भावनगर, राजकोट	२१०	दैनिक
बम्बई, ग्वालियर, कानपुर	७७४	हफ्ते में दो दिन
बम्बई, पूना, बंगलौर	—	हफ्ते में दो दिन
बम्बई, बेलगांव, कोचीन	—	हफ्ते में तीन दिन
४–डेकन एअरवेज लिमिटेड		
दिल्ली, नागपुर, हैदराबाद, मद्रास	११५५	दैनिक
हैदराबाद, बंगलौर	३१६	हफ्ते में चार दिन
हैदराबाद, बम्वई	३८७	दैनिक
५–इंडियन ओवरसीज़ एअर लाइन्स लिमिटेड		
बम्बई, नागपुर, कलकत्ता	१०३८	दैनिक
६–एयरवेज़ लिमिटेड		
कलकत्ता, विजगापट्टम, मद्रास, बंगलौर	१०३६	हफ्ते में चार दिन
कलकत्ता से डिब्रूगढ़	—	हफ्ते में तीन दिन
कलकत्ता, वागडोगरा (दार्जिलिंग के लिए)	—	दैनिक
कलकत्ता, नागपुर, बम्बई	—	दैनिक
७–भारत एअरवेज़ लिमिटेड		
कलकत्ता, चिटगांव	—	दैनिक

देल्ली, लखनऊ, कलकत्ता	८०९	हफ्ते में तीन दिन
मार्ग व कम्पनी	मील	उड़ान
देल्ली, कानपुर, कलकत्ता	८१९	हफ्ते में चार दिन
कलकत्ता, गोहाटी, तेजपुर	—	दैनिक
कलकत्ता, सिलचर	—	दैनिक

इन आन्तरिक मार्गों के अतिरिक्त देशी कम्पनियों के जहाज ग्रेट ब्रिटेन, बर्मा, चीन और जापान को भी जाते हैं। प्रथम अगस्त सन् १९५३ को भारतीय वायु यातायात का राष्ट्रीय-करण हो गया। विभिन्न कम्पनियों को मिलाकर एक एयर लाईंस कारपोरेशन बना जो भारत सरकार के संरक्षण व देखरेख में हवाई उड़ानों का काम करता है। इनके अलावा वहुत सी विदेशी कम्पनियां भी देश में उड़ान करती हैं। विदेशी कम्पनियों में निम्नलिखित बहुत प्रमुख हैं—

(१) ब्रिटिश ओवरसीज़ एयर कारपोरेशन (B.O.A.C.)—माल्टा, काहिरा, बसरा, करांची और दिल्ली होते हुए लन्दन से कलकत्ता तक।

(२) ट्रान्स वर्ल्ड एयर लाइन (T.W.A.)—वाशिंगटन से बम्बई तक।

(३) एयर फ्रांस—कहिरा, करांची, कलकत्ता होते हुए पेरिस से सैगोन तक।

(४) डच एयर लाइन (K.L.M.)—करांची, कलकत्ता, सिंगापुर, बटावेया।

(५) पान अमरीकन वर्ल्ड एयरवेज़—करांची लन्दन व गैन्डर होते हुए कलकत्ता से न्यूयार्क तक; बैंगकाक, मेनीला और होनूलोलू होते हुए कलकत्ता से सैन फ्रांसिस्को तक।

(६) स्केन्डिनेवियन एयरवेज़।

(७) सीलोन एयरवेज़।

(८) चीन नैशनल एयरवेज़।

(९) ईरान एयरवेज़—बम्बई से तेहरान तक।

(१०) पाकिस्तान एयरवेज़।

(११) ओरियन्ट एयरवेज़।

भारत और पाकिस्तान के बीच हवाई यातायात के मुख्य मार्ग निम्नलिखित हैं—(अ) करांची-दिल्ली (आ) करांची-बम्बई (इ) ढाका-कलकत्ता (ई) कलकत्ता-चिटगांव (उ) ढाका-दिल्ली।

प्रश्नावली

१. भारत में वायु-यातायात के विकास का विस्तृत विवरण दीजिये।

२. भारत और ग्रेट ब्रिटेन के बीच हवाई उड़ानों के विकास पर एक छोटा-सा लेख लिखिये।

३. भारत के आन्तरिक व्यापार के दृष्टिकोण से यातायात के विभिन्न साधनों का वर्णन कीजिये और प्रत्येक का आपेक्षिक महत्व बतलाइये।

४. भारत के रेल-मार्गों के निर्माण व विकास पर आर्थिक दशाओं का क्या असर पड़ा है ? समझाकर लिखिये ।

५. भारत के व्यापारिक विकास में रेल-मार्गों से क्या सहायता मिली है ? भारत में रेलों की अपेक्षा सड़कों व जल-मार्गों का अधिक विकास किया जाना चाहिए या नहीं । कारण देते हुए उत्तर लिखिये ।

६. भारत के एक मानचित्र पर भारत के आन्तरिक वायु-मार्गों व हवाई अड्डों को दिखलाइये, विकास की संभावित दिशायें बतलाइये और लिखिये कि वायु-यातायात के विकास से भारत को क्या लाभ होगा ?

७. भारत के उत्तरी-पूर्वी सीमांत मार्गों का वर्णन कीजिये और एक मान-चित्र बना कर दिखलाइये । क्या बर्मा व चीन और भारत के बीच रेल अथवा सड़क द्वारा संबंध स्थापित किया जा सकता है ? इस प्रकार के मार्ग बन जाने से चिटगांव व कलकत्ता के बन्दरगाहों पर क्या असर पड़ेगा ?

८. उत्तम प्रकार के यातायात के साधन के लिए कौन-सी बातें आवश्यक होती हैं ? सड़क व वायु-यातायात में ये बातें कहां तक पाई जाती हैं ? भारतीय दशाओं के दृष्टि-कोण से इनका वर्णन कीजिये ।

९. भारतीय रेल-मार्गों के नवीन वर्गीकरण का वर्णन कीजिये और उनसे भावी लाभ बतलाइये ।

१०. हिन्द महासागर के प्रमुख व्यापारिक मार्गों को एक मान-चित्र पर दिखलाइये और मुख्य बन्दरगाहों का वर्णन कीजिये ।

११. "किसी देश के रेल-मार्ग वहां की भू-प्रकृति के अनुसार ही होते हैं ।" उत्तर रेल-मार्ग का वर्णन करते हुए इस कथन की सत्यता बतलाइये ।

१२. भारत के आन्तरिक व्यापार में जल-मार्गों के विकास से क्या प्रभाव पड़ सकता है ?

अध्याय : : ग्यारह

विदेशी व्यापार

विदेशी व्यापार का महत्व—देश के लिये विदेशी व्यापार का महत्व बहुत अधिक है। इसके कई कारण हैं—(१) देश अपने यहां की अधिक उपज बाहरी राष्ट्रों के हाथ लाभ पर बेच सकता है। (२) अपने आन्तरिक विकास व आर्थिक उन्नति के लिये विदेशी राष्ट्रों से मशीनें व अन्य वस्तुएं जो देश में नहीं होतीं, मंगवा सकता है। (३) अन्तर्राष्ट्रीय कर्त्तव्य को निबाहने के लिये व कर्ज को चुकाने के लिये प्रत्येक देश को अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में भाग लेना पड़ता है। (४) व्यापार में विभिन्न प्रदेश के लोग एक दूसरे के संपर्क में आते हैं और उनके बीच पारस्परिक प्रेम बढ़ता है।

भारत का विदेशी व्यापार काफी विस्तृत है और अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के क्षेत्र में भारत का स्थान बड़ा ही महत्वपूर्ण है। शांतिकाल में व्यापारिक राष्ट्रों में भारत का ५ वां स्थान रहता है। केवल संयुक्त राष्ट्र, ग्रेट ब्रिटेन, जर्मनी और फ्रांस का विदेशी व्यापार इससे बढ़कर है। वस्तव में भारत की भौगोलिक स्थिति व प्राकृतिक साधन इतने महत्व-पूर्ण हैं कि इसका व्यापारिक महत्व स्वभावतः अधिक हो जाता है। संसार का अधिकतर इलमनाइट, अभ्रक, मोनाजाइट, जिरकान और पटसन का माल भारत से ही प्राप्त होता है। भारत से कच्चा लोहा, मैंगनीज, तिलहन, चाय और सूती कपड़े भी बहुत काफी मात्रा में निर्यात किये जा सकते हैं। इसके अलावा भारत में मशीनों, खनिज तेल, मोटर-गाड़ियों, धातुओं, रासायनिक पदार्थों, लम्बे रेशे की कपास, कच्चा पटसन और अनाज का उत्पादन मांग से कम होता है। अतः इन वस्तुओं को भारत बाहर से मंगवाता है।

भारत के विदेशी व्यापार की विशेषताएं—(अ) भारत के विदेशी व्यापार म देश के विभाजन के बाद से कच्चे माल का आयात बढ़ गया है और कच्चे माल का निर्यात अपक्षाकृत कम होता जा रहा है। यह व्यापारिक हेर-फेर दूसरे महायुद्ध काल में ही दिखाई पड़ने लगा था परन्तु देश के विभाजन के बाद से यह और भी प्रखर हो गया है। इसका मुख्य कारण यह है कि पाकिस्तान बन जाने से देश के कच्चे माल के बहुत स्रोत हाथ से निकल गये हैं। साथ-साथ देश की औद्योगिक उन्नति हो जाने से देश में कच्चे माल की खपत बढ़ गई है। अतः देश में उत्पन्न अधिकतर कच्चा माल देश के उद्योग-धंधों में ही खप जाता है और कहीं-कहीं तो बाहर से आयात तक करना पड़ता है। निर्यात के दृष्टिकोण से भारत से पटसन, कच्ची कपास, तिलहन, चपड़ा, चमड़ा व खालें, तम्बाकू और मसाले की मात्रा में भारी कमी हो गई है। युद्धपूर्व भारत से ७ लाख १८ हजार टन पटसन निर्यात किया जाता था परन्तु सन् १९४८ में केवल २ लाख १४ हजार टन पटसन ही निर्यात किया गया। इसी प्रकार युद्ध से पूर्व भारत ४ लाख ८५ हजार टन कच्ची कपास बाहर

भेजता था परन्तु सन् १९४८ में केवल ७६ हजार टन कपास ही निर्यात की गई। सन् १९३८-३९ में भारत के कुल निर्यात का ४५ प्रतिशत भाग कच्चे माल का होता था परन्तु सन् १९५०-५१ में यह मात्रा इतनी घट गई कि अब कुल निर्यात व्यापार का केवल २३.४ प्रतिशत भाग ही कच्चे माल का होता है।

साथ-साथ कच्चे माल का आयात बढ़ गया है। सन् १९३८-३९ में भारत के कुल आयात व्यापार का २२·७ प्रतिशत भाग कच्चे माल का होता था परन्तु अब सन् १९५०-५१ में ३५·१ प्रतिशत कच्चा माल आयात किया गया। वास्तव में कच्चे माल की निर्यात में कमी और आयात की वृद्धि भारत के विदेशी व्यापार की एक स्थायी विशेषता हो गई है। दिन प्रतिदिन जैसे-जैसे जनसंख्या बढ़ती जायेगी और अधिक लोग शहरों में रहने लगेंगे, यह विशेषता और भी बढ़ती जायेगी।

(आ) भारत के विदेशी व्यापार की दूसरी विशेषता यह है कि तैयार माल का आयात दिन पर दिन घटता जा रहा है और भारत के उद्योग-धंधों द्वारा तैयार किये हुए माल के निर्यात में वृद्धि हो रही है। युद्धपूर्व काल में भारत में बाहर से आई हुई मशीनें व अन्य तैयार वस्तुएं इसके आयात व्यापार का ६१·६ प्रतिशत होती थीं परन्तु १९५०-५१ में इस प्रकार की वस्तुओं का आयात केवल ४५.६ प्र. श. रह गया। इसके विपरीत युद्ध पूर्व भारत से निर्यात किया गया तैयार माल कुल निर्यात व्यापार का ३० प्रतिशत होता था परन्तु सन् १९५०-५१ में भारत से ५३.५ प्रतिशत तैयार माल निर्यात किया गया। इस परिवर्तन का मुख्य कारण भारत सरकार की आर्थिक नीति है जिसका ध्येय भारत से निर्यात में उत्तरोत्तर वृद्धि करना है। साथ-साथ देश की औद्योगिक दशा में भी उन्नति हुई है जिसके फलस्वरूप अब भारत से तैयार माल बाहर भेजा जा सकता है।

भारत से आयात व निर्यात (कुल का प्रतिशत)

	आयात			निर्यात		
	१९३७–३८	'४८–४९	'५०–५१	१९३७–३८	'४८–४९	'५०-५१
भोजन की वस्तुएं और तंबाकू	१४·१	२४.३	—	२३·३	२१·२	९
कच्चा माल	२२.७	३०·७	४०	४५.०	२३.४४	४०
तैयार माल	—	—	४५·६	२९·९	५३·५	५४
(अ) मशीनें	११·६	१२.१	—	—	—	—
(ब) अन्य वस्तुएं	५०·०	३२·२	—	—	—	—
विविध पदार्थ	१.६	०.७	—	१.७	१.९	—

(इ) देश के विभाजन से पहले भारत का अधिकतर व्यापार ग्रेट ब्रिटेन और उसके राज्यों के साथ होता था। इसका मुख्य कारण था साम्राज्यवादिता। ग्रेट ब्रिटेन और उसके राज्यों से भारत में आने वाली वस्तुओं की मात्रा व मूल्य इन प्रदेशों को निर्यात की गई वस्तुओं से कहीं अधिक होता था। इसके अलावा यूरोप, अमरीका और एशिया के विभिन्न देशों को भारत से निर्यात अधिक होता था और अपेक्षाकृत आयात कम।

(ई) भारत के विदशी व्यापार की एक अन्य विशेषता यह है कि भारत का संयुक्त राष्ट्र, आस्ट्रेलिया और अन्य सुदूरपूर्वी देशों के साथ व्यापार बराबर बढ़ रहा है। भारत के विदेशी व्यापार में पाकिस्तान का बड़ा महत्वपूर्ण स्थान है। सन् १९४८-४९ में भारत के आयात में पाकिस्तान का तीसरा स्थान था। भारत से निर्यात की जाने वाली वस्तुओं के ग्राहक देशों में भी पाकिस्तान का स्थान दूसरा है।

भारत के आयात-निर्यात व्यापार का वितरण

	आयात के स्रोत (प्रतिशत)			निर्यात के ग्राहक (प्रतिशत)	
	१९३८-३९	१९४८-४९		१९३८-३९	१९४८-४९
ग्रेट ब्रिटेन	३०·२	२२·९	ग्रेट ब्रिटेन	३४·१	२१.७
पाकिस्तान	—	१७·९	पाकिस्तान	—	१६·४
मिश्र	१·६	५·४	संयुक्तराष्ट्र	९·१	१५·७
बर्मा	१५·४	५·३	आस्ट्रेलिया	१·७	४·७
आस्ट्रेलिया	१·३	५·१	अर्जेन्टाइना	१·६	३·८
ईरान	१·९	३·०	बर्मा	६·३	२·४
इटली	१·६	२·७	कनाडा	१·२	१·८
अर्जेंटाइना	—	२·४	मिश्र	०·८	१·७
कनाडा	०·६	१·५	फ्रांस	३·२	१·५

(उ) भारत में सीमान्त प्रदेशों से थलमार्गों द्वारा व्यापार बहुत कम है। धीरे-धीरे यातायात की सुविधाएं हो जाने से भारत का चीन, रूस, पाकिस्तान, बर्मा आदि के साथ व्यापार बढ़ जायगा। इस समय भारत का ९८ प्रतिशत विदेशी व्यापार समुद्र के द्वारा ही होता है।

(ऊ) किसी देश के निर्यात व आयात के अन्तर को व्यापार संतुलन कहते हैं। जब भारत के निर्यात का मूल्य आयात से अधिक होता है तब व्यापार संतुलन भारत के पक्ष में कहा जाता है। देश-विभाजन के पहले भारत की निर्यात वस्तुएं आयात से अधिक मूल्य की होती थीं। अतः भारत का व्यापार-संतुलन उसके पक्ष में रहता था। देश-विभाजन के बाद से देश का व्यापार-संतुलन उतना अच्छा नहीं रहा। इस समय निर्यात की हुई वस्तुओं से आयात का मूल्य अधिक पड़ता है। इस कमी को पूरा करने के लिये अनेक प्रयत्न किये गये हैं। फलतः सन् १९५०-५१ में भारत के विदेशी व्यापार-संतुलन में काफी परिवर्तन हुआ और यह प्रगति निम्नलिखित आंकड़ों से स्पष्ट हो जायेगी :—

भारत का कुल विदेशी व्यापार (रुपयों में)

१९४८-४९	११२६.६६ करोड़
१९४९-५०	११०६.२६ करोड़
१९५०-५१	१२०४.४४ करोड़

सन् १९५०-५१ में भारत में आयात व निर्यात का मूल्य इस प्रकार था:—
आयात : ६०७·८८ करोड़ रुपया ; निर्यात : ५९२.०१ करोड़ रुपया । इस

प्रकार व्यापार-संतुलन के दृष्टिकोण से सन् १९५०-५१ में ११.३२ करोड़ रुपये की कमी रही। इसको जब हम १९४८-४९ और १९४९-५० की कमी के साथ मिलाते हैं तो देश की व्यापारिक प्रगति का अन्दाज लग जाता है।

व्यापारिक सन्तुलन में कमी

१९४८-४९	२१९.२६ करोड़ रुपये
१९४९-५०	९४.४८ करोड़ रुपये
१९५०-५१	११.३२ करोड़ रुपये

व्यापारिक संतुलन में कमी के इस न्यूनीकरण का मुख्य कारण देश मे निर्यात की उत्तरोत्तर वृद्धि है। सन् १९५०-५१ में भारत से सूती कपड़े, तेल, चाय, गोंद, रेजिन, लाख, ऊन और ऊनी कपड़े, तम्बाकू, फल तथा सब्जी अधिक मात्रा में बाहर भेजी गईं। निर्यात की मात्रा में इस वृहत् वृद्धि के मुख्य दो कारण थे—(१) भारतीय रुपये और अंग्रेजी पौंड के डालर के प्रति मूल्य में घटाव। इसकी वजह से भारतीय माल विदेशों से सस्ता पड़ने लगा और विदेशी विशेषकर अमरीका का माल बहुत महंगा हो गया। अतएव भारत सरकार ने निर्यात को बढ़ावा दिया और आयात में कटौती कर दी।

(२) संयुक्त राष्ट्र अमरीका तथा विभिन्न यूरोपीय देशों में अस्त्र-शस्त्र बनाने की योजनाओं के कारण विभिन्न अन्तर्राष्ट्रीय मंडियों में स्पर्धा कम हो गई और भारतीय माल को लोकप्रिय होने का पर्याप्त क्षेत्र मिल गया।

दूसरी तरफ भारत में आयात की मात्रा दिन पर दिन गिरती गई। इसके दो कारण थे:—(१) भारत सरकार की प्रतिबंध लगाकर या कटौती करके आयात की मात्रा में कमी करने की नीति और (२) भारतीय रुपये के विनिमय मूल्य घट जाने व कोरिया के युद्ध के विभिन्न विदेशी वस्तुओं के मूल्य में वृद्धि। फलतः अधिक मूल्य देने पर भी आयात की हुई वस्तुओं की मात्रा कम हो गई। निम्नलिखित आंकड़ों से यह बात स्पष्ट हो जायेगी।

आयात का मूल्य

१९४८-४९	५८७.९६ करोड़ रुपया
१९५०-५१	५६५.६१ „ „

सन १९५२-५३ में भारत में आयात की हुई वस्तुओं का ब्योरा और मूल्य इस प्रकार था :

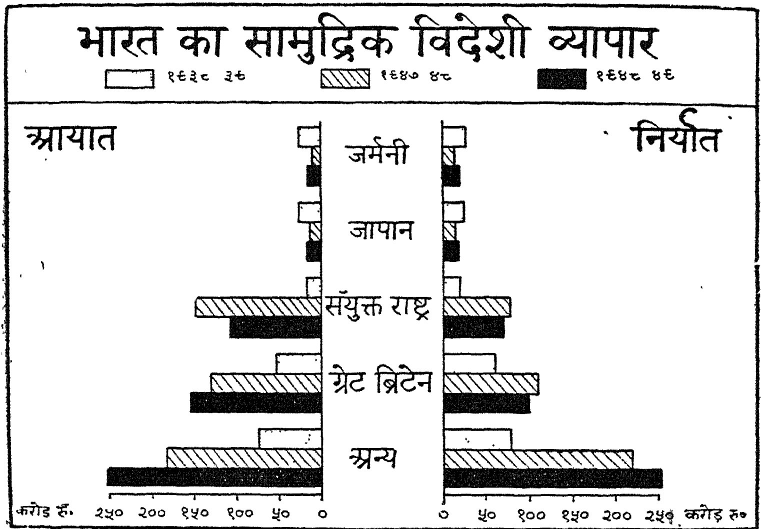
१९५२-५३ में भारत का आयात-व्यापार

	मूल्य (करोड़ रुपये)		मूल्य (करोड़ रुपये)
कच्ची कपास	७६.६७	रासायनिक पदार्थ व दवाइयां	२५
मशीनें	८७.८७	कच्चा पटसन	१६.४८
अन्न, दालें आदि	१५३.१५	कांटे छुरी आदि	१४.२६
तेल	८१.७८	बिजली का सामान	१३.८१
धातुएं	४३.११	फल व तरकारियां	३.९५
मोटरगाड़ियां व साइकलें	२८.१८		

सन् १९५२-५३ में भारत का निर्यात-व्यापार

	मूल्य (करोड़ रुपये)		मूल्य (करोड़ रुपये)
सूती वस्त्र व सूत	७०.०७	कच्ची कपास	२८.९४
पटसन व उसके वस्त्र	१२९.५३	तिलहन	१६.९८
चाय	८०.९८	तम्बाकू	१४.५३
मसाले	२०.९५	ऊन व ऊनी वस्त्र	१३.९०
तेल	२७.७७	गोंद, रेजिन व लाख	१३.६०
चमड़ा	२०.५८	फल व तरकारियां	१०.७७
		अभ्रक	९.६०

सन् १९५२-५३ में भारत के विदेशी व्यापार (समुद्र, थल व वायु द्वारा) का कुल मूल्य १२३२.८४ करोड़ रुपये था। यद्यपि इस वर्ष का विदेशी व्यापार



चित्र नं० ६४

सन् १९५०-५१ की अपेक्षा थोड़ा अधिक था परन्तु सन् १९५१-५२ की अपेक्षा बहुत कम रहा। सन् १९५१-५२ में भारतीय विदेशी व्यापार का कुल मूल्य १६७५.३५ करोड़ रुपये था।

सन् १९५२-५३ में निर्यात और पुनर्निर्यात का कुल मूल्य ५७४.९२ करोड़ रुपये था जबकि सन् १९५१-५२ में ७३२.८६ करोड़ रुपये मूल्य की सामग्री निर्यात की गई थी। निर्यात का मूल्य तो सन् १९५०-५१ की अपेक्षा भी २६.४३ करोड़ कम हो गया है।

सन् १९५२-५३ में आयात का मूल्य ६५७.९२ करोड़ रुपये था जबकि सन् १९५१-५२ में आयात का कुल मूल्य ९४२.४९ करोड़ रुपये था। इस प्रकार ५२-५३

में आयात की गई सामग्री का मूल्य पिछले साल की अपेक्षा २८४.५७ करोड़ रुपये कम था परन्तु सन् १९५०-५१ की अपेक्षा ३४.३५ करोड़ रुपया अधिक रहा।

सन् १९५२-५३ के आयात व्यापार की विशेषता यह रही कि खाद्यान्नों, कच्ची कपास और कच्चे पटसन में भारी कमी हुई। परन्तु खनिज संपत्ति, वनस्पति और प्राणिज तेलों, बिजली के सामान तथा धातुओं के आयात में थोड़ी सी वृद्धि हुई।

इस वर्ष के निर्यात व्यापार में भारी कमी का कारण पटसन से बनी वस्तुओं के निर्यात में १४०.६३ करोड़ रुपये की भारी कमी रही। इसके अलावा कुछ वस्तुओं के निर्यात मूल्य पहिले से घट गये। चाय, मसाले, चमड़ा, अभ्रक, गोंद आदि के निर्यात का मूल्य गिर गया परन्तु सूती कपड़े तथा कपास के निर्यात में थोड़ी सी वृद्धि हुई। पिछले साल की अपेक्षा इस साल मैन्गनीज़, तेल, फल तथा सब्जी अधिक मात्रा में बाहर भेजी गई।

आयात और निर्यात दोनों के ही लिए भारत का व्यापार अधिकतर ग्रेट ब्रिटेन और संयुक्त राष्ट्र अमरीका के साथ ही हुआ। परन्तु आयात व निर्यात दोनों के ही मूल्य में घटती हो जाने के कारण इनका प्रतिशत अंश कुछ घट गया।

भारत की प्रमुख निर्यात वस्तुएं और उनके ग्राहक

भारत से निर्यात की जाने वाली वस्तुएँ पटसन का कपड़ा व बोरे, चाय, चमड़ा व खालें, तिलहन, लाख व कच्चा जूट हैं। इनके अलावा सूत व सूती वस्त्र तथा अभ्रक आदि का भी प्रमुख स्थान है।

(अ) **पटसन की वस्तुएं**—इसके मुख्य ग्राहक संयुक्त राष्ट्र, ग्रेट ब्रिटेन, अर्जेन्टाइना, पाकिस्तान, आस्ट्रेलिया और कनाडा हैं। इनमें संयुक्त राष्ट्र का स्थान सब से महत्वपूर्ण है और कुल निर्यात का ४६ प्रतिशत माल वहीं जाता है। भारत अपनी पटसन की वस्तुओं से कुल मुद्रा विनिमय का ३५ प्रतिशत भाग और कुल डालर मुद्रा राशि का ६२ प्रतिशत भाग प्राप्त करता है। परन्तु इन पटसन की वस्तुओं का मूल्य दिन प्रतिदिन बढ़ता ही जा रहा है। यह इनके व्यापार में असुविधा उत्पन्न करेगा क्योंकि पटसन के बोरों की लोकप्रियता उनके सस्तेपन के कारण है। मूल्य अधिक होने के कारण संयुक्त राष्ट्र अमरीका में कपड़े व कागज के थैलों का प्रयोग किया जाने लगा है।

सन् १९५१-५२ में भारत से २७०·१७ करोड़ रुपये मूल्य की पटसन की वस्तुएं निर्यात की गईं।

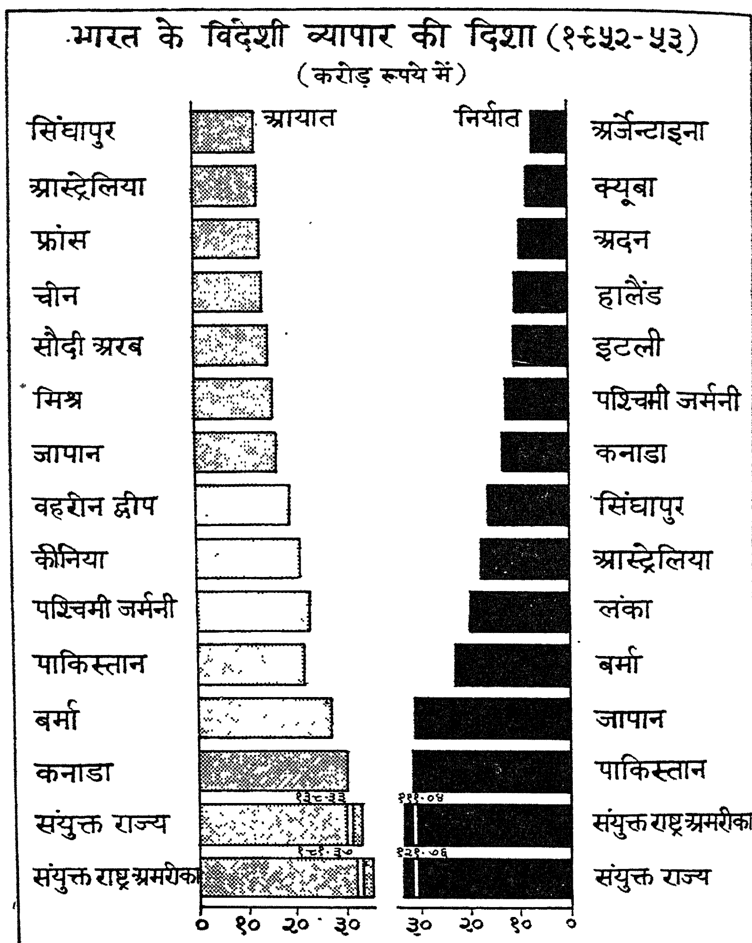
(आ) **चाय** के प्रमुख ग्राहक देश ग्रेट ब्रिटेन, रूस, संयुक्त राष्ट्र, पाकिस्तान, कनाडा, ईरान और अरब हैं। ग्रेट ब्रिटेन में भारत की सब से अधिक चाय जाती है। भारत से कुल निर्यात की गई चाय का ६४ प्रतिशत भाग अकेला ग्रेट ब्रिटेन ही ले लेता है। परन्तु चाय के अधिक मूल्य के कारण इसके निर्यात व्यापार के प्रसार में कठिनाइयां पड़ रही हैं।

सन् १९५१-५२ में भारत से ९३.३६ करोड़ रुपये मूल्य की चाय निर्यात की गई।

(३) **चमड़ा व खालें**—प्रधान रूप से ग्रेट ब्रिटेन, संयुक्त राष्ट्र और पाकिस्तान को निर्यात की जाती हैं। ग्रेट ब्रिटेन को ६७ प्रतिशत और संयुक्त राष्ट्र को १५ प्रतिशत

माल भेजा जाता है।

सन् १९५२ में भारत से निर्यात की हुई खालें, कच्चे व साफ किए हुए चमड़े का मूल्य ३४ करोड़ रुपया था।



चित्र ६५

तिलहन में अलसी, मूंगफली और रेंडी का स्थान विशेष रूप से महत्वपूर्ण है। मूंगफली व रेंडी के बीजों का प्रधान ग्राहक ब्रिटेन है। संयुक्त राष्ट्र, ईराक, पाकिस्तान, कनाडा, आस्ट्रेलिया, इटली, बेल्जियम, लंका आदि अन्य महत्वपूर्ण ग्राहक देश हैं। युद्धपूर्व ग्रेट ब्रिटेन २८ प्र. श. और इटली १६ प्र. श. तिलहन आयात करते थे। सन् १९५०-५१ में भारत से १७ करोड़ रुपये मूल्य का तिलहन निर्यात किया गया।

(उ) **लाख** के प्रमुख ग्राहक देश ग्रेट ब्रिटेन, संयुक्त राष्ट्र और आस्ट्रेलिया हैं। इनमें संयुक्त राष्ट्र का स्थान विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

(ऊ) **कच्चा पटसन** बनाने वाले प्रमुख देश ग्रेट ब्रिटेन, रूस, संयुक्त राष्ट्र, ब्राजील, अर्जेन्टाइना और आस्ट्रेलिया हैं। परन्तु देश के बंटवारे के बाद से कच्चे पटसन का व्यापार बहुत कम हो गया है। सन् १९४८-४९ में भारत से २४.२६ करोड़ रुपये मूल्य का पटसन निर्यात किया गया। इसमें ६ करोड़ रुपये मूल्य का पटसन ग्रेट ब्रिटेन ने लिया और ४ करोड़ रुपये मूल्य का रूस ने।

(ए) **सूत व सूती कपड़े**—इधर कुछ दिनों से अधिक मात्रा में निर्यात किये जाने लगे हैं। सन् १९४९-५० में भारत से ७४.३१ करोड़ रुपये मूल्य का कपड़ा निर्यात किया गया परन्तु सन् १९५१-५२ में भारत से निर्यात किये गये सूत के कपड़े का मूल्य १३४.३१ करोड़ रुपया था।

(ऐ) **अभ्रक** का निर्यात भी पहले से अधिक होने लगा है। सन् १९४९-५० में ६.८५ करोड़ रुपये का अभ्रक बाहर भेजा गया परन्तु पिछले वर्ष निर्यात का मूल्य ९.६१ करोड़ रुपये था।

दूसरे महायुद्ध के बाद से कुछ भारतीय जानवरों की मांग देश-विदेश में बहुत बढ़ गई है। इनमें बन्दरों की विशेष मांग है और संयुक्त राष्ट्र अमरीका तथा यूरोप की अनुसंधानशालाओं में पोलियो तथा तपेदिक रोगों के अनुसंधान के लिये प्रतिवर्ष भारत से ३० लाख रुपये मूल्य के बन्दर भेजे जाते हैं। प्रतिवर्ष लगभग १०,००० बन्दर निर्यात कर दिये जाते हैं। इनसे भारत में मुद्रा लाभ भी होता है और साथ-साथ ३०,००० टन अनाज की वार्षिक हानि से भी कुछ बचाव हो जाता है। देश में ५ बड़े-बड़े व्यापार-गृह बन्दरों के इस व्यापार में लगे हुए हैं।

बन्दरों के अलावा प्रतिवर्ष बहुत से हाथी, बर्फीले तेंदुये (जो काश्मीर में पकड़े जाते हैं) तथा अन्य मांस-भक्षक जानवर भी बाहर भेज दिये जाते हैं। प्रायः हर वर्ष बारह हाथी बाहर भेजे जाते हैं और प्रत्येक का मूल्य ६५०० रुपये मिलता है।

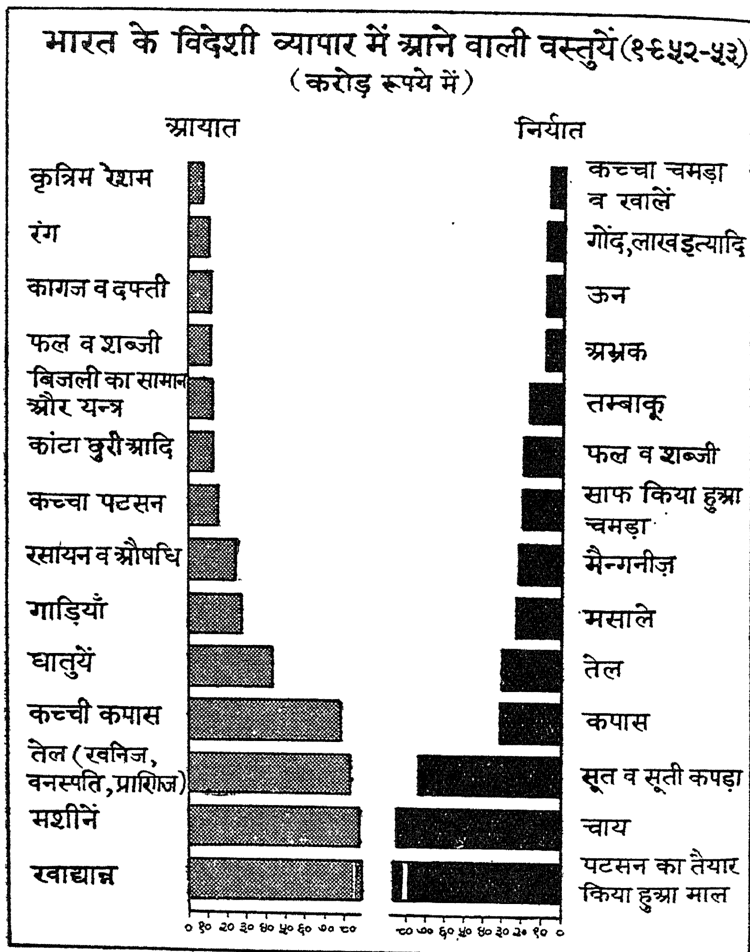
भारत से बाहर भेजा जाने वाला सब से कीमती जानवर गुरीला है। जिसके लिए भारत को ५५०० डालर प्रति गुरीले की दर से भुगतान होता है।

भारत से निर्यात होने वाली वस्तुएँ व उनका मूल्य

(करोड़ रुपयों में)

भारतीय वस्तुएं	**१९५०—५१**	**१९५१—५२**
भोज्य व पेय पदार्थ और तंबाकू	१३५.८१	१५७.६१
कच्चा माल	१२५.८०	१३९.७१
उद्योग धंधों द्वारा निर्मित माल	३१४.७७	४००.५८
अन्य वस्तुएं	२.६१	३.६५

विदेशों से मंगाई हुई वस्तुएं	१९५०-५१	१९५१-५२
भोज्य व पेय पदार्थ और तम्बाकू	०.४४	०.२६
कच्चा माल	२३.४५	९.१६
निर्मित वस्तुएं	३.९२	४.२३
अन्य वस्तुएं	—	.०९



चित्र ६६

प्रमुख आयात सामग्री और उसका स्रोत

भारत में बाहर से मशीनें, मोटर गाड़ियां, साइकलें, खनिज तेल, कागज, रेशमी वस्त्र, रासायनिक पदार्थ, कच्चा पटसन व कपास तथा अनाज व आटा आयात किये जाते हैं

(अ) **मशीनें**—अधिकतर ग्रेट ब्रिटेन, संयुक्त राष्ट्र, जर्मनी, जापान व फ्रांस से आती हैं। कुल आयात का ७० प्रतिशत भाग अकेले ग्रेट ब्रिटेन से आता है। सन् १९५१-५२ में भारत ने १०४ करोड़ रुपये की मशीनें मंगवाई।

(आ) **मोटर गाड़ियां, साइकिलें आदि**—ग्रेट ब्रिटेन, संयुक्त राष्ट्र, कनाडा, इटली और फ्रांस से आती हैं। सन् १९५१-५२ में भारत में आयात की हुई गाड़ियों का मूल्य ३३ करोड़ रुपये था।

(इ) **खनिज तेल**—के मुख्य स्रोत ईरान, चीन बोर्नियो, सुमात्रा, संयुक्त राष्ट्र और बर्मा हैं। सन् १९५१-५२ में आयात तेल का कुल मूल्य ७९ करोड़ रुपया था।

(ई) **कागज**—सन् १९५१-५२ में भारत ने १४.८८ करोड़ रुपये मूल्य का कागज आयात किया। भेजने वाले मुख्य देश ग्रेट ब्रिटेन, जर्मनी, स्वीडन, नार्वे और संयुक्त राष्ट्र थे।

(उ) **रेशमी वस्त्र** का आयात जापान, चीन, इटली और ग्रेट ब्रिटेन से होता है साधारण समय में भारत का ७३ प्रतिशत रेशम जापान से आता है। सन् १९५१-५२ में भारत ने ३३ लाख रुपये मूल्य का रेशम मंगवाया।

(ऊ) **रासायनिक पदार्थ** के मुख्य स्रोत ग्रेट ब्रिटेन, जर्मनी, जापान और संयुक्त राष्ट्र हैं। सन् १९५१-५२ में भारत में मंगाये गये रासायनिक पदार्थों का मूल्य ३५.८६ करोड़ रुपया था।

(ए) **कच्चा पटसन**—भारत को देश के बंटवारे के बाद से कच्चा पटसन पाकिस्तान से मंगवाना होता है। प्रतिवर्ष भारत को ४४ लाख गांठ पटसन की आवश्यकता होती है। सन् १९४८-४९ में भारत ने ८१ करोड़ रुपये का कच्चा पटसन खरीदा था।

(ऐ) **कपास**—मिश्र, संयुक्त राष्ट्र, कीनया और पाकिस्तान से भारत में कपास मंगाई जाती है। केवल पाकिस्तान से भारत १० लाख गांठ कपास प्रतिवर्ष मंगवाता है। सन् १९५१-५२ में भारत में १३६.४६ करोड़ रुपये मूल्य की कपास आयात की गई।

(ओ) **खाद्यान्न व आटा**—देश में जनसंख्या की बढ़ती हुई मांग को पूरा करने के लिये और विशेषकर देश के बंटवारे के बाद से खाद्यान्नों का आयात करना पड़ता है। कनाडा, आस्ट्रेलिया, बर्मा संयुक्त राष्ट्र, अर्जेन्टाइना, स्याम और मिश्र से भारत अनाज मंगवाता है। सन् १९४८-४९ में भारत ने १३१ करोड़ रुपये मूल्य का अन्न बाहर से मंगवाया जिसका ब्योरा इस प्रकार था—बर्मा २२ प्र. श.; आस्ट्रेलिया २१ प्र. श. संयुक्त राष्ट्र—१९ प्रतिशत; अर्जेंटाइना १२ प्र. श.। सन् १९५१-५२ में भारत में २२८ करोड़ रुपये मूल्य का अनाज बाहर से आया।

भारत में आयात की गई वस्तुएं व उनका मूल्य

(करोड़ रुपयों में)

	१९५०-५१	१९५१-५२
भोज्य व पेय पदार्थ तथा तंबाकू	१०६.९०	२६२.०४
कच्चा माल	१९८.६६	२५३.०३
औद्योगिक निर्मित वस्तुएं	२५८.७९	३३९.७१
अन्य वस्तुएं	२.२०	५.३५
	५६६.५५	८६०.१३

कुछ महत्वपूर्ण देशों के साथ भारत का व्यापारिक सम्बन्ध

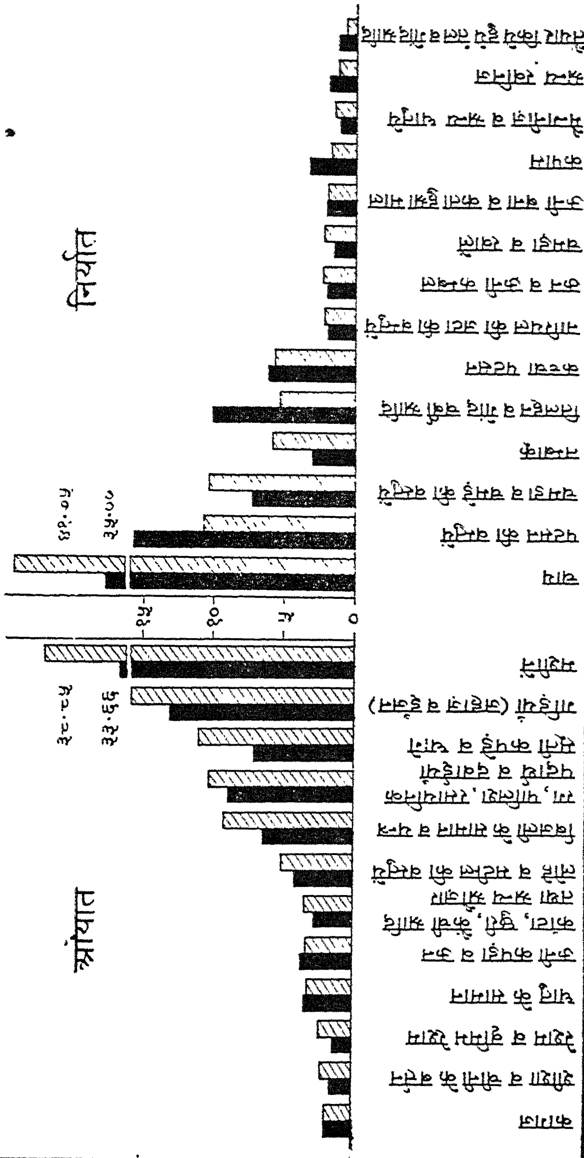
ग्रेट ब्रिटेन—भारत के आयात-निर्यात व्यापार में ग्रेट ब्रिटेन का सब से महत्वपूर्ण स्थान है। भारत से ग्रेट ब्रिटेन निर्यात की जाने वाली वस्तुओं में चाय, पटसन, चमड़ा, तिलहन, कपास, ऊन, अनाज, खली, धातुयें व खनिज पदार्थ विशेष रूप से महत्वपूर्ण हैं। कुल निर्यात के एक तिहाई-मूल्य की तो केवल चाय ही भेजी जाती है। ग्रेट ब्रिटेन से भारत में आयात की जाने वाली वस्तुओं में मशीनें, लोहा व इस्पात, रासायनिक वस्तुएं, औजार, लोहे के सामान, शराब, मोटरगाड़ियां, रबड़ की वस्तुएं, कागज आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। कुल आयात का तृतीयांश केवल मशीनें व कलपुर्जे होते हैं।

ग्रेट ब्रिटेन और भारत का व्यापार

आयात व निर्यात (हजार पौंडों में)

ग्रेट ब्रिटेन से भारत को निर्यात (भारत में आयात)	१९५२
	कुल मूल्य १,१२,१४९
मशीनें	३५,६२६
गाड़ियां (जहाज व इंजन लेकर)	१६,८२३
लोहा व इस्पात की वस्तुएं	७,७९९
शीशे व चीनी के बर्त्तन	१,८८५
अन्य धातुयें व निर्मित वस्तुएं	२,३५१
कांटा छुरी, कैंची, यन्त्रादि	३,५७२
बिजली का सामान	११,३९१
सूती व सूती वस्त्र	३,४८१
ऊन व ऊन का बना हुआ सामान	४,८४०
रेशम व रेशम वस्त्र	३९१
रसायन, दवाइयां, रंग व वार्निश	९,९६७
कागज दफ्ती आदि	२,१२८
ग्रेट ब्रिटेन में भारत से आयात (भारत से निर्यात)	१९५२
	कुल मूल्य १,१४,५५४
चाय	४८,७३२
तंबाकू	६,९५६
कोयले के अतिरिक्त अन्य खनिज	२,७६१
लोहा आदि धातुएं	३,१९९
कपास	२,३०१
ऊन व ऊनी चिथड़े	३,४४६
तिलहन व गोंद, चर्बी व तेल	६,१४४
चमड़ा व खालें	५३८
ऊनी वस्त्र व ऊन	१,२३१
नारियल की जटा की चटाइयाँ	१,२१६

पटसन की वस्तुएं	१३,२५६
तैयार किये हुए तेल, चमड़ा आदि	१,२३०
चमड़े की वस्तुएं	९,२८४



चित्र नं० ६७

पाकिस्तान—भारत के विदेशी व्यापार में पाकिस्तान का बड़ा महत्वपूर्ण स्थान है। भारत को पाकिस्तान से कच्चा माल मिलता है और भारतीय तैयार माल के लिये पाकिस्तान एक अच्छी मंडी है। सन् १९४८-४९ में भारत के निर्यातक देशों में पाकिस्तान का दूसरा स्थान था। भारत में पाकिस्तान से बहुत-सी वस्तुएं भी मंगाई जाती हैं। पाकिस्तान से आयात की जाने वाली मुख्य वस्तुएं कच्ची पटसन, कपास, ऊन, अनाज, फल व सब्जी हैं। कुल आयात का ८४ प्रतिशत भाग कच्चा पटसन व लम्बे रेशे वाली कपास है। पाकिस्तान में जूट के कुल उत्पादन का ६० प्रतिशत भाग भारत में आयात किया जाता है। अतएव स्पष्ट है कि भारत की जूट मिलें व पाकिस्तान में कच्चा पटसन उगाने वाले किसान एक दूसरे पर निर्भर रहते हैं। यदि पाकिस्तान से कच्चा पटसन न आये तो भारत की जूट मिलों का काम रुक जाये और दूसरी ओर यदि भारत की मिलें पाकिस्तान से पटसन लेना बन्द कर दें तो वहां के किसानों की बुरी दशा हो जाये।

भारत से सूती कपड़ा, पटसन की बनी हुई वस्तुएं, गुड़, लोहा व इस्पात, कोयला, चाय, सीमेंट, कागज आदि वस्तुएं पाकिस्तान निर्यात की जाती हैं। सन् १९५१ में भारत ने समुद्र व स्थल के रास्ते पाकिस्तान से ९८ करोड़ रुपये मूल्य का सामान मंगवाया और इसके बदले पाकिस्तान को ३२ करोड़ रुपये मूल्य का सामान भेजा। इस प्रकार भारत पाकिस्तान के व्यापार संतुलन में भारत को ६६ करोड़ रुपये की कमी रही।

भारत व पाकिस्तान के बीच व्यापार सन् १९५१ के व्यापारिक समझौते के अनुसार है। इसके अनुसार भारत कपास व पटसन, गाय की खालें व चमड़ा तथा अनाज पाकिस्तान से मंगवायेगा और इसके बदले पाकिस्तान को कोयला, सूती कपड़ा व सूत, रासायनिक पदार्थ पटसन की वस्तुएं, टायर, ट्यूब, चमड़ा व जूते, इस्पात, सीमेंट आदि भारत से भेजा जायेगा।

भारत व पाकिस्तान के बीच व्यापार

(दस लाख रुपये में)

	१९४८-४९	१९४९-५०	१९५०-५१	१९५१-५२
निर्यात (समुद्र द्वारा)	४४३	१४१	१३४	१९०
निर्यात (थल द्वारा)	३०४	२७५	१७०	२६२
आयात (समुद्र द्वारा)	२२४	१२५	४६	१०५
आयात (थल द्वारा)	८५०	३१६	३९३	१०२४
शेषांश	–३२७	–२५	–१३५	–६७७

बर्मा—भारत के विदेशी व्यापार में बर्मा का भाग काफी अधिक है। भारत के कुल आयात का ५ प्रतिशत भाग बर्मा से होता है और भारत को माल भेजने वाले देशों में इसका चौथा स्थान है। भारत से बर्मा को केवल २ प्रतिशत माल ही भेजा जाता है। अतः व्यापार के दृष्टिकोण से भारत हानि में रहता है। बर्मा से अधिकतर चावल, खनिज तेल व सागौन की लकड़ी भारत में आती है और इन्हीं तीनों वस्तुओं में बर्मा के निर्यात व्यापार का ८५ प्र. श. भाग हो जाता है। भारत से बर्मा को भेजी जाने वाली वस्तुओं में

सूती कपड़े व पटसन की वस्तुएं सबसे प्रमुख हैं। कुल निर्यात के ४० प्र. श. भाग के बराबर तो ये ही दो प्रकार की वस्तुएं हो जाती हैं और इनके अलावा लोहा व इस्पात, चाय, चीनी व कोयला भी भारत से बर्मा को जाती हैं। भारतीय कोयले का बर्मा सबसे अच्छा ग्राहक है।

सन् १९५०-५१ में भारत ने बर्मा से १९ करोड़ रुपये मूल्य का सामान मंगवाया और २२ करोड़ रुपये मूल्य का माल निर्यात किया।

भारत का बर्मा के साथ व्यापार (लाख रुपये मूल्य में)

	१९४८-४९	१९४९-५०	१९५०-५१	१९५१-५२
निर्यात	२३,४०	१४,१७	१४,१८	२३,३४
आयात	१०,५६	१४,६२	२२,४६	१९,७५

लंका—से भारत नारियल की गिरी, गोले का तेल व चाय आयात करता है। भारत से बगैर साफ किया चावल, सूती कपड़े, मछली और कोयला निर्यात किया जाता है। भारतीय कोयले का लंका दूसरा महत्वपूर्ण ग्राहक है। भारत से लंका को भेजी जाने वाली अन्य वस्तुएं दालें, फल, सब्जी, मिर्चे, खली व खाद हैं।

भारत-लंका व्यापार संतुलन में भारत को काफी लाभ रहता है। सन् १९५१-५२ में भारत से लंका को १७ करोड़ रुपये मूल्य की वस्तुएं निर्यात की गई और बदले में लंका से केवल ३० लाख रुपये मूल्य की वस्तुएं आईं।

भारत का लंका के साथ व्यापार

(दस लाख रुपयों में)

	१९३८-३९	१९४८-४९	१९४९-५०	१९५०-५१	१९५१-५२
निर्यात	५१	११९	१६४	१९२	१६३
आयात	१२	२७	२९	४५	५६

जापान—इधर कुछ दिनों से भारत से जापान को निर्यात बराबर घटता जा रहा है। सन् १९५१-५२ में भारत-जापान व्यापार संतुलन में भारत को हानि रही। भारत ने जापान को १४ करोड़ रुपये मूल्य की वस्तुएं निर्यात कीं और जापान से २५ करोड़ रुपये मूल्य की वस्तुएं मंगवाईं। जापान से भारत में सूती कपड़े, कृत्रिम रेशम, रेशमी वस्त्र, ऊनी कपड़े, शीशा व शीशे के बर्त्तन, लोहे व इस्पात की मशीनें व यन्त्रादि, मिट्टी व चीनी के बर्त्तन, खिलौने, खेलकूद की चीजें, कांटा-छुरी आदि, रासायनिक पदार्थ, कागज व लिखने पढ़ने का सामान, रेशम, रबड़ की वस्तुएं, बिजली के यन्त्र व औजार, रंग व वार्निश आदि वस्तुएं मंगाई जाती हैं। भारत से जापान को कपास, पिग आयरन, मैंगनीज़, पटसन (कच्चा व तैयार) अभ्रक व चमड़ा निर्यात किया जाता है। जापान में आयात की हुई वस्तुओं का एक चौथाई भाग सिर्फ कपास का होता है।

पश्चिमी जर्मनी—साधारण समय में भारत जर्मनी से लोहा व इस्पात, पीतल व तांबा, लोहे के सामान, मशीनें, कलपुर्जे, शीशे के सामान, शराब, कागज, ऊनी कपड़े, नमक व कम्बल आदि वस्तुएं मंगवाया करता है। इसी प्रकार भारत से जर्मनी को

निर्यात होने वाली वस्तुओं में कच्चा पटसन, अनाज, दाल, आटा, कपास, तिलहन, चमड़ा व खालें, लाख, नारियल की जटा की निर्मित वस्तुएं, हड्डियां व सन का स्थान प्रमुख है। कुल निर्यात का एक चौथाई भाग केवल पटसन का होत ा है।

सन् १९४९ के जुलाई महीने में भारत व पश्चिमी जर्मनी के बीच एक व्यापारिक समझौता हुआ जिसके अनुसार निम्नलिखित वस्तुओं का आयात व निर्यात होगा :—

जर्मनी को निर्यात की जाने वाली वस्तुएं—

(१) **खेतिहर उपज**—मूंगफली, चर्बीदार एसिड, मूंगफली का तेल, औद्योगिक अलसी और मसाले।

(२) **चमड़ा व खालें**—गाय की खालें, भैंस की खालें, बकरी की खालें, कच्चा चमड़ा, चमड़ा साफ करने की वस्तुएं और चमड़े की कतरन।

(३) **धातुएं**—मैंगनीज़

(४) **रासायनिक पदार्थ व संबंधित वस्तुएं**—अभ्रक, नीबू की घास का तेल, चन्दन का तेल, कराया गोंद, इलमिनाइट, कास्टिक मेगनेसाइट।

(५) **औषधियों की जड़ें**—सनाई की पत्ती व फल, नक्स वामिका, नक्स अफ्रीका फ़ेनल, इफीडरा, सरकुमा।

(६) **अन्य वस्तुएं**—लाख की छड़ी और चपड़ा, बगैर साफ की गई ग्लेसरीन, रेंडी और मैंगनीज़ डाइ आक्साइड।

(७) **कपड़ा बनाने की वस्तुएं**—पटसन, जूट के रेशे, नारियल की जटा का रेशा व सूत, सूअर के बाल, गाय, बैल भैंस के पूंछ के बाल, ऊन और कपास।

जर्मनी से आयात की वस्तुएं—

(१) **रासायनिक पदार्थ और सम्बंधित वस्तुएं**—कोलतार के रंग, दवाइयां, सोडियम सल्फाइड, ज़िन्क आक्साइड, एसिटिक और फार्मिक एसिड, सोडियम सल्फड्रेट, वस्त्र व्यवसाय और रंगों के उद्योग के रसायन, ओइलिक एसिड, टिलोज और उससे प्राप्त वस्तुएं, रांगालिट (Rongalit), इगेपान टी पाउडर, (Igepon T powder), आक्सीजन निरोधक वस्तुएं, उत्तेजक वस्तुएं, फोटो खींचने का कागज, लिथोफोन, टिटानियम डाइ आक्साइड, बेंजील अल्कोहल, बेंजील एसीटेट, बेंजोएट, सोडियम बेलजोट, कृत्रिम कच्चा माल (Lacquers) के लिये, ट्रिचलोरेथलीन (Trichlorethylene), प्लास्टिक बनाने की वस्तुएं, रासायनिक प्रतिक्रियक वस्तुएं,—प्रयोगशालाओं के लिये और कृत्रिम कपूर बनाने के लिये।

(२) **शीशे के बर्तन**—चद्दरों व प्लेटों के शीशे।

(३) **मशीनें व धातु की वस्तुएं**—वस्त्र बनाने की मशीनें, कल पुर्जों, भारी हल व उनके भाग, छपाई की मशीनें, ट्रैक्टर, कागज बनाने की मशीनें, लोहे के कारखाने के भाग व मशीनें, औद्योगिक सिलाई की मशीनें, बिजली की मोटरें, टरबाइन जो भाप से चलते हैं और उनके कल-पुर्जे, बिजली उत्पादक यन्त्र, मोटर गाड़ियों के भाग, लोहे की वस्तुएं, भूसा काटने की मशीनें, डीज़ल इंजन व अन्य प्रकार की मशीनें।

(४) **बिजली का सामान**—बिजली मे उपचार की मशीनें, इस्पात के ट्यूबदार खम्भे, कारबन के ब्रुश, तार, बिजली लगाने का सामान, टेलीफोन का सामान।

(५) **प्रयोगशालाओं व डाक्टरों के यन्त्र**—खुर्दबीन, आंख मे देखने के यन्त्र, दूरबीन, एक्सरे का कैमरा, फोटो खींचने का समान, सर्वे करने व चश्मे के यन्त्र, चश्मों के भाग, रेखा-चित्र बनाने के यन्त्र, चीरफाड़ करने के यन्त्र, औद्योगिक घड़ियां, सिनेमा की मशीनें और अन्य विविध प्रकार के यन्त्रादि।

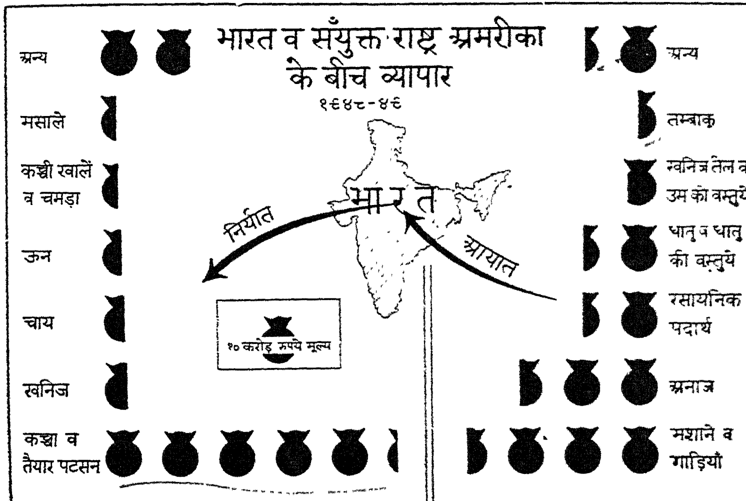
(६) **लोहा व इस्पात**—इस्पात की रौल की हुई वस्तुएं—

सन् १९५१-५२ में भारत से पश्चिमी जर्मनी को ९ करोड़ रुपये का सामान भेजा गया और इसके बदले पश्चिमी जर्मनी से २८ करोड़ रुपये का सामान आयात किया गया।

भारत जर्मनी का व्यापार (लाख रुपयों में)

	१९४७-४८	१९४८-४९	१९४९-५०	१९५०-५१	१९५१-५२
आयात	४	२२५	६४१	१०९३	२८२८
निर्यात	९०	२६१	९५०	१०९२	९३८

संयुक्त राष्ट्र अमरीका—अमरीका के साथ भारत के व्यापार संतुलन में भारत हमेशा लाभ में रहा है। परन्तु इधर कुछ दिनों से निर्यात की अपेक्षा भारत में आयात अधिक होती है। भारत से संयुक्त राष्ट्र को निर्यात की जाने वाली मुख्य वस्तुएं पटसन व पटसन की वस्तुएं, चमड़ा व लाख, चाय, चमड़ा व खालें, दरियां व कालीन, ऊन, चमड़ा, बगैर साफ किये गये फर और अभ्रक हैं। संयुक्त राष्ट्र से भारत में आयात की मुख्य वस्तुएं गेहूं व रोटी के अन्य अनाज, अन्य भोजन की वस्तुएं, रसायन, मशीनें, अनिर्मित



चित्र नं० ६८

तम्बाकू, धातुएं व धातुओं की बनी हुई चीजें, खनिज तेल व उससे उत्पन्न वस्तुएं, सूती वस्त्र

वस्त्र व कपास हैं । भारत में इस समय निर्यात की अपेक्षा आयात की अधिकता का मुख्य कारण यह है कि भारत को अनाज वहुत अधिक मात्रा में मंगवाना पड़ता है। अतः भारत-संयुक्तराष्ट्र के बीच व्यापार संतुलन भारत में अनाज व मशीनों आदि की आवश्यकता तथा भारत से वस्तुओं की निर्यात शक्ति पर निर्भर रहेगा ।

संयुक्त राष्ट्र से आयात का मूल्य (रुपयों में)		संयुक्त राष्ट्र को निर्यात का मूल्य (रुपयों में)	
१९४९-५०	९४·४१ करोड़	१९४९-५०	७९·७६ करोड़
१९५०-५१	११५·८२ ,,	१९५०-५१	११०·१० ,,
१९५१-५२	२८७·९१ ,,	१९५१-५२	१२९·९३ ,,

सन् १९५१-५२ में भारत में सब से अधिक माल संयुक्त राष्ट्र से आया और इसी साल के निर्यात के दृष्टिकोण से संयुक्त राष्ट्र का भारतीय माल के ग्राहक देशों में दूसरा स्थान था ।

भारत व संयुक्त राष्ट्र का व्यापार (लाख रुपये में)

	१९४९-५०	१९५०-५१	१९५१-५२
आयात	९४,४२	११५,८२	२८७,९१
निर्यात	८१,५३	११५,३४	१३२,१८

भारत के व्यापारिक समझौते—भारत ने कई देशों के साथ व्यापारिक समझौते किये हैं। भारत की विदेशी व्यापार नीति में इन समझौतों का बड़ा ही महत्वपूर्ण स्थान है। भारत सरकार की नीति यह है कि मुद्रा-विनिमय पर अधिक भार न दिया जाय और भारत की उपज के बदले आवश्यक वस्तुओं का विदेश से आयात किया जाय। यह समझौते साधारणतया दो प्रकार के हैं—(१) इनमें दोनों देशों को वस्तु व मात्रा के विवरण द्वारा बांध दिया जाता है और (२) इनमें केवल व्यापार सुविधा प्रदान करते हुए आपस में समझौता हो जाता है। हाल में भारत ने चैकोस्लोवाकिया, मिश्र, फिनलैंड जर्मनी, हंगरी, जापान, पाकिस्तान, पोलैंड, स्विटरज़रलैंड, रूस और यूगोस्लाविया के साथ व्यापारिक समझौते किये हैं। इन समझौतों की सहायता से भारत को वैज्ञानिक वस्तुएं, अखबारी कागज, इस्पात की वस्तुएं व मशीनें आदि उपलब्ध हो सकेंगी।

भारत का सीमांत व्यापार—पाकिस्तान, नैपाल, तिब्बत और चीन के साथ भारत का व्यापार सीमांत थल-मार्गों द्वारा होता है। इन देशों से भारत अनाज, पटसन, फल, ऊन, ज़िन्दा जानवर, कच्चा रेशम मंगवाता है और बदले में सूती कपड़े, चीनी, चमड़े का सामान, चाय, रेशमी कपड़े, लोहे व इस्पात की वस्तुएं व नमक निर्यात किया जाता है।

भारत का पुनर्निर्यात व्यापार—भारत में पुनर्निर्यात व्यापार भी बहुत अधिक होता है। देश में बहुत-सी आयात की गई वस्तुएं फिर से समीपवर्ती देशों को निर्यात कर दी जाती हैं। वास्तव में भारत बहुत-सी वस्तुओं को सिर्फ इसलिये मंगवाता है कि उन्हें आस-पास के देशों को भेज सके। इस दृष्टि से भारत की भौगोलिक स्थिति बड़ी ही महत्वपूर्ण है। भारत पूर्वी गोलार्द्ध के केन्द्र में स्थित है और इसलिये वह कीनिया, पूर्वी अफ्रीका,

जापान, स्ट्रेटस सैटलमैंटस और चीन को फिर से निर्यात विनरण के लिये पश्चिमी देशों मे कपास, रासायनिक पदार्थ, मशीनें, खनिज व धातुएं आयात करता है।

प्रश्नावली

१· अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के क्षेत्र में भारत का क्या स्थान है ? भारत के विदेशी व्यापार में वृद्धि करने के उपाय बतलाइये।

२. भारत के विदेशी व्यापार की विशेपताएं बतलाइये।

३. सामुद्रिक व्यापार के दृष्टिकोण से भारत की संसार में क्या स्थिति है ? समझाकर लिखिये और हाल में वायु-यातायात के विकास से भारत के व्यापार पर क्या असर पड़ेगा ?

४. भारत व संयुक्त राष्ट्र अमरीका के बीच आयात निर्यात व्यापार का वर्णन कीजिये। इस व्यापार को किस प्रकार बढ़ाया जा सकता है ?

५. भारत के मिल कारखानों में तैयार की हुई वस्तुओं का निर्यात अरब, ईराक, ईरान व अफगानिस्तान को किया जा सकता है। विविध वस्तुओं की मांग को ध्यान में रखते हुए इस प्रकार के व्यापार के विकास की संभावनाएं बतलाइये ?

६. भारत के सीमांत प्रदेशों के साथ देश के व्यापार का वर्णन कीजिये और बतलाइये कि इसमें कैसे वृद्धि की जा सकती है ?

७. भारत और मध्य पूर्व के बीच व्यापार की क्या संभावनाएं हैं ? क्या भारतीय वस्तुओं के लिये मध्यपूर्व की मंडियों में पर्याप्त क्षेत्र है ?

८. भारत के थल मार्गों से किन वस्तुओं का व्यापार होता है ? उसमें विकास व वृद्धि के उपाय बतलाइये। इस व्यापार में भाग लेने वाले देश कौन-से हैं ?

९. भारत के विदेशी व्यापार पर एक लेख लिखिये और बतलाइये कि भारत कौन-सी वस्तुएं और कहां से आयात करता है और भारत से कौन पदार्थ कहां भेजे जाते हैं।

१०. भारत और ग्रेट ब्रिटेन के आयात-निर्यात व्यापार का विवरण दीजिये और बतलाइये कि दूसरे महायुद्ध से इस पर क्या प्रभाव पड़ा है ?

११. भारत के विदेशी व्यापार की विशेषताओं का निरूपण कीजिये और बतलाइये कि आयात निर्यात व्यापार पर देश के विभाजन का क्या प्रभाव पड़ा है ?

अध्याय : : बारह

बन्दरगाह व व्यापार-केन्द्र

किसी देश की औद्योगिक उन्नति का अन्दाज वहां के नगरों की संख्या से लगाया जा सकता है। भारत का मुख्य पेशा खेती है और अधिकतर लोग खेती द्वारा ही अपना बसर करते हैं। इसीलिये भारत के गांवों व शहरों की आबादी में संख्या का बड़ा अन्तर रहता है। भारत की कुल जनसंख्या का केवल १५ प्रतिशत भाग नगरों या उन के आसपास के भागों में पाया जाता है। भारत में ५,००,००० के लगभग जनसंख्या वाले प्रदेशों को कस्बा कहते हैं और १ लाख से ऊपर आबादी वाले कस्बों को शहर कहते हैं।

भारत में नगर में निवास करने वाली जनसंख्या का विन्यास

राज्य	नागरिक जनता का प्रतिशत	राज्य	नागरिक जनता का प्रतिशत
बंबई	२४	बिहार	५
पश्चिमी बंगाल	२२	मध्य प्रदेश	११
मद्रास	१६	दिल्ली	७८
उत्तर प्रदेश	१२	अजमेर	३७
पूर्वी पंजाब	१५	सौराष्ट्र	२५
आसाम	३	पेप्सू	१५
हैदराबाद	१३	काश्मीर	१०
मैसूर	१८	हिमाचल प्रदेश	३

भारत में १ लाख से अधिक पर २ लाख से कम और दूसरे २ लाख से अधिक जनसंख्या वाले केवल ४९ शहर हैं। उनके नाम व प्रदेश निम्न तालिका से स्पष्ट हो जायेंगे :—

भारत में २ लाख या अधिक जनसंख्या वाले नगर

नगर	जनसंख्या	नगर	जनसंख्या
कलकत्ता	३१,०९,०००	बनारस	२,६३,०००
हावड़ा	३,७९,०००	कानपुर	४,८७,०००
अहमदाबाद	५,९१,०००	लखनऊ	३,८७,०००
बंबई	२८,४०,०००	इलाहाबाद	२,६१,०००
पूना	२,५८,०००	अमृतसर	३,९१,०००
शोलापुर	२,१३,०००	नागपुर	३,०२,०००
मद्रास	१४,२९,०००	दिल्ली	१६,४३,०००
मदुरा	२,३९,०००	बंगलौर	२,४८,०००
श्रीनगर	२,०८,०००	हैदराबाद	७,३९,०००
आगरा	२,८४,०००	इंदौर	२,०४,०००

२ लाख से कम जनसंख्या के नगर

नगर	जनसंख्या	नगर	जनसंख्या
भाटपारा	१,७७,०००	गया	१,०५,०००
सूरत	१,७१,०००	जमशेदपुर	१,४९,०००
कालीकट	१,२६,०००	पटना	१,७६,०००
कोयम्बटूर	१,३०,०००	जबलपुर	१,७८,०००
सलेम	१,३०,०००	अजमेर	१,४७,०००
त्रिचनापली	१,६०,०००	बड़ौदा	१,५३,०००
बरेली	१,८३,०००	भावनगर	१,०३,०००
झांसी	१,०३,०००	बीकानेर	१,२७,०००
अलीगढ़	१,१३,०००	जयपुर	१,७६,०००
मेरठ	१,६९,०००	जोधपुर	१,२७,०००
मुरादाबाद	१,४२,०००	कोलार (सोने की खान)	१,३४,०००
सहारनपुर	१,०८,०००	लश्कर (ग्वालियर)	१,८२,०००
शाहजहांपुर	१,१०,०००	त्रिवेंद्रम	१,२८,०००
जालंधर	१,३५,०००	मैसूर	१,५७,०००
लुधियाना	१,१२,०००		

प्रमुख बन्दरगाह

वर्त्तमान काल में किसी देश के समुद्री व्यापार में बन्दरगाहों का बड़ा महत्वपूर्ण स्थान है। बन्दरगाह वे मिलन-बिन्दु हैं जहां कई व्यापारिक मार्ग—विदेशी व आंतरिक—आकर मिलते हैं और बाहर से आया हुआ माल अथवा देश से निर्यात होने वाला माल स्थानान्तरित किया जाता है। रेल, नाव्य जल-मार्गों व सड़कों की सहायता से देश के निर्यात का माल अन्दर के भागों से लाकर बन्दरगाहों में इकट्ठा किया जाता है और देश में बाहर से मंगाया हुआ माल साधनों की सहायता से देश के सब से भीतरी भागों को भेज दिया जाता है।

बन्दरगाह का महत्व उसके पृष्ठ प्रदेश के विस्तार व उत्पादन शक्ति पर निर्भर रहता है। पृष्ठ प्रदेश उस सभी भूखंड को कहते हैं जिस की उपज का निकास किसी विशेष बन्दरगाह द्वारा होता है। पृष्ठ प्रदेश का विस्तार यातायात के साधनों व सुविधाओं के अनुसार कम ज्यादा होता है। और पृष्ठ भूमि का उत्पादन वहां की उपज वस्तुओं व जनसंख्या के घनत्व के आधार पर निर्धारित किया जाता है।

भारत में दो श्रेणी अथवा प्रकार के बन्दरगाह पाये जाते हैं—प्रधान व गौण। प्रधान व गौण बन्दरगाह के बीच निम्नलिखित बातों का अन्तर होता है—प्रधान बन्दरगाह में निम्नलिखित विशेषताएं पाई जाती हैं—

(१) पोताश्रय सुरक्षित होता है। (२) आवागमन के साधन सुविस्तृत होते हैं। (३) डाक, जेटी व लंगरस्थान का सुप्रबंध होता है। (४) स्थानान्तरण के लिये पर्याप्त

सुविधाएं होती हैं। (५) रेलों व सड़कों द्वारा पृष्ठ प्रदेश के दूरस्थ स्थानों से भी यातायात का प्रबंध होता है। (६) सुरक्षा व सैनिक दृष्टिकोण से बन्दरगाह उपयुक्त रहता है। (७) व्यापार व गमनागमन की अधिकता के कारण साल भर लगातार जहाजों की मांग रहती है।

भारत की तटरेखा ३५०० मील लम्बी है और देश का विस्तार भी बहुत अधिक है। परन्तु उसकी तटरेखा बहुत कटी-फटी नहीं है और इसलिये उसके तट पर प्रधान या बड़े बन्दरगाह बहुत कम हैं। दक्षिणी भारत के बन्दरगाह के पोताश्रयों में आधुनिक विशालकाय जहाजों के खड़े होने के लिये पर्याप्त स्थान नहीं है। भारत के पश्चिमी तट पर मई से अगस्त तक मानसूनी हवायें इतनी प्रचंड रहती हैं कि बंबई व मरमागुआ को छोड़कर अन्य किसी भी बन्दरगाह का उपयोग नहीं हो सकता। पूर्वी किनारे पर लहरों द्वारा लाई हुई तथा नदियों द्वारा बहाई हुई बालू इकट्ठी हो जाती है। अतः समुद्र के पानी की पर्याप्त गहराई रखने के लिये बराबर ड्रामों का प्रयोग करना पड़ता है।

बंबई, मरमागुआ, मंगलौर, टेलीचरी, माहे, कालीकट, कोचीन तूतीकोरिन, नागापट्टम, पांडिचेरी, मद्रास, मसूलीपट्टम, विजगापट्टम, कोकानाडा और कलकत्ता भारत के प्रमुख बन्दरगाह हैं। परन्तु भारत के समद्री व्यापार का ९० प्रतिशत से अधिक काम बंबई, कलकत्ता, कोचीन, मद्रास और विजगापट्टम के बन्दरगाहों द्वारा होता है। दक्षिणी भारत के बन्दरगाहों की पृष्ठभूमि सीमित है परन्तु अब रेलों व सड़कों द्वारा उन को विस्तृत करने का प्रयत्न किया जा रहा है।

भारत के समुद्री व्यापार का औसत २०० लाख टन प्रति वर्ष है और यहां के बन्दरगाहों में इससे अधिक काम हो भी नहीं सकता। यदि व्यापार को कुछ थोड़ा बहुत बढ़ाया भी जावे तो बन्दरगाहों में भीड़-भाड़ बढ़ जाती है। सन् १९४८-४९ में विभिन्न बन्दरगाहों द्वारा व्यापार के आँकड़े इस प्रकार हैं —

	लाख टन		लाख टन
कलकत्ता	८०	कोचीन	२०
बंबई	६०	विजगापट्टम	५
मद्रास	२५		

इन बन्दरगाहों में सामुद्रिक व्यापार के केन्द्रित होने के कई कारण हैं। भौगोलिक स्थिति के अतिरिक्त ऐतिहासिक प्राचीनता ने भी इनके व्यापारिक विकास में सहायता दी है। बंबई, मद्रास और कलकत्ता काफी समय से शासन के केन्द्र रहे हैं। फलतः वहां जनसंख्या का घनत्व बढ़ा और साथ साथ व्यापारिक व औद्योगिक काम-धंधे का भी विकास हो चला। इसके अलावा १९वीं शताब्दी के अन्त में रेलों का निर्माण इन्हीं बन्दरगाहों से शुरू किया गया। इस प्रकार राजनीतिक व यातायात के केंद्रों से बढ़कर ये प्रमुख बन्दरगाह बन गये।

भारत के पश्चिमी तट के बन्दरगह

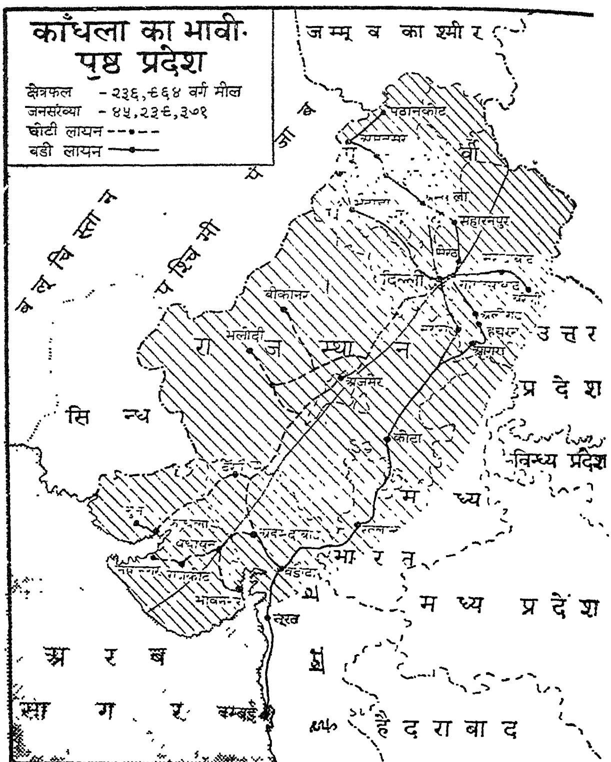
काठियावाड़ के बन्दरगाह—ओखा, बेदीबन्दर, पोरबन्दर और भावनगर इस प्रदेश के प्रमुख बन्दरगाह हैं। **बेदीबन्दर** नाव नगर का एक छोटा-सा बदरगाह है परन्तु इसके

द्वारा काफी तटीय व्यापार होता है। समुद्र छिछला है और इसलिये बड़े स्टीमर जहाजों को बन्दरगाह से २-३ मील दूर ठहरना पड़ता है। **ओखा** बड़ौदा राज्य में है और काठियावाड़ प्रायद्वीप के सुदूर उत्तरी पूर्वी सिरे पर इसकी स्थिति बड़ी ही अच्छी है। यद्यपि इस प्रदेश में समुद्र काफी गहरा है परन्तु बन्दरगाह तक पहुंचने का रास्ता बड़ा चक्करदार है। अतः जहाजों का चलाना बड़ा खतरनाक है। इसके अलावा यहां की जनसंख्या बहुत कम है और रेलों की कमी के कारण पृष्ठप्रदेश अविकसित है। यह बन्दरगाह साल भर बराबर खुला रहता है और कर की कमी के कारण बहुधा बंबई से स्पर्धा करता है। यहां से तिलहन व कपास निर्यात किया जाता है और सूती वस्त्र व्यवसाय की मशीनें, मोटर-गाड़ियां, चीनी व रासायनिक पदार्थ आयात किये जाते हैं।

इस समय काठियावाड़ कच्छ तट पर कोई भी प्रमुख बन्दरगाह नहीं है। करांची बन्दरगाह के पाकिस्तान में चले जाने से बंबई और करांची के बीच के १००० मील लम्बे तट पर कोई भी ऐसा बन्दरगाह नहीं है जो इस पृष्ठ प्रदेश के व्यापार को कर सके। इस लिये भारत सरकार ने **कांधला** नामक एक छोटे से बन्दरगाह का विकास करने की योजना बनाई है। वास्तव में सन् १९४६ में ही भारत सरकार की बन्दरगाह समिति ने बंबई और करांची के बीच एक बड़ा बन्दरगाह बनाने की आवश्यकता की ओर ध्यान दिलाया था। देश के विभाजन से यह आवश्यकता और भी प्रखर हो गई है क्योंकि करांची का बन्दर-गाह हाथ से निकल गया। अतः सन् १९४८ में पश्चिमी तट पोताश्रय विकास समिति ने यह सिफारिश की कि कांधला में एक बड़ा बन्दरगाह बनाया जाये। कांधला का वर्त्तमान बन्दरगाह कच्छ राज्य के लिये सन् १९३० में बनाया गया था। यहां पर केवल एक जेटी है जिसमें साधारण विस्तार का केवल एक जहाज ही खड़ा हो सकता है। एक संकरी रेल इस को कच्छ के अन्य भागों से संबंधित करती है। परन्तु इसमें विकास की पर्याप्त संभावनाएं हैं।

कांधला एक समुद्री कटान पर बसा हुआ है और कच्छ की खाड़ी के पूर्वी सिरे पर स्थित है। अतः इसमें जहाज आसानी से आ-जा सकते हैं। और इसका पोताश्रय सुरक्षित एवं प्राकृतिक है। इसमें पानी की गहराई भी ३० फीट से अधिक है। इसलिये बड़े-बड़े समुद्री जहाज बड़ी आसानी से आ-जा सकते हैं। कांधला की समुद्री कटान के प्रवेश-द्वार पर एक रुकावट है—एक बालू की दीवार-सी है। इसके ऊपर से गहरी शाखा १३ फीट गहरी है और साल के किसी भी दिन ज्वारभाटे की कम से कम ऊंचाई १७ फीट रहती है। पिछले बीस साल में इस प्रदेश को गहरा करने की कभी भी जरूरत नहीं पड़ी। और बन्दरगाह की भौगोलिक स्थिति भी बड़ी उपयुक्त है। इसके द्वारा कच्छ, सौराष्ट्र, बंबई के उत्तरी भाग, राजस्थान, पंजाब, काश्मीर और पश्चिमी उत्तर प्रदेश के भागों की उपज का निकास उसी प्रकार से हो सकता है जिस प्रकार करांची से हुआ करता था। करांची की अपेक्षा कांधला से दिल्ली व हिसार के प्रदेश बहुत पास हैं। दिल्ली से कांधला ६५६ मील दूर है जब कि करांची ७८३ मील और इस प्रकार हिसार से कांधला की दूरी

६८८ मील और करांची ७३३ मील है। इनके अलावा कच्छ प्रदेश में औद्योगिक व खनिज वस्तुओं के विकास की विशेष संभावनाएं हैं। यहां पर मछली पकड़ने, सीमेंट व शीशा बनाने तथा जिप्सम, लिगनाइट और बाक्साइट निकालने का उद्यम काफी उन्नति कर सकता है। परन्तु इस समय कांधला में दो असुविधाएं हैं—एक तो व्यापार की सुविधाओं की कमी और दूसरी रेल-मार्गों की अपर्याप्तता। अक्तूबर सन् १९५२ में कांधला को मुख्य भूखंड से मिलाने के लिये एक रेल मार्ग का उद्घाटन हुआ है। यह रेल मार्ग १७० मील लम्बा है और दस्सा नामक स्थान पर मुख्य रेलवे लाइन से मिल जाता है। इस मार्ग पर १५ बड़े बड़े पुल बनाये गये हैं। इनमें सब से बड़ा पुल बनास नदी पर दस्सा से कोई दो मील के फासले पर स्थित है। एक दूसरी समस्या यह है कि यहां पर कई जगह पानी लोहा गलाने वाला है। इसलिये भाप से चलने वाले इंजनों का इस मार्ग पर चलना कठिन है। इस मार्ग के लिये विदेश से डीजल इंजन से चलने वाले इंजन मंगाये गये हैं। इस समय भुज में एक हवाई अड्डा है। और भारत सरकार कांधला में एक दूसरा हवाई अड्डा बनाने की सोच रही है।



चित्र नं० ६९—क्षेत्रफल में यह पृष्ठ प्रदेश तीसरे नम्बर का होगा और कांधला के बन्दरगाह द्वारा कच्छ, सौराष्ट्र उत्तरी बम्बई, राजस्थान, पंजाब, काश्मीर और पश्चिमी उत्तर प्रदेश जैसे धनी व विस्तृत प्रदेश की वस्तुओं का निकास हो सकेगा।

सन १९४९से कांधला बन्दरगाह पर काम शुरू कर दिया गया है। परन्तु विकास के कार्य में सब से बड़ी रुकावट जल की कमी की है। कच्छ एक सूखा प्रदेश है और वार्षिक

वर्षा का औसत १२ इंच से अधिक नहीं है। इसलिये जल का प्रबंध होना बन्दरगाह के लिये बहुत जरूरी है। कांधला के आसपास वाले प्रदेशों में जमीन के नीचे जल की अपार जल-राशि है जिसे कुएं खोद कर काम में लाया जा सकता है। इसके अलावा एक जलाशय भी है जिसमें ४४८० लाख घन फीट पानी इकट्ठा किया जा सकता है परन्तु केवल उसी साल जब अच्छी जलवृष्टि हो। अतः थोड़े प्रयत्न से इस असुविधा को काबू में लाया जा सकता है। साथ-साथ इस बन्दरगाह में पूर्ण विकास होने पर कई विलक्षण सुविधाएं प्राप्त हो जायेंगी :—

(१) गहरे पानी में माल लादने-उतारने के चार स्थान

(२) चार भंडार-गृह

(३) बहाव में जहाजों के ठहरने के लिये ४ लंगर-स्थान

(४) बड़े बड़े टैन्कर जहाजों के ठहरने का एक स्थान

(५) छोटे छोटे जहाजों के लिये एक तैरता हुआ शुष्क डाक

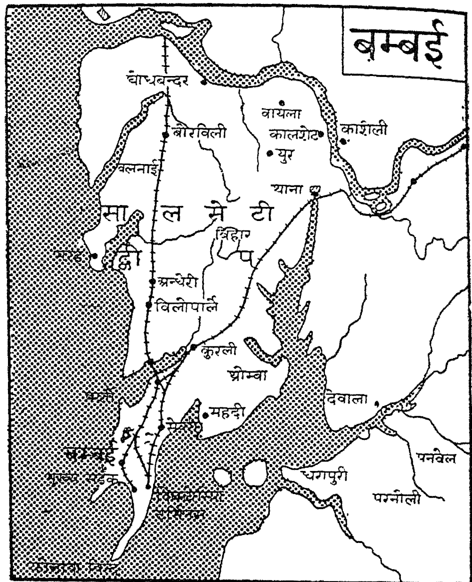
(६) यात्री जहाजों पर चढ़ने उतरने का तैरता हुआ स्थान

इन सुविधाओं की सहायता से इस बन्दरगाह से ८ लाख ५० हजार टन माल की उलट-फेर प्रतिवर्ष की जा सकेगी। इधर पानी की एक असुविधा भी बहुत कुछ दूर सी हो गई है। हाल में खोदे गये एक कुंएं से प्रति घंटा ३५,००० गैलन पानी निकलता है।

कांधला बन्दरगाह सन १९५६ में बनकर तैयार होगा। इसके बन जाने पर करांची की हानि की पूर्त्ति हो जायेगी। पूरा हो जाने पर इस बन्दरगाह पर ३० लाख टन माल प्रतिवर्ष लादा-उतारा जा सकेगा और यह मद्रास के बाद दूसरी श्रेणी का बन्दरगाह हो जायेगा। कांधला बन्दरगाह पर इस समय भी जहाज वगैरह आते जाते हैं। परन्तु सन १९५४ के अन्त तक इसमें और भी सुविधायें प्राप्त हो चायेंगी। तब यहां पर ८००,००० टन माल का हेर-फेर किया जा सकेगा।

बंबई—पश्चिमी घाट की तलहटी में बसा है। इसका पोताश्रय प्राकृतिक है और बिल्कुल समुद्र स्थित है। बंबई का पृष्ठ प्रदेश दक्षिण में हैदराबाद और पश्चिमी मद्रास से लेकर उत्तर में दिल्ली तक फैला हुआ है। इसके अन्तर्गत पश्चिमी उत्तर प्रदेश, पूर्वी राजस्थान, मध्य प्रदेश, मध्य भारत और बंबई राज्य सम्मिलित हैं। बंबई शहर देश में दूसरे नम्बर का नगर है और इसकी उन्नति व महत्व का सबसे बड़ा कारण यह है कि यह यूरोप का सबसे समीपस्थ प्राकृतिक बन्दरगाह है। पश्चिमी व मध्य रेलमार्गों द्वारा यह देश के सभी भीतरी भागों से घिरा हुआ है। भारत का सूती वस्त्र व्यवसाय बंबई में ही केंद्रित है। यद्यपि बंबई से २०० मील इर्द-गिर्द में न तो कोयला ही उपलब्ध है और न नाव्य जल-मार्गों की ही सुविधा है। फिर भी प्राकृतिक पोताश्रय होने के कारण बहुत अधिक व्यापार होता है। बंबई की दूसरी सुविधा यह है कि इसका बन्दरगाह साल भर बराबर खुला रहता है। पश्चिमी भारत की सभी मुख्य उपज और विशेषकर दक्षिण की कपास के लिये बंबई सबसे महत्वपूर्ण विकास द्वार है। यहां से तिलहन, ऊन व

ऊनी वस्त्र, चमड़ा व खालें, मैंगनीज तथा अनाज निर्यात किया जाता है। देश में आयात किये गये सूती कपड़े, मशीनें, रेल के कल-पुर्जे, लोहा व इस्पात की वस्तुएं, लोहे का सामान, चीनी, मिट्टी का तेल, रंग, कोयला और पेट्रोल आदि वस्तुएं इसी बन्दरगाह पर आकर उतरती हैं।



चित्र नं०७०—बम्बई एक द्वीपस्थित बन्दरगाह है और प्रधान भूखंड से पुल द्वारा आने-जाने वाले रेल मार्गों की सहायता से सम्बन्धित है। बम्बई द्वीप का रूप एक पंजे के समान है—पंजे के दो बिन्दु तो मलावार और कोलाबा बिन्दु कहलाते हैं और उनके बीच का रिक्त स्थान वैक की खाड़ी से घिरा है।

सन १९४७-४८ में बंबई **बन्दरगाह** पर ३६ लाख टन आयात सामग्री आई और १८ लाख टन माल निर्यात हुआ। देश के विभाजन के बाद से करांची बन्दरगाह के पाकिस्तान में चले जाने से बंबई बन्दरगाह का व्यापार बहुत अधिक हो गया है।

मरमागुआ—कोनकन तट पर स्थित है और भारत के पुर्तगाली प्रदेश में मरमागुआ प्रायद्वीप के पूर्वी किनारे पर बसा है। इसके पृष्ठ प्रदेश के अन्तर्गत बंबई का दक्षिणी भाग, हैदराबाद और मैसूर के क्षेत्र सम्मिलित हैं। यहां से निर्यात जाने वाली प्रमुख वस्तुएं मैंगनीज, मूंगफली, कपास, नारियल आदि हैं।

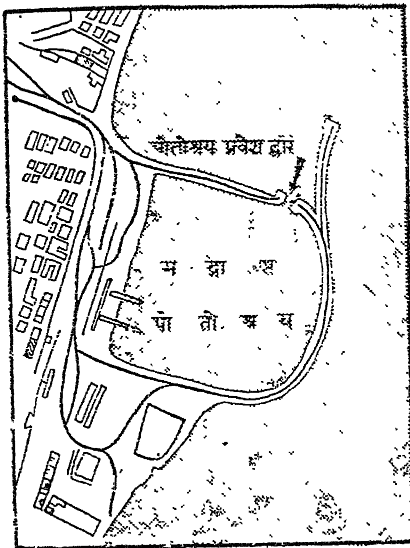
कालीकट—कोचीन के ९० मील उत्तर में स्थित यह बन्दरगाह साल के कुछ ही महीनों में काम आता है। मानसूनी वर्षाकाल के शुरू में इस बन्दरगाह में जहाजों का आना-जाना बन्द-सा रहता है। तटीय समुद्र छिछला होने के कारण बड़े-बड़े जहाजों के लिये बिल्कुल बेकार है। इसी कारण जहाजों को तट से ३ मील दूर लंगर डालना पड़ता है। नारियल की जटा व उसके रेशे, गरी, कहवा, चाय, अदरक, मूंगफली और मछली की खाद यहां से निर्यात की जाती है।

कोचीन—मद्रास राज्य में है और बंबई व कोलम्बो के बीच सब से महत्वपूर्ण बन्दरगाह है। इसकी स्थिति इतनी अच्छी है कि इसके द्वारा दक्षिणी भारत की सारी उपज का निकास हो सकता है। बंबई की अपेक्षा कोचीन अदन से ३०० मील पास पड़ता

है। इसके तट के पीछे के भाग में तटरेखा के समानान्तर जलाशय फैले हुए हैं। इनके द्वारा कोचीन व ट्रावनकोर राज्यों में जलमार्गों की सस्ती व्यवस्था होती है। नारियल की जटा, सूत, चटाई व आसन, गरी, नारियल का तेल, चाय और रबड़ यहां से निर्यात की जाती है। सन १९५२-५३ में कोचीन बन्दरगाह से आयात निर्यात व्यापार की मात्रा १६,१५,४६३ टन था। यह मात्रा सन १९५१-५२ की अपेक्षा ३२,०१५ टन कम थी। इस कमी का प्रधान कारण खाद्यान्नों के आयात में १५०,००० टन की कमी है। यदि हम कुल आयात में से खाद्यान्नों के आयात की मात्रा १२,२४,८५१ टन निकाल दें तो अन्य व्यावसायिक आयात में १,१०,००० टन की वृद्धि स्पष्ट हो जायेगी। इसी प्रकार कोयले और तेल को अलग कर लेने पर निर्यात में भी ८००० टन की वृद्धि मालूम पड़ती है।

भारत के पूर्वी तट के प्रमुख बन्दरगाह

तूतीकोरिन—मद्रास राज्य का एक महत्वपूर्ण बन्दरगाह है और भारत के प्रायद्वीप के दक्षिणपूर्वी भाग में सुदूर बिन्दु पर स्थित है। इसका पोताश्रय छिछला है और इसी कारण झामों द्वारा इसे बराबर गहरा करना पड़ता है। यहां से कपास, चाय, सनाय की पत्तियां, इलाइची आदि वस्तुएं बाहर भेजी जाती हैं। इस बंदरगाह द्वारा लंका से काफी व्यापार होता है। सन १९३८ में यहां से होने वाले विदेशी व्यापार का कुल मूल्य १० करोड़ रुपये था जिसमें से केवल ५ करोड़ ५ लाख रुपये का तो निर्यात व्यापार ही था।



चित्र नं० ७१—मद्रास का पोताश्रय कृत्रिम है। अतः अक्टूबर नवम्बर में चक्रवात (Cyclones) प्रचंडता के कारण जहाजों के आने जाने में बड़ी असुविधा रहती है।

मद्रास—देश का तीसरे नम्बर का शहर है और मद्रास राज्य का सबसे प्रमुख बन्दरगाह है। बंबई, ट्यूटीकोरिन, कालीकट व कलकत्ता से यह कई रेलमार्गों द्वारा जुड़ा हुआ है। यद्यपि मद्रास में कई प्रकार के उद्योग-धंधे हैं परन्तु व्यापार के दृष्टिकोण से कलकत्ता या बंबई के साथ इसकी कोई समता नहीं है। इसके पृष्ठ प्रदेश में संपूर्ण पूर्वी प्रायद्वीप का भाग सम्मिलित है परन्तु इस भाग में यूरोपियन देशों में मांग वाली वस्तुएं अधिक नहीं होतीं। फिर कोरोमंडल व मालाबार तट पर स्थित बहुत से छोटे-छोटे बन्दरगाह मद्रास के साथ स्पर्धा करते हैं। इसीलिये मद्रास से भारत का केवल ५

प्रतिशत व्यापार होता है। इसका पोताश्रय कृत्रिम है और इस कृत्रिम पोताश्रय के बनने से पहले मद्रास के तट पर लहरें टक्कर लेती थीं। यहां पर सूती कपड़े, लोहा व इस्पात, मशीनें, रंग, चीनी, चमड़े का सामान व कागज आदि वस्तुएं आयात की जाती हैं। यहां से निर्यात की जाने वाली मुख्य वस्तुएं तिलहन, कपास, कहवा, तम्बाकू, रबड़ व मछलियां हैं। यह एक औद्योगिक केंद्र भी है परन्तु कोयले की कमी के कारण यहां विशेष असुविधा रहती है।

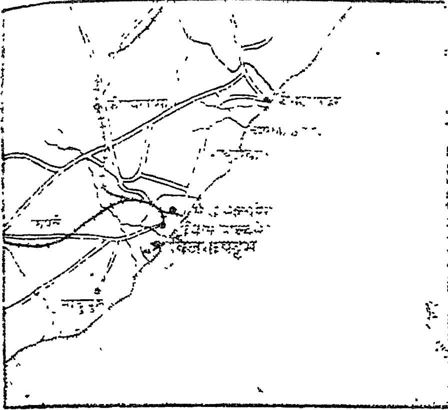
भारत के पूर्वी किनारे पर केवल मद्रास ही एक ऐसा बन्दरगाह है जिसमें २६ फीट की दूरी तक जहाज आ जा सकते हैं। इस बन्दरगाह को तैयार करने में ३००० फीट की गहराई पर नींव डालकर दीवारें बनाई गई हैं। जिन से २०० एकड़ जल प्रदेश को घेर लिया गया है। जब सन् १८९५ में यह पोताश्रय बन कर तैयार हुआ तो इसमें प्रवेश का केवल एक द्वार पूर्व की ओर था। इस प्रवेश द्वार से साल भर बराबर लहरें आती रहती थीं जिनके द्वारा माल के लादने उतारने में बड़ी असुविधा होती थी। अत: सन् १९११ में इसके पोताश्रय को फिर से ठीक किया गया। इसके पुराने प्रवेश द्वार को बन्द कर दिया गया और जहाजों के आने जाने के वास्ते एक दूसरा मार्ग उत्तर की ओर खोल दिया गया तथा सुरक्षा के लिए एक दीवार सी भी बना दी गई। इससे पोताश्रय में हर समय होने वाली असुविधा कम हो गई। अब केवल भारी आंधियों में ही खतरा रहता है।

साधारणतया अक्टूबर-नवम्बर के महीने में बंगाल की खाड़ी में चक्रवात (Cyclones) उठते हैं और उनके प्रभाव से ११ फीट तक ऊंची लहरें उठने लगती हैं। गहरे समुद्र की लहरें किनारे तक पहुंचती-पहुंचती पानी में और हिलोरें पैदा कर देती हैं। ये हिलोरें पोताश्रय के समीप एक पानी की दीवार सी खड़ी कर देती हैं और जहाजों को आगे-पीछे इतना हिलाती हैं कि बहुधा मजबूत-से-मजबूत रस्सियां भी टूट जाती हैं। इस प्रकार लंगर डाला हुआ एक जहाज भी रस्सी के टूट जाने पर अन्य जहाजों से टकराकर भारी हानि कर सकता है। इसलिये ऐसे मौसम में जहाजों को पोताश्रय छोड़ देने का आदेश दे दिया जाता है। इस प्रकार पूर्वी किनारे पर साल भर बराबर खुला रहने वाले बन्दरगाह एक आवश्यकता है।

सन् १९५०-५१ में इस बन्दरगाह से २२४.५७ करोड़ रुपये का व्यापार हुआ जिसमें से निर्यात का मूल्य १२६.३६ करोड़ रुपया था।

विजगापट्टम—पिछले कुछ दिनों से इस बन्दरगाह का महत्व बहुत अधिक बढ़ गया है। तटीय व्यापार में लगे हुए सभी जहाज यहां रुकते जाते हैं। कोरोमंडल तट पर मद्रास और कलकत्ता के लगभग बीच में यह बसा हुआ है। यह कलकत्ते से ५०० मील दक्षिण में है और मद्रास से ३२३ मील उत्तर में। मैंगनीज़, मूंगफली, मेराबोलन, चमड़ा व खालें यहां से निर्यात की जाने वाली मुख्य वस्तुएं हैं। सूती कपड़े, लोहा, लकड़ी और मशीनें यहां पर आयात की जाती हैं। औसत यहां पर से प्रतिदिन २५०० टन माल निर्यात किया जाता है और

लगभग ८०० टन माल यहां से देश में आयात किया जाता है।



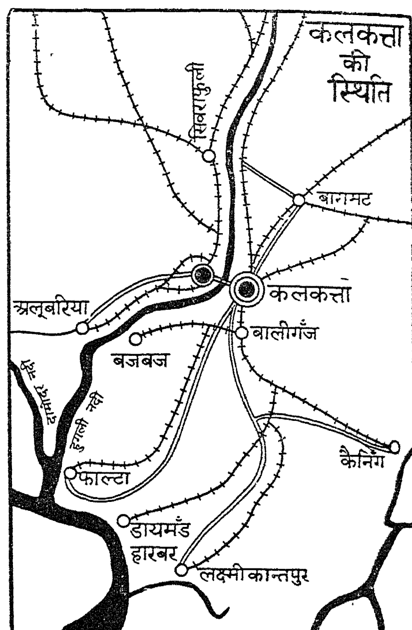
चित्र नं० ७२—विजगापट्टम का बन्दरगाह व पोताश्रय

उड़ीसा और मध्य प्रदेश के पूर्वी भाग की उपज के विकास के लिये कलकत्ते की अपेक्षा विजगापट्टम से कम समय लगता है और खर्चा भी कम बैठना है। इस बन्दरगाह के खुल जाने से कलकत्ते के व्यापार पर असर पड़ा है। हाल में यहां एक पोत-निर्माण क्षेत्र भी खुल गया है। पूर्वी रेल मार्ग द्वारा यह बन्दरगाह मध्यप्रदेश में रायपुर से मिला हुआ है। इससे मध्य प्रदेश की मंडियों और बन्दरगाह के बीच की दूरी और भी कम हो गई है।

कलकत्ता—भारत का सबसे बड़ा नगर है और बंगाल की खाड़ी से कोई ८० मील दूर हुगली नदी के बायें किनारे पर बसा है। प्रधानतः यह गंगा के मैदान की व्यापारिक मंडी है परन्तु स्वेज़ से पूर्व के प्रदेश में यही सबसे बड़ा व्यापार केंद्र है। इसके पृष्ठ प्रदेश के अन्तर्गत आसाम, बंगाल, बिहार, उत्तर प्रदेश, पूर्वी पंजाब के कुछ भाग, उड़ीसा व मध्य प्रदेश सम्मिलित हैं। और इन सभी भागों से कलकत्ता रेलों व सड़कों द्वारा मिला हुआ है। इन सभी प्रदेशों में वे वस्तुएं खूब होती हैं जिनकी विदेशी मंडियों में मांग रहती है। इसके अलावा गंगा व ब्रह्मपुत्र नदियों द्वारा बड़े अच्छे जलमार्गों की व्यवस्था है। इनके द्वारा खेतिहर उपज कलकत्ते में आती है और उद्योग-धंधों से निर्मित वस्तुओं के बदले में दी जाती है। वास्तव में कलकत्ते का व्यापार बहुत कुछ उसके आसपास के जलमार्गों पर निर्भर रहता है। देश के विभाजन के पहले कलकत्ते में पहुंचने वाले माल का एक चौथाई भाग जलमार्गों द्वारा आता था और जलमार्गों द्वारा लाए हुए माल का एक तिहाई भाग अकेले आसाम से आता था। इसी प्रकार कलकत्ते के अन्दर भेजे जाने वाले माल का एक तिहाई भाग नाव्य जल-मार्गों द्वारा जाता था और इसका तीन चौथाई हिस्सा अकेले आसाम को जाता था।

कलकत्ते का बन्दरगाह हुगली के किनारे-किनारे ५ मील तक फैला हुआ है परन्तु एक बड़ी असुविधा है कि नदी में मिट्टी भर जाती है। दूसरी बात यह है कि अक्सर हुगली में ज्वारभाटे के कारण पानी की दीवार खड़ी हो जाती है। इन असुविधाओं के होते हुए भी दूसरे महायुद्ध काल में कलकत्ता संसार का सबसे जल्दी माल लादने उतारने वाला बन्दरगाह था। इस समय बन्दरगाह व पोताश्रय को और भी सुविधाजनक बनाने का प्रयत्न हो रहा है। डायमंड हारबर और खिदिरपुर के बीच एक ३०

मील लम्बी जहाजी नहर बनाने की योजना पर विचार किया जा रहा है। वास्तव में इस समय कलकत्ते का कोई गहरा पोताश्रय नहीं है। इसलिये ९००० टन से अधिक भार वाले जहाजों को खिदिरपुर से ४० मील दूर डायमंड हारबर पर रुक जाना होता है। पोताश्रय की सुविधाओं को बढ़ाने के लिये कलकत्ते और डायमंड हारबर के बीच एक जहाजी नहर बनाने की योजना पर सन् १९४५ से सोच-विचार किया जा रहा है। परन्तु इसमें असुविधायें व रुकावटें हैं :—



चित्र नं० ७३—कलकत्ता व उसके आसपास का प्रदेश।

(१) इस योजना में बहुत अधिक व्यय होगा और इसके अलावा इसके मार्ग में पड़ने वाले सैकड़ों गांवों को नष्ट कर दिया जावेगा। इससे किसानों को बड़ी कठिनाई होगी और बहुत से धान के खेत नष्ट-भ्रष्ट हो जायेंगे।

(२) दूसरी समस्या हुगली नदी की है। अगर नहर बना दी जाती है तो हुगली नदी पर कोई ध्यान नहीं देगा। इस समय नादिया व पश्चिमी बंगाल की सभी नदियों का पानी हुगली द्वारा ही समुद्र में जाता है। और यदि हुगली में जल-राशि की ओर ध्यान न दिया गया तो वर्षाकाल में बाढ़ें आवेंगी और संपूर्ण प्रदेश पानी से आच्छादित होकर अनुपजाऊ हो जावेगा।

इसलिये बजाय जहाजी नहर बनाने के हुगली में ही गंगा का और अधिक ताजा पानी देकर उसकी नाव्यता को बढ़ाना अधिक लाभप्रद है। भारत सरकार ने गंगा बैरेज योजना पर काम शुरू कर दिया है और काम पूरा होने पर हुगली नदी में बड़े-बड़े जहाज आ-जा सकेंगे। उस समय कलकत्ता बन्दरगाह और अधिक उन्नति कर जावेगा।

कलकत्ता व उसके आसपास के प्रदेश में भारत के सबसे अधिक उद्योग-धंधे केन्द्रित हैं। यहां की पटसन, कागज, सूती कपड़ा व चीनी की मिलों में तथा इंजीनियरिंग फैक्टरी में रानीगंज व झरिया का कोयला प्रयोग किया जाता है। कलकत्ता संसार का सबसे बड़ा पटसन व्यवसाय केंद्र है। यहां के अन्य महत्वपूर्ण उद्योग-धंधे चावल की मिलें, सूती कपड़े की मिलें, चमड़ा साफ करने के कारखाने, सुगंधित वस्तु बनाने के कारखाने, लोहा व इस्पात उद्योग तथा दियासलाई बनाने के कारखाने हैं।

यहां से निर्यात की प्रमुख वस्तुएं पटसन, चाय, अभ्रक, कोयला, लोहा, मैंगनीज

और चमड़ा हैं। लोहे व इस्पात की वस्तुएं, चीनी, पेट्रोल, मोटरगाड़ियों, कागज, रासायनिक पदार्थों, शराब, नमक, रबड़ और सायकिलों का आयात इसी बंदरगाह द्वारा होता है। सन् १९४७-४८ में आयात की कुल मात्रा ७५ लाख टन थी और निर्यात की मात्रा ४५ लाख टन थी। सन् १९५०-५१ में कलकत्ता बन्दरगाह द्वारा ४०० करोड़ रुपये का व्यापार हुआ जिसमें निर्यात का कुल मूल्य २६३.८६ करोड़ रुपया था।

सन् १९४१ में कलकत्ते की कुल आबादी ३० लाख थी परन्तु देश के विभाजन के बाद से पूर्वी पाकिस्तान से बहुत अधिक लोग आ गये हैं। दूसरे महायुद्ध काल में भी यहां का कारबार बढ़ने से जनसंख्या बढ़ गई। फलतः अब कलकत्ते की आबादी काफी बढ़ गई है। लगभग ३६ लाख हो गई है।

व्यापारिक केन्द्र

भारत में ६ विभिन्न प्रकार के नगरों में व्यापारिक केंद्र स्थापित हो गये हैं—धार्मिक नगरों में, प्राचीन राजधानियों में, बन्दरगाहों, स्वास्थ्यवर्धक केंद्रों में, औद्योगिक नगरों व वर्तमान शासन केंद्रों में।

भारत में धार्मिक नगरों की तो भरमार है। बनारस, पुरी, इलाहाबाद, मथुरा आदि स्थान प्रमुख व्यापारिक केंद्र बन गये हैं सिर्फ इसलिये कि वहां देश के हर कोने से तीर्थ के लिये यात्री आते हैं। नागपुर, पूना, मुर्शिदाबाद जैसी प्राचीन राजधानियां अभी तक व्यापार का केंद्र बनी हुई हैं। प्रायः पहाड़ों पर या समुद्र के किनारे बहुत से **स्वास्थ्य-वर्धक केन्द्र** पाये जाते हैं जिनमें मैदानी भागों से लोग घूमने फिरने के लिये जाते हैं। भारत का सबसे अधिक व्यापार **बन्दरगाहों** व **औद्योगिक केन्द्रों** में पाया जाता है क्योंकि इन स्थानों में रेल व जहाजों द्वारा यातायात की सुविधा रहती है। इसी प्रकार शासन-प्रबंध की सुविधाओं के कारण भारत के बहुत से नगर व जिले, डिविजन व प्रांत के शासन केंद्र होने की वजह से काफी उन्नति कर गये हैं।

भारत के आंतरिक व्यापार की मंडियां प्रायः उत्तर में गंगा के मैदान में पायी जाती हैं। गंगा व ब्रह्मपुत्र के किनारे पर ही इस प्रदेश के प्रमुख औद्योगिक नगर स्थित हैं। इसके अलावा इस मैदान में रेलों व सड़कों का एक जाल-सा बिछा हुआ है और रेलों के मिलन-बिन्दु पर भी नगर पाये जाते हैं।

उत्तर प्रदेश का क्षेत्रफल १,१०,००० वर्ग मील और जनसंख्या ५,५०,००,००० है। भारत के इस राज्य ने कृषि, उद्योग-धन्धे और सड़क यातायात में काफी उन्नति की है। यहां की मुख्य खेतिहर फसलें गेहूं, गन्ना, सरसों, चावल और दालें हैं। परन्तु खनिज संपत्ति के दृष्टिकोण से यह प्रदेश कोई विशेष धनी नहीं है। हाल में भारत सरकार ने डंग कोयला क्षेत्र को बढ़ाने के लिए नेपाल सरकार से एक समझौता किया है। मिरज़ापुर जिले में सोन नदी के दक्षिणी किनारे पर एक सीमेंट का कारखाना बनाया जा रहा है। शक्ति उत्पादक अल्कोहल के लिए उत्तर प्रदेश विशेष रूप से उल्लेखनीय है। यहां इस समय अल्कोहल बनाने के ९ कारखाने हैं जिनसे प्रतिवर्ष ९५ लाख गेलन अल्कोहल तैयार किया जाता है। कृत्रिम रेशम बनाने के दो कारखाने—एक इलाहाबाद के समीप और

दूसरा देहरादून में—भी स्थापित किए जा रहे हैं। राज्य में देश की सबसे अधिक चीनी की मिलें पायी जाती हैं। इनके अलावा यहां पर कुछ सूती कपड़े की मिलें व कागज तथा शीशे के कारखाने भी पाए जाते हैं। उत्तर प्रदेश के प्रमुख व्यापारिक केन्द्र इलाहाबाद, बनारस, कानपुर, गोरखपुर, लखनऊ, मिरजापुर, मुरादाबाद, अलीगढ़ और आगरा हैं।

इलाहाबाद—उत्तर प्रदेश का प्रमुख रेल-केन्द्र है और कलकत्ता से ५६४ मील दूर है। यह गंगा और यमुना के संगम पर बसा है। इस नगर में तेल निकालने व आटा पीसने की कई मिलें हैं तथा शीशा बनाने के कारखाने भी हैं। रेलों, जल-मार्गों व सड़कों से याता-यात की बड़ी सुविधा रहती है और इसीलिए आसपास के जिलों से ज्वार, बाजरा, अलसी, तम्बाकू इत्यादि वस्तुएं निर्यात के वास्ते इलाहाबाद में इकट्ठी की जाती हैं।

बनारस—गंगा के किनारे पर बसा है और भारत का एक बड़ा नगर है। हिन्दुओं का तीर्थ-स्थान होने से यहां यात्री काफी आते हैं। यह एक प्रमुख औद्योगिक व व्यापारिक केन्द्र भी है और लकड़ी के खिलौने, जर्दा तम्बाकू, लाख की चूड़ियां, हाथी दांत की वस्तुएं, रेशमी कपड़े, कम्बल की चादरें, अलसी, सरसों, चीनी और चना यहां के व्यापार की मुख्य वस्तुएं हैं। यहां तेल निकालने व रेशमी वस्त्र बनाने के कई कारखाने हैं। पीतल के काम के लिए भी बनारस बहुत प्रसिद्ध है। शहर से तीन मील की दूरी पर प्रसिद्ध विश्व-विद्यालय है। यह प्राचीन संस्कृत शिक्षा का केन्द्र भी है।

कानपुर—उत्तरी भारत की प्रमुख मंडी है। यहां विभिन्न वस्तुएं एकत्रित की जाती हैं और फिर आसपास के भागों में वितरण कर दी जाती हैं। पूर्वी, पश्चिमी और उत्तरी-पूर्वी रेल-मार्गों का यह प्रमुख केन्द्र भी है। उत्तर प्रदेश के अधिकतर उद्योग-धन्धे यहां स्थापित हैं। यहां के दो सबसे प्रमुख उद्योग कपास को दबाना और बिनौले साफ करना है। इनके अलावा यहां पर चीनी व आटा की मिलें, लोहे गलाने की भट्टियां, रासाय-निक वस्तुएं, सूती कपड़े और तेल के कारखाने भी पाए जाते हैं। इस नगर की आबादी २,५०,००० से अधिक है।

गोरखपुर—ताप्ती नदी के बायें किनारे पर बसा है और यहां का मुख्य उद्योग बढ़इगिरी है। नेपाल की सीमा से लकड़ी यहां लाई जाती है। नगर में चीनी बनाने के भी बहुत से कारखाने हैं।

लखनऊ—उत्तर प्रदेश की राजधानी और एक प्राचीन नगर है। अवध प्रदेश की बहुमूल्य खेतिहर उपज के वितरण का केन्द्र है और इसका महत्व दिन पर दिन बढ़ता जा रहा है। यहां पर लोहे गलाने की कई भट्टियां हैं और रेलों की मरम्मत के कारखाने हैं। यहां पर व्यापार की मुख्य वस्तुएं चांदी-सोने का काम, हाथीदांत व लकड़ी पर नक्काशी का काम, मिट्टी के बर्तन व इत्रादि हैं। यहां पर जरी व चिकन का काम बहुत प्रसिद्ध है।

मिर्जापुर—उत्तर प्रदेश का प्रमुख औद्योगिक नगर है और गंगा के किनारे एक उपजाऊ प्रदेश के बीच में बसा है। यहां की प्रमुख वस्तुएं दरियां व गलीचे, कालीन और रेशमी कपड़े हैं। यहां के पत्थर का काम भी बहुत प्रसिद्ध है।

मुरादाबाद—का नगर पीतल व कलई के बर्त्तनों के लिए बहुत प्रसिद्ध है। इसकी आबादी १ लाख १० हजार है।

आगरा—जमुना नदी के किनारे बसा है। और प्राचीन मुगल बादशाहों की राजधानी रहा है। यहां की दस्तकारी व उद्योग-धन्धे काफी महत्वपूर्ण हैं। दरियां, जूते, पीतल के बर्त्तन, मुंह देखने के शीशों के फ्रेम और संगमरमर यहां की प्रसिद्ध वस्तुएं हैं। यह रेलों का प्रमुख केन्द्र और राजस्थान के लिए एकत्रीकरण व वितरण की मंडी है। शहर से एक मील की दूरी पर प्रसिद्ध ताजमहल स्थित है।

अलीगढ़—के ताले व चाकू तथा अन्य पीतल की वस्तुएं बहुत प्रसिद्ध हैं। यहां की चूड़ियां, शीशे के बर्त्तन व मक्खन अन्य व्यापारिक महत्व की वस्तुएं हैं। भारत में इस्लामी सभ्यता का यही केन्द्र है और अलीगढ़ विश्वविद्यालय बड़ा प्रसिद्ध है।

पूर्वी पंजाब—का क्षेत्रफल ४८,००० वर्गमील है और यहां की आबादी १ करोड़ ३० लाख है। कुल आबादी का पंचमांश पश्चिमी पाकिस्तान से आए हुए शरणार्थी लोग हैं। देश के विभाजन से इस देश को विशेष हानि पहुंची है क्योंकि जनसंख्या के आधार पर इसे नहरों द्वारा सिंचित भूमि का उचित भाग नहीं मिला है। राज्य के सामने शरणार्थियों को फिर से बसाने का प्रश्न सबसे बड़ी समस्या है। यहां के प्रमुख व्यापारिक केन्द्र अमृतसर, लुधियाना, जलन्धर और शिमला हैं।

अमृतसर—उत्तरी रेलमार्ग पर बसा है और कलकत्ता से ११४३ मील दूर है। यहां के कालीन व शाल-दुशाले बहुत प्रसिद्ध हैं। यहां के अन्य प्रमुख व्यवसाय सूती वस्त्र बनाना, एसिड व रासायनिक पदार्थों का निर्माण, मोजा बनियान बुनना तथा चमड़े का काम है।

लुधियाना—मोजा, बनियान, स्वेटर, मफलर आदि बनाने के व्यवसाय का केन्द्र है। भारतीय सेना के लिए साफे यहीं पर तैयार किये जाते हैं।

शिमला—भारत सरकार की ग्रीष्मकालीन राजधानी थी। तिब्बत व चीन के साथ पुनर्निर्यात व्यापार का केन्द्र शिमला ही है। और मार्च से अक्टूबर तक का मौसम व्यापारिक दृष्टिकोण से बड़ा महत्वपूर्ण होता है।

मध्य प्रदेश—का क्षेत्रफल १ लाख ३० हजार वर्गमील है और आबादी १ करोड़ ७० लाख है। खनिज संपत्ति के दृष्टिकोण से यह भारत के धनी राज्यों में से है। यहां कोयला, बाक्साइट, लोहा, मैंगनीज़, तांबा, चूने का पत्थर आदि खनिज पदार्थों का अपार व विस्तृत भंडार है। परन्तु अभी तक इन खनिज पदार्थों का कोई विशेष उपयोग नहीं हो पाया है। नागपुर, अकोला, योटमल, कटनी, बार्धा, जबलपुर और अमरावती यहां की प्रमुख मंडियां हैं।

अकोला और अमरावती—कपास के व्यापार के केन्द्र हैं। **जबलपुर** में सीमेंट, शीशा, चूने और मिट्टी के बर्त्तनों का व्यवसाय केन्द्रित है। यहां पर बन्दूक बनाने का भी कारखाना है। इनके अलावा सूती वस्त्र बनाने, तांबा व पीतल के बर्त्तनों का धन्धा भी काफी महत्वपूर्ण है। **कटनी** में बर्त्तन बनाने, पत्थर और अनाज के व्यवसाय का केन्द्र है।

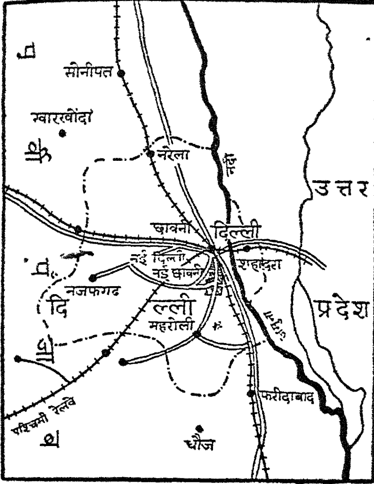
नागपुर मध्य प्रदेश की राजधानी है। और प्रमुख व्यापारिक नगर है। यह मध्य व पूर्वी रेलमार्गों के मिलन-विन्दु पर बसा है और यहां का सूती वस्त्र व्यवसाय बहुत प्रसिद्ध है।

योटमल और वार्धा—कपास के व्यापार के केन्द्र हैं और यहां पर रुई साफ करने के कई कारखाने पाये जाते हैं।

पश्चिमी बंगाल—बहुत घना बसा हुआ राज्य है। इसका क्षेत्रफल २८,००० वर्गमील है और इसकी कुल आवादी २ करोड़ १० लाख से अधिक है। छोटा होने पर भी यह वड़ा ही विकसित प्रदेश है। यहां के उद्योग-धन्धे, बिजली की व्यवस्था और यातायात के साधन वड़े ही उन्नत हैं। फिर भी इस प्रदेश की आर्थिक दशा बड़ी ही शोचनीय है और इसकी मुख्य समस्या आर्थिक निर्वाह की है। यह प्रदेश खाद्यान्नों की मांगपूर्ति के दृष्टिकोण से कमी का क्षेत्र है। यहां की वार्षिक मांग ४० लाख टन अनाज की है परन्तु यहां के कुल उपज की मात्रा ३५ लाख टन है। कच्चे पटसन की मांगपूर्ति के लिए इसे पूर्वी पाकिस्तान पर निर्भर रहना पड़ता है। इस समय पश्चिमी बंगाल की २१० लाख एकड़ भूमि पर खेती होती है। सन् १९५३ तक दामोदर घाटी योजना पर काम पूरा हो जाने पर करीब १३ लाख एकड़ भूमि पर खेती हो सकेगी। यहां के क्षेत्रफल के १४ प्रतिशत भाग में ही जंगल पाये जाते हैं। औद्योगिक दृष्टिकोण से बम्बई के बाद इसी प्रदेश का स्थान आता है। देश की सभी जूट मिलें यहीं पायी जाती हैं और बहुत से शीशा बनाने व रासायनिक उद्योग के कारखाने भी हैं। कलकत्ता, श्रीरामपुर, बरहामपुर और बर्दवान यहां के मुख्य व्यापारिक केन्द्र हैं। कलकत्ते के समीप स्थित श्रीरामपुर और **सल्किया** अच्छे औद्योगिक केन्द्र हैं। इन दोनों ही नगरों में सूती कपड़े की बहुत सी मिलें हैं। हुगली नदी पर **बाटानगर** एक नवीन औद्योगिक केन्द्र है और जूते बनाने के व्यवसाय का केन्द्र है।

बम्बई राज्य—का क्षेत्रफल एक लाख ५२ हजार वर्गमील है और इसमें २ करोड़ ४० लाख से अधिक जनसंख्या निवास करती है। इस राज्य में प्राकृतिक साधनों का पूरा विकास किया गया है परन्तु भोजन के दृष्टिकोण से इस प्रदेश में कमी रहती है। यहां का सूती वस्त्र व्यवसाय राष्ट्रीय महत्व का है। परन्तु यहां की अधिकतर सूती कपड़ा मिलें दो या तीन केन्द्रों में ही एकत्रित हैं। इस स्थानीकरण के कारण सूती वस्त्र उद्योग के लिए कई सामाजिक व आर्थिक समस्यायें उठ खड़ी हुई हैं। इस राज्य के मुख्य व्यापारिक केन्द्र बम्बई, अहमदाबाद, बेलगांव, बड़ौच, नासिक, पूना और सूरत हैं। **अहमदाबाद**—साबरमती नदी के बायें किनारे पर बसा हुआ है और कैम्बे की खाड़ी से ५० मील दूर है। भारत के सूती वस्त्र व्यवसाय केन्द्रों में इसका दूसरा स्थान है। यहां पर सूती कपड़े की करीब ८० मिलें हैं। **बेलगांव**—सूती व रेशमी कपड़े के व्यवसाय का केन्द्र है। **बड़ौच**—तटीय व्यापार का मुख्य केन्द्र है और पश्चिमी भारत का सबसे पुराना बन्दरगाह है। **नासिक**—के पीतल व तांबे के बर्तन बहुत विख्यात हैं। **सूरत**—एक समय प्रमुख बन्दरगाह था परन्तु इस समय सोने व चांदी की ज़री के काम के लिए प्रसिद्ध है। यहां पर सूती कपड़े की भी कुछ मिलें हैं।

मद्रास राज्य—का क्षेत्रफल १ लाख ४२ हजार ९२७ वर्गमील है। यहां के मुख्य व्यापारिक केन्द्र बन्दरगाह हैं। **मदुरा** और **त्रिचनापली** भीतर की ओर स्थित दो व्यापारिक केन्द्र हैं। मदुरा में कपड़ा बुनने की कई मिलें हैं। तांबे व पीतल के बर्त्तन भी बनाये जाते हैं। **त्रिचनापली** में सिगार बनाने के कई कारखाने हैं।



चित्र नं० ७४—दिल्ली के आसपास का क्षेत्र और यातायात की सुविधायें

दिल्ली राज्य—में स्थित **दिल्ली** नगर कई रेलमार्गों के मिलन स्थान पर बसा हुआ है। यह दिल्ली राज्य व भारत सरकार की राजधानी व शासन-केन्द्र है। पश्चिमी उत्तर प्रदेश और पूर्वी पंजाब के सूती, रेशमी व ऊनी कपड़े की मंडी है। यहां पर सूत कातने व उसमें कपड़ा बुनने की कई मिलें हैं। हाथी दांत पर नक्काशी करना, हीरे जवाहरात के जड़ाऊ गहने बनाना, फीते व बेल बनाना तथा सोने की ज़री का काम करना यहां के अन्य महत्वपूर्ण व्यवसाय हैं।

आसाम भारत का सबसे पूर्वी राज्य है। इसकी सीमा पर दो भिन्न राज्य स्थित हैं—चीन व बर्मा और पाकिस्तान। अतः इसका सैनिक महत्व बहुत अधिक है। इसके दो तिहाई क्षेत्रफल में यहां के आदि निवासी रहते हैं और उन पहाड़ी व जंगली जातियों की कुल संख्या यहां की आबादी का एक तिहाई है। इसका क्षेत्रफल ५५,००० वर्गमील है और इसकी कुल आबादी १ करोड़ है। इस प्रदेश में प्राकृतिक सम्पत्ति का अपार भंडार है और उनका विकास होने पर कई उद्योग-धंधों की उन्नति की जा सकती है। इसकी ४० प्रतिशत भूमि पर जंगल पाये जाते हैं और बहुत-सी खेती योग्य भूमि बिल्कुल अछूती पड़ी है। यहां पर खनिज पदार्थ भी खूब निहित हैं। देश का कुल खनिज तेल यहीं से प्राप्त होता है और केवल यही एक बात इसके महत्व के लिए काफी है। खोज करने पर यहां और भी खनिज तेल क्षेत्रों का पता लगाया जा सकता है। यहां की निहित खनिज सम्पत्ति को तो अभी छुआ तक नहीं गया है। यहां पर चूने का पत्थर, शीशा तैयार करने की बालू, इलमेनाइट, रगड़ने के पत्थर और सफेद मिट्टी भी पायी जाती है। जल विद्युत उत्पादन के भी सम्यक साधन उपस्थित हैं।

खेती का धंधा ब्रह्मपुत्र की घाटी में ही सीमित है और यहां की प्रमुख उपज चावल व चाय है। कागज के लिये काष्ठमांड भी तैयार किया जाता है। **शीलांग** और **गोहाटी** यहां के प्रमुख व्यापारिक केन्द्र हैं। शीलांग आसाम की राजधानी है और समुद्र तल से ४००० फीट की ऊंचाई पर खासी पहाड़ियों पर बसा हुआ है। यहां की आबादी ३०,००० से अधिक है और फल व अन्य पहाड़ी पदार्थों का व्यापार होता है। **गोहाटी** ब्रह्मपुत्र के बायें किनारे

पर बसा है और आसाम का सबसे प्रमुख नगर व बन्दरगाह है। इसकी आबादी ३५,००० से अधिक है और व्यापारिक केन्द्र, बन्दरगाह व रेलों का मिलन बिन्दु होने के नाते इसका महत्व बहुत अधिक है। रेशम, चाय और लकड़ी यहां के व्यापार की मुख्य वस्तुएं हैं।

उड़ीसा का क्षेत्रफल ३२ हजार वर्ग मील और आबादी ८० लाख है। प्राकृतिक साधनों की बहुलता होते हुए भी उनका उपभोग बहुत कम है और इसीलिए औद्योगिक विकास में यह राज्य बहुत पिछड़ा हुआ है। इस प्रदेश की अवनति के कारणों में निम्नलिखित विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं—(१) उच्च मरण संख्या (२) अनपढ़ता की अधिकता (३) खेती के धंधे में केवल चावल की फसल पर निर्भरता (४) बाढ़ों की अधिकता (५) औद्योगीकरण की कमी और (६) यातायात के साधनों की अपर्याप्तता परन्तु राज्य में वन, खनिज व जल सम्बन्धी अपार सम्पत्ति है।

यहां के एक चौथाई निवासी आदिवासी हैं। कटक, सम्बलपुर, पुरी और बालासोर यहां के प्रमुख व्यापारिक केन्द्र हैं। **कटक** उड़ीसा का शासन केन्द्र है और यहां की आबादी ७०,००० है। लाख की चूड़ियां, जूते, खिलौने, कंघे बनाना यहां का स्थानीय उद्योग है। मध्यप्रदेश या अन्य आसपास के क्षेत्रों से लकड़ी इकट्ठा करके पूर्वी रेल मार्ग द्वारा कलकत्ता भेजी जाती है। यह पूर्वी रेल मार्ग की मुख्य शाखा पर बसा है और उड़ीसा तटीय नहर द्वारा चांदबली से भी मिला हुआ है। कलकत्ता यहां से २५३ मील दूर है। **पुरी** हिन्दुओं का तीर्थ-स्थान है और खुला तटीय बन्दर है। चूंकि किनारे पर समुद्र का पानी छिछला है इसलिये जहाजों को तट से ७ मील दूर लंगर डालना होता है। पीतल, चांदी और सोने के गहने बनाना यहां का मुख्य उद्योग है। सम्बलपुर रेशमी व सूती वस्त्र व्यवसाय का केन्द्र है।

विविध नगर

जैपुर राजस्थान का शासन केन्द्र है और अपनी शिल्पकारी के लिये प्रसिद्ध है। यहां के मिट्टी व पीतल के बर्तन विशेष सुन्दर होते हैं। यहां की आबादी एक लाख से अधिक है। **जोधपुर** में रेलों की मरम्मत का कारखाना तथा ऊनी व सूती कपड़े की मिलें हैं। यहां के पत्थर का काम बहुत प्रसिद्ध है। **ग्वालियर** मध्यभारत की राजधानी है और यहां की आबादी करीब एक लाख है। शहर का नाम लश्कर है। यहां पर सिगरेट बनाने के कारखाने हैं। चीनी मिट्टी बनाने और सूती कपड़े तैयार करने का धंधा भी काफी उन्नत है। **इन्दौर** मध्यभारत का सबसे बड़ा व्यापार केन्द्र है और यहां पर सूती कपड़े बनाने की मिलें, आटा पीसने की चक्कियां, पीतल की चद्दरें बनाने के कारखाने और धातु गलाने की भट्टियाँ पायी जाती हैं। यहां की आबादी एक लाख से अधिक है। **बंगलौर** मैसूर राज्य का मुख्य केन्द्र है और मद्रास से २२० मील पूर्व में स्थित है। दरियां, कालीन, सूती कपड़े, ऊनी वस्त्र और चमड़े की वस्तुएं बनाने के उद्योग यहां विशेष रूप से उन्नत हैं। साबुन, चमड़ा, मेज़-कुर्सी और चीनी मिट्टी के बर्तन बनाने के भी कारखाने हैं। यहां की कुल आबादी ५ लाख के लगभग है। **श्रीनगर** काश्मीर की राजधानी है और रेशमी वस्त्र बनाना, फूल-पत्तियों की कढ़ाई और लकड़ी पर नक्काशी का काम यहां के मुख्य उद्योग हैं। बारामूला में जल-विद्युत उत्पादन की एक विशाल योजना है जिससे पूरी काश्मीर घाटी व श्रीनगर को शक्ति

प्राप्त होती है। नगर की आबादी १ लाख ८० हजार है। यहां तक रेलमार्ग तो नहीं आते परन्तु अच्छी मोटर सड़कों द्वारा यह आसपास के सभी प्रदेशों से सम्बन्धित है। **त्रिवेन्द्रम** सुदूर दक्षिण पश्चिम भारत में ट्रावनकोर-कोचीन राज्य का व्यापारिक केन्द्र है। व्यापारिक महत्व के अतिरिक्त यह उद्योग-धंधों व शिक्षा का भी केन्द्र है। यहां पर नारियल की जटा के रेशों से तैयार की हुई वस्तुएं बड़ी प्रसिद्ध होती हैं। इसके अलावा पेंसिलें, हाथी दांत की वस्तुएं, सीमेंट व सुपारी बनाने के भी कारखाने हैं।

प्रश्नावली

१. कांधला में एक बड़ा समुद्र द्वार बनाने की आवश्यकता क्यों पड़ी? इस सम्बन्ध में सहायक व अड़चन डालने वाली भौगोलिक दशाओं का पूर्ण विवरण लिखिये।

२. बम्बई, कोचीन और विजगापट्टम बन्दरगाहों की स्थिति समझाइये और भारत के विदेशी व्यापार में इनका महत्व बतलाइये।

३. पृष्ठ प्रदेश से आप क्या समझते हैं? कलकत्ता व बम्बई के पृष्ठ प्रदेश का विवरण दीजिये।

४. भारत के प्रमुख बन्दरगाहों में से प्रत्येक का व्यापार वर्णन करिये।

५. लखनऊ, बंगलौर, अमृतसर, मुरादाबाद और शिलांग के महत्व का कारण बतलाइये।

६. तूतीकोरिन, लुधियाना, कानपुर, डिगबोई, अहमदाबाद और मुर्शिदाबाद के व्यापारिक महत्व का विवरण दीजिये।

७. बम्बई, जोधपुर, इलाहाबाद, आसनसोल और दिल्ली का महत्व बतलाइये।

८. बम्बई और विजगापट्टम के पृष्ठ प्रदेश का वर्णन कीजिये और बतलाइये कि इन प्रदेशों में यातायात के साधनों व व्यापारिक वस्तुओं के उत्पादन से इन बन्दरगाहों के व्यापार पर क्या असर पड़ा है?

९. एक रेखाचित्र पर काठियावाड़ के मुख्य बन्दरगाहों को दिखलाइये और उनकी उन्नति के कारण बतलाइये।

१०. कालिमपांग, डिब्रूगढ़, कानपुर, झरिया, विजगापट्टम और नागपुर की स्थिति व विकास का वर्णन कीजिये।

११. "कलकत्ते का महत्व व व्यापार उसके पृष्ठ प्रदेश पर निर्भर रहता है।" इस कथन पर अपने विचार प्रकट कीजिये।

१२. जमशेदपुर, जबलपुर, नागपुर, पटना, सूरत, आसनसोल, बनारस और बंगलौर के व्यापारिक महत्व को स्पष्ट कीजिये।

१३. कलकत्ता बन्दरगाह को एक जहाजी नहर द्वारा समुद्र से मिला देने की योजना पर अपने विचार प्रकट कीजिये। जहाजी नहरों के क्या दोष होते हैं?

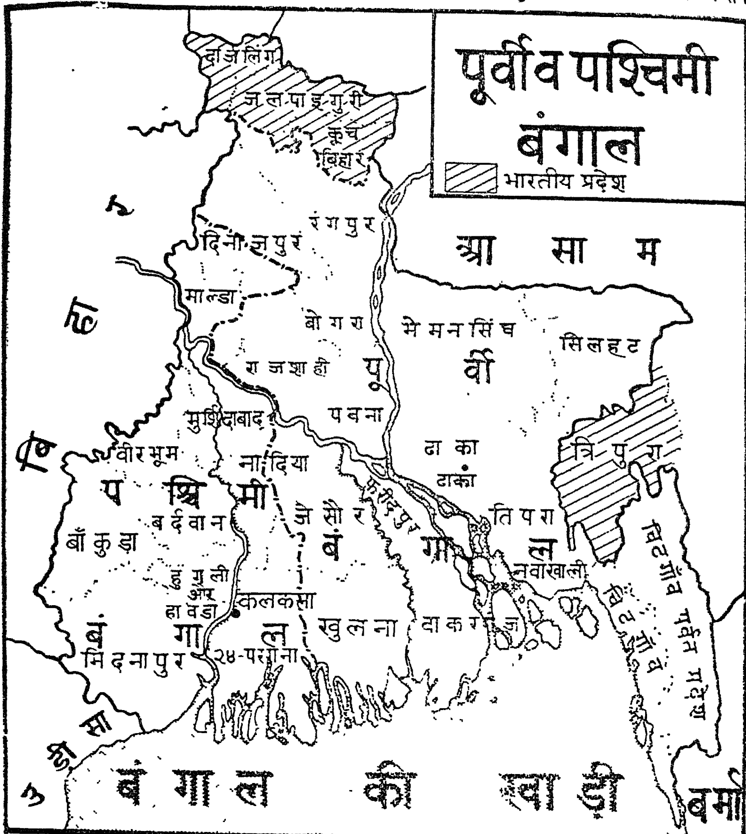
१४. बम्बई से कलकत्ता तक की यात्रा में कौन-से बन्दरगाह पड़ेंगे? प्रत्येक का आयात-निर्यात व्यापार बतलाइये।

अध्याय : : तेरह

पाकिस्तान

पाकिस्तान के अर्थ है पवित्र व सुन्दर। इस्लाम के अन्दर इस पवित्र व सुन्दर वस्तु के बारे में सबसे पहले सन् १९३० में सर मुहम्मद इकबाल ने सोचा था। दस साल बाद सन् १९४१ में मुस्लिम लीग ने पाकिस्तान को अपना ध्येय घोषित कर दिया।

१४ अगस्त सन् १९४७ तक पाकिस्तान भारत का ही एक भाग था। परन्तु देश के मुसलमानों की मांग के कारण पाकिस्तान राज्य का निर्माण हुआ। इस राज्य के अन्तर्गत

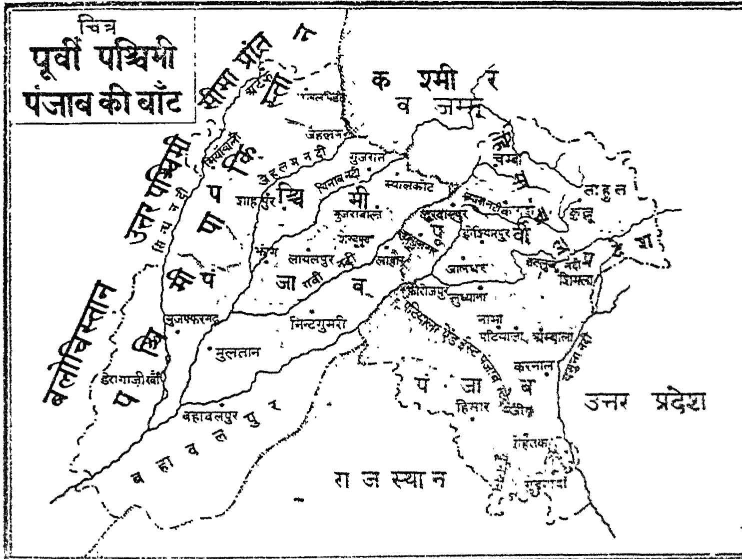


चित्र नं० ७५—बंगाल के विभाजन का चित्र—पूर्वी पाकिस्तान के अन्तर्गत पूर्वी बंगाल और सिलहट सम्मिलित हैं।

दो दूरस्थ व विभिन्न प्रदेश सम्मिलित हैं—छोटा भाग पूर्वी पाकिस्तान कहलाता है और बड़ा पश्चिमी पाकिस्तान। पूर्वी पाकिस्तान भारत राज्य के बीच एक द्वीप-सा है और पश्चिमी पाकिस्तान से १५०० मील दूर है।

क्षेत्रफल व विस्तार

पाकिस्तान का कुल क्षेत्रफल ३ लाख, ६० हजार, ७८० वर्गमील है और इसके अन्तर्गत चार प्रान्त शामिल हैं—पश्चिमी पंजाब, पूर्वी बंगाल, सिन्ध और उत्तरी पश्चिमी सीमान्त प्रान्त। इनके अलावा बलूचिस्तान और कई छोटे-छोटे राज्य भी सम्मिलित हैं। पश्चिमी पंजाब, सिन्ध, उत्तरी पश्चिमी सीमान्त प्रान्त, बलूचिस्तान व राज्यों को मिला कर पश्चिमी पाकिस्तान बना। पश्चिमी पाकिस्तान पश्चिम में अफगानिस्तान व ईरान से लगा हुआ है और इसके पूर्व में भारत संघ है। इसके दक्षिण व दक्षिण-पूर्व में अरब सागर है। प्रायः भूमि का ढाल दक्षिण पूर्व की ओर है। इसलिये सभी नदियां अरब सागर में गिरती हैं। पूर्वी पाकिस्तान के अन्दर पूर्वी बंगाल व सिलहट के प्रदेश सम्मिलित हैं। क्षेत्रफल के दृष्टिकोण से पूर्वी पाकिस्तान पश्चिमी पाकिस्तान का षष्ठांश है। पूर्वी पाकिस्तान चारों ओर से भारत संघ से घिरा है। इसके उत्तर व पश्चिम में बंगाल तथा पूर्व में आसाम है। दक्षिण में बंगाल की खाड़ी और दक्षिण-पूर्व में बर्मा है।



चित्र नं० ७६—पंजाब का विभाजन—पूर्वी पंजाब भारत में आया और पश्चिमी पंजाब को पाकिस्तान में सम्मिलित कर दिया गया।

प्रांत	क्षेत्रफल (वर्गमील में)
(अ) पूर्वी पाकिस्तान	
पूर्वी बंगाल	४९,२७०
सिलहट	४,६५०
(आ) पश्चिमी पाकिस्तान	
पश्चिमी पंजाब	६२,०००
सिन्ध	४८,१००
उत्तरी पश्चिमी सीमान्त प्रदेश	१४,२६०
बलूचिस्तान	५४,४६०
बहावलपुर	१७,[illegible]
बलूचिस्तान की रियासतें	७९,५००
खैरपुर व सीमान्त प्रदेश की रियासतें	३१,०००

कुल मिलाकर पाकिस्तान का क्षेत्रफल बर्मा के क्षेत्रफल से कुछ कम है। मोटे तौर पर ग्रेट ब्रिटेन और फ्रांस के संयुक्त क्षेत्रफल के समान है।

पाकिस्तान की तटरेखा काफी लम्बी है और खूब कटी-फटी है। बंगाल की खाड़ी में छिछली कटानें हैं और इनमें छोटी-छोटी नालियां व खाड़ियां पायी जाती हैं। इसके विपरीत अरब सागर की तरफ तटरेखा बहुत कुछ सपाट है।

जनसंख्या

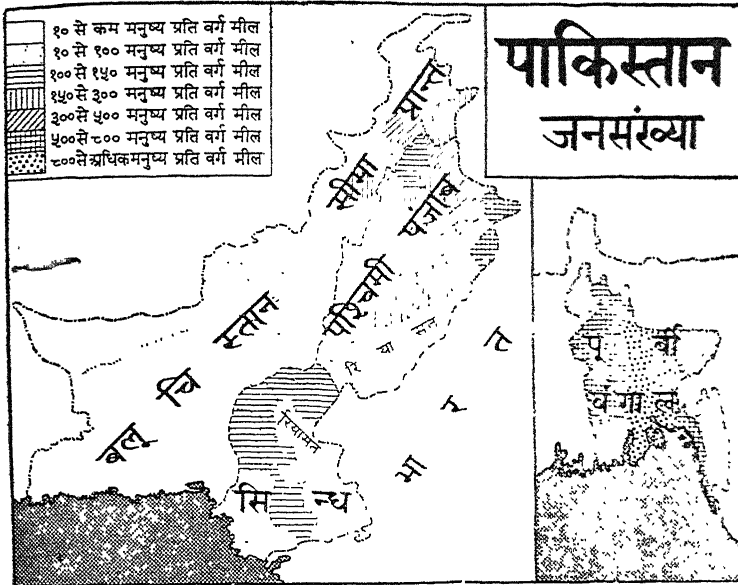
सन् १९५१ में पाकिस्तान की कुल आबादी ७५,८४२,१६५ थी। इनमें से कोई ७ करोड़ आदमी प्रान्तों में निवास करते हैं। निम्न प्रान्तों व राज्यों में जनसंख्या का वितरण इस प्रकार है—

प्रदेश	क्षेत्रफल (वर्गमील)	जनसंख्या
पूर्वी पाकिस्तान	५४,५०१	४२,०६२,६१०
पंजाब और बहावलपुर	६३,१३४	२०,६५१,१४०
सीमा प्रान्त	६४,२५६	५,८९९,९०५
बलूचिस्तान	१३४,००२	१,१७४,०३६
करांची	५६६	१,१२६,४१७
कुल योग	३६४,७३७	७५,८४२,१६५

जनसंख्या का औसत घनत्व १९५ मनुष्य प्रति वर्गमील है, परन्तु इसका वितरण बड़ा विषम है। पूर्वी बंगाल में एक वर्गमील में ७९२ मनुष्य रहते हैं जबकि बलूचिस्तान में केवल ६ मनुष्यों का ही औसत है। पाकिस्तान के ७३ प्रतिशत मनुष्य मुसलमान हैं। सम्पूर्ण बंगाल की कुल जनसंख्या के ३५.१४ प्रतिशत लोग पश्चिमी बंगाल में रहते हैं और ६४.८६ प्रतिशत पूर्वी बंगाल में। पूर्वी बंगाल में २९.१७ प्रतिशत लोग अमुसलमान जाति के हैं।

जनसंख्या के दृष्टिकोण से पाकिस्तान का संसार में पांचवां स्थान है। केवल चीन, भारत, रूस और संयुक्त राष्ट्र की जनसंख्या इससे अधिक है। ८० प्रतिशत गांवों में रहते

हैं जबकि भारत में ग्रामनिवासियों की संख्या ८६ प्रतिशत है।



चित्र नं० ७७—पूर्वी पाकिस्तान व पश्चिमी पंजाब के नहर द्वारा सिंचित प्रदेश में जनसंख्या का घनत्व ध्यान देने योग्य है।

पाकिस्तान के शासन की भाषा उर्दू है परन्तु इसके अलावा तीन और भाषायें भी बोली जाती हैं—पूर्वी बंगाल में बंगाली, सिन्ध में सिन्धी और सीमान्त प्रदेश में पश्तो। यहां के ८० प्रतिशत लोग मुसलमान हैं। इस्लाम के द्वारा यहां के लोगों के बीच सामाजिक, नैतिक व कानूनी एकता स्थापित हो गई है। उर्दू यहां की राष्ट्रभाषा घोषित कर दी गई है यद्यपि हर प्रान्त की भाषा अलग-अलग है।

जाति के दृष्टिकोण से पाकिस्तान के लोग विभिन्न जाति के हैं जैसे इंडो आर्यन सेमिटिक, मंगोल और द्रविड़। पश्चिमी पंजाब और उत्तरी पश्चिमी सीमा प्रान्त के लोग आर्य हैं। बलूच और सिन्धी लोग सेमेटिक वंश के हैं और पूर्वी बंगाल के लोगों में द्रविड़ व मंगोल जातियों का सम्मिश्रण है।

प्राकृतिक विभाग

भौगोलिक दृष्टिकोण से पाकिस्तान को ६ भागों में बांटा जा सकता है—

पश्चिमी पाकिस्तान—
(१) शुष्क पठार
(२) उत्तरी पश्चिमी पहाड़ी भाग
(३) शुष्क मैदान
(४) रेगिस्तान

पूर्वी पाकिस्तान—
(५) नवीन डल्टा विभाग—तर निम्न भूमि
(६) गंगा व ब्रह्मपुत्र का दुआब

(१) सारा का सारा बलूचिस्तान एक शुष्क पठार है और मानसूनी हवाओं के प्रभाव क्षेत्र के बाहर पड़ता है। यहां की जलवायु विषम है। अत: अधिक सर्दी व अधिक गर्मी पड़ती है और वर्षा सूक्ष्म व अनिश्चित होती है। वर्ष भर में कुल सात इंच पानी गिरता है। पानी की कमी के कारण इस प्रदेश के थोड़े से भाग में ही खेती का धंधा होता है और वह भी 'करेज' रीति से। नदियों के बाढ़ के पानी को खेतों में पहुंचा कर खेती करते हैं। यहां की मुख्य फसलें ज्वार, बाजरा, गेहूं और पशुओं का चारा है। मांग-पूर्ति के बाद बहुत थोड़ा अनाज बच जाता है और दूसरे यातायात की असुविधाओं के कारण आसानी से इधर-उधर भेजा भी नहीं जा सकता। फलों की विस्तृत उपज होती है और अंगूर, नाशपाती, आड़ू, खूबानी, सेब व खरबूजों को निर्यात कर दिया जाता है। शहतूत को भी उगाया जाता है। भौगोलिक दृष्टिकोण से यह प्रदेश ईरान के पठार का भाग है और इसकी सफेद कोह श्रेणी ईरान के पहाड़ी प्रदेश से सम्बन्धित है।

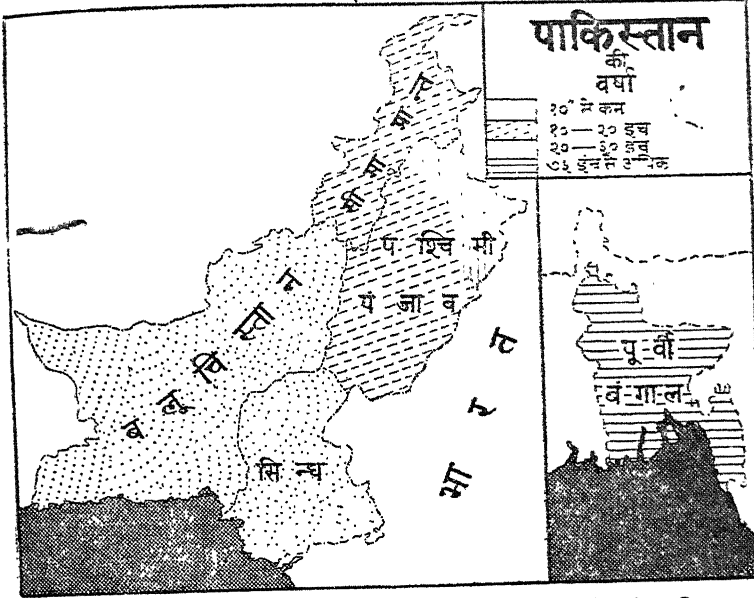
(२) उत्तरी पश्चिमी सीमान्त प्रदेश और पश्चिमी पंजाब का कुछ भाग शुष्क पहाड़ी क्षेत्र है। यहां की वार्षिक वर्षा २० इंच से अधिक नहीं है। पेशावर की घाटी और बन्नू के मैदान में जहां आबादी सबसे घनी है, सिंचाई की जाती है। मानसूनी हवायें यहां तक पहुंच ही नहीं पातीं और जो कुछ थोड़ी वर्षा होती है वह जाड़े की ऋतु में। यहां की भूमि व जलवायु में बड़े-बड़े पेड़ नहीं उग सकते परन्तु सूखी कांटेदार झाड़ियां खूब उगती हैं। गेहूं, चना, ज्वार, बाजरा यहां की मुख्य फसलें हैं। यहां पर अंगूर, खरबूजे, नाशपाती, आड़ू, अंजीर, अखरोट व अनार खूब होते हैं और अधिकतर बाहर निर्यात कर दिये जाते हैं। पहाड़ियों की तलैटियों में नदियों के पानी को सिंचाई के लिये रोक लेते हैं। नदियों के किनारे पर बाढ़ के पानी से खेती की जाती है।

(३) मैदान के अन्तर्गत सिन्धु व उसकी सहायक नदियों का मैदान आता है और पश्चिमी पाकिस्तान का उत्तरी पूर्वी, दक्षिणी पूर्वी और दक्षिणी भाग इसी के अन्तर्गत है। इस मैदानी भाग से होकर झेलम, चिनाब, सतलज, रावी और ब्यास नदियां प्रवाहित होती हैं और सब जाकर सिन्धु नदी में मिल जाती हैं। इस मैदान का **उत्तरी पूर्वी भाग** अपेक्षाकृत तर है और वहां बिना सिंचाई के खेती हो सकती है। वर्षा की मात्रा १० से २० इंच तक है। पश्चिमी मैदान बहुत सूखा है और वहां की सभी फसलें सिंचाई के सहारे उगाई जाती हैं। इस मैदान का दक्षिणी भाग नदियों द्वारा लाई हुई मिट्टी से बना है और काफी सूखा है। पश्चिम में बलूचिस्तान के पठार से लेकर पूर्व में थार के रेगिस्तान तक यह मैदान फैला हुआ है। सिन्धु की घाटी में सिंचाई के सहारे खेती की जाती है। वर्षा तो १० इंच से भी कम होती है।

(४) सतलज से दक्षिण और सिन्ध प्रान्त के उत्तरी भाग में मरुस्थल की दशायें पायी जाती हैं। वास्तव में यह प्रदेश थार रेगिस्तान का पश्चिमी भाग है और वर्षा का औसत ५ इंच से भी कम रहता है।

पश्चिमी पाकिस्तान की जलवायु बड़ी विषम है। सर्दियों में खूब ठंडक पड़ती है और पानी तक जम जाता है। गर्मियों में काफी गर्मी पड़ती है और औसत तापमान १२०

डिग्री फ. तक पहुंच जाता है। इस विषम जलवायु के कारण यहां के लोग मेहनती व ताकतवर होते हैं। उनका स्वास्थ्य खूब अच्छा और काम करने की शक्ति अधिक होती है।



चित्र नं० ७८—उत्तरी पश्चिमी सीमान्त प्रदेश को छोड़कर पश्चिमी पाकिस्तान निम्न वर्षा का प्रदेश है। खेती का धंधा सिंचाई पर निर्भर रहता है। पूर्वी पाकिस्तान में वर्षा का सालाना औसत ७५ इंच रहता है और साल भर बराबर खूब वर्षा होती है।

(५) पूर्वी बंगाल का निचला भाग नवीन डेल्टा है। हर साल नदियों द्वारा बहाकर लाई हुई बहुतसी मिट्टी इस भाग में इकट्ठी हो जाती है। यहां पर आम, अनन्नास और केले खूब होते हैं। मानसून के दिनों में इस प्रदेश का बहुत अधिक भाग पानी के नीचे रहता है और बाढ़ हटने पर उपजाऊ मिट्टी की एक तह पड़ी रह जाती है। यह भाग नदियों का प्रदेश है और सड़कें बहुत कम हैं। इस प्रदेश के आरपार कई नदियां बहती हैं और अन्त में बंगाल की खाड़ी में जाकर मिल जाती हैं।

वर्षा हर साल ७५ इंच से अधिक ही होती है और भूमि भी खूब उपजाऊ है। चावल, गन्ना और पटसन यहां की प्रमुख फसलें हैं। पूर्वी बंगाल की जलवायु उष्णोष्ण कटिबन्धीय है परन्तु वायुमण्डल में नमी की मात्रा बहुत अधिक रहती है।

(६) उत्तरी बंगाल वास्तव में गंगा-ब्रह्मपुत्र दुआब का ही एक भाग है। भूमि साधारणतया सपाट है। केवल कहीं-कहीं छोटी-छोटी पहाड़ियां छितरी पायी जाती हैं।

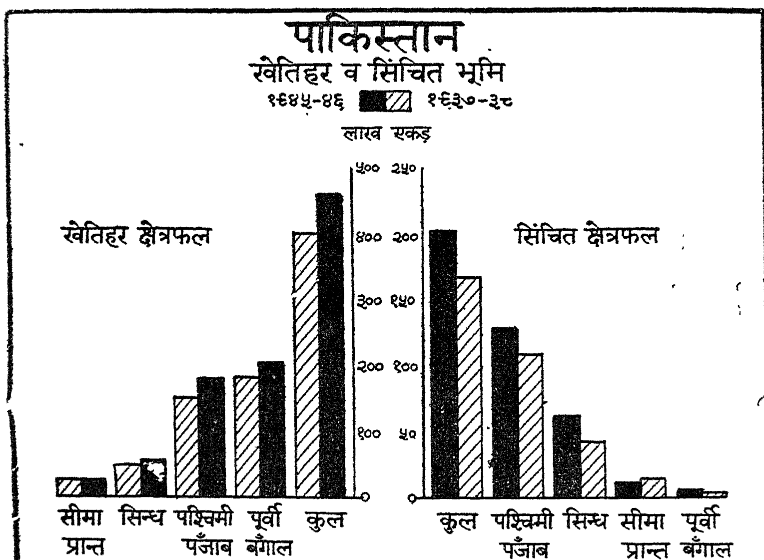
पूर्वी पाकिस्तान में मानसूनी जलवायु पायी जाती है। गर्मी में उच्च तापमान और आर्द्रता यहां की विशेषता है। सर्दियां साधारण ठंडी होती हैं। जाड़ों में तापमान

६४° फ. और गर्मियों में ८४° फ. रहता है ।

सिंचाई

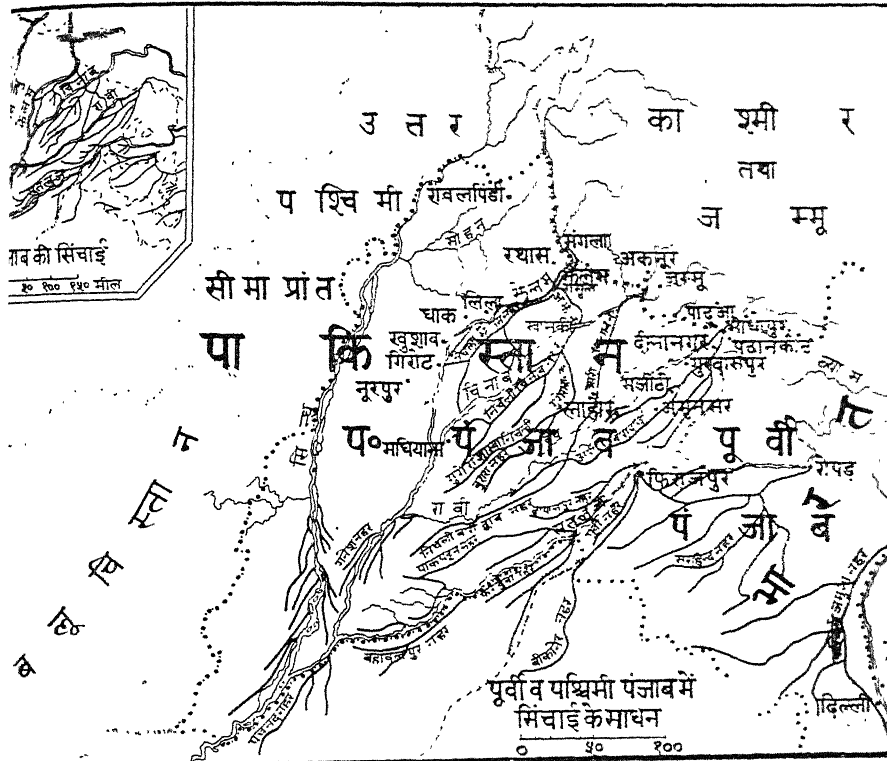
पाकिस्तान का नहर सिंचाई के दृष्टिकोण से संसार में दूसरा स्थान है । यहां ३ करोड़ एकड़ भूमि पर नहरों द्वारा सिंचाई की जाती है । पश्चिमी पाकिस्तान के लिये तो सिंचाई आवश्यक है । यहां वर्षा केवल अनिश्चित ही नहीं है बल्कि उसकी मात्रा कभी कम कभी ज्यादा होती रहती है । सिन्ध व बलूचिस्तान में वर्षा का वार्षिक औसत १० इंच से भी कम है । पश्चिमी पंजाब व सीमान्त प्रदेश में १० से २० इंच तक वर्षा होती है । केवल पश्चिमी पंजाब के सुदूर पूर्वी भाग में २० इंच से अधिक वर्षा होती है ।

वर्षा की अनिश्चितता व विभिन्नता का यह हाल है कि साधारणतः हर पांचवें साल सूखा पड़ता है और हर दसवें साल अकाल की दशायें फैल जाती हैं । अतः पश्चिमी पाकिस्तान सिंचाई के साधनों पर निर्भर रहता है । भारत में केवल १८ प्रतिशत भूमि पर ही सिंचाई की जाती है । परन्तु पश्चिमी पाकिस्तान की ३४ प्रतिशत भूमि सींची जाती है । पश्चिमी पंजाब तो एक नहर छावनी है । यहां पर सिंचाई के साधनों के लिये आदर्श दशायें पायी जाती हैं । इस प्रान्त में सिन्धु व उसकी सहायक नदियां हाथ की अंगुलियों की भांति फैली हुई हैं और केवल उत्तरी पूर्वी भाग को छोड़ कर सारा-का-सारा प्रदेश मुलायम मिट्टी का बना है । सिंचाई की नहरों के विकास के कारण ही लायलपुर और मांटगोमरी के जिले जो पहले आधे रेगिस्तान थे अब लहलहाते खेत के रूप में बदल गये हैं । पश्चिमी पंजाब में १ करोड़ ४० लाख एकड़ भूमि पर सिंचाई होती है ।



चित्र नं० ७९—पश्चिमी पंजाब और सिंध में सिंचाई का महत्व ध्यान देने योग्य है ।

(अ) पाकिस्तान की सबसे बड़ी नहर **निचली चिनाब नहर** है। यह सन् १८९० में बनाई गई थी। इसकी नालियों को मिलाकर इसकी लम्बाई २,४३३ मील है और लायलपुर के प्रदेश में ३० लाख एकड़ भूमि को सींचती है। चिनाव में खानकी स्थान से निकल कर यह नहर अर्द्ध मरुस्थल क्षेत्र से होकर बहती है। इसके बन जाने से लायलपुर के आसपास का प्रदेश एक उपजाऊ कृषि प्रदेश हो गया है और नहर बनने के बाद से यहां की आबादी भी बहुत बढ़ गई है। सिंचाई योजना के पहले यहां की आबादी का घनत्व इतना कम था कि औसत १० मनुष्य प्रति वर्गमील भी नहीं पड़ता था। और इस समय



चित्र नं० ८०—हर नहर में पानी की मात्रा अलग-अलग है और नदियों की जल राशि पर निर्भर रहती है। ऊपरी झेलम शाखा द्वारा झेलम का पानी चिनाब में डाला जा सकता है और इसी प्रकार चिनाब का पानी ऊपरी चिनाब शाखा द्वारा रावी नदी में पहुंचाया जा सकता है। निचली बारी दुआब नहर चिनाब के जल पर ही निर्भर रहती है। इस सिलसिले में यह भी बात ध्यान देने योग्य है कि ऊपरी यमुना नहर, ऊपरी चिनाब नहर, ऊपरी बारी दुआब नहर और सतलज की नहरों का निकास-स्रोत भारत राज्य में है।

प्रति वर्गमील में ३०० मनुष्य रहते हैं। जाड़े के दिनों में खानकी के नीचे चिनाव नदी सूख जाती है परन्तु झेलम और चिनाव के संगम पर काफी पानी रहता है। तथा मुख्य बांध से काफी पानी प्राप्त होता रहता है।

(आ) **निचली झेलम नहर**—५८३ मील लम्बी है, पश्चिमी पंजाब के शाहपुर क्षेत्र में ८ लाख ६० हजार एकड़ भूमि को सींचती है। काश्मीर राज्य की सीमा पर रसूल नामक स्थान से यह निकाली गई है। जाड़ों में रसूल के नीचे झेलम में पानी बहुत कम रह जाता है।

(इ) **ऊपरी झेलम नहर**—काश्मीर में मंगला नामक स्थान पर झेलम से निकाली गई है और ऊपरी झेलम व ऊपरी चिनाव नदियों के बीच में स्थित गुजरात प्रदेश को सींचती है। यह नहर सन १९१५ में बन कर तैयार हुई थी।

(ई) **ऊपरी चिनाब नहर**—काश्मीर में मराला नामक स्थान से निकलती है। थोड़ा आगे बढ़कर रावी पर बल्लोकी स्थान पर यह नहर निचली बारी दुआब नहर से जा मिलती है। यह नहर सन १९१२ में बनाई गई थी और इसके द्वारा स्यालकोट, गुजरानवाला और शेखूपुरा के प्रदेशों की भूमि सींची जाती है।

(उ) **ऊपरी बारी द्वाब नहर**—माधोपुर से निकलती है और भारत के अमृतसर जिले से होकर आती है तथा लाहौर और मांटगोमरी जिलों की भूमि को सींचती है। सम्पूर्ण पंजाब में इस नहर का बड़ा महत्व था और यह सब से पुरानी भी है।

पश्चिमी पंजाब की अधिकतर नहरों का स्रोत व नदियां पूर्वी पंजाब व काश्मीर में हैं। सब नहरों में कुल मिलाकर २,८५,००० गैलन पानी प्रति सेकन्ड बहता है और इनकी नालियों की कुल लम्बाई ५४,३०० मील है। इस दृष्टिकोण से **त्रिविध नहर योजना** विशेष रूप से उल्लेखनीय है। यह इंजीनियरिंग योग्यता का एक विलक्षण नमूना है। निचली बारी द्वाब नहर में काफी पानी नहीं रहता क्योंकि रावी का अधिकतर पानी माधोपुर में पूर्वी पंजाब की ऊपरी बारी द्वाब नहर में चला जाता है। इसलिये ऊपरी चिनाब नहर को बल्लोकी नामक स्थान पर निचली बारी द्वाब नहर से मिला दिया गया है। फिर ऊपरी चिनाब नहर के कारण निचली चिनाब नहर में काफी पानी नहीं पहुंच पाता। अतः ऊपरी झेलम नहर के पानी को निचली चिनाब नहर में खामकी स्थान पर डाल देते हैं। यह कुल योजना सन १९३३ में बनकर तैयार हुई थी। इससे ४० लाख एकड़ भूमि सींची जाती है।

बहावलपुर राज्य में भी तीन नहरें हैं—बहावल नहर फोर्डवान नहर और सिदीकिया नहर। ये तीनों ही नहरें सतलज से निकलती हैं। बहावलपुर में एक नई सिंचाई योजना हो रही है जिसकी सहायता से २ लाख ६० हजार एकड़ भूमि पर सिंचाई द्वारा खेती हो सकेगी।

सिन्ध की औसत वार्षिक वर्षा केवल दो इंच है परन्तु सिर्फ सिंचाई की सहायता से इस प्रदेश में १० लाख टन चावल व ज्वार बाजरा और ९० हजार टन कपास उत्पन्न की जाती है।

सिन्ध में ६० लाख एकड़ भूमि या ७४ प्रतिशत कृषि भूमि पर सिंचाई की जाती है। सिन्ध की लायड बांध योजना विलक्षण है। बम्बई के भूतपूर्व गवर्नर लार्ड लायड के परिश्रम के फलस्वरूप यह बांध बना। इसीलिये इसका नाम उनके नाम के आधार पर रख दिया गया है। यह बांध सन् १९२३ में बनना शुरू हुआ था और ९ साल बाद सन् १९३२ में पूरा बन कर तैयार हुआ। सिन्ध नदी के आरपार सक्खर स्थान पर एक बांध बनाया गया है। इस प्रकार पानी को रोक कर नहरों द्वारा सिन्ध के विभिन्न भागों को पानी पहुंचाया जाता है। इस प्रकार नहरों व उनकी शाखाओं की कुल लम्बाई ७४,००० मील है। **उत्तरी सिन्ध** में इस बांध योजना की नहरों का पानी नहीं पहुंच पाता है। अतः वहां पर निम्नलिखित तीन नहरों द्वारा सिंचाई होती है: (अ) रेगिस्तान नहर (आ) बेगारी नहर और (इ) अनहर बाह नहर। **दक्षिणी सिन्ध** में सिंचाई की दो नहरें हैं: (अ) करांची नहर और (आ) फुलेली नहर। यहां की दो सब से बड़ी नहरें पूर्वी नारा और पोहरी क्रमशः २२६ मील और २०८ मील लम्बी हैं। इन सब नहरों की सहायता से सिन्ध जैसा मरुस्थली प्रदेश भी सुन्दर बगीचा बन गया है।

उत्तरी पश्चिमी सीमान्त प्रदेश में स्वात नदी से कई नहरें निकाली गई हैं जिनके द्वारा ४ लाख एकड़ भूमि पर सिंचाई होती है। सन् १९१४ म **ऊपरी स्वात नहर** बनाई गई। इसके द्वारा उत्तरी पश्चिमी सीमान्त प्रदेश की ७० प्र. श. भूमि सींची जाती है।

पश्चिमी पाकिस्तान में सिंचाई की नहरों को बढ़ाने की काफी संभावनाएं हैं। इस समय चार योजनाओं पर काम हो रहा है—दो पश्चिमी पंजाब में और दो सिन्ध में। इसके अलावा सरकार ने दो बहुधंधा योजनाओं पर काम आरम्भ किया है—एक उत्तरी पश्चिमी सीमान्त प्रदेश के बारसक स्थान पर और दूसरी पश्चिमी पंजाब के रसूल स्थान पर। इन सब योजनाओं पर काम पूरा होने से १२० लाख अतिरिक्त भूमि पर सिंचाई हो सकेगी।

उत्तरी पश्चिमी सीमान्त प्रदेश में **बारसक योजना** से १ लाख किलोवाट बिजली उत्पन्न होगी और पेशावर जिले में ६०,००० एकड़ भूमि पर सिंचाई की जावेगी। इसके अलावा सीमान्त भागों में कई हजार एकड़ भूमि को भी सींचा जा सकेगा। कोहाट घाटी में इस योजना की बिजली से ट्यूब वेल बनाये जा सकेंगे। इस बिजली से मुलागिरि संगमरमर की खानों में खुदाई हो सकेगी। बिजली शक्ति उपलब्ध हो जाने पर पेशावर और कोहाट के समीप की कोयला संपत्ति, जिप्सम का भंडार, मुहम्मद जिले की ताम्बा संपत्ति तथा अन्य छोटे-मोटे उद्योगों का उपभोग व विकास हो सकेगा। नहरों द्वारा नाव्य जलमार्गों का भी प्रबंध हो जायेगा। अतः उत्तरी सीमान्त प्रदेश और पश्चिमी पंजाब के बीच यातायात का भी प्रबंध हो जायेगा।

पश्चिमी पंजाब में सिंचाई के लिए कई कुएं भी खोदे जा रहे हैं। लायलपुर, झंग, शेखुपुरा और सरगोधा में शक्ति द्वारा चालित पम्पदार कुओं से सिंचाई की जाती है। बलूचिस्तान में करेज विधि द्वारा सिंचाई की जाती है। यहां की ऊपरी भूमि मुलायम व छिद्रदार है परन्तु नीचे की सतह कठोर व जल-निरोधक है। अतः वर्षा का पानी बीच की

सतह में इकट्ठा हो जाता है। और ऊपरी सतह से २०-२५ फीट नीचे पानी का बहाव पाया जाता है। इस जलराशि को करेज के द्वारा ऊपरी सतह पर ले आते हैं। इस विधि के अनुसार सतह पर १५–२० गज की दूरी पर कुएं बना देते हैं। और उन्हें नीचे एक नहर या नाली द्वारा मिला देते हैं। इस नहर द्वारा पानी बहता है और फिर जब सतह पर आ जाता है तो इसके द्वारा सिंचाई की जाती है।

कृषि

पाकिस्तान का सबसे महत्वपूर्ण उद्यम खेती है और वहां की नव दशमांश जनसंख्या इसी पर निर्भर रहती है। खेती के दृष्टिकोण से पाकिस्तान को ६ प्रदेशों में बांटा जा सकता है—(१) उप-पहाड़ी उत्तरी पश्चिमी सीमान्त प्रदेश, (२) पश्चिमी पंजाब में गुजरात और स्यालकोट के उत्तरी पूर्वी मैदान, (३) उत्तरी पश्चिमी पंजाब जिसके अन्तर्गत रावलपिंडी, झेलम, अटक, मियांवाली, पेशावर, कोहाट और बन्नू के जिले शामिल हैं, (४) पश्चिमी पंजाब के दक्षिणी पश्चिमी मैदान जिसके अन्तर्गत गुजरांवाला, लाहौर, लायलपुर, मान्टोगमरी, मुलतान, बहावलपुर, डेरा गाजीखान और डेरा इस्माइल खान के जिले सम्मिलित हैं, (५) निचला सिंध और (६) पूर्वी बंगाल। पाकिस्तान की १५ करोड़ एकड़ भूमि में केवल ५ करोड़ ४० लाख एकड़ भूमि पर खेती होती है।

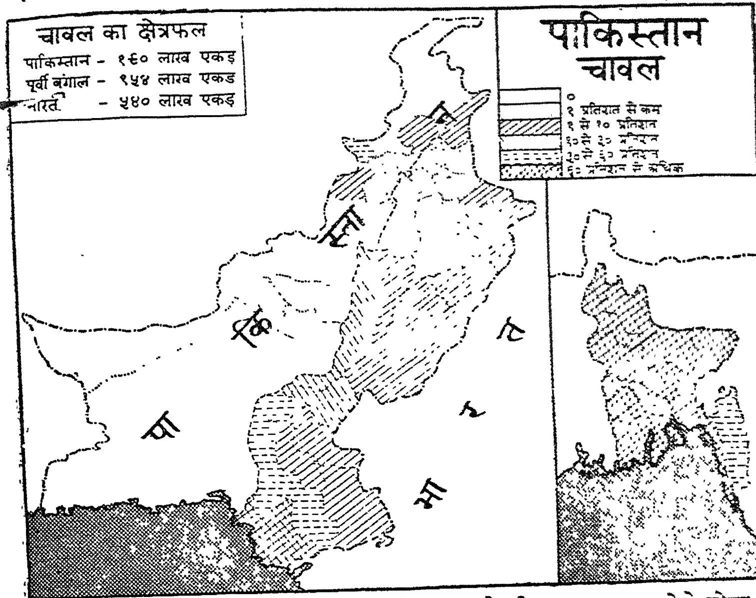
यहां की खेती की मुख्य फसलें गेहूं, चावल, मक्का, गन्ना, चाय, पटसन, कपास, तिलहन और तम्बाकू हैं। पाकिस्तान में मांगपूर्ति से अधिक उत्पादन होता है। अतः वहां की जनता की मांग को पूरी करने के बाद थोड़ा गेहूं और बहुत काफी कपास व पटसन निर्यात किया जा सकता है।

खेती की विशेषतायें—चूंकि बहुत अधिक लोग खेती के उद्यम में लगे हुए हैं इसलिये पाकिस्तान सरकार अपने यहां की खेती को सहकारी समितियों व मशीनों द्वारा चलाने की योजना पर सोच-विचार कर रही है। इससे किसानों की आर्थिक दशा सुधर जायेगी और उत्पादन की मात्रा भी बढ़ जावेगी। पश्चिमी पंजाब के कुछ भागों में मशीनों द्वारा खेती शुरू हो गई है। बलूचिस्तान में फलों के बगीचों में मशीनों की सहायता ली जावेगी। सिन्ध में मशीनों द्वारा खेती करने की जरूरत नहीं होगी क्योंकि वहां की सिंचाई योजनाओं से उत्पादन अपने आप बढ़ जावेगा। चिटगांव के पहाड़ी क्षेत्र में चेन्गारी घाटी के प्रदेश में मशीनों द्वारा खेती की जावेगी। इस समय पूर्वी पाकिस्तान का डल्टा प्रदेश बीमारियों से आच्छादित है और इसीलिये वहां खेती का धंधा नहीं होता। संयुक्त राष्ट्र संघ की विश्व स्वास्थ्य समिति और भोजन व कृषि समिति की प्रेरणा व सहायता से कृषि के नये तरीकों द्वारा इस प्रदेश को खेती योग्य बनाने का प्रयत्न हो रहा है।

पाकिस्तान की ८५ प्र. श. कृषि भूमि पर खाद्यान्न फसलें ही उगाई जाती हैं। इसका आधा भाग पूर्वी पाकिस्तान में है। अतः पाकिस्तान को खाद्य फसलों का उत्पादन बढ़ाने की आवश्यकता नहीं है। जरूरत इस बात की है कि खाद्यान्नों को उगाने वाली भूमि पर औद्योगिक फसलें उगाई जावें ताकि देश-विदेश में उनका अधिक मूल्य प्राप्त हो सके।

पाकिस्तान की खाद्य फसलें—पाकिस्तान में ४७८ लाख एकड़ भूमि पर विविध

खाद्य फसलें उगाई जाती हैं और खाद्यान्नों का कुल वार्षिक उत्पादन १३३ लाख टन है। क्षेत्रफल का वितरण इस प्रकार है—चावल (२३० लाख एकड़), गेहूं (१०० लाख एकड़)। बाकी भूमि पर मक्का, ज्वार, बाजरा और जौ की फसलें उगायी जाती हैं। चावल का वार्षिक उत्पादन ८० लाख टन है और गेहूं का वार्षिक उत्पादन ३० लाख टन। इस प्रकार घरेलू उपभोग, बीज हानि व खेत के भंडार को लेकर पाकिस्तान में प्रतिवर्ष ४-५ लाख टन अनाज बढ़ती बच जाता है।



चित्र नं. ८१—पूर्वी बंगाल में चावल की खेती का केन्द्रीय भवन ध्यान देने योग्य है। ६० प्र० श० भूमि पर चावल की खेती होती है।

विविध खाद्य फसलों का उत्पादन व क्षेत्रफल (१९५१)

फसलें	(क्षेत्रफल हजार एकड़)	(उत्पादन हजार टन)
चावल	२२,४०१	८१९५
गेहूं	१०,८३२	३९५३
ज्वार	१,२६५	२३८
बाजरा	२,३२७	३५५
मक्का	९४२	३६८
जौ	५७१	१६१
चना	२,८३१	७४३
गन्ना	७००	८७४
भोज्य तिलहन	१,८२७	३०१

चावल—पूर्वी पाकिस्तान के लोगों का मुख्य भोजन है। पाकिस्तान में २२० लाख एकड़ भूमि पर चावल की खेती की जाती है और इसका बड़ा अंश पूर्वी बंगाल में है। पूर्वी

बंगाल में २ करोड़ एकड़ भूमि पर चावल उगाया जाता है। सिन्ध और सिलहट में ३० लाख एकड़ भूमि पर चावल की खेती होती है। पश्चिमी बंगाल में भी ५ लाख एकड़ भूमि पर चावल उगाया जाता है। और लेकिन पूर्वी पाकिस्तान के प्रत्येक जिले में ६० प्र. श. से अधिक कृषि भूमि पर चावल की ही खेती होती है ।

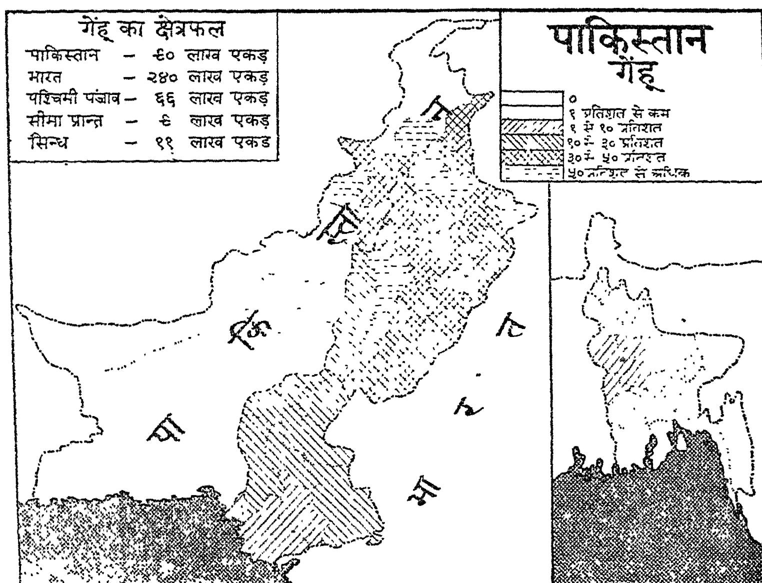
पाकिस्तान में चावल का कुल उत्पादन ८४ लाख टन है और इसमें से ७० लाख टन चावल अकेले पूर्वी पाकिस्तान से ही प्राप्त होता है। परन्तु उत्पादन से मांग कोई तीन लाख पौंड अधिक है इसलिये पूर्वी पाकिस्तान को पश्चिमी पाकिस्तान से चावल मंगवा कर अपनी घरेलू मांग पूरी करनी पड़ती है।

पाकिस्तान में ८४ चावल मिलें हैं और वे सभी पूर्वी पाकिस्तान में केंद्रित हैं।

गेहूं के मुख्य उत्पादन क्षेत्र पश्चिमी पंजाब, सिन्ध और उत्तरी पश्चिमी सीमान्त प्रदेश हैं। इन तीनों क्षेत्रों में करीब १ करोड़ एकड़ भूमि पर गेहूं उगाया जाता है और वार्षिक उत्पादन ४० लाख टन है।

गेहूं का उत्पादन व क्षेत्रफल (१९५१)

क्षेत्र	उत्पादन हजार टन	क्षेत्रफल हजार एकड़
पश्चिमी पंजाब	३००७	७२८३
उत्तरी पश्चिमी सीमा प्रांत	२६५	११०१
सिन्ध	२८९	१२०२
अन्य रियासतें	३२०	८८८

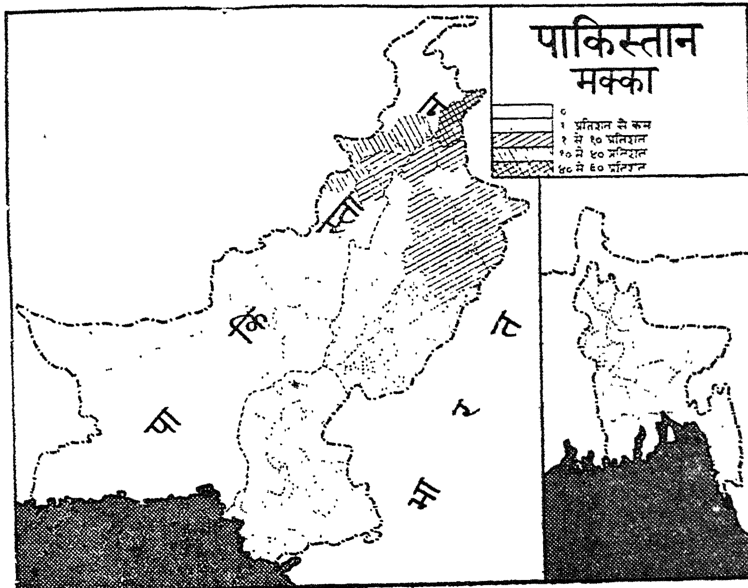


चित्र नं० ८२—पश्चिमी पंजाब व पाकिस्तान के जिले में ३० प्र० श० से अधिक कृषि भूमि पर गेहूं की फसल उगाई जाती है।

पश्चिमी पाकिस्तान में गेहूं नवम्बर-दिसम्बर के महीने में बोया जाता है और मई तक फसल काट ली जाती है। पश्चिमी पंजाब में गेहूं की प्रति एकड़ उपज ७०० पौंड है और सिन्ध में ६०० पौंड। मुजफ्फरगढ़, अटक, झेलम और सियालकोट के जिलों में ५०-६० प्रतिशत कृषि भूमि पर गेहूं बोया जाता है। पूर्वी पाकिस्तान में अधिक वर्षा के कारण गेहूं की खेती संभव नहीं है फिर भी राजशाही, पबना और कुस्तिया के जिलों में थोड़ा बहुत गेहूं उगाया जाता है। पूर्वी पाकिस्तान में ९४००० एकड़ भूमि से २०००० टन गेहूं उत्पन्न किया जाता है। पश्चिमी पाकिस्तान में मांग से अधिक गेहूं उत्पन्न होता है और इसलिए निर्यात भी किया जाता है।

जौ, मक्का और दालें—पाकिस्तान की अन्य खाद्य फसलें हैं। **जौ** की उपज बहुत थोड़ी होती है। और वह सबकी सब उत्तरी पश्चिमी सीमाप्रांत से प्राप्त होती है। मरदान और पेशावर के जिले **जौ उत्पादन** के लिये विशेष उल्लेखनीय हैं। कुल ५,७१००० एकड़ भूमि पर जौ की खेती होती है। इस में से २,८८,००० एकड़ भूमि पश्चिमी पंजाब में और १,३८,००० एकड़ भूमि सीमाप्रांत में है। वार्षिक उत्पादन की मात्रा १,६१,००० टन है।

मक्का भी पश्चिमी पाकिस्तान और उत्तरी पश्चिमी सीमाप्रांत में खूब विस्तृत रूप से उगाया जाता है। सन् १९५१ में १० लाख एकड़ भूमि में मक्का की खेती होती थी। पश्चिमी पंजाब और सिन्ध में मक्का की खेती का कुल क्षेत्रफल आधा २ बंटा हुआ है। औसत वार्षिक उत्पादन ४ लाख टन है।



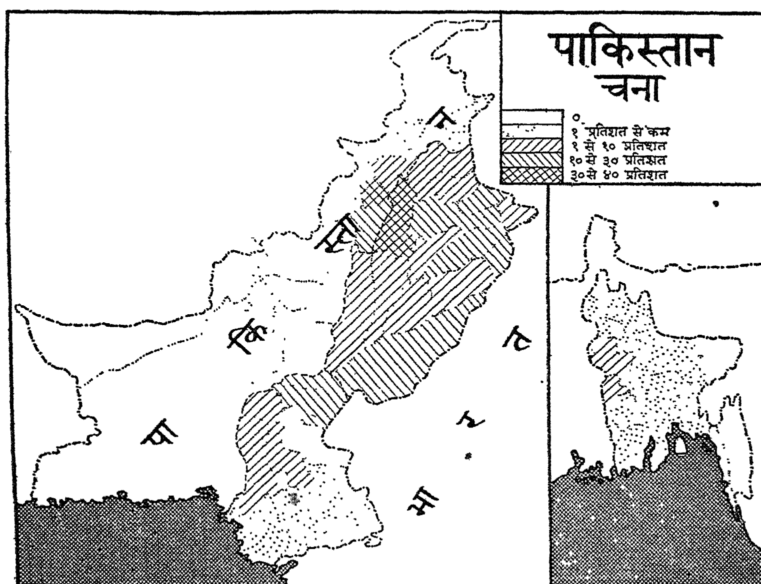
चित्र नं ८३—सीमाप्रांत का मध्य भाग और पश्चिमी पंजाब का उत्तरी भाग मक्का उत्पादन का प्रधान केन्द्र है।

पश्चिमी पंजाब के रावलपिंडी, अटक, झेलम और गुजरात के जिलों में सबसे अधिक भूमि पर मक्का की खेती होती है। हाल में शेखूपुरा, स्यालकोट और गुजरानवाला में मक्का की खेती का क्षेत्रफल बढ़ गया है। सिन्ध में सक्कर व हैदराबाद के जिले मक्का उत्पादन के लिये विशेष उल्लेखनीय हैं।

चना—भी पाकिस्तान की एक प्रमुख फसल है और करीब ३० लाख एकड़ भूमि पर चना बोया जाता है। इसका ९८ प्रतिशत भाग पश्चिमी पंजाब में है। थोड़ी बहुत मात्रा में चना सिन्ध, सीमाप्रांत और पूर्वी बंगाल में भी उगाया जाता है। सन् १९५०-५१ में इस भाग से ७ लाख ४३ हजार टन चना उत्पन्न हुआ था। यद्यपि पश्चिमी पंजाब के प्रत्येक जिले में चना उगाया जाता है। परन्तु शाहपुर, मोन्टोगोमरी और मुल्तान इसके लिये विशेष प्रधान हैं।

पाकिस्तान में चने का उत्पादन व क्षेत्र (१९५१)

राज्य	उत्पादन (हजार टन)	क्षेत्रफल (हजार एकड़)	राज्य	उत्पादन (हजार टन)	क्षेत्रफल (हजार एकड़)
पूर्वी बंगाल	४७	२००	पश्चिमी पंजाब	४९७	१७७८
सीमाप्रांत	३३	२१४	खैरपुर व बहावलपुर	९७	३७५
सिंध	८३	३५९	कुलयोग पाकिस्तान	७४३	२८१३



चित्र नं० ८४—चने की खेती सिन्धु व उसकी सहायक नदियों की घाटियों में विशेष रूप से होती है।

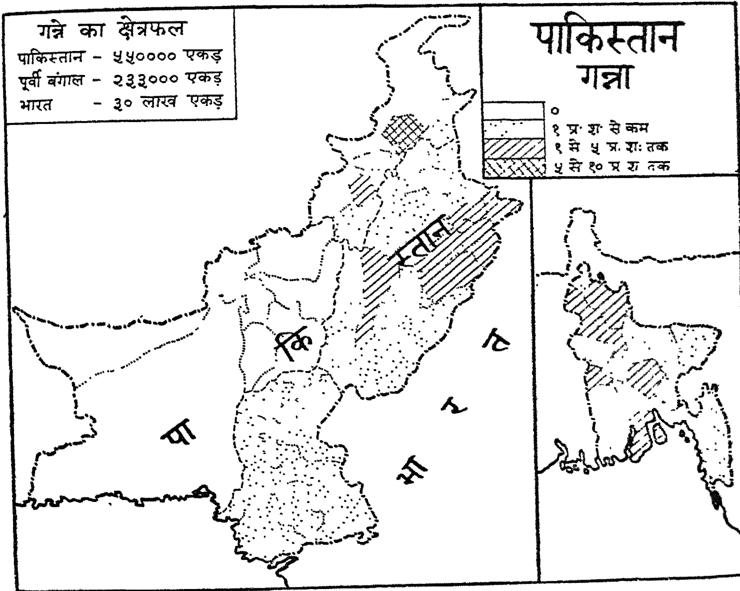
पाकिस्तान में खाद्यान्नों का उत्पादन बहुत संतोषजनक है। पश्चिमी पाकिस्तान में गेहूं व चावल का उत्पादन मांग पूर्ति से अधिक होता है। इस प्रकार पूर्वी पाकिस्तान में अनाज

की कमी पश्चिमी पाकिस्तान के द्वारा पूरी हो जाती है। खेती की विधियों में सुधार हो जाने, सिंचाई के साधनों के बढ़ जाने और अधिक धन व यातायात की सुविधाओं की सहायता से पश्चिमी पाकिस्तान में खाद्यान्नों का उत्पादन इतना अधिक बढ़ सकता है कि वर्त्तमान जन-संख्या से कहीं अधिक लोगों का निर्वाह हो सकेगा।

व्यवसायिक फसलें

गन्ना—पाकिस्तान में ७ लाख एकड़ भूमि पर गन्ने की खेती की जाती ह और पश्चिमी पंजाब व पूर्वी बंगाल इसकी खेती के मुख्य क्षेत्र हैं।

पश्चिमी पंजाब में मोन्टोगोमरी, लायलपुर, स्यालकोट और लाहौर के जिले; **पूर्वी बंगाल** में दिनाजपुर, रंगपुर, ढाका और मेमनसिंह के जिले गन्ना उत्पादन के लिये विशेष रूप से महत्वपूर्ण हैं। गन्ने का कुल उत्पादन ८,७४,००० टन है। अत: पाकिस्तान को भारत से आयात की हुई चीनी पर निर्भर रहना पड़ता है और निकट भविष्य में रहना भी पड़ेगा।



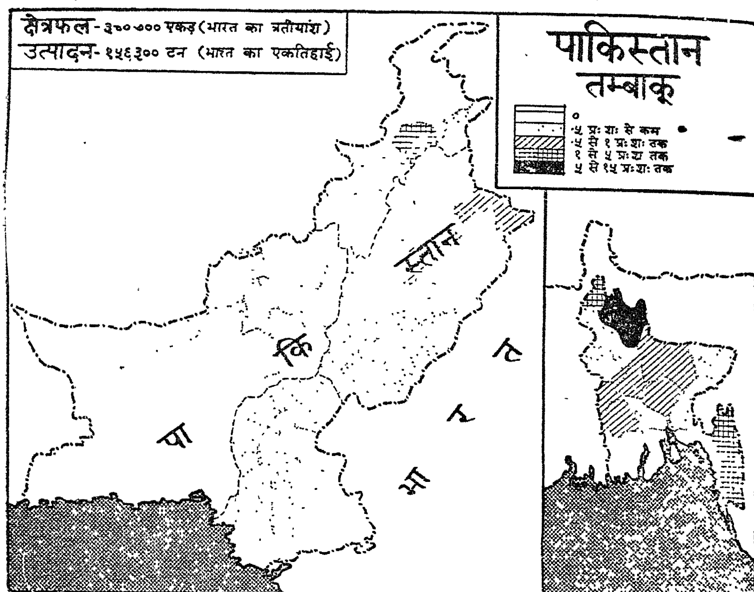
चित्र नं० ८५—सीमाप्रांत, पश्चिमी पंजाब की नहर छावनियों और पूर्वी बंगाल के मेमनसिंह जिले में गन्ने का उत्पादन विशेष रूप से ध्यान देने योग्य है।

पाकिस्तान में गन्ने का उत्पादन क्षेत्र (१९५०–५१)

प्रांत	क्षेत्रफल (हजार एकड़)	प्रांत	क्षेत्रफल (हजार एकड़)
पूर्वी बंगाल	२२६	सिन्ध	१७
सीमाप्रांत	८२	पश्चिमी पंजाब	३३५
		कुल योग (पाकिस्तान)	७००

सन् १९४८-४९ में पाकिस्तान की ७ लाख १४ हजार एकड़ भूमि पर गन्ने की खेती होती थी ।

तम्बाकू भी पाकिस्तान की एक प्रमुख व्यबसायिक फसल है। इसका उत्पादन अधिकतर पूर्वी बंगाल में होता है । रंगपुर, दिनाजपुर, और चिटगांव इसके उत्पादन के प्रमुख क्षेत्र हैं। रंगपुर की १५ प्र.श. कृषि भूमि पर तम्बाकू की खेती होती है।



चित्र नं० ८६—पूर्वी पाकिस्तान के रंगपुर और पश्चिमी पंजाब के स्यालकोट जिले में तम्बाकू की खेती विशेष महत्वपूर्ण है।

सन् १९४७-४८ में तम्बाकू उत्पादन का क्षेत्रफल ३ लाख २६ हजार एकड़ और मात्रा एक लाख चालीस हजार टन थी। युद्धपूर्व काल में तम्बाकू के उत्पादन व क्षेत्रफल का वितरण इस प्रकार था—

तम्बाकू का क्षेत्रफल व उत्पादन (१९३९)

क्षेत्र	हजार एकड़	हजार टन
पूर्वी बंगाल	२७९	११८
पश्चिमी पंजाब	४८	१८
सीमाप्रांत	१८	११
सिन्ध	५	२
अन्य रियासतें	१	१
	३५१	१५०

चाय भी बड़ी महत्वपूर्ण व्यवसायिक फसल है। यह सिलहट और चिटगांव के पहाड़ी प्रदेशों में ही उगाई जाती है। पाकिस्तान में चाय का वार्षिक उत्पादन ४५० लाख पौंड है

जब कि भारत में प्रतिवर्ष ४,०५० लाख पौंड चाय उत्पन्न होती है। इस समय पूर्वी पाकिस्तान में चाय के १३० बगीचे हैं। इन में से १०९ सिलहट में और ३ चिटगांव में हैं। करीब ७६,००० एकड़ भूमि पर चाय की खेती होती है। सन् १९४५ में चाय उत्पादन का क्षेत्रफल केवल ७३,३३० एकड़ था। सन् १९५०-५१ में करीब ३८० लाख पौंड चाय उत्पन्न हुई।

पाकिस्तान से चाय निर्यात कर दी जाती है और ग्रेट ब्रिटेन इसका मुख्य ग्राहक देश है। प्रतिवर्ष लगभग ३ करोड़ ५० लाख पौंड चाय बाहर भेजी जाती है। सन् १९४८-४९ में ग्रेट ब्रिटेन ने पाकिस्तान से २ करोड़ ८० लाख पौंड चाय मंगवाई। सन् १९४९ में पाकिस्तान ने अन्तर्राष्ट्रीय चाय समझौते में २ साल के लिये भाग लिया। इस समझौते के अनुसार पाकिस्तान में ७६,७०० एकड़ भूमि पर चाय की खेती होनी चाहिये और पाकिस्तान को ३½ करोड़ पौंड चाय निर्यात करने का अधिकार दिया गया। सन् १९४९-५० में पाकिस्तान का चाय उत्पादन ३ करोड़ ९० लाख पौंड था।

चाय का निर्यात व्यापार **चिटगांव** के द्वारा होता है। इस बन्दरगाह से चाय और पटसन दोनों का ही निर्यात होता है। अतः दोनों में काफी स्पर्धा रहती है। चिटगांव से प्रतिवर्ष केवल ६ लाख टन का व्यापार हो सकता है। परन्तु चाय व्यापार की एक दूसरी समस्या चाय बन्द करने के बक्सों की कमी है।

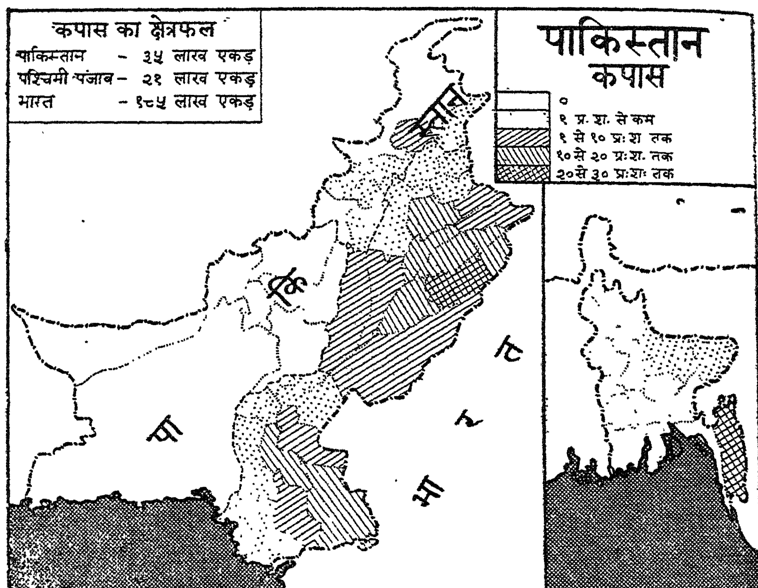
कपास पश्चिमी पाकिस्तान की सबसे प्रमुख व्यावसायिक फसल है। आदिकाल से सिन्धु घाटी में कपास की खेती होती आ रही है और जैसा मोहनजोदारो सभ्यता के चिन्हों से पता चला है। यद्यपि पाकिस्तान के सभी भागों में इसकी खेती की जाती है परन्तु पश्चिमी पंजाब व सिन्ध में ९७ प्रतिशत कपास उत्पन्न होती है। पश्चिमी पंजाब की ९० प्र. श. कपास मुल्तान, मोन्टोगमरी, लायलपुर, शाहपुर, लाहौर, शेखूपुरा और झंग जिलों से प्राप्त होती है। इन जिलों में २०-३० प्र. श. कृषिभूमि कपास की खेती में लगी हुई है।

कपास उत्पादन व क्षेत्रफल (१९५०–५१)

क्षेत्र	हजार एकड़	हजार गांठ (३९२ पौंड)
पश्चिमी पंजाब	१७१३	६२५
सिन्ध	८१३	४५०
रियासतें	४१९	१९४
सीमाप्रांत	११	३
पूर्वी पाकिस्तान	१२५०	१८
	३०११	१३२०

पिछले कुछ दिनों में उत्पादन व क्षेत्रफल दोनों ही कम हो गए हैं। सन् १९४५-४६ में क्षेत्रफल ३ करोड़ ३१ लाख एकड़ और उत्पादन १ करोड़ ५ लाख गांठ था। उत्पादन की कमी का कारण निर्यात की कमी है। वास्तव में ऊंचे दाम व खराब किस्म की वजह से विदेशों में पाकिस्तान की रूई की मांग कम हो गई है। निर्यात को प्रोत्साहन देने के लिये सरकार ने छोटे रेशेवाली कपास पर निर्यात कर भी कम कर दिया है।

सिंध के थारपारकार, हैदराबाद और नवाबशाह जिलों में कपास की खेती होती है और प्रांतीय उत्पादन का ९५ प्रतिशत भाग इन्हीं जिलों से प्राप्त होता है। इधर कुछ



चित्र नं० ८७—पश्चिमी पंजाब के पूर्वी भाग और सिंध के हैदराबाद जिले में कपास की खेती विशेष महत्वपूर्ण है।

दिनों में सिन्ध व पश्चिमी पंजाब के तर जलवायु वाले क्षेत्रों में या नहरों द्वारा सिंचाई करके लम्बे रेशेवाली अमरीकी कपास उगाई जाने लगी है। इन पौधों को तैयार होने में ७ महीने लगते हैं और इस बीच में पाले का कोई डर नहीं होना चाहिये। इस समय पाकिस्तान की ४० लाख एकड़ भूमि पर इसी प्रकार की कपास उगाई जाती है। और कुल उत्पादन की मात्रा १३ लाख गांठ है अमरीकी किस्म की कपास का उत्पादन व क्षेत्रफल कुल कपास का क्रमशः ८० व ७५ प्रतिशत है ।

पाकिस्तान अपनी कपास का अधिकतर भाग निर्यात कर देता है और कुल का ८० प्र.श. भाग अकेला भारत ही ले लेता है।

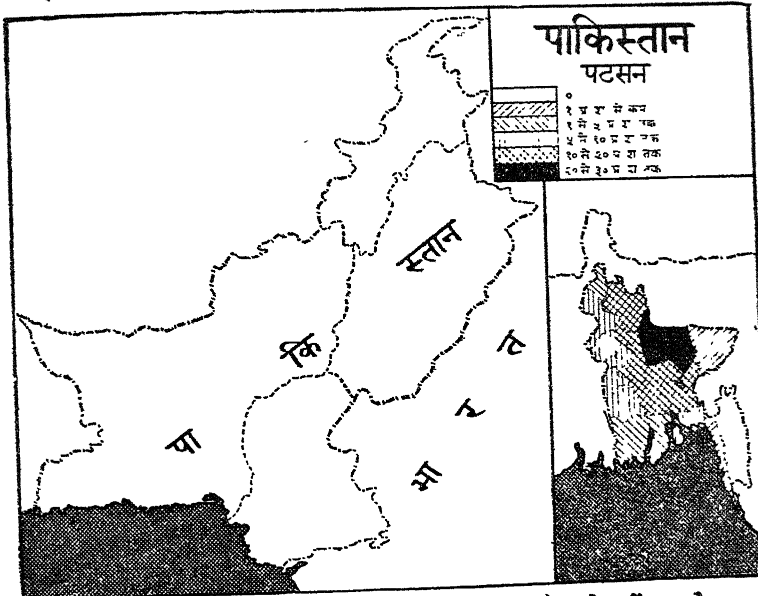
पटसन के उत्पादन में पाकिस्तान का एकछत्र आधिपत्य है। संसार में पटसन के कुल उत्पादन का ८० प्र. श. भाग पूर्वी बंगाल से प्राप्त होता है। सन् १९४९-५० में पाकिस्तान में १५ लाख एकड़ से अधिक भूमि पर पटसन की खेती हुई। पूर्वी पाकिस्तान की ८ प्रतिशत कृषि भूमि या १२ लाख एकड़ भूमि पर पटसन की खेती की जाती है और इस पर सरकारी निरीक्षण रहता है।

संसार में पाकिस्तान का पटसन उत्पादन (हजार मीट्रिक टन)

	संसार	पाकिस्तान
१९३५-३९	१५१०	११२५
१९४०-४४	१६३५	१२५७
१९४५	१४७५	११२१
१९४८	१५७८	१२४२

सन् १९५१ में पाकिस्तान ने ४०० पौंड तोल की ४४ लाख गांठ पटसन उत्पन्न किया। पूर्वी बंगाल की आर्द्र जलवायु पटसन की खेती के लिये बहुत उपयुक्त है। रेशों की किस्म व मात्रा भूमि पर निर्भर रहती है। पूर्वी बंगाल में पटसन की खेती ३ प्रकार की भूमि पर होती है—(१) उच्च भूमि की उपजाऊ बलुही दोमट मिट्टी में सबसे उत्तम प्रकार का पटसन उगाया जाता है। (२) चारभूमि पर जो नदियों द्वारा बहाकर लाई हुई मिट्टी से बनी है और नदियों के समीप स्थित रहती है। वर्षा ऋतु में इनमें बाढ़ का पानी भर जाता है और इन भूमियों में खाद भी नहीं देना पड़ता। (३) नदियों के डेल्टा प्रदेश के दलदली निचली भूमि में।

पूर्वी बंगाल में पटसन उगाने वाले चार मुख्य प्रदेश हैं—नारायनगंज, सिराजगंज, उत्तराया और देवरा—और इन्हीं के नामों पर चार प्रकार के पटसन का अलग-अलग नाम पड़ गया है। **नारायनगंज का पटसन** ब्रह्मपुत्र नदी की पुरानी घाटी में मेमनसिंह, ढाका और टिपरह के जिलों में उगाया जाता है। पुरानी ब्रह्मपुत्र के समान स्वच्छ जल और कहीं नहीं



चित्र नं० ८८—पटसन पूर्वी बंगाल की मुख्य उपज है—मेमनसिंह और ढाका इसके मुख्य क्षेत्र हैं।

मिलता। परन्तु अधिकतर भूमि उपजकाल में बाढ़ के पानी के नीचे दबी रहती है। अतः पटसन के पौधों के रेशे मुलायम व मोटे हो जाते हैं। इसीलिये यह पटसन सब से अच्छा होता है।

सिराजगंज का पटसन—पबना, बोगरा, रंगपुर, और पश्चिमी मेमनसिंह जिलों में ब्रह्मपुत्र नदी की नई तलहटी और जमुना नदी की घाटी में उगाया जाता है। जमुना का पानी भी काफी साफ है।

उत्तराया या उत्तरी पटसन—उच्च भूमि से प्राप्त होता है और इस उत्पादन के मुख्य क्षेत्र राजशाही, बोगरा, रंगपुर, दिनाजपुर और माल्दा हैं। इस प्रदेश में ब्रह्मपुत्र की सहायक नदियों से जल प्राप्त होता है। परन्तु साफ पानी की कमी के कारण अधिकतर पटसन को तालाबों के पानी से धोना पड़ता है। इसी गंदले पानी के कारण बहुधा पटसन का रंग भी मटमैला हो जाता है।

देवरा पटसन—फरीदपुर जिले के उन भागों में उगाया जाता है जहां गंगा नदी का पानी उपलब्ध है। यह पटसन बड़ा मजबूत होता है परन्तु साथ-साथ कड़ा व रूखा भी होता है। अतः इससे बोरे व डोरियां बनाई जाती हैं।

पूर्वी पाकिस्तान का ७० प्र. श. पटसन अकेले मेमनसिंह से प्राप्त होता है। मध्य फरवरी से अप्रैल के मध्य तक पटसन बोया जाता है और फिर जून के महीने से कटाई प्रारम्भ हो जाती है। कटाई का मौसम सितम्बर के शुरू तक रहता है। पटसन की औसत प्रति एकड़ उपज १२०३ पौंड है। सन् १९४७-४८ में पटसन की प्रति एकड़ उपज १३२९ पौंड थी—यह मात्रा संसार में सबसे अधिक है। पूर्वी बंगाल की २० लाख एकड़ भूमि पर पटसन की खेती होती है और प्रतिवर्ष ६९० लाख गांठ पटसन प्राप्त होता है। प्रति गांठ की तौल ४०० पौंड होती है।

पूर्वी पाकिस्तान के किसानों का यह मुख्य उद्यम है और देश की समृद्धि इसी पर निर्भर रहती है। परन्तु पाकिस्तान में पटसन की एक भी मिल नहीं है और आजकल पटसन की गांठ बनाने का प्रबंध भी असंतोषजनक है। अतः अधिकतर कच्चे पटसन को ठीक तरह से बांधने व तैयार करने के लिये भारत भेज दिया जाता है जहां से इसका विदेशों को निर्यात होता है।

पटसन का निर्यात व्यापार—सन् १९५०-५१ में पाकिस्तान ने ४६ लाख गांठ पटसन निर्यात किया। इनमें से २४ लाख गांठें कलकत्ता को नावों व स्टीमर जहाजों द्वारा भेजी गईं। भारत पाकिस्तान की पटसन का सबसे बड़ा ग्राहक है और यहां प्रतिवर्ष करीब ४० लाख गांठ पटसन की मांग रहती है। निर्यात का एक चौथाई भाग ग्रेट ब्रिटेन को चला जाता है, इसके बाद बेल्जियम, इटली व फ्रांस का स्थान क्रमशः महत्वपूर्ण है।

चिटगांव के बन्दरगाह से केवल ५१,४०० गांठें ही बाहर भेजी गईं। पाकिस्तान सरकार चिटगांव बन्दरगाह का विकास कर रही है ताकि वहां से अधिक निर्यात हो सके। इस समय चिटगांव में न तो क्रय-विक्रय की सुविधाएं हैं और न माल रखने की ही ।

पाकिस्तान के पटसन व्यवसाय में सबसे महत्वपूर्ण काम सन् १९५० के अगस्त महीने में हुआ जबकि वहां की सरकार ने 'पाकिस्तान केंद्रीय पटसन समिति' की स्थापना की। यह समिति पटसन की कृषि आर्थिक दशा व अन्य बातों का निरीक्षण करती है और बीज, यातायात तथा क्रय-विक्रय संबंधी विषयों में अनुसंधान द्वारा पटसन व्यवसाय को सहायता पहुंचाती है।

पटसन की कमी और पाकिस्तान के एकछत्र आधिपत्य के कारण कई देशों में इसके स्थान पर दूसरी वस्तुओं को स्थानान्तरित करने के लिये प्रयोग हो रहे हैं। बेल्जियन कांगो में यूरेना लोबाटा नामक एक जंगली रेशेदार पौधा उगता है और इसका वार्षिक उत्पादन कई हजार टन है। लेपोल्ड विले में इससे बोरे तैयार करने का एक कारखाना स्थापित कर दिया गया है। इससे मामूली किस्म का रेशेदार पौधा पंजा कहलाता है। दसवर्षीय योजना में कांगो सरकार इसका वार्षिक उत्पादन ११००० टन से २४००० टन कर देगी। जावा तो चीनी के बोरों के वास्ते आत्मनिर्भर हो गया है। वहां पटसन की तरह का रोजेला नामक रेशेदार पौधा उगाया जाता है। **मन्चूरिया** में किनाक नामक एक पौधा विस्तृत रूप से उगाया जाता है और उसके रेशे से सोयाबीन भरने के बोरे तैयार किये जाते हैं। **फिलीपाइन** का मेनीला हेम्प और **इन्डोचीन** का पोलोम्पन पटसन की तरह के ही रेशेदार पौधे हैं। इस प्रकार के पौधों की बढ़ती हुई खेती से पूर्वी पाकिस्तान में पटसन की खेती को धक्का लगने का डर है।

तिलहन—पाकिस्तान में १८ लाख एकड़ भूमि पर तिलहन की खेती की जाती है जब कि भारत में २ करोड़ एकड़ भूमि तिलहन की खेती में लगी हुई है। यहां के मुख्य तिलहन अलसी और रेंडी हैं। पूर्वी बंगाल में तिलहन का उत्पादन तो अधिक है परन्तु होता निम्न कोटि का है। यहां के मुख्य तिलहन सरसों, अलसी व तिल हैं।

तिलहन का उत्पादन व क्षेत्रफल (१९५०-५१)

	क्षेत्रफल (हजार एकड़)			**उत्पादन (हजार टन)**		
	सरसों	तिल	अलसी	सरसों	तिल	अलसी
पूर्वी बंगाल	४८८	१४४	६०	८९	२७	९
पश्चिमी पंजाब	३६०	३०	६	६९	३	१
सिन्ध	३२४	१५	—	४७	२	—
सीमाप्रांत	९३	२	—	७	—	—
रियासतें	२८७	१०	—	६२	२	—
	१६२६	२०१	६६	२७८	३४	१०

अलसी की खेती पूर्वी पाकिस्तान में बहुत प्रधान है। पाकिस्तान की कुल ७८,००० एकड़ अलसी भूमि में से ६८,००० एकड़ अकेले पूर्वी पाकिस्तान में है।

वन सम्पत्ति

पाकिस्तान के ६० लाख एकड़ से अधिक क्षेत्रफल में वन पाये जाते हैं। यह क्षेत्रफल कुल विस्तार का तीसवां हिस्सा है। शुष्क जलवायु के कारण सिन्ध व सीमाप्रांत में तो

वन बहुत कम हैं। पश्चिमी पंजाब का २ प्र. श. क्षेत्रफल ही वनाच्छादित है। परन्तु पूर्वी पाकिस्तान में दक्षिणी तटीय प्रदेश व चिटगांव में विस्तृत वन पाये जाते हैं। परन्तु पूर्वी बंगाल के वनाच्छादित प्रदेश संबद्ध नहीं हैं। उत्तरपूर्व में मेमनसिंह और सिलहट के प्रदेश वन से ढके हुए हैं और फिर दक्षिणी पूर्व में चिटगांव का प्रदेश वनाच्छादित है। बीच के प्रदेश में वन नहीं के बराबर हैं। ये वन एक ही भाग में केंद्रित हैं। और विस्तार को देखते हुए बहुत कम हैं। अतः पाकिस्तान सरकार को वन और लगवाने चाहिएं।

पाकिस्तान के वनप्रदेशों का क्षेत्रफल (१९४६)
(हजार एकड़ में)

पूर्वी बंगाल	३११७	बलूचिस्तान	९००
सिन्ध	७१६	सीमाप्रांत	३५३
पश्चिमी पंजाब	११४९	कुल योग	६२३५

पाकिस्तान में निम्नलिखित पेड़ों से व्यापारिक लकड़ी पायी जाती है:—

(१) **बबूल**—यह सिन्ध, बलूचिस्तान और पश्चिमी पंजाब में पाया जाता है। बबूल की लकड़ी व छाल कई प्रकार से प्रयोग की जाती है। छाल से तो चमड़ा साफ किया जाता है और लकड़ी से बैलगाड़ियां, कृषि संबंधी यन्त्र व हल तथा खम्भे व शहतीर आदि बनाये जाते हैं। इस लकड़ी का कोयला भी बहुत अच्छा होता है।

(२) **नीला चीड़**—यह सीमाप्रांत व पश्चिमी पंजाब के पहाड़ी भागों में पाया जाता है।

(३) **गुरजन**—इसका घर पूर्वी बंगाल है और इसकी लकड़ी से नावें व माल भरने के बक्स बनाये जाते हैं।

(४) **गमरी**—यह भी पूर्वी बंगाल का पेड़ है और नावें, बजरे व पेटियां बनाने में प्रयोग होता है।

(५) **सुन्दरी**—पूर्वी बंगाल का पेड़ है। डेल्टा भागों में होता है।

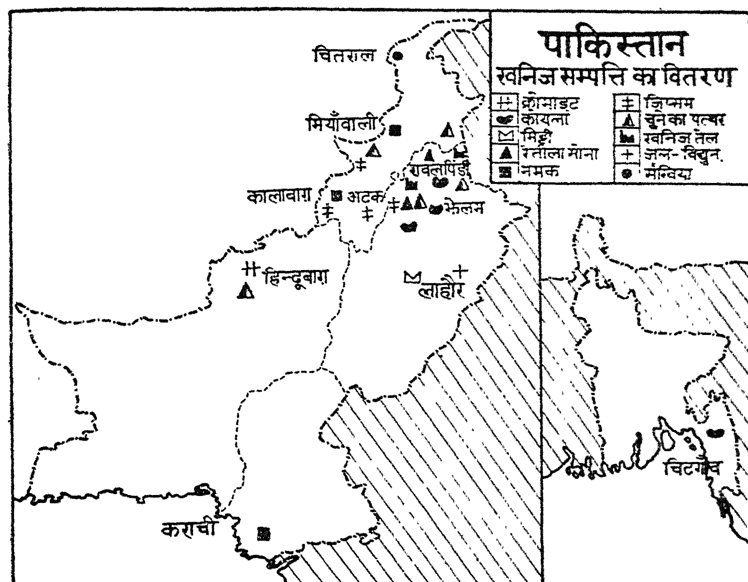
(६) **बांस**—पूर्वी बंगाल के पूर्वी भागों में खूब होता है और कई प्रकार के प्रयोग में आता है। नोआखली, टिपरह, मेमनसिंह, सिलहट और चिटगांव में बांस खूब होता है। सस्ते मूल्य के कारण गांवों में इससे दीवालें, छप्पर व टहर बनाते हैं।

पाकिस्तान में वनसंपत्ति के विस्तार व उपभोग के विषय में कोई व्यवस्थित खोजपूर्ण अध्ययन नहीं हुआ है। अतः विश्वसनीय आंकड़े उपलब्ध नहीं हैं।

खनिज सम्पत्ति

खनिज संपत्ति के दृष्टिकोण से पाकिस्तान की दशा बहुत अधिक संतोषजनक नहीं है। फिर भी पाकिस्तान में विविध प्रकार के खनिज पाये जाते हैं। पाकिस्तान के बहुत से प्रदेशों में खनिज उत्पादन की विशेष संभावनायें हैं। परन्तु जब तक उचित अन्वेषण द्वारा इस निहित संपत्ति का पता नहीं लगाया जाता, तब तक पाकिस्तान को औद्योगिक खनिज पदार्थों के लिये विदेशों पर निर्भर रहना पड़ेगा। इस समय पाकिस्तान में लोहा, मैंगनीज, मोनाजाइट, तांबा, अभ्रक और बाक्साइट बिल्कुल नहीं पाया जाता। कई प्रदेशों में अन्वेषण चल रहा है। और ऐसी आशा है कि सीमाप्रांत में बन्नू के दक्षिण

पूर्व में लोहा; चितराल, कोहाट, और बलूचिस्तान में मैंगनीज, बलूचिस्तान, चितराल और वजीरिस्तान में तांबा; हजारा जिले, पश्चिमी पंजाब और बलूचिस्तान में अभ्रक तथा बलूचिस्तान में बाक्साइट की खानें मिल सकेंगी। पश्चिमी पंजाब और बलूचिस्तान में २५० फीट नीचे उत्तम कोटि के कोयले की विस्तृत खान है। प्रयोगशालाओं में प्रयोग द्वारा यह देखा गया है कि यह कोयला बायलर या अन्य मतलब का नहीं है परन्तु इसमें और बहुत-सी विशेषतायें पायी जाती हैं। इस कोयले से गंधक, कोयला गैस व अन्य प्रकार की बहुत-सी गौण वस्तुएं प्राप्त की जा सकती हैं जिनके सहारे विशेष औद्योगिक उन्नति हो सकती है। इसके अलावा इस कोयले से कोयले की ईंटें और कोक बनाया जा सकता है जिसे बायलर या घरों में जलाने के काम में ले आया जा सकता है।



चित्र नं० ८९—पूर्वी पाकिस्तान में खनिज पदार्थों की कमी ध्यान देने योग्य है। कोयले और खनिज तेल की सम्भावनायें हैं।

पाकिस्तान का खनिज उत्पादन (१९५१) (टन में)

खनिज पदार्थ	**मात्रा**
क्रामाइट	१७,४९८
कोयला	५०४,७०३
जिप्सम	२२,७८४
चूने का पत्थर	३४३,९५६
सिलिका बालू	५,३२५
अग्नि मिट्टी	४,१०८
खनिज तेल	१५०,००० मीट्रिक टन

पाकिस्तान सरकार को अपनी खनिज संपत्ति की ओर विशेष ध्यान देना चाहिये। बलूचिस्तान, चितराल और उत्तरी सीमाप्रांत की पश्चिमी तलैटी में ही अधिक खनिज संपत्ति पायी जाती है परन्तु इन प्रांतों में औद्योगिक उन्नति सब से कम है। इनके विपरीत जहां उद्योग-धंधे व जनसंख्या का घनत्व अधिक है वहां खनिज संपत्ति का उत्पादन नहीं के बराबर है। वास्तव में पाकिस्तान की खनिज संपत्ति का औद्योगिक व व्यापारिक उपयोग सस्ते व शीघ्रगामी यातायात के साधनों के विकास पर निर्भर है।

इस राष्ट्र के मुख्य खनिज क्रोमाइट, पेट्रोलियम, नमक, शोरा, जिप्सम, चूने का पत्थर, मिट्टी, फुलर्स अर्थ और सुरमा हैं। झेलम, शाहपुर और मियांवाली के जिलों में नमक की पहाड़ी फैली है और इससे पहाड़ी सेन्धा नमक प्राप्त होता है। खेवड़ा के गांव के पास मुख्य सतह की मोटाई ५५० फीट है और इनकी ५ तह जो प्रत्येक २७५ फीट मोटी है उनका नमक बहुत साफ है। साथ ही अन्य तहों में मिट्टी मिली हुई पायी जाती है और पोटाश व मैगनीशियम भी मिला हुआ रहता है। सिन्धु नदी पर स्थित कालाबाग के पूर्व-उत्तर-पूर्व में खुली खानों से नमक निकाला जाता है। सीमाप्रांत के कोहाट प्रदेश में खुली खानों से नमक निकाला जाता है और यहां नमक का अटूट भंडार है।

खनिज	वार्षिक उत्पादन	उत्पादन का क्षेत्र
क्रोमाइट	१९५० में उत्पादन १८,१२५ टन था (अधिकतर क्रोमाइट निर्यात कर दिया जाता है)	बलूचिस्तान, में ऊपरी पिशीन घाटी और हिन्दूबाग में, सीमाप्रान्त और चितराल। इन प्रदेशों में उच्चकोटि के क्रोमाइट का अपार भंडार है।
जिप्सम	सन् १९५० में उत्पादन १६,६४६ टन था।	पश्चिमी पंजाब में झेलम शाहपुर और मियांवाली; बलूचिस्तान, सिन्ध और सीमाप्रांत। डेराइस्माइल खां में जिप्सम का अपार भंडार है।
फुलर्स अर्थ (Fuller's Earth)	औसत वार्षिक उत्पादन ३००० टन है। यह मिट्टी बड़ी कठोर है और साबुन, कागज और रंग बनाने में प्रयोग की जाती है।	पश्चिमी पंजाब, सीमा प्रांत और सिन्ध।
नमक	सन् १९५०-५१ में पहाड़ी नमक का उत्पादन ४० लाख मन था। सन् १९४८-४९ में उत्पादन की मात्रा ५७ लाख थी। कोहाट और पश्चिमी पंजाब में मिलाकर ३० लाख टन पहाड़ी नमक उत्पन्न होता है।	सिन्ध, पश्चिमी पंजाब और सीमा प्रांत। सिन्ध के मौरीपुर में समुद्र के पानी से साधारण नमक तैयार किया जाता है। सन् १९५० में उत्पादन ५०० लाख मन था।

खनिज	वार्षिक उत्पादन	उत्पादन का क्षेत्र
चूने का पत्थर	३०३,००० टन।	पश्चिमी पंजाब, अटक, झेलम और रावलपिंडी तथा उत्तरी पश्चिमी सीमाप्रांत।
अग्नि मिट्टी	सन् १९४९ में इसका कुल उत्पादन ६९९७ टन था। सन् १९५०-५१ में यह उत्पादन केवल १९८०टन ही रह गया।	पश्चिमी पंजाब। डेरा इस्माइल खां में फायर क्ले तथा सिन्ध व चितराल में रंगीन मिट्टी पायी जाती है।
शोरा	—	पश्चिमी पंजाब
सुरमा	अपार भंडार है पर अधिक विकास नहीं हुआ है। सन् १९४६ में उत्पादन ५८४ टन था।	चितराल और कलात राज्य। चितराल की १३,५०० फीट ऊंचाई तथा सर्द जलवायु के कारण अधिक काम नहीं हो पाया है।
मिट्टी में मिला हुआ सोना	बहुत थोड़ा	पश्चिमी पंजाब के अटक, मरदान, हजारा और झेलम जिलों में इस समय स्थली सतह पर ही सोना निकाला जाता है।
आरसेनिक	—	चितराल
ग्रेनाइट	२ लाख टन	पश्चिमी पंजाब और सीमा-प्रांत।

पाकिस्तान में औद्योगिक शक्ति के साधन

आजकल किसी भी देश की औद्योगिक उन्नति के लिए शक्ति के साधनों का होना बहुत आवश्यक है। शक्ति कोयला, तेल और जल से प्राप्त की जाती है। पाकिस्तान में शक्ति के साधनों से ६९,०७४ किलोवाट बिजली उत्पन्न की जाती है। उसका ब्योरा इस प्रकार है—कोयले की भाप से ३२८६८ किलोवाट, जल-विद्युत १०७०० किलोवाट; डीज़ल इंजनों में तेल से २५४५० किलोवाट और गैस से ५६ किलोवाट।

कोयला—मात्रा व प्रकार दोनों के ही दृष्टिकोण से पाकिस्तान में उपलब्ध कोयला बहुत मामूली होता है। पाकिस्तान में प्रतिवर्ष ३ लाख टन टरशियरी प्रकार का कोयला निकाला जाता है। इसमें राख, धूल और गंधक की अधिकता रहती है और यह घरेलू उपयोग या कोक बनाने के लिए बिल्कुल व्यर्थ होता है। पश्चिमी पंजाब के शाहपुर, झेलम और मियांवाली जिलों में कोयले की खान हैं। पश्चिमी पंजाब के कोयले में जलने की

ाक्ति कम होती है और राख भी कम ही होती है पर गंधक का अंश बहुत अधिक होता है। ऐसा अनुमान है कि बलूचिस्तान, सीमाप्रान्त, और पश्चिमी पंजाब में ३ लाख टन कोयले का अपार भंडार है।

सीमाप्रान्त में कोयले के ३ संभावित क्षेत्र हैं—(१) हजारा जिले की डोर नदी घाटी में; (२) कोहाट जिले में बड़ौच घाटी के उत्तर में और (३) दक्षिणी वजीरिस्तान के स्पली टाय में मीरा क्वान्ड स्थान पर। बलूचिस्तान में खोस्ट प्रदेश भविष्य में एक महत्वपूर्ण कोयला क्षेत्र हो जायेगा। सरकार ने बलूचिस्तान के शारिग कोयला क्षेत्र का विकास करना शुरू कर दिया है।

पाकिस्तान में कोयले का उत्पादन (१९५०)

बलूचिस्तान	२३४,६४१ टन
पंजाब	१९१,९०८ ,,
सिन्ध	२,९८८ ,,
उत्तरी पश्चिमी सीमाप्रान्त	७,२१३ ,,
कुल योग	४३६,७५० ,,

पूर्वी पाकिस्तान में कोयले का नितान्त अभाव है। इसलिए अपनी मांग की पूर्ति के लिए इसे कोयला बाहर से आयात करना होता है। यह पश्चिमी बंगाल से मंगाया जाता है। ऐसा अनुमान है कि चिटगांव के पूर्वी भाग में कोयले का निहित भंडार है। परन्तु निकट भविष्य में इस क्षेत्र का विकास होना असंभव है। पाकिस्तान सरकार अपने कोयले का सबसे अच्छा उपभोग करने के लिए एक ईंधन अन्वेषण केन्द्र स्थापित कर रही है।

इस समय पाकिस्तान को प्रतिवर्ष १५ लाख टन कोयले की आवश्यकता रहती है। इस मांग की पूर्ति के लिए देश को दक्षिणी अफ्रीका, चीन, ग्रेट ब्रिटेन, फ्रांस और हॉलैंड से कोयला मंगवाना पड़ता है। पाकिस्तान की औद्योगिक मांग की पूर्ति के लिए दक्षिणी अफ्रीका का कोयला बहुत अच्छा होता है परन्तु भारतीय कोयला रेल के इंजिनों के लिए विशेष रूप से अच्छा होता है। दक्षिणी अफ्रीका के पास व्यापारिक जहाजों का बेड़ा है इसलिए पाकिस्तान पहुंचने पर यह कोयला भारतीय कोयले से सस्ता पड़ता है।

खनिज तेल—पाकिस्तान की सब खनिज सम्पत्ति में खनिज तेल का स्थान सब से प्रमुख है।

पाकिस्तान में खनिज तेल का उत्पादन बराबर बढ़ रहा है, जैसा कि निम्न तालिका से स्पष्ट हो जायेगा—

१९४७	३,००,००० बैरल
१९४९	८,२३,५५० ,,
१९५१	११,००,००० ,,

पाकिस्तान की घरेलू मांग का वार्षिक औसत ५ लाख बैरल है। यद्यपि भूगर्भतत्व

विशेषज्ञों के अनुसार पाकिस्तान के कई प्रदेशों में खनिज तेल का भंडार है परन्तु केवल एक क्षेत्र से ही विशेष उत्पादन होता है । इस क्षेत्र में दो खानें हैं—**खौर** और **धूलियन**। ये दोनों ही पश्चिमी पंजाब के अटक जिले में स्थित हैं। सन् १९२९ में खोर तेल क्षेत्र से सबसे अधिक तेल प्राप्त हुआ था—४,८०,२२२ बैरल । परन्तु उसके बाद से इसका उत्पादन बराबर कम होता जा रहा है। फिर भी अभी कई वर्षों तक यह क्षेत्र बड़ा ही महत्वपूर्ण रहेगा । **धूलियन** क्षेत्र का भी सबसे अधिक उत्पादन सन् १९४१ में हुआ और तभी से इसका उत्पादन भी बराबर कम हो रहा है।

अटक तेल कम्पनी ने इन दोनों क्षेत्रों पर सन् १९१५ और सन् १९३७ में क्रमशः काम शुरू किया। हिमालय की बाहरी श्रेणियों से २० मील की दूरी पर ये दोनों ही क्षेत्र स्थित हैं। पिछले कुछ दिनों में इनका वार्षिक उत्पादन २०० से ३६० लाख गैलन तक रहा है। इस तेल को साफ करने का कारखाना रावलपिन्डी में है जो खौर तेल-क्षेत्र से ५६ मील दूर है और धूलियन तेल-क्षेत्र से ६७ मील। पाइप लाइनों द्वारा यह तेल रावलपिन्डी के कारखाने तक पहुंचाया जाता है। रावलपिन्डी से ४० मील दक्षिण में जोयामेर के क्षेत्र में भी तेल निकाला जाने लगा है। भविष्य में इसके विकास की विशेष सम्भावनायें हैं।

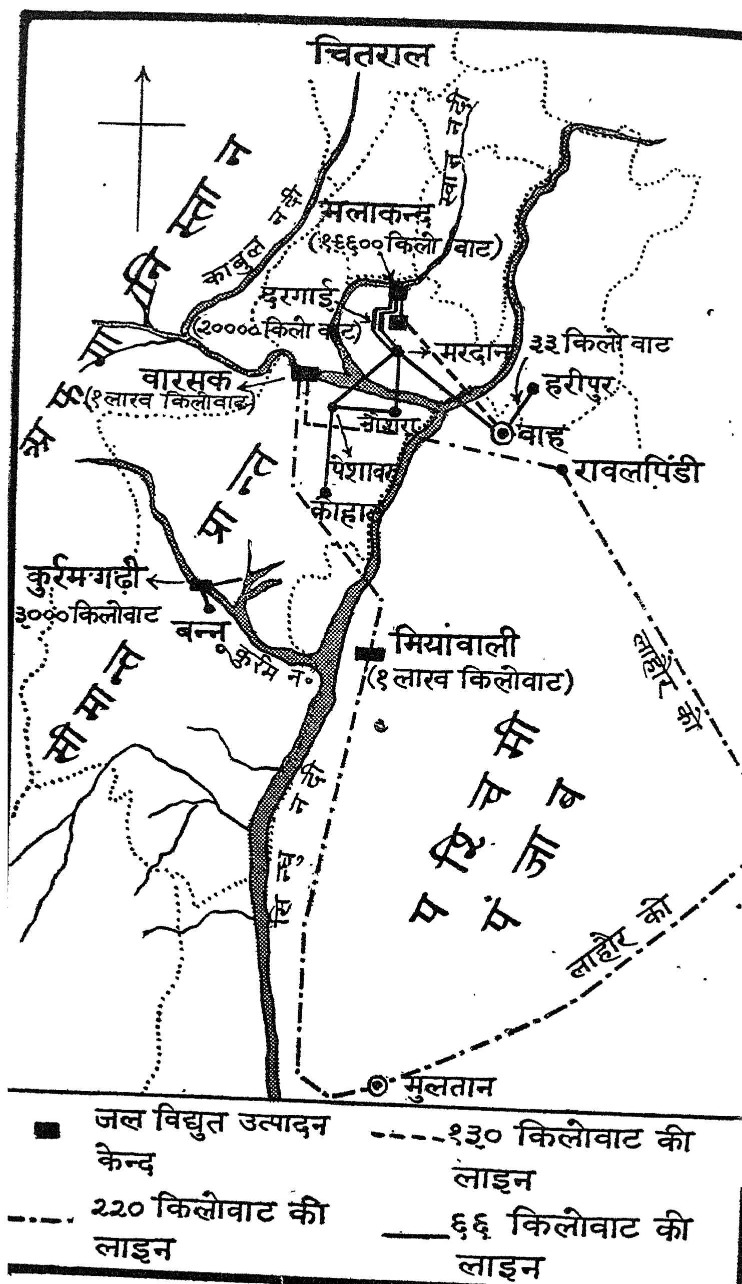
पश्चिमी पंजाब में तेल के उद्यम में करीब ३५०० मनुष्य लगे हुए हैं। सिन्ध के लखरा स्थान पर बर्मा तेल कम्पनी के संरक्षण में विकास कार्य चल रहा है। अब तक ९००० फीट से अधिक गहराई तक खोदाई हो चुकी है।

सीमाप्रान्त, सिन्ध, बलूचिस्तान और पश्चिमी पंजाब में तेल उत्पादन की विशिष्ट संभावनायें हैं। कोहाट का नमक क्षेत्र, उत्तरी वजीरिस्तान, डेरा इस्माइल खां और बन्नू जिलों में तेल निकालने की काफी संभावना है। साथ-साथ एक बात और भी है। वह है कि पश्चिमी पंजाब व बलूचिस्तान में अनावृत्तिकरण व पृथ्वीतल पर होने वाले अन्य विस्फोटक परिवर्तनों के कारण इन प्रदेशों का बहुत कुछ तेल भंडार गायब सा हो गया है। तेल के स्रोत तो नजर आते हैं पर उनके नीचे कोई विशेष भंडार निहित नहीं है। पूर्वी पाकिस्तान में सिलहट व चिटगांव के जिलों में खनिज तेल प्राप्त होने की पर्याप्त संभावनायें हैं और इस ओर खोज कार्य बहुत शीघ्र प्रारम्भ होगा।

सन् १९५० में पाकिस्तान का कच्चा तेल उत्पादन ११,१८,४४० बैरल था औ प्रत्येक बैरल ४० गैलन का होता है। विभिन्न क्षेत्रों का इस उत्पादन में भाग इस प्रकार था—

खाम क्षेत्र	१४,९०६ बैरल	धूलियन क्षेत्र	८,५१,५५८ बैरल
जोयामोइर	१,४९,७९५ बैरल	बालकासार	५,२९,०४५ बैरल

जलविद्युत—पाकिस्तान में जलविद्युत के विकास के लिये विशेष साधन उपस्थित हैं। पाकिस्तान की संभावित जलशक्ति ६० लाख किलोवाट है जिसमें से अभी तक केवल १०,७०० किलोवाट बिजली विकसित की गई है। इस समय चार जल-विद्युत योजनाओं पर कार्य हो रहा है : (१) पूर्वी बंगाल में कर्नफुली योजना (२) पश्चिमी पंजाब में रसूल जलविद्युत योजना (३) सीमाप्रान्त के मालाकन्द केन्द्र का विकास और (४) मालाकन्द के समीप दरगाई केन्द्र।



चित्र नं० ९०—पश्चिमी पाकिस्तान की जलविद्युत योजनायें ध्यान देने योग्य हैं

रसूल जलविद्युत योजना पश्चिमी पंजाब की सबसे महत्वपूर्ण योजना है। इस पर काम प्रारम्भ हो गया है। ऊपरी झेलम नहर का निचली नहर में जो जल-प्रपात बनता है उसी से बिजली उत्पन्न की जायेगी। इससे १४००० किलोवाट बिजली उत्पन्न होगी और २०,००० किलोवाट अतिरिक्त बिजली से नगरों में रोशनी व खेतों में सिंचाई का प्रबन्ध हो सकेगा।

कर्नफुली योजना के अन्तर्गत कर्नफुली नदी के जल से बिजली बनाई जावेगी। इस समय शक्ति के अभाव के कारण पूर्वी पाकिस्तान की औद्योगिक उन्नति नहीं हो सकती। इस योजना से ६० हजार किलोवाट बिजली उत्पन्न होगी। और इसके द्वारा चिटगांव, चांदपुर और कोमिला में उद्योग-धंधे व रोशनी का प्रबन्ध हो सकेगा। इसके अलावा इस शक्ति की सहायता से कर्नफुली नदी के मुहाने तक नावें चल सकेंगी, बाढ़ें रोकी जावेंगी और ७० हजार एकड़ भूमि पर सिंचाई की जा सकेगी।

बारसक बांध पेशावर के २९ मील पश्चिम में स्थित है और इसके बन जाने पर काबुल नदी का पानी १५० फीट ऊंचा हो जावेगा। इससे नदी के दाहिने किनारे पर से नहरों द्वारा ६० हजार एकड़ भूमि को सींचा जा सकेगा और बायें किनारे की नहरों द्वारा ५ हजार एकड़ भूमि की सिंचाई होगी। फलतः १००० सरहदी लोग नई भूमि पर सिंचाई की सहायता से खेती-बारी कर सकेंगे और उससे उत्पादित शक्ति की सहायता से छोटे-मोटे उद्योग चला सकेंगे। काबुल नदी की नहरों द्वारा फिर से वन लगाये जावेंगे। और पेशावर की पहाड़ियों के निचले ढालों पर बड़े वृक्ष उगाये जायेंगे। इन जंगलों के बढ़ जाने पर पेशावर में ईंधन की कमी दूर हो जावेगी और सरहदी लोगों के लिए लकड़ी काटने का उद्यम महत्वपूर्ण हो जावेगा। यह तो हुई बारसक बांध योजना के गौण लाभों की बात। इससे सबसे महत्वपूर्ण लाभ यह होगा कि १ लाख किलोवाट बिजली उत्पन्न होगी और इसकी सहायता से पंजाब व सीमाप्रान्त का औद्योगीकरण हो सकेगा।

मालाकन्द की जल-विद्युत योजना से अनेक लाभ होंगे। यह योजना बिल्कुल तैयार हो चुकी है और उसका उत्पादन केन्द्र दरगाई में है। यह २०,००० किलोवाट बिजली उत्पन्न करेगी और बाह के सीमेंट कारखानों को इसी से १०,००० किलोवाट शक्ति प्राप्त होती है। इसके अलावा पश्चिमी पंजाब व सीमाप्रान्त के ८८ नगरों व गांवों में रोशनी की व्यवस्था की जा सकेगी।

कुर्रमगढ़ी योजना—उत्तरी सीमाप्रान्त के दक्षिणी भाग में एक और योजना पर काम हो रहा है। बन्नू के पास कुर्रम गढ़ी नामक स्थान पर कुर्रम नदी पर एक बांध बनाया जावेगा, जिससे नहरों को पानी दिया जावेगा और करीब ३००० किलोवाट बिजली तैयार की जावेगी। इस बिजली को बन्नू व डेरा इस्माइलखां के जिलों में प्रयोग किया जा सकेगा।

फलों का उत्पादन

विविधता और मात्रा के दृष्टिकोण से पाकिस्तान फलों का विशेष धनी है। हर प्रान्त में व्यापार के लिये फल उगाये जाते हैं। फलों का वार्षिक उत्पादन ३० लाख टन

है। इसका ६०-७० प्रतिशत तो देश में ही खतम हो जाता है और बाकी निर्यात कर दिया जाता हैं। पाकिस्तान में ४,०९,५०० एकड़ भूमि पर फल उगाये जाते हैं। प्रत्येक प्रान्त का वितरण इस प्रकार है—पूर्वी बंगाल, २,००,०००; पश्चिमी पंजाब १,५०,०००; सिन्ध ५०,०००; बलूचिस्तान ८०००; सीमाप्रान्त १५०० ।

पूर्वी बंगाल में आम, अनन्नास और केले होते हैं। राजशाही, बोगरा, दिनाजपुर और रंगपुर में आम खूब होता है। ढाका, फरीदपुर, नोआखली और बाकरगंज में केले होते हैं और सिलहट के अनन्नास प्रसिद्ध हैं। पूर्वी बंगाल के केले जगप्रसिद्ध हैं और इन का वार्षिक उत्पादन ४३० लाख मन है।

पश्चिमी पंजाब के रावलपिन्डी, झेलम और अटक जिलों में फल उत्पादन का व्यवसाय होता है। मरी पहाड़ियों को हम प्रान्त के फलों का बगीचा कहते हैं। यहां के मुख्य फल सन्तरे, आम, नींबू और मीठे नींबू हैं। व्यापार के लिए सेब, अखरोट, बादाम और जैतून उगाने की भी योजना है।

उत्तरी पश्चिमी सीमाप्रान्त में नाशपाती, नाख, अंजीर, आड़ू, केले व आम होते हैं। अंजीर, नाशपाती और नाख की तो देश व भारत दोनों ही जगह काफी मांग रहती है। इसी कारण इस प्रान्त को एशिया का कैलीफोर्निया कहते हैं।

बलूचिस्तान की समृद्धि वहां के फलों के व्यापार पर ही निर्भर रहती है। अंगूर, सेब और खरबूजे यहां के महत्वपूर्ण फल हैं। पाकिस्तान व भारत की मंडियों में इनकी विशेष मांग रहती है। वास्तव में भारत में बलूचिस्तान व सीमाप्रान्त के फलों की बहुत मांग रहती है।

सिन्ध में अंगूर व खजूर उगाये गाते हैं। बहावलपुर में भी खजूर उगते हैं।

पाकिस्तान में फलों के इतने अधिक उत्पादन के होते हुए भी फलों को टीन के डिब्बों में बन्द करने का व्यवसाय बहुत उन्नत नहीं है। निकट भविष्य में संसार की फल मंडियों में पाकिस्तान का स्थान बड़ा महत्वपूर्ण हो जायेगा। परन्तु इसके लिये कुछ कठिनाइयों का सामना करना होगा। यहां की नाशपाती व अन्य फलों में अक्सर एक प्रकार का कीड़ा लग जाता है और दूसरी बात यह है कि इनके पकने का समय भी निश्चित नहीं है। फिर यहां के फल अधिकतर अधपके से रहते हैं। इसके अलावा निम्न कोटि की बोतलों, टीन के डिब्बों की कमी, चीनी के मंहगे दाम और निश्चित मंडियों के अभाव के कारण इस उद्योग को विकसित करने के लिये विशेष प्रयत्न करने पड़ेंगे। इस समय फलों को डिब्बों में बन्द करने की केवल एक फैक्टरी पेशावर में है। पूर्वी पाकिस्तान में केवल अनन्नास को डिब्बों में बन्द किया जाता है। इस उद्योग को सरकारी सहायता व प्रोत्साहन से बढ़ाने की आवश्यकता है।

पशु-पालन

पाकिस्तान की भूप्रकृति और जलवायु पशुपालन के लिये बड़ी उपयुक्त है। यहां पर पाये जाने वाले पशुओं की संख्या इस प्रकार है—

	(लाख में)		(लाख में)
गाय, बैल	२०३	बकरी	८०
भैंस	५४	घोड़े व खच्चर	२०
भेड़	५५	ऊंट	४

बलूचिस्तान और सिन्ध की जलवायु में अच्छी तृण भूमियां नहीं पायी जातीं। अत: वहां गाय बैल इतने अधिक महत्वपूर्ण नहीं हैं जितने कि पश्चिमी पंजाब में। पश्चिमी पंजाब में गाय, बैल, भैंस की संख्या ९० लाख है और सिन्ध में इन पशुओं की संख्या केवल २६ लाख है। पूर्वी पाकिस्तान में पशुओं की संख्या तो काफी है परन्तु उनकी नस्ल निम्न कोटि की है। पश्चिमी पंजाब के पशु दूध व मांस उत्पादन में अधिक उत्तम हैं। पूर्वी पाकिस्तान की घास में फासफोरस की कमी है और इसीलिए पशुओं को बीमारी हो जाती है।

पूर्वी पाकिस्तान में अधिक वर्षा के कारण काफी नमी रहती है। इसलिये वहां भैंस व भेड़ें नहीं पाली जा सकतीं। ऊंट भी उस जलवायु में नहीं रह सकते। अत: अधिकतर गाय, बैल व बकरियां पायी जाती हैं। पश्चिमी पाकिस्तान में, सिन्ध व बलूचिस्तान में ऊंट पाये जाते हैं। सीमाप्रान्त, बलूचिस्तान और सिन्ध में भेड़ें भी पायी जाती हैं। पश्चिमी पंजाब में भैंसें पायी जाती हैं।

विभिन्न पशुओं से दूध, मांस, चमड़ा व खालें प्राप्त होती हैं। **दुग्धशालाओं का व्यवसाय** पश्चिमी पंजाब के दक्षिणी भाग में मान्टोगमरी, लायलपुर और मुल्तान के जिलों में केन्द्रित हैं। **चमड़े का व्यवसाय** भी बढ़ रहा है। चमड़ा व खालों का वार्षिक उत्पादन इस प्रकार है—गाय की खालें ४५ लाख टुकड़े; भैंस का चमड़ा ८ लाख टुकड़े; बकरी की खाल ५३ लाख और भेड़ की खाल २० लाख। यद्यपि कच्चा माल काफी है परन्तु चमड़ा साफ करने का व्यवसाय अभी तक कोई विशेष तरक्की नहीं कर पाया है। ऊन का वार्षिक उत्पादन २८० लाख पौंड है। सबसे अच्छा ऊन सिन्ध व बलूचिस्तान से प्राप्त होता है। सन् १९४८ में पाकिस्तान से यूरोप व अमरीका को १,३०,००० गांठ ऊन निर्यात किया गया। इस समय प्राय: सारा का सारा उत्पादन बाहर भेज दिया जाता है। पाकिस्तान से कच्चा ऊन खरीदने वाले देश ग्रेट ब्रिटेन और संयुक्त राष्ट्र अमेरिका है। पाकिस्तान का मांस निर्यात बढ़ने की बहुत कम आशा है परन्तु उसके चमड़े का निर्यात व्यापार महत्वपूर्ण है।

मछली पकड़ने का व्यवसाय

पाकिस्तान में मछली पकड़ने का उद्यम खेती व पशुपालन के समान महत्वपूर्ण नहीं है। इसकी वस्तु न तो उतने महत्व की है और न ही इसमें अधिक मनुष्य लगे हुए हैं। मछली पकड़ने के उद्यम के मुख्य केन्द्र ढाका व फरीदपुर जिले हैं और पश्चिमी पाकिस्तान में सिन्ध का तटीय प्रदेश।

पूर्वी बंगाल में पकड़ी गई मछलियां वहां के लोगों के भोजन का एक महत्वपूर्ण अंग है। यदि वहां मछली पकड़ने में जरा-सी भी कमी कर दी जाय तो वहां के भोजन की समस्या बड़ी खराब हो जाती है। मांग से अधिक मछलियां पकड़ी जाती हैं। अत: यहां

बहुत-सी मछलियां भारत भेज दी जाती हैं। नारायणगंज, चांदपुर और
तक छोटी-छोटी नावों द्वारा मछलियां ले जाई जाती हैं और फिर वहां से रेल
जहाजों द्वारा इन्हें भारत ले जाते हैं। रोहू, हिल्सा, कटला और प्रान यहां की
ऽयां हैं। पूर्वी बंगाल के तालाबों और बिलों में काई, मगूर, सिन्गी और साल
मछलियां खूब होती हैं। पूर्वी बंगाल सरकार मछली पकड़ने के उद्यम को
ऽ रही है। सन् १९४९-५० में सरकारी योजना के अन्तर्गत ३५० तालाबों
बीघा जल क्षेत्र में मछली पाली जा रही हैं। इसके अलावा एक दस वर्षीय
अनुसार पानी से घिरे क्षेत्रों और छोड़े हुए तालाबों में मछलियां पाली जायेंगी।
चमी पाकिस्तान में सिंध का तट मछली पकड़ने के उद्यम के लिये विशेष महत्व-
न्ध व बलूचिस्तान का सम्पूर्ण तटीय प्रदेश मछली पकड़ने के धन्धे का प्रधान
ाकिस्तान के ३९,००० लोग इस धन्धे में लगे हुए हैं। बलूचिस्तान के समुद्र से
मछलियों का वार्षिक उत्पादन ९३,००० मन है। सिन्ध में मछलियों का वार्षिक
त प्रकार है—समुद्री मछलियां १,९८,००० मन और ताजे पानी की मछलियां
० मन। कुल मिलाकर मछलियों की मात्रा ४,६४,५०० मन रहती है।
चिस्तान का मकरान तट मछलियों की मात्रा व कोटि दोनों ही दृष्टिकोण से
पूर्ण है। इसका तट ३५० मील लम्बा है। खाड़ियां और गड्ढ़े हैं पर नदियां
ं। तट से कोई १० मील की दूरी तक मछलियां पकड़ी जाती हैं और करीब
लोग इस व्यवसाय में लगे हुए हैं। सिन्ध के तट की लम्बाई २०० मील है और
टा-फटा है। सिन्धु नदी मिट्टी व अन्य सामग्री बहाकर लाती है जिसको खाने
छलियां आती हैं। तट से ८० मील की दूरी तक समुद्र की गहराई केवल १००
अतः सिन्ध का तट इस व्यवसाय का केन्द्र हो गया है।
प्रावन, सालमन, मुलट, पामफ्रट, मैंकरेल और हिल्सा जाति की मछलियां
ी हैं। सिन्ध से मछलियां निर्यात भी की जाती हैं। सिन्ध सरकार मामूली प्रकार
ों के विभिन्न भागों से प्राप्त तेलों का अन्वेषण करने की व्यवस्था कर रही है।
छलियों का उपभोग हो सका तो इनसे प्राप्त तेल से गोंद व गेलाटीन बनाई
। सीमाप्रान्त में भी ताजे पानी की कुछ मछलियां पकड़ी जाती हैं। बलूचिस्तान
किनारों पर सितम्बर से मई तक मछलियां पकड़ी जाती हैं। मानसून के दिनों
ज हवाओं के कारण मछुए प्रायः खाली रहते हैं।

शिल्प उद्योग

स्तान की वर्तमान आर्थिक स्थिति की विशेषता यह है कि यहां की प्राकृतिक
अपार है, प्राकृतिक साधन भी बहुत विस्तृत हैं—संसार का ७० प्रतिशत कच्चा
होता है, उच्चकोटि की कपास का वार्षिक उत्पादन १५ लाख गांठ है और
ऊन, चमड़ा व खालें, गन्ना, तम्बाकू, फल व मछली भी बहुत काफी मात्रा में
खनिज सम्पत्ति भी पर्याप्त है, परन्तु औद्योगिक विकास बहुत कम हुआ है।
क पिछड़ेपन के कई कारण हैं—(१) पिछली शताब्दी में उद्योग धंधे कलकत्ता,

बम्बई और अहमदाबाद में ही स्थापित किये गये थे। (२) पिछले महायुद्ध में देश के उद्योग-धन्धे मध्य प्रदेशों में जैसे इन्दौर, कानपुर, नागपुर, टाटानगर और जब्बलपुर में स्थापित हो गए। (३) औद्योगिक कार्यालय व विद्यालय तथा अन्वेषण की प्रयोगशालायें अधिकतर कलकत्ता, दिल्ली, मद्रास, बम्बई और कानपुर में स्थापित हैं। इस प्रकार वर्तमान पाकिस्तान के क्षेत्रों में देश के विभाजन के समय भी उद्योग धन्धों की कमी थी और यह कमी अभी तक दूर नहीं की जा सकी है।

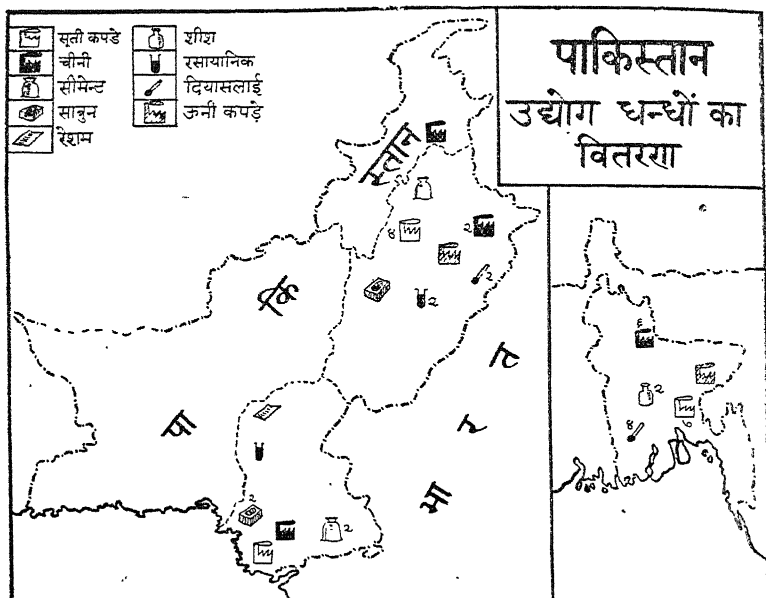
सन् १९४६-४७ में पाकिस्तान में बड़े उद्योग-धन्धे

उद्योग	पूर्वी बंगाल	सीमाप्रान्त	पश्चिमी पंजाब	सिन्ध	योग
सूती कपड़ा मिलें	९	—	४	१	१४
चीनी की मिलें	६	१	४	—	११
सीमेंट	१	—	१	२	४
साबुन	१	—	१	२	४
शीशा	२	—	३	—	५
रासायनिक पदार्थ	—	—	२	१	३
दियासलाई	४	—	२	—	६
ऊनी वस्त्र	१	—	१	—	२
रेशम	—	—	—	२	२
	२४	१	१८	८	५१

पाकिस्तान के मुख्य उद्योग-धंधों में २ लाख व्यक्ति काम करते हैं। परंतु पाकिस्तान के औद्योगिक विकास की निकट भविष्य में बहुत आशा है। भूगर्भ निरीक्षण के बाद पाकिस्तान में कोयला, लोहा व तेल जैसे खनिज पदार्थों का उत्पादन किया जा सकता है। पूंजी व मशीनों की वर्तमान कमी भी हमेशा नहीं रहेगी। फिर विदेशी पूंजी की सहायता लेकर भी वह अपने उद्योग-धंधों की उन्नति कर सकता है। देश में विदेशी पूंजी को आकर्षित करने के लिये निम्नलिखित ४ बातें होनी जरूरी हैं—(१) देश की प्राकृतिक सम्पत्ति व साधनों के विषय में विश्वसनीय आंकड़े उपलब्ध किये जायं। (२) विदेशी पूंजीपतियों को विश्वास दिलाया जावे कि उन्हें किसी प्रकार का भेदभाव नहीं भुगतना पड़ेगा। (३) देश के उद्योग-धन्धों का राष्ट्रीयकरण नहीं होगा, ऐसी नीति-विषयक घोषणा की जानी चाहिए और (४) बैंकों के जरिये या अन्य तरीकों से लाभ की मुद्रा देश के बाहर भेजने की सुविधा दी जानी चाहिए। इस समय पाकिस्तान में कई विदेशी राष्ट्रों के औद्योगिक व व्यापारिक मिशन आ चुके हैं परन्तु उन सब की मांग यही है। पाकिस्तान सरकार ने एक औद्योगिक विकास समिति स्थापित की है। इसका ध्येय देश में पटसन, कागज, पोत-निर्माण, खाद तथा अन्य भारी इन्जीनियरिंग व रासायनिक उद्योगों को प्रोत्साहन देना है। इस प्रकार सरकार के नाम पर पूंजी आकर्षित करना इसका ध्येय है।

सूती वस्त्र व्यवसाय—इस समय पाकिस्तान में १८ मिलें हैं, जिनमें ५३,३००

करघे और तकवे हैं। सन् १९४७ में जब देश का विभाजन हुआ था—जब पाकिस्तान बना था, यहां केवल ४८२४ करघे, १७५,००० तकवे और केवल १४ सूती मिलें थीं। तब से चार



चित्र नं० ९१

सूती मिलें और बढ़ गई हैं—३ पश्चिमी पाकिस्तान में और एक पूर्वी पाकिस्तान में। करीब १९,००० व्यक्ति इस उद्योग में लगे हुए हैं। सन् १९४८ तक मिल के बने हुए कपड़े का वार्षिक उत्पादन १,९०० लाख गज था जब कि हाथ के करघों से प्रतिवर्ष २,३५० लाख गज कपड़ा तैयार किया जाता था। सन् १९५० में मिल में बने हुए कपड़े का उत्पादन ८५,११२ गांठ था (प्रत्येक गांठ में १,५०० गज कपड़ा होता है।) सन् १९४८ में उत्पादन की गांठों की संख्या केवल ५८,७०० थी। इस समय हाथ के करघों से कोई २,५०० लाख गज कपड़ा तैयार किया जाता है। अतः स्पष्ट है कि पाकिस्तान का यह उद्योग बराबर वृद्धि कर रहा है। सूती वस्त्र व्यवसाय पूर्वी बंगाल में सबसे आगे बढ़ा हुआ है। वहां की ९ मिलों में ९५,२०८ तकवे और २,५२२ करघे हैं। ४ और मिलें बनाई जा रही हैं। पूर्वी बंगाल में खुलना, बजेरहाट, नारायणगंज और कुशतिया इस उद्योग के केन्द्र हैं। नारायणगंज में ६ मिलें हैं जिनमें कुल मिलाकर १,७८७ करघे और ४१,८५२ तकवे हैं।

पश्चिमी पंजाब में सूती मिलें लाहौर, लायलपुर और ओकाड़ा में हैं। सिंध में केवल करांची ही इस उद्योग का केन्द्र है। परन्तु फिर भी यह नया राष्ट्र कपड़े में आत्मनिर्भर नहीं है। वर्तमान जनसंख्या और १८ गज प्रति मनुष्य प्रति वर्ष के आधार पर प्रतिवर्ष इसे ५ लाख टन या ५० करोड़ गज कपड़ा बाहर से मंगवाना पड़ता है।

पाकिस्तान में कपास भी होती है और सूती कपड़ों की मांग भी काफी रहती है। सन् १९५० में पाकिस्तान की सूती मिलों ने ४०० पौंड वजन की १००,००० गांठ कपास प्रयोग की। अतः यहां इस उद्योग के विकास की पूरी संभावना है और इस दृष्टि से सरकार को स्वयं नई मिलें बनवानी चाहियें। इस समय पाकिस्तान को ग्रेट ब्रिटेन, भारत और जापान से सूती कपड़ा आयात करना होता है।

चीनी व्यवसाय—पाकिस्तान में चीनी की ११ मिलें हैं जिनका वितरण इस प्रकार है :—

क्षेत्र	मिलों की संख्या	केन्द्र
पूर्वी बंगाल	६	ढाका, राजशाही, मेमनसिंह, दिनाजपुर और जेसोर
पश्चिमी पंजाब	४	रावलपिंडी
सीमाप्रान्त	१	अबोटावाद

पाकिस्तान की सब मिलों का वार्षिक उत्पादन २५,००० से ३०,००० टन तक है परंतु वार्षिक मांग २ लाख टन है। अतः काफी कमी रहती है। परन्तु पूर्वी बंगाल के मेमनसिंह, चिटगांव, दिनाजपुर और रंगपुर के जिलों में उपयुक्त भूमि व जलवायु पायी जाती है। अतः गन्ने का उत्पादन बढ़ाया जा सकता है। सीमाप्रांत के मरदान स्थान पर एशिया में सब से बड़ी मिल बनाई जा रही है। इससे ५०,००० टन चीनी प्रतिवर्ष बन सकेगी। ऐसा हो जाने पर पाकिस्तान चीनी के विषय में बहुत कुछ आत्मनिर्भर हो जायेगा।

ऊनी वस्त्र व्यवसाय—सिन्ध व पश्चिमी पंजाब में ट्वीड कपड़ा, कम्बल, दरियां व गलीचे बनाये जाते हैं। सिन्ध के मरुस्थली भागों में ही यह व्यवसाय सीमित है। करांची में भी ऊन व ऊनी धागा तैयार करने की एक फैक्टरी स्थापित की गई है। पकिस्तान सरकार ने बलूचिस्तान के हरनाई और सीमाप्रान्त के वन्नू जिलों में ऊनी कपड़े की दो मिलें बनवाई हैं, जिनमें १९५२ से उत्पादन शुरू हो गया है। प्रत्येक में करीब २००० तकवे हैं। इस समय देश का आधा ऊन कम्बल वनाने के व्यवसाय में खप जाता है।

दियासलाई उद्योग—दियासलाई बनाने की ६ फैक्टरियां लाहौर व ढाका में स्थित हैं। लाहौर की तीन फैक्टरियों में से दो वेस्टर्न इण्डिया मैच कम्पनी के अधिकार में हैं। लाहौर के इन कारखानों में आसपास के प्रदेशों से आये हुए कोई ५०० मनुष्य काम करते हैं।

सीमेंट उद्योग—खूब व्यवस्थित है। इस समय पाकिस्तान में सीमेंट के ५ कारखाने हैं—४ पश्चिमी पाकिस्तान में और १ पूर्वी पाकिस्तान में। वाह, करांची और सिलहट इसके केन्द्र हैं। वाह का कारखाना एसोसिएटड सीमिंट कम्पनीज़ के आधिपत्य में है और इसमें लगभग १,५०० मजदूर काम करते हैं। सिन्ध के सक्खर जिले में रोहरी स्थान का कारखाना भी इसी कम्पनी का है। सीमेन्ट का वार्षिक उत्पादन ६ लाख टन और इसका आधा भाग घरेलू उपभोग में ही खत्म हो जाता है।

शीशा बनाने का उद्योग अभी नया ही है। इसके ५ कारखाने हैं—२ पूर्वी बंगाल में

ौर ३ पश्चिमी पंजाब में। पूर्वी बंगाल में शीशा बनाने का प्रमुख केन्द्र ढाका है।

इसके अलावा पाकिस्तान अन्य उद्योग-धन्धों का विकास करना चाहता है। पूर्वी ंगाल में १०० करघों की ३ पटसन मिलें स्थापित की जा रही हैं। ये मिलें नारायणगंज, ुलना और चिटगांव में होंगी। पाकिस्तान में यद्यपि इस समय कागज की कोई भी मिलें हीं हैं, परन्तु कागज बनाने के उद्योग की सम्यक् संभावनायें हैं। उपयुक्त रसायन दार्थ व अन्य कच्चा माल पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध है। पश्चिमी पंजाब का गोंद, नमक चूना तथा पूर्वी बंगाल का बांस इस उद्योग के मुख्य स्तम्भ हो सकते हैं। चिटगांव और ्गमती के बीच में कप्ताईमुक स्थान पर कागज की एक मिल बनाई जा रही है। यह क्षेत्र ांसों का भंडार है। सन् १९५४ के अन्त तक इस मिल का उत्पादन शुरू हो जायगा और ब देश की कागज की मांग पूरी की जा सकेगी। करांची में भूसी और घास से दफ्ती व ांधने का सस्ता कागज तैयार किया जा सकता है।

यातायात के साधन

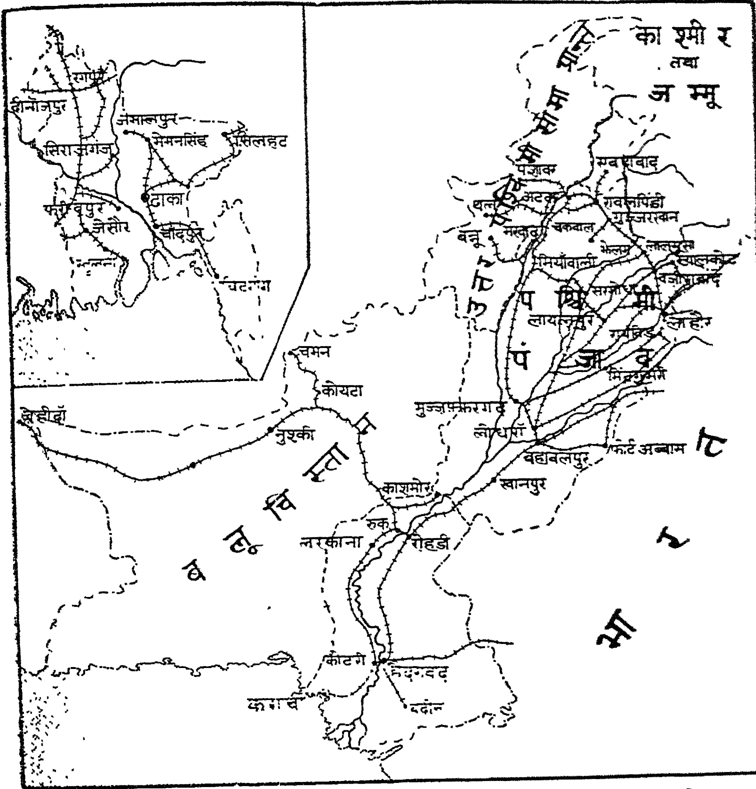
पाकिस्तान में थल, जल व वायु तीनों ही प्रकार के गमनागमन साधन हैं और ्समें वृद्धि भी की जा सकती है। देश कृषि-प्रधान है और निर्यात व्यापार में प्रमुख है। ्तः यातायात के साधनों का देश के आर्थिक जीवन में एक महत्वपूर्ण स्थान है।

रेल-मार्ग—पाकिस्तान में ६९९४ मील लम्बे रेल मार्ग हैं और देश के विभाजन े पहले पाकिस्तान की रेल व्यवस्था बंगाल-आसाम और उत्तरी-पश्चिमी रेल मार्गों का ्ाग थी। शुरू में यहां की रेलें सैनिक महत्व के लिए बनायी गई थीं। यहां के रेलमार्गों का ्सरा उद्देश्य सीमा प्रान्त, पंजाब और सिंध की कृषि उपज को बम्बई, दिल्ली व करांची तक पहुंचाना था। पूर्वी बंगाल की रेलें पटसन को कलकत्ते तक पहुंचाती थीं। देश विभाजन के बाद परिस्थिति परिवर्तन के कारण नयी सीमा के अन्तर्गत इन रेलमार्गों की पुनः व्यवस्था करनी पड़ी।

पाकिस्तान के रेलमार्गों को कई असुविधाओं का सामना करना पड़ता है। देश में कोयले का अभाव है और रेल के डिब्बों की भी कमी है। इनके अलावा निम्नलिखित अन्य कठिनाइयां भी हैं—(१) कुशल विशेषज्ञों की कमी है। (२) पूर्वी पाकिस्तान में रेलों के डिब्बे व इन्जनों की मरम्मत के लिये कुछ भी सुविधायें नहीं हैं। (३) कोयले की मांग-पूर्ति अनिश्चित है। (४) इंजन मालगाड़ी व सवारी गाड़ी की बहुत कमी है। इसलिये पाकिस्तान सरकार **सैयदपुर कारखाने** को पूरी तरह से नए यंत्रादि से पूर्ण बना रही है। **पहारबली** में इसी प्रकार का दूसरा कारखाना भी बनाया जा रहा है। परन्तु कोयले की कमी की समस्या बड़ी विकट है। इसलिये इंजनों में कोयले के स्थान पर तेल प्रयोग किया जा रहा है और उत्तरी-पश्चिमी रेल मार्ग पर चलने वाले १७२ इंजनों को तेल द्वारा संचालित किया जा रहा है। कच्चे माल के उपलब्ध होने पर उत्तरी-पश्चिमी रेल मार्ग के आधे इंजनों को तेल द्वारा संचालन के योग्य कर दिया जावेगा।

पश्चिमी पाकिस्तान में उत्तरी-पश्चिमी रेलमार्ग व उसकी शाखायें हैं। इसका प्रधान

कार्यालय लाहौर में हैं और इसकी कुल लम्बाई ५३६३ मील है। इसमें ४५०० मील तक तो बड़ी लाइन है। इसकी दो प्रमुख शाखायें हैं और प्रत्येक शाखा की अनेक उपशाखायें हैं।



चित्र नं० ९२—पश्चिमी पाकिस्तान के रेलमार्ग औद्योगिक या व्यापारिक दृष्टिकोण से नहीं बनाये गये थे बल्कि सैनिक सुविधा के लिये।

(१) लाहौर से पेशावर तक। यह शाखा वजीराबाद, रावलपिंडी और अटक होती हुई जाती है। वजीराबाद से एक लाइन काश्मीर की सीमा पर स्यालकोट तक जाती है।

(२) लाहौर से करांची तक। इस शाखा के मार्ग पर खानेवाल, लोधरान, रोहरी और सक्खर पड़ते हैं। यह रेलमार्ग रोहरी स्थान पर सिन्धु नदी को पार करता है। सक्खर से एक उपशाखा सीबी होती हुई जाहीदान तक और दूसरी क्वेटा होती हुई चमन तक जाती हैं।

इसके अलावा वजीराबाद और खानेवाल, पेशावर व मुजफ्फरगढ़ तथा रोहरी व बादिन के बीच कई और उपशाखायें हैं।

पूर्वी पाकिस्तान में रेलमार्गों की लम्बाई १६०० मील हैं। इसमें कुछ बड़ी लाइन है और कुछ छोटी लाइन भी। ब्रह्मपुत्र नदी प्रांत के बीचोंबीच से प्रवाहित होती है। नदी के दायें किनारे पर बड़ी लाइन रेलमार्ग की इकहरी शाखा है। और थोड़ी दूर तक छोटी लाइन की इकहरी शाखा भी जाती है। नदी के बायें किनारे पर छोटी लाइन की इकहरी शाखा चिटगांव तक जाती है। इन दोनों शाखाओं के बीच केवल नावों को छोड़कर और कोई संबंध नहीं है। पूर्वी बंगाल के मुख्य रेलमार्ग छोटी लाइन के हैं और चिटगांव से आगे बढ़ते हैं।

(१) चिटगांव से सिलहट तक। इस मार्ग पर लकसम, कमीला, नारायणपुर और कुलौरा स्थित हैं। लकसम से एक उपशाखा चांदपुर तक जाती है।

(२) चिटगांव से बहादुराबाद तक। यह मार्ग नारायणगंज और मेमनसिंह से होकर जाता है। मेमनसिंह एक अन्य रेलमार्ग द्वारा ढाका से संबंधित है।

चूंकि पूर्वी पाकिस्तान का अधिकतर व्यापार चिटगांव से ही होता है इसलिये भैरव बाजार और चिटगांव के बीच गाड़ियों में बड़ी भीड़-भाड़ रहती है। इसलिये इस क्षेत्र में लाइन को दुहरी कर देने की योजना है।

पोरदाह बड़ी लाइन का बड़ा महत्वपूर्ण केंद्र है। यहां से तीन रेलमार्ग जाते हैं: (१) जमुना पर स्थित सिराजगंज को (२) पद्मा पर स्थित राजबारी और फिर वहां से फरीदपुर को और (३) ईश्वरडी होते हुए डोमर तक और फिर वहां से दार्जिलिंग तक। चिटगांव के विकास हो जाने पर बड़ी लाइन के रेलमार्ग पर आना-जाना कम हो जायेगा और आय से व्यय अधिक होने लगेगा। अतः रेल-विभाग इस मार्ग को छोटी लाइन में परिवर्तित करने की सोच रहा है ताकि व्यय में कमी हो जाय और देश की रेलवे लाइनें एकसार हो जायें। पूर्वी पाकिस्तान में १६९३ मील लम्बे रेलमार्ग हैं परन्तु उन्हें कई असुविधाओं का सामना करना पड़ता है। ये असुविधायें कोयले के अभाव, इंजन व गाड़ियों की कमी से संबंधित हैं। मरम्मत करने के कारखाने भी कम हैं। कोयला अधिकतर भारत से ही मंगाया जाता है परन्तु इसके लिये भारत व पाकिस्तान के बीच मित्रता होना आवश्यक है। दक्षिणी अफ्रीका व आस्ट्रेलिया से कोयला मंगवाने में खर्च अधिक पड़ता है। इसी प्रकार ग्रेट ब्रिटेन और संयुक्त राष्ट्र अमरीका से ही रेल के इंजन व गाड़ियां मंगाई जा सकती हैं परन्तु इन देशों पर अन्य देशों की मांग इतनी अधिक रहती है कि उनमें पाकिस्तान के मतलब के लिये काफी माल नहीं मिल सकता।

सड़कें

पश्चिमी पंजाब और सीमाप्रांत में सड़कों का काफी विकास हुआ है। इन दोनों प्रांतों में ४००० मील पक्की सड़कें हैं। पूर्वी पाकिस्तान में वर्षा की अधिकता व नदियों के प्रवाह के कारण सड़कें बनाने में कठिनाई है। इसीलिये पूर्वी बंगाल में लम्बी सड़कें नहीं हैं। सन् १९५२ में पाकिस्तान में कुल मिलाकर सड़कों की लम्बाई ५७,९८४ मील थी। इसमें से उत्तम सड़कें ८००० मील लम्बी हैं। इनका ब्योरा इस प्रकार है—

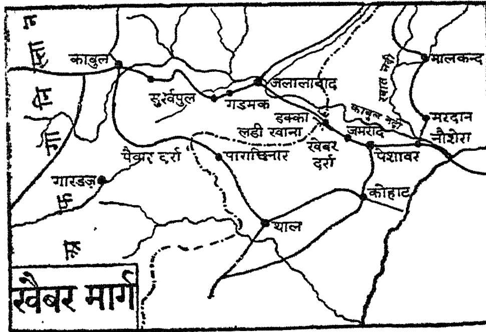
	उत्तम सतह वाली सड़कें	पक्की सड़कें	कच्ची सड़कें	कुल योग
पंजाब	२,६९४	४१०	१२,८८३	१५,९८७
सीमाप्रांत	१,१०३	१२०	१,८९९	३,१२२
सिंध	५९७	१६०	११,६४८	१२,४०५
बलूचिस्तान	५८६	६३७	३,४५३	४,६७६
पूर्वी पाकिस्तान	५९४	१,०२८	२०,१७२	२१,७९४
कुल योग	५,४७४	२,३५५	५०,०५५	५७,९८४

सीमान्त सड़कें—पाकिस्तान और ईरान, अफगानिस्तान और सिनक्यांग के बीच ५ सीमान्त थलमार्ग हैं।

(१) बलूचिस्तान में चमन से कांधार और हिरात तक। यह मार्ग खोजक दर्रे में होकर जाता है।

(२) क्वेटा से महीदान तक। महीदान ईरान और बलूचितान की सीमा पर स्थित है। वहां तक उत्तरी-पश्चिमी रेलमार्ग जाता है और फिर वहां से काफिले की एक सड़क। हाल में महीदान और तेहरान के बीच मोटर योग्य सड़क बन गई है।

(३) खैबर दर्रे से होती हुई एक सड़क पेशावर को काबुल और जलालाबाद से मिलाती है। पेशावर और काबुल के बीच की दूरी १७० मील है और अकेला खैबर दर्रा ३० मील लम्बा है। पश्चिमी पाकिस्तान और अफगानिस्तान के बीच यही एक व्यवस्थित मार्ग है। इसी मार्ग से सिकन्दर, तेमूर, चंगेज खान, नादिरशाह और बाबर ने भारत पर चढ़ाइयां की थीं। यह मार्ग काबुल नदी के समानान्तर जाता है। पेशावर से लंडीखाना तक ५५ मील लम्बी एक सड़क नदी के काफी दक्षिण से होकर जाती है।



चित्र नं० ९३

(४) पश्चिमी पंजाब के अटक से सिनक्यांग प्रदेश के काशगर स्थान तक। यह मार्ग चितराल और हिन्दुकुश होकर जाता है। गिलगित पहुंचने के लिये १२ रोज का लम्बा रास्ता तै करना पड़ता है। पेशावर से गिलगित तक ३५० मील लम्बा काफिला मार्ग है जो कि १३,७०० फीट की ऊंचाई पर स्थित कराकोरम पहाड़ के बाबूसर दर्रे से होकर गुजरता है। गिलगित से एक शाखा दक्षिण पूर्व की ओर सिन्धु नदी से १०० मील ऊपर स्थित बाल्टिस्तान के शासन केंद्र स्कीडू तक जाती है। इस प्रकार सिनक्यांग से चलने

वाले काफिला मार्ग का केंद्र गिलगित है। काशगर से व्यापारी रेशम, सूती कपड़ा, दरियां व गलीचे, भेड़ की खाल और बकरियां लाते हैं और उनके बदले मिट्टी का तेल, चीनी, दियासलाई और नमक ले जाते हैं। पाकिस्तान सरकार ने पेशावर-गिलगित मार्ग को चौड़ा कर दिया है। अब यह मार्ग लारियों व मोटरगाड़ियों द्वारा ४ दिन में पार किया जा सकता है।

(५) डेरा इस्माइल खां से कलात व कांधार को। यह मार्ग ७५०० फीट की ऊंचाई पर स्थित गोमल दर्रे से होकर जाता है। यह सब से पुराना व्यापारिक मार्ग है और इसी मार्ग से अफगानिस्तान के हजारों व्यापारी प्रतिवर्ष आते हैं। ये व्यापारी अपने ऊंटों पर रेशम, फल, ऊंट व बकरी के बाल, भेड़ की खाल और कालीन व गलीचे लाते हैं। व्यापार की ये वस्तुएं काबुल व बोखारा से आती हैं।

जलमार्ग

पाकिस्तान के आन्तरिक जलमार्ग ५००० मील लम्बे हैं। पश्चिमी पाकिस्तान की नदियों से यातायात का कुछ भी काम नहीं लिया जाता है। यद्यपि सिन्धु संसार की सब से बड़ी नदियों में है परन्तु रेलों के निर्माण के बाद से इस पर व्यापार बहुत कम होता है।

सिन्धु नदी सतलज के स्रोत के पास ही कैलाश पर्वत से निकलती है। लद्दाख प्रदेश से होकर गिलगित स्थान तक यह उत्तर-पश्चिम की ओर बहती है। गिलगित में यह दक्षिण की ओर मुड़ जाती है और फिर इसी दिशा में बहती हुई अरब सागर में जा गिरती है। मुहाने के पास यह नदी कई नालियों में बहने लगती है और इस प्रकार इसके डेल्टा में कई नालियां बन जाती हैं। इस कटे-फटे डेल्टा भाग में सरपत मैनग्रोव नामक पौधे पाये जाते हैं। अधिकतर डेल्टा भाग दलदली है। इसके ऊपर व मध्यवर्ती प्रवाह क्षेत्र में शायक, काबुल, कुर्रम और गोमल नदियां आकर इसमें मिल जाती हैं। लेकिन इन से भी अधिक महत्वपूर्ण सहायक नदियां **झेलम, रावी, चिनाब और सतलज** हैं जो पश्चिमी हिमालय से निकलकर मिठनकोट स्थान पर इसमें मिल जाती हैं। इन्हीं को मिलाकर इस प्रदेश का नाम पन्ज+आब=पंजाब पड़ गया है।

सिन्धु नदी १८०० मील लम्बी है और मुहाने से १००० मील दूर तक इसमें नावें चलाई जा सकती हैं। परन्तु इसका प्रवाह अक्सर बदलता रहता है और बरसात के दिनों में इसमें भीषण बाढ़ आती है। इसी कारण इसके किनारों पर कोई बड़े नगर नहीं हैं। मुल्तान, लाहौर, लायलपुर, वजीराबाद और बहावलपुर इसकी सहायक नदियों पर बसे हुए हैं।

बारसक-जल विद्युत योजना के बन जाने पर काबुल नदी का पानी एक जलाशय के रूप में इकट्ठा कर लिया जायेगा। इससे उस भाग में नावें चल सकेंगी और खैबर दर्रे के मोटर-लारी मार्ग के अलावा इस वैकल्पिक जलमार्ग से भी पेशावर और काबुल के बीच संबंध स्थापित हो सकेगा।

पूर्वी पाकिस्तान में जलमार्गों की बड़ी सुविधा व महत्व है। यहां के नाव्य जल-मार्ग

४,५०० मील लम्बे हैं। संसार में इसके समान नाव्य जल मार्ग कहीं और नहीं हैं। पूर्वी बंगाल में नदियां, उनकी सहायक नदियां व उनकी नालियां आदि सभी पूर्णतया नाव्य हैं। पूर्वी बंगाल की मुख्य नदियां, पद्मा, ब्रह्मपुत्र और मेघना हैं। **पद्मा** वास्तव में गंगा नदी की ही एक शाखा है। माल्दा के पास गंगा नदी की दो शाखायें हो जाती हैं—एक दक्षिण की ओर प्रवाहित होती है और भागीरथी कहलाती है। दूसरी शाखा दक्षिण-पूर्व की ओर बहती है। इसी का नाम **पद्मा** है। यह नदी राजशाही, पबना, फरीदपुर और ढाका जिलों से होकर बहती है। ब्रह्मपुत्र नदी पूर्वी बंगाल में रंगपुर स्थान पर प्रवेश करती है और दक्षिण की ओर बहती हुई फरीदपुर में पद्मा से मिल जाती है। **मेघना नदी** सिलहट प्रदेश में सूरमा कहलाती है और चांदपुर के पास पद्मा में मिल जाती है।

इन जलमार्गों पर नावें व स्टीमर जहाज चल सकते हैं। यहां के मुख्य नाव्य मार्ग निम्नलिखित हैं—(१) चांदपुर से नारायणगंज तक (२) गौआलन्डो से चांदपुर तक (३) गोआलन्डो से नारायणगंज तक (४) ढाका से बारीसाल तक (५) बारीसाल से लोहागंज तक। इनके द्वारा केवल यात्री ही सफर नहीं करते बल्कि इन्हीं के द्वारा पाकिस्तान का पटसन व चावल भी इधर-उधर लाया ले जाया जाता है।

वायुमार्ग

वायुमार्गों के द्वारा दूरस्थ भागों में भी शीघ्रता का संबंध स्थापित हो सकता है। पाकिस्तान के लिये वायुमार्गों का महत्व और भी अधिक है विशेषकर इसलिये कि इसके पूर्वी व पश्चिमी भागों के बीच गमनागमन का केवल एक ही जरिया है—वायु से अथवा समुद्र से। समुद्र का रास्ता लम्बा व चक्करदार है। अतः वायु मार्ग का महत्व स्पष्ट है।

पाकिस्तान में इस समय काफी हवाई अड्डे हैं और दूसरे महायुद्ध के बाद से वायु यातायात ने काफी प्रगति की है। करांची, लाहौर, क्वेटा, पेशावर, हैदराबाद (सिन्ध) मुल्तान, ढाका, चिटगांव और सिलहट यहां के मुख्य हवाई अड्डे हैं। वायु यातायात चालक चार कम्पनियां हैं— ओरियन्ट एअरवेज, पाकिस्तान एअर सर्विस जिसका नाम अब पाकिस्तान एविएशन लिमिटेड हो गया है, क्रीसेंट एअर ट्रांसपोर्ट लि. और पाकिस्तान इंटरनेशनल एअर लाइन्स जो १९५३ में स्थापित की गई और जिस में अधिकतर पूंजी सरकार की लगी हुई है। इन कम्पनियों के हवाई जहाज बंबई, कलकत्ता और दिल्ली को भी आते हैं। इसके अलावा पाकिस्तान और लंका, बर्मा, सिंगापुर, तेहरान और काहिरा के बीच भी वायु संबंध है।

पाकिस्तान के मुख्य वायुमार्ग (१९४९)

	उड़ान
१. ओरियन्ट एअरवेज	
करांची-क्वेटा-लाहौर	हफ्ते में दो बार
करांची-लाहौर-रावलपिंडी-पेशावर	,, ,, तीन बार
करांची-कलकत्ता-ढाका-चिटगांव	,, ,, ,, ,,
करांची-अहमदाबाद-बंबई	,, ,, ,, ,,

करांची-क्वेटा-जाहीदान-मेशद तेहरान	हफ्ते में एक बार
कलकत्ता-ढाका	दैनिक
ढाका-चिटगांव-सिलहट	,,
कलकत्ता-चिटगांव	,,
चिटगांव-आक्याब-रंगून	,,
२. **पाकिस्तान एअर सर्विस**	
करांची-लाहौर	दैनिक
करांची-दिल्ली	,,
लाहौर-दिल्ली	,,
लाहौर-रावलपिंडी-पेशावर	हफ्ते में ३ बार
करांची-बंबई-कोलम्बो	,, ,, ,, ,,
करांची-कलकत्ता-रंगून-सिंगापुर	,, ,, ,, ,,
करांची -काहिरा	,, ,, दो बार

करांची प्रधान हवाई अड्डा है और अन्तर्राष्ट्रीय वायुमार्गों पर स्थित होने के कारण इसका स्थान बड़ा महत्वपूर्ण हो गया है। करांची के हवाई अड्डे का महत्व नीचे दिये हुए आंकड़ों से स्पष्ट हो जायेगा:—

हवाई जहाजों के आने-जाने की संख्या	९७९
आने जाने वाले यात्रियों की संख्या	८,२२८
यहां से गुजरने वाले यात्रियों की संख्या	३,५२४
डाक की मात्रा	१,०७,७२२ पौंड
यहां से गुजरने वाली डाक की तोल	२,२१,७९७ ,,
यहां पर उतारा व चढ़ाया माल	३,३९,४२३ ,,
यहां से गुजरने वाला माल	१,५८,३१४ ,,

पाकिस्तान से भारत के साथ वायु यातायात की व्यवस्था, भारत सरकार के समझौते के अनुसार होती है।

पाकिस्तान की हवाई यातायात योजना अभी तक व्यापारिक दृष्टिकोण से लाभ-प्रद नहीं है। वायुयानों में यात्री व माल लादने के स्थान का पूरा प्रयोग नहीं होता है। पूर्वी पाकिस्तान में कुशल विशेषज्ञों और रेडियो यन्त्रादि की कमी के कारण हवाई यातायात का विकास नहीं हो पाया है और फरीदपुर, कोमिला तथा अन्य स्थानों पर हवाई जहाज उतरने की पटरी होने पर भी वायु यातायात की व्यवस्था नहीं है।

विदेशी व्यापार

आधुनिक उद्योग धंधों की बहुत-सी वस्तुएं पाकिस्तान में उपलब्ध नहीं हैं। कोयला, मशीनें, सूती कपड़ा, मोटर-गाड़ियां, रासायनिक पदार्थ, कागज, लोहा व इस्पात के समान, चीनी व रबड़ की वस्तुओं की पाकिस्तान में काफी मांग रहती है। इसलिये विदेशी व्यापार का विशेष महत्व है। पाकिस्तान में बहुत-सी वस्तुएँ तैयार की जा सकती

हैं परन्तु इस समय उनके उत्पादन की कोई व्यवस्था न होने से, पाकिस्तान उनका आयात करता है।

पाकिस्तान से कपास, पटसन, ऊन, ऊनी वस्तुएं, जिप्सम, पोटाशियम नाईट्रेट, चमड़ा व खालें बाहर निर्यात की जाती हैं। थोड़ी मात्रा में अनाज, चाय, फल व तरकारियां भी विदेशों को भेजी जाती हैं; निर्यात की सब से महत्वपूर्ण वस्तु कच्चा पटसन है और संपूर्ण उत्पादन की मात्रा बाहर भेज दी जाती है। पटसन के बाद दूसरी वस्तु ऊन है। इसके बाद चमड़ा व खालों का स्थान आता है। कपास भी निर्यात की प्रमुख वस्तु है। कपास के कुल उत्पादन का दो-तिहाई भाग भारत व अन्य विदेशों को भेज दिया जाता है। सन् १९५०-५१ में पाकिस्तान के निर्यात व्यापार का ८५ प्रतिशत अंश कपास व पटसन था। अतः स्पष्ट है कि कुल कच्चे माल के निर्यात पर निर्भर रहना आर्थिक संकट से खाली नहीं क्योंकि संसार में इनकी मांग सदैव घटती-बढ़ती रहती है।

पाकिस्तान की निर्यात वस्तुओं के मुख्य खरीदार भारत, ग्रेट ब्रिटेन, बेल्जियम, संयुक्त राष्ट्र, रूस, इटली, फ्रांस, चीन व आस्ट्रेलिया हैं।

निर्यात की मुख्य वस्तुओं का मूल्य

(१९५२)

वस्तुएं	**लाख रुपये**	**वस्तुएं**	**लाख रुपये**
पटसन	७४१२	चमड़ा व खालें	३९१
कपास	७२१८	चाय	५०३
ऊन	४५५	तिलहन (बिनौले)	६४

पाकिस्तान से भारत कपास, ऊन व अनाज मंगवाता है।

पाकिस्तान की निर्यात सामग्री के मुख्य ग्राहक देश और निर्यात सामग्री का मूल्य

(१९५०-५१)

(लाख रुपये में)

भारत	५५६३	इटली	४३९
ग्रेट ब्रिटेन	३१९४	जापान	३३३८
संयुक्त राष्ट्र	१६०४		
चीन	८९०	कुल योग	२५,२८४
फ्रांस	१००७		

पाकिस्तान की मुख्य आयात सामग्री—सूत व सूती कपड़ा, खनिज तेल, मशीनें, इस्पात व उसकी बनी हुई वस्तुएं, मोटर गाड़ियां, रासायनिक पदार्थ, भोजन, कागज व बिजली के सामान आदि हैं। भारत से पाकिस्तान सूती कपड़ा व सूत, पटसन की वस्तुएं, चीनी, गुड़, लोहा व इस्पात, कागज व कोयला मंगवाता है। पाकिस्तान के आयात का एक-चौथाई भाग सूती कपड़ा होता है जो कि भारत, ग्रेट ब्रिटेन, संयुक्त राष्ट्र, इटली, ईरान, चीन, लंका, व स्ट्रेटस सेटलमेंट्स से आता है।

आयात की मुख्य वस्तुओं का मूल्य (१९५२)

वस्तुएं	लाख रुपये	वस्तुएं	लाख रुपये
सूती धागा और सूत	२,४४८	गाड़ियां	५२८
सूती कपड़े	३,४५७	तेल	१०५९
धातुएं व खनिज	१३९	रबड़ की वस्तुएं	१४८
लोहे की वस्तुएं	१३१	ऊनी कपड़े	२०१

पाकिस्तान का ३० प्रतिशत विदेशी आयात व्यापार ग्रेट ब्रिटेन से होता है और पाकिस्तान का २५ प्रतिशत निर्यात ग्रेट ब्रिटेन को ही जाता है। ग्रेट ब्रिटेन से पाकिस्तान में सूती कपड़ों का सब से अधिक आयात होता है परन्तु इधर कुछ दिनों से पाकिस्तान में विलायती सूती कपड़ों का आयात बहुत कम हो गया है। इसका मुख्य कारण यह है कि वहां की वस्तुओं की कोटि पाकिस्तान की मंडियों की मांग के अनुसार नहीं होती है। शुरू में पाकिस्तान में सूती कपड़ों की बहुत कमी थी। इसलिये अंग्रेजी मिलों में तैयार किया हुआ कंपड़ा खप जाता था परन्तु धीरे-धीरे जापान का मामूली व सस्ता कपड़ा उप-लब्ध हो गया। फलतः ग्रेट ब्रिटेन की मिलों के कपड़े की मांग अब बहुत कम हो गई है। ग्रेट ब्रिटेन से आयात की जाने वाली अन्य सामग्री मशीनें, धातु यन्त्र व औजार, दवाई व रासायनिक पदार्थ और रबड़ के बने पदार्थ हैं।

पाकिस्तान को आयात सामग्री भेजने वाले मुख्य देश और आयात सामग्री का मूल्य.
(१९५०—५१)
(लाख रुपये में)

भारत	२१८३	हालैंड	१२७
ग्रेट ब्रिटेन	३३४०	फ्रांस	२२१
संयुक्त राष्ट्र	९८८	चीन	८४०
इटली	६७५	जापान	२३४६
		कुल योग	१४२५०

पाकिस्तान के समुद्री व्यापार की दिशा (१९५०—५१)
(प्रतिशत)

देश	निर्यात	आयात
ग्रेट ब्रिटेन	२२.२३	३१.२१
भारत	१०.०१	१५.२७
फ्रांस	८.७३	—
संयुक्त राष्ट्र	७.८५	१०.७५
हांगकांग	७.५५	—
जापान	६.८६	८.४४
रूस	५.८१	—

देश	निर्यात	आयात
जर्मनी	४.४४	—
इटली	३.८८	७.४०
चीन	—	४.८३
हालैंड	—	२.४१
मिश्र	—	२.३०
बर्मा	—	२.१४
अन्य देश	२२.६४	१५.२५
	१०० प्रतिशत	१०० प्रतिशत

सन् १९४९-५० में पाकिस्तान के पुर्ननिर्यात व्यापार का मूल्य ७६२ लाख रुपया था। इसी साल कलकत्ते के बन्दरगाह से ४७१ लाख रुपये मूल्य की पाकिस्तानी सामग्री बाहर भेजी गई। भारत के साथ इसका व्यापार थल मार्गों द्वारा भी होता है और साधारणतया प्रतिवर्ष थल मार्गों से १५ करोड़ रुपये का माल आयात किया जाता है और ८० करोड़ रुपये का समान निर्यात होता है।

पाकिस्तान की विदेशी व्यापार नीति की विशेषता विभिन्नता है। इस नीति का मुख्य ध्येय अपनी आर्थिक दशा को विभिन्न बनाना है ताकि पाकिस्तान की भारत पर निर्भरता कम हो जाये। देश विभाजन के बाद पाकिस्तान का आधा से अधिक विदेशी व्यापार भारत के साथ ही होता था। पाकिस्तान इस निर्भरता से अपने को मुक्त करना चाहता है। इसलिये उसने अपने विदेशी व्यापार में विभिन्नीकरण की नीति को अपनाया। सितम्बर सन् १९४९ में दोनों देशों के बीच मुद्रा विनिमय और व्यापार संबंधी संकट से पाकिस्तान की इस नीति को और भी बढ़ावा मिला और अब यह उसके विदेशी व्यापार का आधार सा बन गई है।

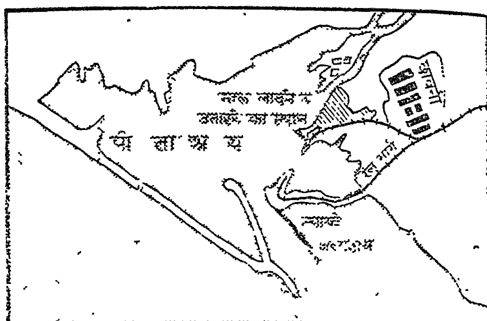
बन्दरगाह व व्यापारिक केन्द्र

पाकिस्तान का निकास अरब सागर व बंगाल की खाड़ी में है। यहां के दो प्रमुख बन्दरगाह करांची और चिटगांव है।

करांची पाकिस्तान का सब से महत्वपूर्ण बन्दरगाह है और इसका पोताश्रय भी प्राकृतिक व आदर्श है। इसका पृष्ठ प्रदेश बड़ा विस्तृत है। और इसके अन्तर्गत अफगानिस्तान, बलूचिस्तान और पश्चिमी पंजाब शामिल हैं। सन् १८६७ में स्वेज नहर के खुलने, अमरीका के गृहयुद्ध और सन् १८७८ में पंजाब के साथ सीधा रेल-मार्ग बन जाने से करांची बन्दरगाह का महत्व और भी बढ़ गया है।

परन्तु बंबई की स्पर्धा के कारण यह बहुत समय तक विशेष तरक्की नहीं कर सका। बंबई की अपेक्षा करांची में जहाजों के ठहरने की कम सुविधायें प्राप्त थीं और इसका पृष्ठ प्रदेश भी बहुत उन्नत नहीं था।

यहां से निर्यात की मुख्य वस्तुएँ गेहूं, तिलहन, कपास, ऊन, चमड़ा व हड्डियां हैं। यहां पर विदेशों से सूती व ऊनी कपड़ा, चीनी, धातुएं, मशीनें, तेल, शराब व रासायनिक पदार्थ आयात किये जाते हैं। करांची का व्यापारिक महत्व अधिक है। यहां पर कोई विशेष उद्योग-धंधे नहीं हैं। गेहूं के अलावा और अन्य कोई उद्योग उन्नत अवस्था में नहीं है। करांची उत्तरी-पश्चिमी रेलमार्ग द्वारा अपने पृष्ठ प्रदेश के विभिन्न केंद्रों से मिला हुआ है।



चित्र नं० ९४—करांची इसी नाम की एक त्रिकोण खाड़ी पर बसा है। यह खाड़ी अरब सागर से एक निचली बालू की दीवार द्वारा अलग है। बालू की यह दीवार प्रधान भूखंड से दक्षिण की ओर मनोरा के पहाड़ी द्वीप तक फैली हुई है।

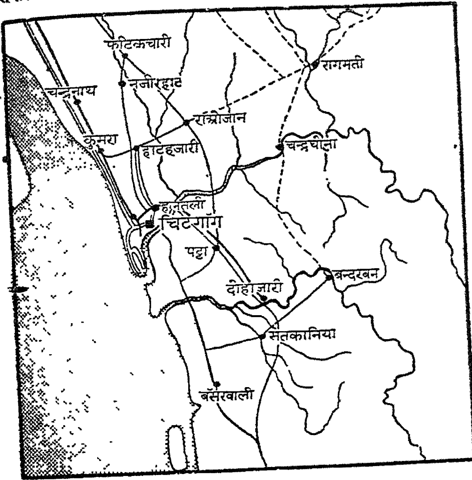
पाकिस्तान बनने के बाद पिछले तीन सालों में इस बन्दरगाह द्वारा व्यापार की मात्रा में उत्तरोत्तर वृद्धि हो रही है। निर्यात की मात्रा तो बराबर कम होती जा रही है परन्तु आयात की मात्रा पहले से काफी अधिक बढ़ गई है।

साल	आयात	निर्यात	कुल योग
१९४७—४८	११,५६,३५३	१०,२७,५२१	२१,८३,८७४
१९४८—४९	१६,०२,७४७	९,३९,९३४	२५,४२,६८१
१९४९–५०	१९,०८,४२२	९,२३,४७६	२८,३१,८९६
१९५०–५१	२३,९१,०००	१०,८२,०००	३४,७३,०००

१९५१-५२ में आयात-निर्यात मात्रा ३७,९०,४०० टन थी। बन्दरगाह की सामान लादने-उतारने की शक्ति को ३४ प्र. श. से ५० प्र.श. बढ़ाने के लिये एक योजना पर विचार किया जा रहा है। इसके अनुसार उतारने-चढ़ाने की पूर्वी भूमि को और अच्छा बनाया जावेगा। वहां १७ पेटियां बनाई जावेंगी और आजकल की लकड़ी के तख्तों को हटाकर फिर से बनाया जावेगा। करांची बन्दरगाह समिति ने रेल व सड़कों पर स्थित भूमि को भिन्न उद्योग-धंधों को देकर औद्योगिक उन्नति को प्रोत्साहन दिया है।

सरकार एक मछलीमार बन्दरगाह बनाने की भी सोच रही है। इसमें नावों के फिसलने व ठहरने का स्थान होगा, जाल सुखाये जा सकेंगे और शीत भंडार व टीन के डिब्बों में बन्द करने का सुप्रबंध होगा। रेल व सड़कों द्वारा इसको आसपास के क्षेत्रों से मिला दिया जायेगा। केटीबन्दर, शाहबन्दर और सोखी बन्दर सिन्ध के अन्य तीन छोटे बन्दरगाह हैं।

चिटगांव—पूर्वी बंगाल का प्रमुख बन्दरगाह है। सन् १९२८ में इस को बड़ा बन्दरगाह घोषित किया गया। यह कर्णफुली नदी के मुहाने मे ११ मील अन्दर की ओर स्थित है। यहां से निर्यात की मुख्य वस्तु चाय है। पटसन, मिट्टी का तेल, चावल और कच्ची कपास भी इस बन्दरगाह से बाहर भेजी जाती है। आयात की प्रमुख वस्तुएं रासायनिक पदार्थ, मशीनें, धातुएं, नमक, सूती कपड़े और विभिन्न यंत्रादि हैं। पोताश्रय की सुविधाएं सीमित हैं और इस समय भी उनसे अत्यधिक काम लिया जा रहा। माल को भंडार करने की विशेप समस्या है।



चित्र नं० ९५

पिछले तीन सालों में बन्दरगाह से माल उतारने व चढ़ाने की शक्ति में काफी वृद्धि हुई है। देश विभाजन के समय केवल ६ लाख टन माल ही प्रतिवर्ष उतारा चढ़ाया जा सकता था परन्तु अब १ करोड़ रुपया खर्च करके इसकी सुविधायों को और अच्छा कर दिया गया है। अतः अब १८ लाख टन प्रतिवर्ष लादा व उतारा जा सकता है।

बन्दरगाह द्वारा भार वहन (टन)

वर्ष	आयात	निर्यात	कुल योग
१९४७-४८	२,६३,७२१	१,५७,१२४	४,२०,८४५
१९४८-४९	३,५८,००८	२,३९,५७२	५,९७,५८०
१९४९-५०	७,०९,९८०	२,९८,३८३	१०,०८,३६३
१९५०-५१	१२,६८,६०८	४,२६,४०१	१६,७५,००९

सन् १९५१-५२ में यहां से आयात-निर्यात की कुल मात्रा १६,४९,२५५ टन थी।

हाल ही में पाकिस्तान सरकार ने बन्दरगाह की सुविधाओं को बढ़ाने के लिये एक समिति स्थापित की है। इस समिति की सिफारिश के अनुसार पोताश्रय की सुविधाओं व विस्तार में ऐसी वृद्धि की जायेगी कि प्रतिवर्ष ४० लाख टन माल उतारा-चढ़ाया जा सकेगा। पाकिस्तान सरकार की ६ साला विकास योजना में चिटगांव बन्दरगाह के विकास को सबसे प्रथम स्थान दिया गया है।

चलना—पुसौर नदी पर स्थित खुलना जिले में एक आन्तरिक बन्दरगाह है। पाकिस्तान सरकार इसका विकास कर रही है ताकि यहां पर बड़े २ जहाज आ-जा सकें। यह विकास कार्य पिछले एक वर्ष से शुरू किया गया है और प्रथम वर्ष के प्रयोग के सफल

ोने पर यहां पर स्थायी वन्दरगाह बनाया जायगा । इसके बन जाने से चिटगांव बन्दरगाह ौर पूर्वी बंगाल रेलमार्ग पर भीड़-भाड़ तथा माल व यात्रियों का भार कम हो जायेगा। सके द्वारा पटसन व चाय का निर्यात और कोयले व भोजन सामग्री का आयात व्यापार ो सकेगा। अनुमान है कि इस वन्दरगाह से ५ लाख टनभार का माल प्रतिवर्ष उतारा-ढ़ाया जा सकेगा। सन् १९५१-५२ में इस बन्दरगाह से ३४९००९ टन माल उतारा-ढ़ाया गया।

पाकिस्तान सरकार ने हरिंगट्टा और मघना के किनारों पर बन्दरगाह स्थापित रने के लिये अन्वेषण कार्य किया है। परन्तु मेघना का प्रवाह हमेशा बदलता रहता तथा हरिंगट्टा के मुहाने पर बालू की एक दीवार सी है जो जहाजों के लिये बड़ी तरनाक है।

पर्वी पाकिस्तान में **काक्स बाजार** और **नोआखाळी** अन्य दो छोटे २ बन्दरगाह हैं।

व्यापारिक केन्द्र

पश्चिमी पंजाब का क्षेत्रफल ६१,७७५ वर्गमील है और इसकी आबादी एक रोड़ ३० लाख हैं। जनसंख्या के घनत्व का औसत २६३ मनुष्य प्रतिवर्ग मील है। यहां लोगों का मुख्य धंधा खेती है। परन्तु प्रांत में नमक, खनिज तेल, व टरशियरी कोयले ा भी भंडार है। १ लाख से अधिक आबादी के कई नगर हैं। लाहौर, रावलपिंडी, यालकोट, लायलपुर और मुल्तान यहां के मुख्य नगर है।

लाहौर पश्चिमी पंजाब का शासन केंद्र है, सब से बड़ा नगर है और व्यापार की ंडी है। यह रावी नदी पर बसा है और अमृतसर से ३३ मील दूर है। सूती कपड़ा बुनना, मड़ा साफ करना, शीशे का सामान बनाना, आटा पीसना व चीनी तैयार करना यहां के ुख्य उद्योग हैं। चमड़े का धंधा सबसे महत्वपूर्ण है। सन् १९४१ की जनगणना के नुसार यहां की जनसंख्या ७ लाख है।

लायलपुर लाहौर से ८७ मील दक्षिण-पश्चिम में स्थित है। यह पश्चिमी पाकिस्तान ा सब से महत्वपूर्ण गेहूं केंद्र है।

मुल्तान सीमान्त नगर है और सामग्री एकत्र करने का मुख्य केंद्र है। यहां पर फगानिस्तान के फल, दवाइयां, रेशम व मसाले आते हैं और पूर्व की ओर भेज दिये जाते ं। रेलों द्वारा यह लाहौर व करांची से मिला हुआ है।

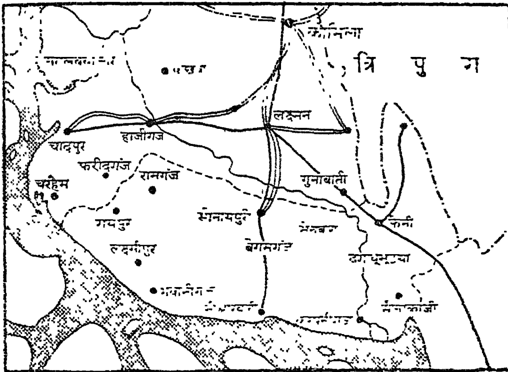
सिन्ध का क्षेत्रफल ४८,१३० वर्गमील है और आबादी ४५ लाख है। यहां की ६२ तिशत जनसंख्या खेती में लगी हुई है और केवल ८ प्रतिशत लोग उद्योग-धंधों में लगे हैं। छली पकड़ने का धंधा भी महत्वपूर्ण है और ३९००० मनुष्यों की जीविका का यही साधन ै। चमड़ा व खालें, तथा गेहूं यहां से निर्यात की प्रमुख वस्तुएं हैं। करांची, सक्खर, ैदराबाद, बादिन और जेकोबाबाद यहां के प्रमुख व्यापारिक केंद्र हैं।

उत्तरी पश्चिमी सीमा प्रांत पहाड़ी है और उसका कुल क्षेत्रफल ३९,२७० र्गमील है। इसमें से २४,९८६ वर्गमील सरहदी प्रदेश है। यहां की आबादी ३० लाख हैं। ेशावर अबोटाबाद, डेरा इस्माइल खां और थाल यहां के प्रमुख व्यापारिक केंद्र हैं।

अबोटाबाद काश्मीर की सीमा पर स्थित एक पहाड़ी नगर है। इसकी आबादी ४०,००० है। चमड़े व पत्थर का काम विशेषतया महत्वपूर्ण है। हाल में सूत कातने व बुनने की कुछ मिलें भी खुल गई हैं। **पेशावर** प्रांत का शासन केंद्र है और एक प्रमुख सैनिक व व्यापारिक नगर है।

बलूचिस्तान पाकिस्तान की सब से बड़ी इकाई है। इसका क्षेत्रफल १,३४,००२ वर्गमील है। यहां की कुल आबादी ८,५७,८३५ है और इसका घनत्व ९ मनुष्य प्रति वर्गमील है। यहां के मैदान पथरीले व अनुपजाऊ हैं। गर्मी में काफी गर्मी और जाड़े में काफी सर्दी पड़ती है। वर्षा बहुत कम व अनिश्चित है। यह प्रदेश अंगूर, आड़ू, नाशपाती, सेब व खरबूजों के लिये प्रसिद्ध है। यह वस्तुएँ सिंचाई की सहायता से उगाई जाती हैं। क्वेटा, चमन, जाहीदान और हिन्दूबाग यहां के मुख्य व्यापारिक केंद्र हैं। क्वेटा यहां का शासन केंद्र है।

पूर्वी बंगाल के प्रसिद्ध नगर व व्यापारिक केंद्र ढाका, नारायणगंज, मेमनसिंह, फरीदपुर, रंगपुर, सिल्हट व चांदपुर हैं। यहां के मुख्य उद्योग चाय के कारखाने व पटसन दबाने की मिलें हैं। यदि चाय के कारखानों की संख्या सब से अधिक है तो पटसन की मिलों में लगे हुए मजदूरों की संख्या सब से अधिक है। इसके बाद सूती कपड़ा बुनने व कातने के कारखानों का स्थान आता है। चावल के कारखानों की भी काफी संख्या है परन्तु उनमें लगे हुए मजदूरों की संख्या रेलों, इंजीनियरिंग व चीनी के कारखानों के मजदूरों से भी कम है।



चित्र नं० ९६

पूर्वी बंगाल में विभिन्न उद्योगों के कारखानों की स्थिति इस प्रकार है:——

	कारखानों की संख्या
चाय के कारखाने	११६
चावल के कारखाने	८४
पटसन के कारखाने	६५
इंजीनियरिंग के कारखाने	२१
मोजा बनियान व सूती बुनाई के कारखाने	१४
रेल की मरम्मत के कारखाने	१३
सूती कपड़ा मिलें	१३
चीनी की मिलें	९

	कारखानों की संख्या
नाव बनाने व मरम्मत के कारखाने	६
छपाई व किताब बांधने के कारखाने	६

ढाका सोने चांदी के काम व सीप की चूड़ियों के लिये प्रसिद्ध है। यह आंतरिक व्यापार का प्रमुख केंद्र है। यह पटसन उत्पादक क्षेत्रों के मध्य में स्थित है।

नारायणगंज ढाका का बन्दरगाह है और पूर्वी बंगाल का मुख्य व्यापार केंद्र है। यहां की आबादी ४५,००० है। **सिलहट** सूरमा नदी पर बसा हुआ है और फल व नीबू के लिये प्रसिद्ध है।

प्रश्नावली

१. पाकिस्तान की प्रमुख आर्थिक उपज क्या है? उनके साथ भारतीय वस्तुओं की कैसी स्पर्धा रहती है?

२. पाकिस्तान के आत्मनिर्भर होने की क्या संभावनाएं हैं? समझा कर उदाहरण देते हुए लिखिये।

३. पाकिस्तान को किन प्राकृतिक भागों में बांटा जा सकता है? प्रत्येक का सकारण विवरण दीजिये।

४. पाकिस्तान के मुख्य खनिज पदार्थ कौन २ से हैं और वे कहां २ पाये जाते हैं?

५. पाकिस्तान की जनसंख्या का विवरण बतलाइये और इसकी विशेषताओं के कारण लिखिये।

६. पाकिस्तान के यातायात के साधनों का वर्णन कीजिये और देश की आर्थिक उन्नति के लिए उनका महत्व बतलाइये।

७. पश्चिमी पाकिस्तान के मानचित्र पर वहां के सिंचाई के साधनों को दिखलाइये और बतलाइये कि वहां पर नहरों द्वारा सिंचाई की इतनी उन्नति कैसे सम्भव हो सकी है?

८. पूर्वी पाकिस्तान के मानचित्र पर निम्नलिखित क्षेत्र दिखलाइये :—

(अ) प्रमुख पटसन उत्पादन क्षेत्र

(आ) मुख्य जलमार्ग और तीन नदी बन्दरगाह

९. निम्नलिखित के महत्व व स्थिति पर संक्षिप्त टिप्पणियां लिखिये—लाहौर, पेशावर, रावलपिंडी, ढाका और नारायनगंज।

१०. कराची व ढाका के बन्दरगाहों से होने वाले आयात निर्यात व्यापार का निरूपण कीजिये।

११. पूर्वी पाकिस्तान में किन शिल्प उद्योगों की उन्नति की जा सकती है? कारण बतलाते हुए उत्तर लिखिये।

१२ पाकिस्तान में चीनी के कारखानों व सूती कपड़ा मिलों की वर्त्तमान दशा और भावी संभावनाओं का वर्णन कीजिये।

१३. भारत व पाकिस्तान के बीच व्यापार की विशेषतायें बतलाइये।

१४. दैनिक उपभोग की वस्तुओं के लिये पाकिस्तान भारत पर कहां तक निर्भर रहता है? ये वस्तुएं कहीं और से प्राप्त की जा सकती हैं या नहीं।

अध्याय : चौदह

बर्मा

सन् १९३७ तक बर्मा भारत का ही एक अंग था। सभ्यता, जाति व भौगोलिक दृष्टिकोण से बर्मा इंडोचीन प्रायद्वीप का ही भाग है यद्यपि राजनीतिक तरीके पर यह एक अलग राष्ट्र है।

स्थिति, विस्तार व क्षेत्रफल—इंडो-चीन प्रायद्वीप के दक्षिणी प्रदेश में उत्तर व पश्चिमोत्तर दिशा की ओर बर्मा स्थित है। इसके पूर्व में चीन का यनान प्रदेश और इंडोचीन व स्याम के देश हैं। उत्तर में वह पर्वतीय प्रदेश हैं जहां भारत, चीन व तिब्बत की सीमायें एक दूसरे से मिलती हैं। इसके दक्षिण में हिन्द महासागर व मलाया प्रायद्वीप हैं और पश्चिम में भारत व पूर्वी पाकिस्तान ।

बर्मा का स्वरूप बहुत कुछ पतंग के समान है। उत्तर से दक्षिण तक इसका विस्तार कोई ८६० मील में है और पूर्व से पश्चिम तक इसकी चौड़ाई ५७५ मील है। इसके अलावा इसकी पूंछ-सी दक्षिण की ओर ६०० मील तक फैली हुई है। इसकी तटरेखा लगभग १२९० मील लम्बी है और भारत की अपेक्षा अधिक कटी-फटी है। कुल मिलाकर इसका क्षेत्रफल २,६०,००० वर्गमील है।

बर्मा की स्थिति आर्थिक दृष्टिकोण से बड़ी महत्वपूर्ण है। भारत और आस्ट्रेलिया के मध्य वायुमार्ग बर्मा से होकर जाता है। स्याम, फ्रांसीसी इंडोचीन और चीन के साथ इसकी सीमा मिली हुई है। लाशिओ, तयोनगई, मेयमयो स्थानों पर इसका चीन के साथ संपर्क होता है और लाशिओ का मार्ग जिसे बर्मा रोड भी कहते हैं, सबसे अधिक सैनिक व व्यापारिक महत्व का है। यह तो हुई थल व वायुमार्गों की बात । सामुद्रिक व्यापारिक मार्गों का भी यह केंद्र है और संसार के सभी प्रमुख समुद्री मार्गों से संबंधित है।

जनसंख्या व मनुष्य—बर्मा की जनसंख्या १ करोड़ ६० लाख है और आबादी का औसत घनत्व ७२ मनुष्य प्रति वर्गमील है। परन्तु जापान, चीन, भारत व इंडोचीन की अपेक्षा यह संख्या बहुत ही कम है जैसा कि निम्न तालिका से स्पष्ट हो जायेगा:—

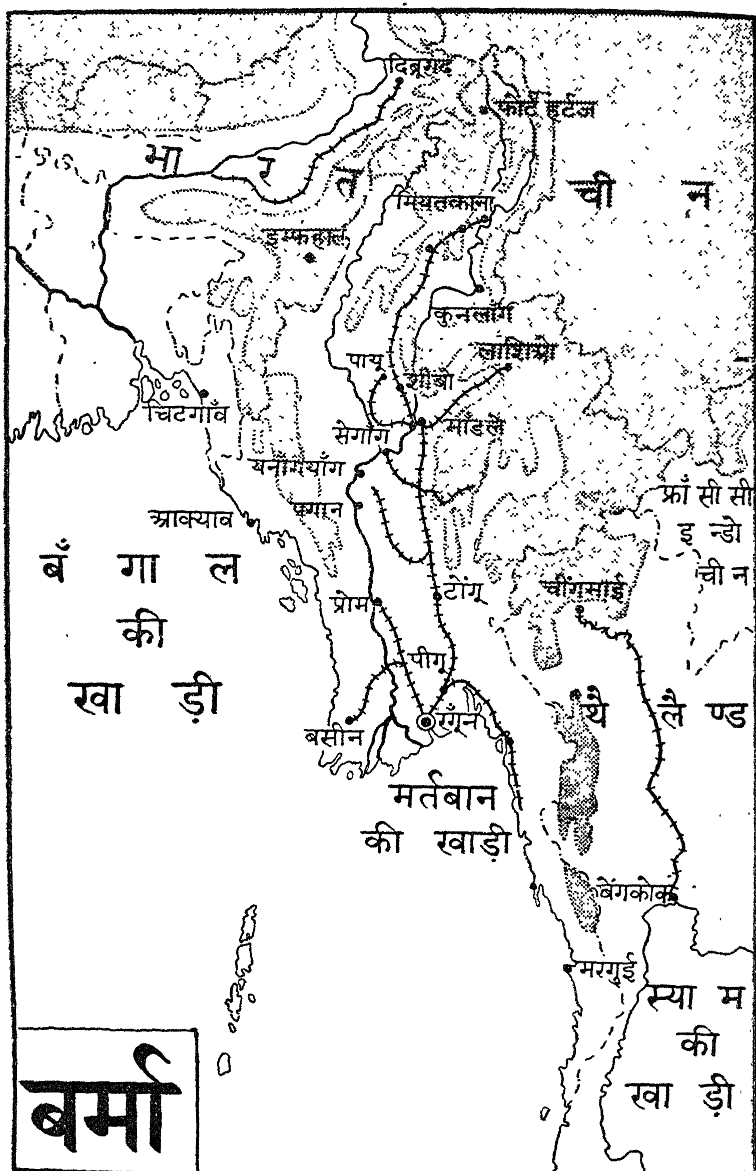
जनसंख्या का औसत घनत्व (प्रति वर्ग मील)

देश	संख्या	देश	संख्या
जापान	४९६	फिलीपाइन	१४०
चीन	२५०	मलाया	१०३
भारत	२४७	बर्मा	७२

इस प्रकार दक्षिण पूर्व एशिया के सभी देशों में बर्मा की जनसंख्या का घनत्व सबसे कम है।

बर्मा में जनसंख्या का सबसे अधिक घनत्व पीगू, इरावदी और मांडले प्रदेशों में

है। इन प्रदेशों में क्रमशः २१५, १९८ और १५३ मनुष्य प्रति वर्गमील क्षेत्र फल में निवास करते हैं। जनसंख्या का वितरण इस प्रकार है :—



चित्र नं० ९७—बर्मा और भारत व पूर्वी पाकिस्तान के बीच कोई रेलमार्ग नहीं है।

पीगू	२९ लाख	मागवे	१९ लाख
इरावदी	२७ लाख	मान्डले	१९ लाख
टेनासिरम	२१ लाख	अराकान	१२ लाख
सैगैयान्ज	२३ लाख	पूर्वी राज्य	२० लाख

बर्मा की कुल आबादी के दो-तिहाई लोग बर्मा के आदि निवासी हैं। भारतीय भी काफी हैं—लगभग १० लाख। बर्मा के लोग बड़े नम्र, दयालु व आवभगत करने वाले होते हैं। इसीलिये उन्हें पूर्व के आइरिश का उपनाम दे दिया गया है। यहां केके लोक अधिकतर मन्गोल जाति के हैं और भारतीयों से अधिक पढ़े-लिखे व धनाड्य हैं। प्रायः ये लोग साफ दिल के होते हैं और इनका बर्ताव सच्चा व द्वेपहीन होता है। ये लोग बहुत जल्दी हिलमिल जाते हैं। स्त्रियों और पुरुषों को समान सामाजिक अधिकार प्राप्त हैं परन्तु जीवन कठिन न होने के कारण यहां के लोग अधिक हिम्मती व मेहनती नहीं बन पाये हैं।

यहां के लोगों का मुख्य धर्म बौद्ध है और करीब ८५ प्रतिशत जनता बुद्ध भगवान की उपासक है। साधारणतया यहां के लोग मन्गोल जाति के हैं परन्तु इनके तीन मुख्य विभाग हैं– (१) तिब्बती व बर्मी के मिश्रण (२) मॉन कहमर और (३) टीई चीनी। ये तीनों ही उपजातियां आपस में एक-दूसरे से संबंधित हैं और आपसी कलह होने पर भी इनके बीच एकराष्ट्रीयता की भावना बराबर बढ़ती जा रही है।

भू-प्रकृति व जलवायु—बर्मा एक पहाड़ी देश है और इसकी समस्त भूमि पहाड़ों व घाटियों से घिरी हुई है। **उत्तरी बर्मा** में ऊंचे व ढालू पर्वत शिखर हैं जिन पर बन पाये जाते हैं। इनके बीच संकरी घाटियां हैं जो प्रायः बन्जर सी पड़ी रहती हैं। **दक्षिणी बर्मा** में इरावदी व सिक्यांग नदियों की चौड़ी घाटियों में नदियों द्वारा लाई हुई मिटटी के मैदान पाये जाते हैं। ये मैदान दक्षिणी पुच्छल प्रदेश के तटीय भागों तक विस्तृत हैं।

बर्मा का अधिकतर भाग उष्णकटिबंध में स्थित है। इसलिये यहां की जलवायु गर्म व तर है। अप्रैल-मई के महीनों में विकट गर्मी पड़ती है और वर्षा बिल्कुल नहीं होती। मई के अन्त में मानसूनी हवाओं द्वारा वर्षा होनी शुरू होती है और फिर सितम्बर तक प्रायः नित्यप्रति वर्षा होती रहती है। डेल्टा व तटीय प्रदेश प्रायः सदैव ही तर रहते हैं। **ऊपरी बर्मा** में तीन मौसम होते हैं— जाड़ा, गर्मी और बरसात, परन्तु **दक्षिणी बर्मा** में केवल दो ही मौसम होते हैं—तर व शुष्क। दोनों ही मौसमों में खूब गर्मी पड़ती है।

खनिज सम्पति

बर्मा में कई प्रकार के खनिज पदार्थ पाये जाते हैं जिन में खनिज तेल, जस्ता, शीशा, टीन, टंगस्टन, निकल और कोबल्ट प्रमुख हैं। शीशे के उत्पादन में बर्मा का संसार में छठा स्थान है और टीन के उत्पादन में इसका पांचवां नम्बर है। टंगस्टन के उत्पादन में चीन के बाद इसका दूसरा स्थान है। खनिज तेल के उत्पादन में भी यह प्रमुख है। परन्तु केवल खनिज तेल को साफ करने के उद्योग को छोड़कर और कोई उद्योग अधिक उन्नति नहीं कर पाया है। इसलिये अन्य सभी खनिज कच्ची दशा में ही

बाहर निर्यात कर दिये जाते हैं।

(खनिज उत्पादन (१९४८)

(टन में)

सुरमा	१६९	वोलफ्राम	७८
शीशा	११,५७६	टीन	१०३६
जस्ता	२,९४३	चांदी	४१५,०९९ औंस

चिन्दविन और निचली इरावदी घाटी में बर्मा के सभी **तेल क्षेत्र** स्थित हैं। यनांगयांग में सबसे बड़ी तेल की खान है। यहां से पाइप द्वारा तेल रंगून तक लाया जाता है। बर्मा में खनिज तेल का वार्षिक उत्पादन ३००० लाख गैलन है। संसार के तेल उत्पादन का केवल ३ प्रतिशत अंश ही बर्मा से प्राप्त होता है। टेनासरिम में **टीन** की बहुमूल्य खानें हैं और बादिन में संसार का सबसे बड़ा **चांदी भंडार** पाया जाता है। **चिन्दविन** की घाटी में कोयले की भी खानें हैं और वहीं माणिक जैसे बहुमूल्य पत्थर भी पाये जाते हैं। उत्तरी पश्चिमी बर्मा में उच्च कोटि के कोयले का विस्तृत भंडार निहित है। यदि इस क्षेत्र की इन खानों का विकास किया जा सका तो बर्मा के उद्योग-धंधों व यातायात के साधनों की विदेशी कोयले पर निर्भरता कम हो जायगी। इनके अलावा यहां पर लाल मणि, बोलफ्राम, सुरमा व नमक भी पाये जाते हैं। प्रायः सभी खनिजों की संपूर्ण उत्पादन मात्रा निर्यात कर दी जाती है।

बन-सम्पत्ति

बर्मा के कुल क्षेत्रफल का ६० प्रतिशत भाग वनों से घिरा हुआ है। बर्मा में ६ प्रकार के वन पाये जाते हैं—

(१) अराकान और टेनासरिम के तट पर सामुद्रिक जल के वन पाये जाते हैं।

(२) अराकान व टेनासरिम के उच्च किनारों पर रेतीले तटीय वन पाये जाते हैं।

(३) १२० इंच से अधिक वर्षा वाले क्षेत्रों में उष्णकटिबंधीय सदाबहार वन पाये जाते हैं। बांस इनका मुख्य पौधा है।

(४) ५० इंच से १२० इंच वर्षा वाले क्षेत्रों में मिले-जुले पतझड़ वन पाये जाते हैं। ऊपरी बर्मा में सागौन व पदौक के वृक्ष विशेष रूप से मिलते हैं।

(५) शुष्क प्रदेश में कांटेदार वृक्षों के शुष्क वन पाये जाते हैं। इनमें कई ऐसे वृक्ष मिलते हैं जिनसे चमड़ा साफ करने का काम लिया जाता है।

(६) ३००० फीट से अधिक ऊंचाई पर शीतोष्ण प्रदेश के वन पाये जाते हैं। चीड़, ओक, फर्न और अखरोट के पेड़ इनमें बहुतायत से मिलते हैं।

बर्मा की वनस्पति में **सागौन** और **बांस** का विशेष महत्व है। व्यापारिक दृष्टिकोण से सागौन का बड़ा महत्व है परन्तु जनता के दृष्टिकोण से बांस अधिक लाभप्रद है। सागौन के वृक्ष पीगूयूमा, अराकनयूमा के पूर्वी ढाल और स्याम की सीमा पर पाये

जाते हैं। इन वृक्षों को काटकर सिखाये हुए हाथियों की सहायता से नदी तक घसीट लाया जाता है और फिर नदियों में बहाकर डेल्टा प्रदेश में स्थित बन्दरगाहों तक पहुंचा दिया जाता है। पिछले कुछ दिनों से बर्मा सागौन की विश्वव्यापी मांग के ७५ प्रतिशत अंश की पूर्त्ति करता रहा है। सागौन की लकड़ी बहुत मजबूत व टिकाऊ होती है। इसमें दीमक आदि नहीं लग पाते। सन् १९४० में बर्मा में ५० घन फीट सागौन की ४ लाख टन लकड़ी प्राप्त हुई। बांस भी बड़ा लाभप्रद वृक्ष है और बर्मा के लोग इसे कई प्रकार के प्रयोग में लाते हैं। घरेलू बर्त्तन, अस्त्र मेज-कुर्सी, नाव व पानी के नल आदि वस्तुएं बांस से ही बनाई जाती हैं। इधर कुछ दिनों से **बेंत** का प्रयोग भी बढ़ रहा है। अब डलिया व टोकरियां तथा मेज-कुर्सी बेंत से ही बनाई जाती हैं।

कृषि

बर्मा एक कृषि-प्रधान देश है और यहां के ७१ प्र.श. लोग कृषि या वन-कार्य में लगे हुए हैं। करीब २०० लाख एकड़ भूमि पर खेती का धंधा होता है। यहां की मुख्य फसल **चावल** है और वार्षिक उत्पादन का औसत ५० लाख टन है। इरावदी घाटी के ऊपरी व निचले भाग में, टेनासरिम के पश्चिमी व ऊपरी तटीय प्रदेश की संकरी भूमि के ७० प्र. श. भाग में चावल उगाया जाता है। प्रतिवर्ष करीब ३५ लाख टन चावल यहां से निर्यात कर दिया जाता है और इसका आधा भाग अकेला भारत आयात करता है। युद्ध के पूर्व काल में बर्मा के निर्यात व्यापार का तीन-चौथाई अंश चावल होता था। इस समय युद्ध-पूर्व काल के क्षेत्रफल के केवल तीन-चौथाई भाग में ही चावल की खेती की जाती है। चावल का कुल उत्पादन भी कुछ कम हो गया है। पहले की अपेक्षा अब केवल दो-तिहाई चावल उत्पन्न होता है। युद्ध काल में बर्मा का संसार के अन्य भागों से संपर्क टूट गया। फलतः उसकी निर्यात व उत्पादन मात्रा दोनों ही घट गई। लड़ाई के पहले बर्मा संसार में चावल निर्यात करने वाले देशों में सबसे आगे था परन्तु अब वह बात नहीं रही। उत्पादन में कमी का एक अन्य कारण यह भी है कि युद्ध पश्चात काल में बर्मा की राजनीतिक स्थिति बड़ी डांवाडोल व अनिश्चित रही। अब सरकार ने इस ओर ध्यान देना शुरू किया हैं। डेल्टा क्षेत्र में २५ लाख एकड़ भूमि इस समय बेकार पड़ी हुई है जिस पर चावल की खेती की जा सकती है। बर्मा सरकार ने ५० एकड़ भूमि से अधिक भूमि पर सरकारी कब्जा करने के लिए एक कानून बनाया है जो कि निचले बर्मा में भी लागू किया जा रहा है।

इरावदी घाटी के मध्य भाग में **मक्का** उगाया जाता है। इरावदी घाटी के ऊपरी भाग में लगभग २०,००० एकड़ भूमि पर **गन्ना** बोया जाता है। उत्तरी शान रियासतों में **चाय** उत्पन्न की जाती है। **तम्बाकू** देश भर में सभी जगह उगाया जाता है परन्तु इसके लिये पश्चिमी प्रदेश विशेष महत्वपूर्ण है विशेषतया अराकान का पहाड़ी क्षेत्र। यहां की अन्य फसलें **कपास** और **तिलहन** हैं।

बर्मा की फसलें व क्षेत्रफल १९४५–४६

फसल	क्षेत्रफल (हजार-एकड़)	उपज (हजार टन)
चावल	६२७४	२६३०
मक्का	९०	१२
तिल	८०३	३२
मूंगफली	३७५	७६
कपास	१७७	४

यातायात के साधन—बर्मा में गमनागमन व यातायात के सबसे प्रमुख साधन जलमार्ग हैं। **इरावदी नदी** ऊपरी व निचले बर्मा के संपूर्ण विस्तार से होकर बहती है और रंगून से भामो तक लगभग ९०० मील की दूरी में जहाज आ जा सकते हैं। बर्मा के मध्य प्रदेश के निकास का यही मुख्य मार्ग है और देश के प्रमुख नगर इसी के किनारे पर बसे हुए हैं। **सालविन नदी** इरावदी से अधिक लम्बी जरूर है परन्तु बहाव में चट्टानों व झरनों की अधिकता के कारण इस पर मुहाने से केवल ८० मील दूर तक जहाज चल सकते हैं।

बर्मा के सभी रेलमार्ग छोटी लाइन के हैं और रंगून से शुरू होते हैं। सन् १९४० में बर्मा के रेलमार्गों की कुल लम्बाई २०६० मील थी। बर्मा का मुख्य रेलमार्ग सीटांग घाटी से होता हुआ रंगून से मान्डले तक जाता है। इसी मार्ग पर पीगू बसा है। दूसरा मुख्य रेलमार्ग इरवादी घाटी से होता हुआ रंगून से प्रोम तक जाता है। इन दोनों रेलमार्गों की कुछ प्रमुख शाखायें निम्नलिखित हैं:—

(१) पीगू से मर्त्तबान तक और फिर नाव द्वारा नदी पार कर के मोलमीन तक।

(२) मोलमीन से यी तक और फिर यी से बर्मा स्याम रेलवे द्वारा स्याम के आंतरिक भाग तक।

(३) मान्डले से लाशिओ तक।

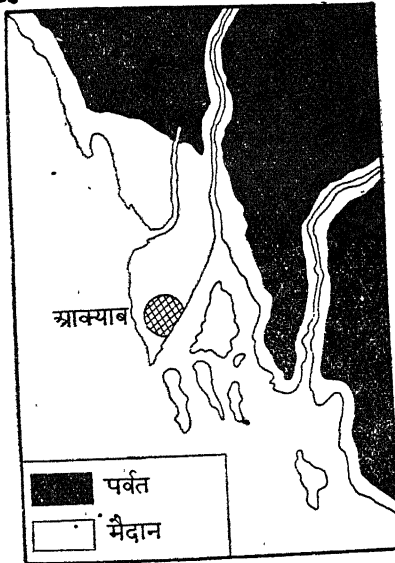
(४) मान्डले से म्यितकियना तक।

(५) प्रोम मार्ग पर स्थित हनजादा से बसीन तक।

बर्मा के थलमार्ग—सड़कें विशेष उन्नत नहीं हैं। मजदूरी महंगी होने तथा अच्छे पत्थर की कमी के कारण पक्की सड़कों का बनाना कठिन है। बर्मा में १७,००० मील लम्बी सड़कें हैं और इन में से १२,५०० मील सड़कें मोटर चलाने योग्य हैं। बर्मा की प्रमुख सड़कें निम्नलिखित हैं:—(१) बर्मा सड़क (२) रंगून-प्रोम यनांयांग मेकतिला मार्ग (३) स्यांगयान मेकतिला-त्यांजयी स्याम मार्ग (४) सागायांग शावेबो-कलेवा इम्फाल मार्ग (५) स्टिलवेल मार्ग (६) पीगू थाटन मोलमीन टेवाय और मार्जिन मार्ग। **बर्मा सड़क** रंगून से कुनमिंग तक जाती है। इसी सड़क पर पीगू, मान्डले, मेमयो, लाशिओ और बान्टइंग भी स्थित हैं। यह संपूर्ण मार्ग साल भर बराबर खुला रहता है। **स्टिलवेल मार्ग** आसाम रेलमार्ग के अन्तिम बिन्दु लेडो से शुरू होता है और म्यितकीना होता हुआ भामो तक जाता है। भामो से एक शाखा द्वारा इसे बर्मा सड़क से मिला दिया गया है। यह शाखा नामखान होती हुई जाती है। स्टिलवेल मार्ग का निर्माण सैनिक यातायात के लिये हुआ

था परन्तु यह हुक्यांग घाटी के महत्वपूर्ण कृषि क्षेत्र से होकर जाती है। इसलिये इसका महत्व और भी अधिक है।

बर्मा और भारत के बीच कोई व्यवस्थित थलमार्ग नहीं है। इसके कई कारण हैं—(१) भारत और बर्मा के बीच सामुद्रिक मार्ग का व्यय इतना कम है कि सड़क पर अधिक धन व्यय करने की बात के पक्ष में कोई भी सरकार नहीं होती। यह सड़क इतने अधिक व्यय के बाद केवल सैनिक महत्व के लिये बनाई जा सकती है। इस दृष्टिकोण से मार्ग निरीक्षण भी हुआ तो जब सवाल धन व्यय का आया तो कोई भी सरकार तैयार न हुई। (२) बर्मा के अलग होने से पहले भारत सरकार इस प्रश्न को अधिक महत्व नहीं देती थी। बर्मा के अलग राष्ट्र बन जाने के बाद से जब भी यह मार्ग बनाने का प्रश्न उठा तो बर्मा सरकार के मंत्रियों ने इसका विरोध किया। उनकी धारणा थी कि ऐसा मार्ग बन जाने से प्रवाशी भारतीयों की संख्या बहुत बढ़ जायेगी और उन्हें रोकना कठिन होगा। फिर भी भारत व बर्मा के बीच रेल, सड़क सम्बन्ध स्थापित करने के प्रश्न पर निकट भविष्य में विचार होने की आशा है।



चित्र नं० ९८—आक्याब का बन्दरगाह व व्यापारिक केन्द्र

व्यापारिक केन्द्र

बर्मा के प्रमुख व्यापारिक केन्द्र अक्याब, बसीन, टेवाय, मोलमीन, मान्डल, भामो और रंगून हैं। **भामो** उत्तरी बर्मा में स्थित है और सीमान्त मार्गों द्वारा चीन बर्मा का व्यापार का केन्द्र है। यह मान्डले से २०० मील उत्तर में है। **आक्याब** बर्मा के पश्चिमी किनारे पर बसा है और चावल निर्यात का मुख्य केन्द्र है। इसका सबसे बड़ा दोष यह है कि इसका आन्तरिक भागों के साथ सम्बन्ध किसी रेलमार्ग द्वारा नहीं है। यहां की आबादी ४०,००० है और यहां पर प्रमुख आयात की वस्तुएं शराब, मशीनें, सूती कपड़े और लोहे के सामान हैं।

बसीन इरावदी प्रदेश के मध्य में बसा है और समुद्र से ७० मील की दूरी पर स्थित है। रंगून से इसका सीधा रेल संबंध है। **रंगून** प्रमुख बन्दरगाह व राजधानी है। यह रंगून नदी पर समुद्र से २५ मील की दूरी पर बसा है। यहां पर सूती कपड़े, धातुएं, खाने की वस्तुएं, रेशम, चीनी, चमड़े का सामान, मशीनें व कागज आयात किया जाता है। निर्यात की प्रमुख वस्तुएं चावल, चमड़ा व खालें, जस्ता, शीशा, लकड़ी, खनिज तेल, तम्बाकू व रबड़ हैं। देश के सभी प्रमुख नगरों के साथ इसका रेल-संबंध है। **मोलमीन** मर्त्तबान की खाड़ी पर

स्थित एक प्रमुख बन्दरगाह है। इस्पात, चीनी, खाद्य पदार्थ और टाट के बोरे यहां पर आयात की मुख्य वस्तुएं हैं और लकड़ी, रबड़, टीन और तम्बाकू यहां से निर्यात की जाती हैं। **टेवाय** बर्मा के दक्षिणी पूंछ सदृश भाग के मध्य में स्थित है और वोलफ्राम व टीन के निर्यात का प्रमुख केन्द्र है। **मरगुई** टेनासरिम के दक्षिणी-पश्चिमी किनारे पर स्थित है और रबड़ व मोती निकालने के उद्यम का केन्द्र है। **मान्डले** उत्तरी बर्मा में इरावदी नदी पर बसा है और रंगून से ४०० मील दूर है। चावल व रेशम यहां के व्यापार की प्रमुख वस्तुएं हैं।

विदेशी व्यापार

बर्मा के कुल निर्यात व्यापार का दो तिहाई से तीन चौथाई भाग तक चावल व खनिज तेल होता है और यहां का ९० प्र. श. निर्यात व्यापार रंगून बन्दरगाह से होता है। दूसरी विशेषता यह है कि साधारणतया बर्मा की ७५ प्र. श. निर्यात सामग्री भारत ले लेता है। इसके कई कारण हैं—(१) भारत के बन्दरगाह इसके बिल्कुल समीप हैं। (२) भारत में चावल, खनिज तेल व सागौन की मांग रहती है और बर्मा में इन वस्तुओं का आधिक्य रहता है। (३) बहुत दिनों तक भारत व बर्मा के बीच व्यापार स्वातन्त्र्य रहा है। वास्तव में सन् १९३७ तक बर्मा भारत का ही एक भाग रहा है। (४) सन् १९३७ तक भारत व बर्मा की मुद्रा एक थी और (५) सन् १९४० तक बर्मा का अधिकतर व्यापार भारतीयों के ही हाथ में था।

वास्तव में बर्मा व भारत में सदैव से ही एक अटूट सम्बन्ध रहा है और सन १९३७ में भारत से बर्मा के अलग हो जाने पर भारत की आर्थिक स्थिति को भारी धक्का पहुंचा। भारतीय उद्योग-धन्धों को प्राप्त सरकारी संरक्षण बर्मा में लागू नहीं होता है। अतएव बर्मा में भारतीय उद्योग-धन्धों को विदेशी राष्ट्रों में तैयार की हुई वस्तुओं के साथ स्पर्धा करनी पड़ती है। बर्मा से अलग हो जाने से उन अनेक भारतीय मजदूरों को भी जो बर्मा के रबड़ व अन्य उद्योगों में लगे हुए हैं परदेशी या विदेशी समझा जाता है। फिर बर्मा के अलग हो जाने से भारत की खनिज तेल, रबड़, टीन और बोलफ्राम जैसे खनिज पदार्थ सम्बन्धी मांग पूर्ति पर बड़ा खराब असर पड़ा है। इससे अधिक शोचनीय असर बर्मा पर पड़ा है और बर्मा की औद्योगिक उन्नति के लिए आवश्यक है कि भारत व बर्मा के बीच मेल-जोल बना रहे। इस मेल-जोल को बनाये रखने के लिए परस्पर व्यापार सम्बन्ध रखना अत्यन्त आवश्यक है। इससे दोनों देशों को फायदा होगा। परन्तु इसके पहले कि आपस में व्यापारिक व औद्योगिक सहयोग बढ़े बर्मा के लोगों के दिल में भरोसा पैदा होना चाहिए कि उनकी आर्थिक प्रगति में भारतीय रोड़ा नहीं बल्कि सहायक हैं। साथ-साथ यहां पर बसी हुई भारतीय जनता को भी विश्वास दिलाया जाना चाहिए कि उनके साथ वही बर्ताव किया जावेगा जो वहां के बर्मी लोगों के साथ। इस प्रकार आपस में अच्छी भावनाओं का विकास हो सकेगा।

बर्मा का विभिन्न देशों के साथ समुद्र द्वारा व्यापार
(प्रतिशत)

भारत	६.०	मलाया	४.६
ग्रेट ब्रिटेन	१३.२	पाजान	४.०
लंका	५.५		

बर्मा बाहर के देशों से तैयार माल मंगवाता है। साधारण दैनिक उपभोग की वस्तुएं भी बाहर से ही आती हैं। इसके अलावा लोहा व इस्पात, कोयला व कोक तथा मशीनें भी आयात की जाती हैं। आयात किये हुए माल का ५० प्रतिशत भाग भारत से आता है और २० प्रतिशत आयात ग्रेट ब्रिटेन से। भारत से बर्मा सूती कपड़ा व सूत, पटसन, सुपारी, दालें, लोहा व इस्पात, सिगरेट, चाय, जूते व फल मंगवाता है। ग्रेट ब्रिटेन से आयात की जाने वाली वस्तुओं में सूती कपड़े, मशीनें, लोहा व इस्पात तथा रासायनिक पदार्थ सबसे प्रमुख हैं।

बर्मा से भारत को चावल, दालें, चना, तेल, मोमबत्ती, टीन व लकड़ी आदि निर्यात की जाती है।

प्रश्नावली

१. "बर्मा के लोगों का मुख्य व्यवसाय व उद्यम उनकी भौगोलिक परिस्थितियों पर आश्रित है।" इस उक्ति पर अपने विचार प्रगट कीजिये।

२. भारत व बर्मा के बीच व्यापार की मुख्य विशेषतायें बतलाइये।

३. बर्मा के औद्योगीकरण में वहां की विभिन्न परिस्थितियों से कहां तक सहायता मिल सकती है?

४. बर्मा में औद्योगिक उन्नति व विकास की संभावनाओं का निरूपण कीजिये।

अध्याय : : पंद्रह

लंका

सन् १९४८ में लंका ब्रिटिश कामनवेल्थ के अन्तर्गत एक स्वतंत्र राष्ट्र बन गया है। सैनिक दृष्टि से इसकी स्थिति बड़ी महत्वपूर्ण है और इसीलिये ग्रेट ब्रिटेन की सरकार ने नौ व वायु सेना के अड्डे अपने ही हाथ में रखे हैं।

स्थिति, क्षेत्रफल, प्राकृतिक बनावट व जलवायु—पाकजलडमरूमध्य लंका को भारतीय प्रायद्वीप से अलग करता है और आदमस ब्रिज नामक द्वीप श्रृंखला इसको भारत से सम्बन्धित करती है। भू-प्रकृति के दृष्टिकोण से लंका द्वीप भारत का ही एक अंग है। इसकी लम्बाई २७० मील और सब से अधिक चौड़ाई १४० मील है। इसका कुल क्षेत्र-फल २५,३३२ वर्गमील है। यहां की सब से लम्बी नदी महाविला गंगा है और इसकी लम्बाई १३४ मील है। यह उत्तर-पूर्व की ओर बहती है। इस पर छोटी २ नावें चल सकती हैं।

लंका की जलवायु उष्णकटिबंधीय है और साल भर बराबर पानी बरसता रहता है। इसके पश्चिमी भाग में मई से अक्तूबर तक वर्षा होती है। पूर्वी भाग की वर्षा जाड़ों में होती है। प्राकृतिक बनावट के दृष्टिकोण से लंका का मध्य भाग पठारों व पहाड़ों से घिरा है। बाकी भाग मैदान है।

कृषि—भूमि, तापक्रम और वर्षा के दृष्टिकोण से लंका कृषि के उद्यम के लिये बड़ा उपयुक्त है, इसीलिये कृषि यहां का प्रधान धंधा हो गया है। फिर भी कुल क्षेत्रफल के पंचमांश में ही खेती की जा सकती है। शेष चार-पांचमांश या तो वनों से घिरा है या बंजर भूमि है। यहां की मुख्य फसलें चाय, रबड़, नारियल और सिनकोना हैं। इनकी उपज का अधिकतर भाग निर्यात कर दिया जाता है। प्राकृतिक रबड़ के विश्वव्यापी उत्पादन का ६ प्रतिशत अंश लंका से ही प्राप्त होता है। सन् १९५० में लंका के जंगलों व बगीचों से १,१३,५०० टन रबड़ प्राप्त हुआ। रबड़ के वर्तमान वृक्षों को देखते हुए लंका में रबड़ का अपार भंडार कहा जा सकता है जिसको यदि पूरी तरह से प्रयोग किया जावे तो प्रतिवर्ष १,२०,००० टन अतिरिक्त रबड़ प्राप्त किया जा सकता है।

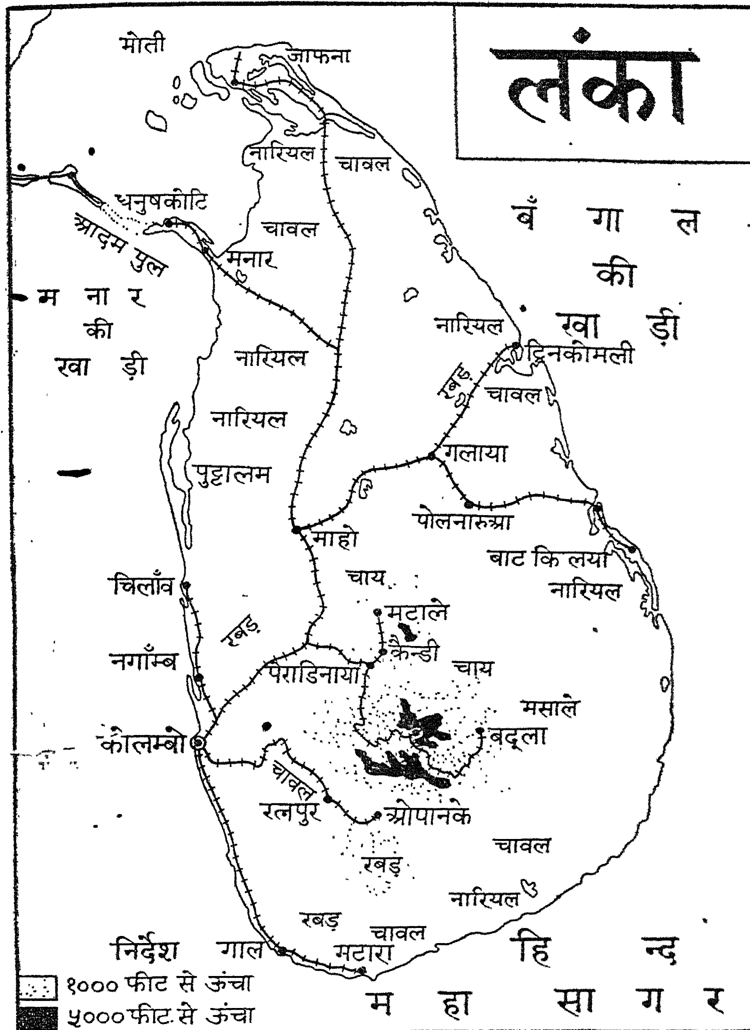
कहवा, कोको और तम्बाकू यहां की अन्य फसलें हैं। परन्तु लंका की आर्थिक उन्नति में चाय व रबड़ का विशेष महत्व है।

खनिज सम्पत्ति—यहां की खनिज सम्पत्ति में चूने के पत्थर, मणि व ग्रेफाइट का स्थान बड़ा महत्वपूर्ण है। ग्रेफाइट के विश्वव्यापी उत्पादन का ११ प्र. श. अंश लंका की खानों से प्राप्त होता है। सन् १९५० में १३,००० टन ग्रेफाइट निकाला गया था। लंका का ग्रेफाइट सैनिक दृष्टिकोण से बहुत उच्चकोटि का होता है और इस प्रकार के ग्रेफाइट के उत्पादन में लंका का स्थान संसार में सब से बढ़ा हुआ है।

जनसंख्या व यातायात के साधन—यहां की जनसंख्या ६० लाख से कुछ अधिक है और दक्षिणी-पश्चिमी भाग सब से अधिक घना बसा है। यहां की दो तिहाई जनसंख्या

सिंहाली हैं और लगभग एक चौथाई लोग तामिल हैं। धर्म के दृष्टिकोण से अधिक लोग बौद्ध धर्म को मानने वाले हैं और करीब पंचमांश जनता हिन्दूधर्म अनुयायी है। जनसंख्या का औसत घनत्व २६३ मनुष्य प्रति वर्गमील है।

लंका के रेलमार्ग कोलम्बो से चलकर उत्तर-पश्चिम में तलाइमन्नार तक जाते हैं,



चित्र नं० ९९—रेलमार्गों के विन्यास पर ध्यान दीजिये। यहां के रेलमार्ग उत्तर में जाफना, दक्षिण में मटारा और उत्तर-पूर्वी किनारे पर ट्रिनकोमाली को कोलम्बो से मिलाते हैं।

उत्तर में जफवा और पूर्व में ट्रिनकोमाली भी रेलमार्गों द्वारा कोलम्बो से सम्बन्धित हैं।

उद्योग-धन्धे—लंका कृषि-प्रधान देश है और यहां के उद्योग-धन्धे अभी हाल में ही विकसित हुए हैं। तेजाब (Acetic Acid), सिरामिक, शीशा, गोंद, टोप, प्लाईवुड, कुनैन, कागज व नारियल की जटा की चटाइयां व रस्से बनाना लंका के मुख्य उद्योग-धन्धे हैं। देश की आर्थिक व औद्योगिक उन्नति के लिये लंका की सरकार ने सन् १९४८ में एक छ: साला योजना पर काम शुरू किया है। सन् १९५४-५५ में इस योजना के पूरा होने पर लंका बहुत सी वस्तुओं में आत्मनिर्भर हो जावेगा।

विदेश व्यापार—लंका के निर्यात व्यापार की मुख्य वस्तुएं चाय, रबड़, नारियल का तेल व गिरी हैं। संन् १९४८ में कुल १०१.१२ करोड़ रुपये की सामग्री बाहर निर्यात की गई जिसमें अकेले चाय का मूल्य ५९.०३ करोड़ रुपया था। इसी वर्ष १४.१६ करोड़ रुपये मूल्य का रबड़ निर्यात किया गया। चाय की अन्तर्राष्ट्रीय मंडियों में तो लंका व भारत की काफी स्पर्धा रहती है। सिनकोना, तम्बाकू, लकड़ी व इलायची को भी निर्यात कर दिया जाता है। बदले में लंका चावल, खनिज तेल, सूती कपड़े, मोटर-गाड़ियां, धातुएं, कोयला व सीमेन्ट बाहर से मंगवाता है।

लंका का आयात-निर्यात व्यापार (लाख रुपये में)

आयात			निर्यात		
वस्तुएं	**१९३८**	**१९४९**	**वस्तुएं**	**१९३८**	**१९४९**
भोज्य पदार्थ	१०७	५१८	चाय	१७२	६५०
कच्चा माल	३४	११०	रबड़	४५	१२४
शिल्प उद्योग का तैयार माल	९४	४००	नारियल	३४	१६८
योग	२३५	१०२५	योग	२६४	१००६

लंका के विदेशी व्यापार में भारत का स्थान विशेष रूप से उल्लेखनीय है। परन्तु भारत व लंका का व्यापार सहयोगी नहीं बल्कि स्पर्धाजनक है। फिर भी दोनों देश एक दूसरे को काफी सामान भेजते हैं। भारत लंका को सूती कपड़े, पटसन, दालें, मछली, फल, सब्जी, चावल व लकड़ी भेजता है। और लंका से भारत को नारियल की विभिन्न वस्तुएं, मसाले व रबड़ निर्यात किये जाते हैं। यदि व्यापार बढ़ाया जावे तो भारत से लंका को रेशमी व ऊनी कपड़े, मोजा बनियान, कम्बल, गलीचे व दरियां, साबुन, किताबें, कांटा छुरी चम्मच आदि वस्तुएं आसानी से भेजी जा सकती हैं।

वास्तव में लंका की आर्थिक उन्नति चाय, रबड़ व नारियल के बगीचों पर निर्भर है चाय में तो यह भारत की स्पर्धा करता है परन्तु रबड़ व नारियल यह भारत को भेजत है। बदले में लंका अपनी आवश्यकता की सभी प्रमुख वस्तुएं भारत से ही प्राप्त करता है युद्ध के पूर्व सन् १९३८ में लंका के आयात व्यापार में भारत का २२ प्र. श. भाग था। सन् १९४२ में भारत से लंका ने ५१ प्रतिशत वस्तुएं आयात कीं। निर्यात के दृष्टिकोण से लंका का सब से प्रमुख ग्राहक देश ग्रेट ब्रिटेन है और उसके बाद संयुक्तराष्ट्र का स्थान आता है।